Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

rya Samaj Foundation Chennai a

Vol.12

V

चिन्तन-सृजन

2014

No.1-3

n. Gurukul Kangri Collec

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

132250 Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Stock Verification-2

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मूल्य : 20 रुपये

ISSN 0973-1490

वर्ष-12 अंक-1 —3

जुलाई-सितम्बर 2014

चिन्तन-सृजन

www.asthabharati.org

त्रैमासिक

आस्था भारती, दिल्ली

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चिन्तन-सृजन

त्रैमासिक

Central Library
Gurukul Kangri University
Haridwar-249404 (U.A.)

2 अंक 1 जुलाई-सितम्बर 2014

पुस्तकालय
132250
गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय

सम्पादकीय परामर्शदात्री समिति

लोकेश चन्द्र

यशदेव शल्य

जे.एन.राय

रमेशचन्द्र शाह

सम्पादक

बी. बी. कुमार

सलाहकार सम्पादक

कमलेश

आस्था भारती

दिल्ली

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वार्षिक मूल्य :

व्यक्तियों के लिए	60.00 रुपए
संस्थाओं और पुस्तकालयों के लिए	150.00 रुपए
विदेशों में	$ 15

एक प्रति का मूल्य

व्यक्तियों के लिए	20. 00 रुपए
संस्थाओं के लिए	40.00 रुपए
विदेशों में	$ 4

विज्ञापन दरें :

बाहरी कवर	10,000.00 रुपए
अन्दर कवर	7,500.00 रुपए
अन्दर पूरा पृष्ठ	5,000.00 रुपए
अन्दर का आधा पृष्ठ	3000.00 रुपए

प्रकाशन के लिए भारतीय सामाजिक विज्ञान अनुसंधान परिषद द्वारा आंशिक आर्थिक सहायता प्राप्त

आस्था भारती
रजिस्टर्ड कार्यालय :
27/201 ईस्ट एंड अपार्टमेण्ट
मयूर विहार फेस-1 विस्तार
दिल्ली-110 096

कार्य-संचालन कार्यालय :
23/203 ईस्ट एंड अपार्टमेण्ट
मयूर विहार फेस-1 विस्तार
दिल्ली-110 096
से आस्था भारती के लिए श्रीमती लता सिंह, सचिव द्वारा प्रकाशित तथा
विकास कम्प्यूटर एण्ड प्रिण्टर्स, 1/10753, सुभाष पार्क, नवीन शाहदरा, दिल्ली-32 द्वारा मुद्रित। फोन : 011-22712454

ई-मेल : asthabharati1@gmail.com
वेब साइट : asthabharati.org

चिन्तन-सृजन में प्रकाशित सामग्री में दृष्टि, विचार और अभिमत लेखकों के हैं। सम्पादक की सहमति अनिवार्य नहीं है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विषय-क्रम

सम्पादकीय परिप्रेक्ष्य 5

1. समकालीन सांस्कृतिक समीक्षा और वितंडा : एक अनुशीलन 9
सुधीर कुमार

2. हाशिये के लोगों के मानवाधिकार और शिक्षा 13
जगमोहन सिंह राजपूत

3. रेजकारी 20
कमलेश

4. अपने अपने कालिदास 29
सरजू प्रसाद मिश्र

5. हिन्दू-मुस्लिम दंगों की समस्या 36
शंकर शरण

6. हिन्दी की वर्तनी : कुछ सुझाव 45
धर्मदेव तिवारी 'शास्त्री'

7. ललित निबंध 53
'काल' : एक सत्य, एक अनुभव
श्रीराम परिहार

8. प्राकृतिक आपदाओं के प्रबंधन की ओर 66
दिनेश मणि

9. शंकरदेव और उनके बरगीत 72
जयन्त कुमार बोरो

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

10. राम और राष्ट्र को समर्पित
स्वाभिमानी साहित्यकार : डॉ. रमानाथ त्रिपाठी 86
रुक्मिणी

11. डॉ. रामविलास शर्मा की दृष्टि में सुब्रह्मण्य
भारती का जीवन और साहित्य-कर्म 92
विजय कुमार रविदास

12. झारखण्डी जनजातीय समाज की लोक-संस्कृति 100
युगल झा

13. हिन्दी ब्लॉगिंग के दशक (2013) वर्ष पर विशेष 110
इण्टरनेट पर हिन्दी ब्लॉगिंग का बढ़ता आकर्षण
आकांक्षा यादव

14. गोपाल सिंह नेपाली "देश तो बँट गया वेदना बटी नहीं" 119
गोविन्द गुंजन

पाठकीय प्रतिक्रिया 125

प्राप्ति-स्वीकार 71

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विषय-क्रम

सम्पादकीय परिप्रेक्ष्य 5

1. शिलङ् एक यात्रानुभव 11
रमेशचन्द्र शाह

2. भाषा, संस्कृति और समाज : भूमण्डलीकरण के सन्दर्भो में 18
सुधीर कुमार

3. नाद-ब्रह्म का भाषिक आधार-दर्शन 24
डॉ. नन्दलाल मेहता 'वागीश'

4. मॉरिशस की पहली हस्तलिखित पत्रिका—
'दुर्गा' : हिन्दू-हिन्दी और मॉरिशसीयता का शंखनाद 29
डॉ. कमलकिशोर गोयनका

5. 21वीं सदी का बहुउद्देशीयवाद क्रिस्टीन लेगार्डे 52
हिन्दी अनुवाद : रजनीकान्त शर्मा

6. भारतीय आस्था का प्रतीक : मेरु-सुमेरु एवं सुमेर
सभ्यता से उसके वासियों का सम्बन्ध 66
प्रो. राजीव रंजन उपाध्याय

7. उच्च शिक्षा की समस्यायें 76
कैलाश चन्द्र मिश्र

8. हिन्दी पत्रकारिता की चुनौतियाँ : बीते कल और
जी रहे आज के सन्दर्भ में 81
देवनारायण पासवान 'देव'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

9. समीक्षा
विसंरचनावादी आलोचना और पाठ की साभिप्राय अर्थ-सर्जना* 90
समीक्षक : नन्द किशोर आचार्य

10. समीक्षा 95
प्रीतीश आचार्य की कहानियाँ
शंकर शरण

11. अहिंसा तीर्थ की आध्यात्मिक अनुभूति 100
डॉ. डी.एन. प्रसाद

12. विज्ञान की पृष्ठभूमि से सजी-सँवरी आधुनिक हिन्दी कहानी 105
अपराजिता राय

13. विचारों के झरोखे से जीवन-बोध
('मेरी जीवन-यात्रा' के विशेष सन्दर्भ में) 109
अरुण प्रसाद रजक

14. भारतीय धर्मग्रन्थों में नारियों की स्थिति 113
अनसूया अग्रवाल

15. तन का दिया नेह की बाती 118
प्रो. मृत्युंजय उपाध्याय

पाठकीय प्रतिक्रिया 124

प्राप्ति-स्वीकार 126

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विषय-क्रम

सम्पादकीय परिप्रेक्ष्य 5

1. पोद्दारजी के नाम महत् जनों के पत्र 7
सदानन्द प्रसाद गुप्त

2. संसदीय लोकतन्त्र और पर्यावरण का प्रश्न 20
श्री उदयन वाजपेयी

3. हमारे नेता इतने अपढ़ क्यों हैं? 33
कमलेश

4. हमारे विश्वविद्यालयों की स्थिति 41
शंकर शरण

5. क्या धर्म में आस्था के लिए चमत्कार आवश्यक है? 53
महीप सिंह

6. रमेशचन्द्र शाह : बहुवचनी सृजनात्मकता के शीर्षस्थ साधक 57
छबिल कुमार मेहेर

7. ऋग्वेद के रुद्र हैं शिव-पशुपति 69
कृपाशंकर सिंह

8. अथर्ववेद में विष्णु के स्वरूप का निरूपण 77
निरूपमा राय

9. आंचलिक उपन्यास 84
मधुकर गंगाधर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

10. विनय पत्रिका : समय का त्रासद स्वर — 97
नित्यानन्द श्रीवास्तव

11. गाँधी की व्यथा-एक प्रसंग के बहाने कुछ बातें — 105
राजीव रंजन गिरि

12. समीक्षा
हिन्दी-समीक्षा के नये आयाम — 113
नन्दलाल मेहता 'वागीश'

पाठकीय प्रतिक्रिया — 117

प्राप्ति-स्वीकार — 126

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सम्पादकीय परिप्रेक्ष्य

दोगली भाषा, दोगली संस्कृति

आज से लगभग 30-35 साल पहले मैंने 'धर्मयुग' में एक लेख पढ़ा था, जिसमें एक शब्द का प्रयोग मुझे बहुत खटका था। वह शब्द था 'इन्टेलेक्चुअलता'। अंग्रेजी शब्द इन्टेलेक्चुअल (intellectual, बौद्धिक) में हिन्दी प्रत्यय 'ता' लगाकर बना बौद्धिकता का पर्यायवाची शब्द। धीरे-धीरे ऐसे शब्दों का प्रयोग बढ़ता गया; हिन्दी में अंग्रेजी के शब्दों का प्रयोग धड़ल्ले से होने लगा। अंग्रेजी शब्दों के प्रयोग-कर्त्ता यह मानकर चलने लगे कि देवनागरी लिप्तन्तरण मात्र से अंग्रेजी के शब्द हिन्दी के बन जाते हैं। फिर सरकारी कार्यालयों में हिन्दी के प्रयोग को बढ़ाना देने के नाम पर नेहरू की सरकार ने देवनागरी में लिखे अंग्रेजी शब्दों के प्रयोग की पूरी छूट दे दी। आकाशवाणी एवं दूरदर्शन ने इस विकृति को और आगे बढ़ाया। हिन्दी के नाम पर एक दोगली भाषा का प्रयोग धड़ल्ले से होने लगा, यह भूलकर कि दोगली भाषा दोगली संस्कृति की वाहक होती है। आकाशवाणी तो कम, लेकिन दूरदर्शन की भाषा तो पूरी तरह से भ्रष्ट हो गयी; हिन्दी के नाम पर वह ऐसी भाषा बन गयी, जिसे पिड्जिन या क्रेयोल कहा जा सकता है। फिर दूरदर्शन ने अगला चरण उठाया। फिल्मों आदि की शुरुआती जानकारी जो देवनागरी में दी जाती थी, उसके लिए रोमन का प्रयोग होने लगा।

फिर अंग्रेजी शब्दों के प्रयोग की प्रवृत्ति अपनी सीमा रेखा पार कर आगे बढ़ी; अंग्रेजी शब्द अंग्रेजी व्याकरण का छिटपुट प्रयोग करते हुए प्रयुक्त होने लगे; जैसे 'स्कूलों' के स्थान पर 'स्कूल्स' का प्रयोग।

डॉ. रघुवीर इस देश के सबसे बड़े भाषाविद् एवं भारतविद् थे। उन्होंने हिन्दी के वृहत् कोश के निर्माण का कार्य शुरू किया था। नेहरू को उनका काम अच्छा नहीं लगा। काम आगे नहीं बढ़ा। शब्दावली निर्माण की प्रक्रिया बाधित हुई। फिर शब्दावली निर्माण का आयोग तो बना, लेकिन अंग्रेजी शब्द अबाध-रूप से अपनाए जाते रहे। गलत नीति के चलते शब्दावली निर्माण के एकाधिक संस्थान बने, जिससे भाषायी अराजकता का विस्तार हुआ।

यह सही है कि विश्व की किसी भी भाषा में अन्य भाषाओं से आगत शब्दों का नकार संभव नहीं। लेकिन ऐसा तभी होना चाहिए, या होता रहा है, जब उसके लिए उस भाषा में अपने शब्द न हों। फिर आगत शब्दों के लिए आवश्यक है कि वे उस शब्द को अपनानेवाली भाषा के व्याकरण का पालन करें। ऐसा संस्कृत के साथ भी हुआ है। हिन्दी में भी, जिसमें आगत शब्दों की संख्या हजारों में है। ये शब्द तुर्की, फारसी, अरबी, पुर्तगाली, अंग्रेजी, फ्रांसीसी, आदि भाषाओं से आये हैं। तुर्की से ही

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हिन्दी में आगत शब्दों की संख्या लगभग 200 हैं। हिन्दी में अंग्रेजी शब्दों का प्रयोग लगातार अराजक तौर पर बढ़ता गया। आज स्थिति ऐसी है कि कोई भी वक्ता या लेखक किसी भी अंग्रेजी शब्द का प्रयोग कभी भी कर सकता है, चाहे उसके लिए कितने भी सुगम हिन्दी शब्द उपलब्ध क्यों नहीं हों। इसका एक प्रमुख कारण लेखकों, वक्ताओं एवं सम्पादकों की काहिली, दिमागी सुस्ती, आत्म-मुग्धता तथा, एक सीमा तक, उनका भाषायी अज्ञान एवं जाने-अनजाने में किया जानेवाला भाषा-द्रोह भी है।

इस संदर्भ में हिन्दी लेखकों की एक खतरनाक प्रवृत्ति की तरफ इंगित करना आवश्यक है। स्थापित लेखक अपने ज्ञान की समस्त सीमाओं को लाँघकर जिस किसी विषय पर अपना विचार व्यक्त करने से परहेज नहीं करते। इसके अनेक उदाहरण दिए जा सकते हैं। विचारधारात्मक जुड़ाव ऐसे व्यक्तित्यों में 'कोढ़ में खाज' वाली स्थिति पैदा कर देता है। स्थिति तब और बिगड़ती है, जब अयोग्य व्यक्ति राजनीतिक कारणों से किसी पद पर पहुँच जाता है।

संस्कृत के शब्दों का सभी भारतीय भाषाओं में बहुतायत से प्रयोग होता है। यह एक कड़ी है, जो समस्त भारतीय भाषाओं को जोड़ती है; एक दूसरे की भाषा को जानना-समझना आसान बनाती है। लेकिन एक विकृत विचारधारा के तहत संस्कृत शब्दों के प्रयोग पर उँगली उठाई जाने लगी; संस्कृत को धर्म-निरपेक्ष ढाँचे में परखा-जाँचा जाने लगा; संस्कृत शब्दों के वहिष्कार की प्रक्रिया शुरू की गयी। इस गलत काम में सरकारी पैसे से चलनेवाली संस्थाओं की सहभागिता दुखद रही है। इस संदर्भ में जनता के पैसे से चलनेवाले केन्द्र सरकार द्वारा स्थापित महात्मा गाँधी अन्तरराष्ट्रीय विश्वविद्यालय द्वारा तैयार कराया गया एवं भारतीय ज्ञानपीठ द्वारा प्रकाशित *वर्धा हिन्दी शब्दकोश* का उल्लेख आवश्यक है। इस कोश द्वारा बड़ी संख्या में तत्सम शब्दों का बहिष्कार एवं इसमें अनावश्यक अंग्रेजी शब्दों की भरमार आश्चर्य एवं चिन्ता पैदा करती है। सभी हिन्दी एवं संस्कृत कोशों में प्रयुक्त पहला शब्द 'अंक' ही इस कोश से गायब है, लेकिन अंग्रेजी के नम्बर, फिगर, काउण्ट, प्वाइंट नहीं। इस कोश में आए कुछ अंग्रेजी शब्दों पर ध्यान दें :

अंडरस्टैंडिंग, अटैच्ड, अपीलिंग, अरेस्ट, अर्बन, असेसर, आइसवर्ग, इंजील, इंटलेक्चुअल, इंट्रोडक्शन, इंडिकेशन, इंडेफ्थ, डबलटन, हेल्थ, हेमीस्फियर, हीलियम, हारवेस्टर, स्पैनर, स्पेड, स्प्रेयर, स्क्रैप, स्किपर, कॉड, लिबरेशन, लिबिडो, लाइवल, रूटीन, रिव्यु, रिलीफ, रिफार्म, रिफार्मर, रिफार्मेटरी, मैन, मैटर्न, बैकयार्ड, फीलिंग, फील्डवर्क, फीचर, फिक्शन, प्रोटोप्लाज्म, प्रोटेक्शन, ड्रामेटाइजेशन, ड्रीमगर्ल, ड्रेन, ड्रिंक, डेमोक्रेसी, डेफिनिशन, डिस्क्रिप्शन, डिजॉल्व, डि-रेगुलेशन, ट्रीटमेंट, क्रॉनिक, क्लासिफिकेशन, क्लाइमेट, कामर्सियालाइजेशन, कैजुअल्टी, हॉट, ऑनर, पत्रकारिता में प्रयोग होने वाले बेशुमार अंगरेजी शब्द– हेडिंग, स्पीड न्यूज, ब्रेकिंग न्यूज, न्यूज सेंस, न्यूज वेल्यू, एंकर, टाइपफेस, डेडलाइन, ड्रॉप लेटर, ऐंबार्गो, ऐड, ऑन द स्पॉट कवरेज,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ब्रांड इमेज, ब्रॉडकास्ट जर्नलिज्म, बैक स्टोरी इन्टरप्रेटर, इनसालवेन्ट, इंगूलिस, आदि। कोश में 'ऑ' के तहत तो सारे के सारे चालीस शब्द अंग्रेजी के ही हैं!

यह कोश अंग्रेजी के शब्दों के हिन्दी में प्रयोग को अबाध स्वीकृति देता है, यद्यपि इनके लिए हिन्दी में सहज, सदा प्रयोग में आनेवाले तथा समानार्थक शब्दों की भरमार है। फिर कोश की पीठ पर निर्लज्जतापूर्वक उद्घोषणा की गयी है कि "अंग्रेजी शब्दों के संबंध में हिन्दी शब्दकोशों में फैली अराजकता से 'वर्धा हिन्दी शब्दकोश' मुक्त है।

इस कोश के 'प्रेरणा स्रोत' विश्वविद्यालय के निवर्तमान कुलपति विभूतिनारायण राय रहे हैं; सम्पादक मण्डल में निर्मला जैन एवं गंगा प्रसाद विमल का भी नाम है। कोश से संस्कृत/तत्सम शब्दों के बहिष्कार का राज समझने के लिए उसके 'प्रेरणा स्रोत" का विचार जानना आवश्यक है। श्री राय लिखते हैं : "प्रामाणिक शब्दकोशों के निर्माण में संस्कृत को लेकर विशेष आग्रह इसी कारण दिखायी देता है। ... खड़ी बोली से हिन्दी बनने की प्रक्रिया काफी समावेशी थी। ... इसके बावजूद तत्कालीन समाज में बढ़ रही साम्प्रदायिक चेतना के कारण बड़ी संख्या में भाषाविदों और रचनाकारों द्वारा प्रयास किया गया कि खड़ी बोली संस्कृतनिष्ठ बने और जहाँ तक संभव हो उसमें अरबी एवं फारसी के शब्द कम से कम इस्तेमाल किए जाएँ।"

यहाँ भाषा को साम्प्रदायिकता के दायरे में लाने से उपजी विकृत एवं रुग्ण सोच से उपजा संस्कृत द्रोह तो समझ में आता है जो भारतीय मार्क्सवादियों/कम्युनिस्टों की जानी-मानी कमजोरी है, लेकिन अंग्रेजी शब्दों को ठूँसकर हिन्दी के स्वरूप बिगाड़ने की बात नहीं। यहाँ इस बात का उल्लेख आवश्यक है कि श्री राय कोई भाषाविद् नहीं रहे हैं। उन्होंने एक उपन्यास मात्र लिखा है, जिसमे उत्तर प्रदेश की पुलिस को साम्प्रदायिक रंग में पेश किया गया है, जो हमारी विकृत राजनीति में उनके कुलपति बनने का कारण बना। गाँधी के नाम पर बने विश्वविद्यालय में गाँधी-विरोधी विचारधारा के व्यक्ति का कुलपति बनाया जाना तथा हिन्दी विश्वविद्यालय का हिन्दी-द्रोही कार्य हमें सजग रहने का संदेश तो देता ही है। स्पष्टतः हमारा शिक्षा-तन्त्र ठीक से नहीं चल रहा है। यहाँ इस बात का उल्लेख आवश्यक है कि इस तरह के काम से यह खतरा उत्पन्न हो गया है कि हमारी आनेवाली पीढ़ी अपने सांस्कृतिक, भाषायी एवं साहित्यिक दाय से पूरी तरह कट जायेगी; विसंस्कृतिकरण की प्रक्रिया अपने चरम तक पहुँच जायेगी। आवश्यकता है, उल्टी प्रक्रिया शुरू करने की, जिसके लिए जन-जागरण आवश्यक है। अंग्रेजी शब्दों के यथावत लेने से हिन्दी एवं भारतीय भाषाओं में शब्द-निर्माण की प्रक्रिया रुकी है, जिसे फिर से शुरू किया जाना चाहिए।

— ब्रज बिहारी कुमार

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विनम्र श्रद्धांजलि

प्रसिद्ध कन्नड़ साहित्यकार यू. आर. अनन्तमूर्त्ति एवं हिन्दी कवयित्री ज्योत्स्ना मिलन का निधन हमारे लिए अत्यन्त दुखद रहा। पूर्व कुलपति, नेशनल बुक ट्रस्ट एवं साहित्य अकादेमी के पूर्व अध्यक्ष, पद्मभूषण एवं ज्ञानपीठ पुरस्कार प्राप्त 82 वर्षीय लेखक उडुपी राजगोपालाचार्य अनन्तमूर्त्ति का निधन 22 अगस्त 2014 को हो गया। वे हमारी अंग्रेजी पत्रिका 'डायलाग' के सम्पादकीय परामर्शदात्री समिति के सदस्य थे।

ज्योत्सना मिलन जी हिन्दी एवं गुजराती की कवयित्री एवं लेखिका तो थी ही, वे हिन्दी एवं गुजराती में सफल अनुवाद कार्य भी करती थीं। ज्योत्सना जी, प्रसिद्ध लेखक-सम्पादक वीरेन्द्र कुमार जैन की पुत्री एवं इस पत्रिका के सम्पादकीय परामर्शदात्री समिति के सदस्य, प्रसिद्ध लेखक, उपन्यासकार, कवि डॉ. रमेश चन्द्र शाह की पत्नी थीं। अत्यन्य सौम्य स्वभाव की ज्योत्सना जी का स्नेहपूर्ण बर्ताव अभिभूत करनेवाला होता था। मुझे कई बार उनके हाथ का बना एवं परोसा भोजन खाने का सौभाग्य प्राप्त रहा है। वे 4 मई 2014 को हमसे दूर चली गयीं। अनन्तमूर्त्ति जी एवं ज्योत्स्ना जी को हमारी विनम्र श्रद्धांजलि।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समकालीन सांस्कृतिक समीक्षा और वितंडा : एक अनुशीलन

सुधीर कुमार*

"वितंडा" : 1. सदोष आक्षेप, निराधार —छिदान्वेषण
ओछा तर्क, निरर्थक तर्क—वितर्क
2. तू-तू—मैं-मैं, दोषपूर्ण आलोचना(आप्टे, 932)[1]

उत्तराधुनिकी, उत्तर-उपनिवेशवादी, नव-इतिहासवादी, सांस्कृतिक—अध्ययनवादी तथा समकालीन सैद्धान्तिकी के अन्य पश्चिमोन्मुखी विमर्शों के चलते, चाहे साहित्य, कला, समाज और संस्कृति की सम्यक् समीक्षा व अध्ययन सुगम हुआ हो या न हुआ हो, किन्तु नव-वितंडावादियों (या वैतंडिकों) की एक पूरी फौज अत्याधुनिक वैमर्शिक शस्त्रों/शास्त्रों के साथ लैस हो, चुकी है, जो कुछ चुनिन्दा भारतीय-संस्कृति-साहित्य के साधकों/लेखकों पर प्रचण्ड आक्रामकता के साथ अकस्मात् हमला बोल देती है। दूसरे शब्दों में साहित्यिक-सांस्कृतिक समीक्षा के क्षेत्र में—एक सुनिश्चित वैतंडिक स्वराज का पदार्पण हो चुका है। माननीय अरुण माहेश्वरी का —"स्तुति में विकल मनस"(*जनसत्ता 20 जुलाई, 2014,* पृ. 7) इसी प्रकार की वैमर्शिक वितंडा का एक आदर्श तथा प्रातः स्मरणीय उदाहरण है, जिसमें वितंडा के लगभग सारे घटक(—सदोष आक्षेप, निराधार छिद्रान्वेषण, ओछा तर्क, निरर्थक तर्क-वितर्क, दोषपूर्ण आलोचना इत्यादि) उपस्थित हैं।

यूँ भी अभिव्यक्ति की स्वतन्त्रता (तथा स्वच्छन्दता?) जैसे मौलिक अधिकार के रहते-वितंडाओं का प्रचार व प्रसार होना आश्चर्यजनक तो नहीं है।

1. *संस्कृत-हिन्दी कोश* (वामन शिवराम आप्टे), दिल्ली, मोतीलाल बनारसीदास, 1997

*प्रोफेसर (अंग्रेजी), पंजाब विश्वविद्यालय, एफ-27, से. 25, चण्डीगढ़—160014,
e-mail: kumarsudhir_pu@rediffmail.com, मो. : 09876675149

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वितंडा का होना निरर्थक नहीं है—आचार्य गौतम ने न्याय-दर्शन में "प्रतिपक्ष स्थापना हीनों वितंडा" कहकर उसे स्थान दिया ही है। विश्व-साहित्य में भी शेक्सपियर, शैले, कीट्स, ताल्सताय, जैम्स ज्वाइस, इलियट, वर्जीनिया वुल्फ, टैगोर, बंकिम, प्रेमचन्द, अज्ञेय, प्रसाद, निर्मल वर्मा इत्यादि महान रचनाकारों को समय-समय पर वितंडा का शिकार होना पड़ा था। और यह भी जानना सार्थक होगा कि बहुत से वैतंडिकों ने सार्वजनिक जीवन में, अपनी वितण्डाओं को पश्चिमी/मार्क्सवादी (अथवा प्रगतिशील) विमर्शों पर आधारित करते हुए, विश्वविद्यालयों/संस्थाओं में उच्चपद प्राप्त किये।

इन सत्तासीन वितंडावादियों का एक प्रमुख लक्षण यह है कि वे अपनी सुविधा व कूटनीति के अनुसार ही अपने 'सुनिश्चित' विमर्शों का चयन करते हैं, जैसा कि माननीय अरुण माहेश्वरी ने अपने उपर्युक्त आलेख में रमेशचन्द्र शाह के दो किस्तों में प्रकाशित आलेखों—('शक्ति की करो तुम मौलिक कल्पना' तथा 'अपनी सभ्यता की शर्तों पर', *जनसत्ता 14 जुलाई तथा 15 जुलाई, 2014, पृ. 6)* की समीक्षा के माध्यम से दर्शाया है। समकालीन वितंडा में चूँकि 'पूर्वपक्ष' तथा 'प्रतिपक्ष' दोनों को विस्थापित कर दिया जाता है, अतः एक वैतंडिक, पूरी बौद्धिक स्वच्छन्दता, एक अराजकता की सीमा तक जाते हुए, तथा हिंसक, निराधार और निरर्थक शाब्दिक प्रवाद के साथ किसी भी कला-साहित्य-सांस्कृतिककर्मी पर या किसी भी नागरिक पर प्रहार कर सकता है—अभिव्यक्ति की स्वतन्त्रता की पराकाष्ठा यदि देखनी है— जो कि किसी लोकतान्त्रिक समाज/संस्कृति के स्वास्थ्य का प्रमुख लक्षण भी है—तो वितंडा की अबाध अभिव्यक्ति और भारतीय समाज में उसकी सहज स्वीकृति उसका निदर्शन है!

श्री माहेश्वरीकृत वितंडा में 'मोदी सरकार/उसका समाज पर प्रभाव/आर.एस. एस/गोलवलकर/प्रगतिशीलता-विरोधी जमात/संघवाद का डंका/नाजी-निदान' इत्यादि प्रत्ययों के आधार पर रमेशचन्द्र शाह के उपर्युक्त आलेखों को 'कोरी, असंलग्न, असम्बद्ध, बेसिर पैर की बातों से भरा हुआ एक 'अपाठ्य पाठ', 'दुष्कर लेख' का उदाहरण बताया गया है। प्रथमतः जो शाह जी का आलेख उन्हें 'दुष्कर' तथा 'अपाठ्य' लगा, वह मुझे और मेरे साथ के बहुत से भारतीय नागरिकों को 'सहज, प्रेरक और पाठ्य' लगा; क्योंकि शाह जी का आलेख हमें भारतीय समाज, संस्कृति और साहित्य के उन 'गत्यात्मक' पहलुओं से अवगत कराता है, जिन्हें स्वातन्त्र्योत्तर भारत में सामाजिक-सांस्कृतिक पुनर्निर्माण की प्रक्रिया में हाशिये पर डाल दिया गया था। द्रष्टव्य है कि गाँधी जी तथा श्री अरविन्द ने संस्कृति की अवधारणा को मानवीय कर्म व नैतिक बल पर आधारित करते हुए उसे जीवन की भौतिक, बौद्धिक तथा आध्यात्मिक स्थितियों/दशाओं के समवाय के रूप में व्याख्यायित किया था। 'प्रगतिशील' वैतंडिक इस स्मृति-भ्रंश के भी शिकार हैं—कि प्रख्यात नव-वामवादी रेमण्ड विलियम्स ने, विवेकानन्द, गाँधी, अरविन्द की तरह ही, कई दशकों बाद (1958) संस्कृति को

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परिभाषित करते हुए उसे एक 'सम्पूर्ण जीवन-प्रक्रिया-पद्धति' कहा, जिसमें जीवन के भौतिक, बौद्धिक तथा आध्यात्मिक आयामों का समन्वय होता है (देखिए—*कल्चर एण्ड सोसायटी, 1958*)। समस्या यह है तथाकथित प्रगतिशील वैतंडिकों की दृष्टि में 'भारतीय संस्कृति', 'आत्म/अध्यात्म', 'मुक्ति/मोक्ष', 'धर्म' जैसे प्रत्यय नाजीवादी/फासीवादी/आर.एस.एस/मोदी-केन्द्रित मानवताविरोधी—अप्रगतिशील विचारधारा के अवयव हैं। जिस 'वैचारिक स्वराज' की व्याख्या शाह जी ने के.सी. भट्टाचार्य, श्री अरविन्द, गाँधी और गोविन्द चन्द्र पाण्डेय के माध्यम से की है, उसमें संस्कृति के स्थूल भौतिक (अतः अन्नमय), तथा आध्यात्मिक(अतः आनन्दमय) दोनों ही पक्षों का साहचर्य, अन्योन्याश्रित सम्बन्ध है। पुरुषार्थ-परकता भारतीय संस्कृति तथा साहित्य की विशेषता रही है—ध्यान देनेवाली बात यह है कि वन के दो पुरुषार्थ—अर्थ (समस्त राजनीतिक-आर्थिक संसाधन/संस्था) तथा काम (समस्त कामनाओं का समुच्चय—केवल कामवासना नहीं)—धर्म (कर्तव्य/नैतिक कर्तव्य) पुरुषार्थ पर केन्द्रित हैं। तथा चतुर्थ पुरुषार्थ—मोक्ष जो कि सम्पूर्ण मुक्ति का पर्याय है—उसका सीधा अर्थ हमारी आर्थिक-सामाजिक, सांस्कृतिक स्वतन्त्रता की प्राप्ति से भी है। इसीलिए स्वामी विवेकानन्द ने भगवद्गीता के 'सत्य' को समझने के लिए पहले सत्य को स्थूल/सूक्ष्म रूप में समझने की *शक्ति* हासिल करने के लिए फुटबॉल का मैच तन्मयता के साथ खेलने का आह्वान किया था। एक शक्तिहीन अथवा सांस्कृतिक रूप से पराधीन और परजीवी समाज में—स्वतन्त्रता, ज्ञान-विज्ञान, मूल्य-चेतना, धर्म, कर्म, प्रगति, मानवता, साहित्य, संस्कृति तथा सम्यक् राजनीति इत्यादि, की दशा और दिशा क्या हो सकती है—यह पाण्डित्य का विषय नहीं है। अतः स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् भारत के सत्ताधारी व बौद्धिक वर्ग का दायित्व था कि वह भारत की प्रजा को, जो कुछ भी हमारे दाय/परम्परा में श्रेष्ठ था/है (इसी अर्थ में प्रगतिशील), उपलब्ध कराता तथा पश्चिम और शेष विश्व की परम्पराओं में जो कुछ भी श्रेष्ठ था/है—उसको भारतीय सन्दर्भों में स्वीकार/समाहित करता। गाँधी जी को सम्भवतः स्वातन्त्र्योत्तर पश्चिमोन्मुखी, अंग्रेजीदाँ(अंग्रेजियत के वाहक) राजनीतिक तथा बौद्धिक सत्तावर्ग की प्रकृति का पता था, तभी तो उन्होंने चेतावनी देते हुए (देखिये *हिन्दस्वराज* में 'शिक्षा' नामक अध्याय) कहा था कि आनेवाली पीढ़ियाँ इसी बौद्धिक/राजनीतिक सत्तावर्ग को शाप देंगी—क्योंकि प्रजा/राष्ट्र की जो भयंकर हानि/लूट इनके द्वारा सम्पादित होगी—वह तथाकथित अप्रगतिशील, ग्रामीण, अनपढ़ कहे जानेवाले बहुसंख्यक भारतीयों के द्वारा कभी भी नहीं होगी। कहना न होगा कि गाँधी जी के ही समकालीन साहित्यकर्मी प्रेमचन्द ने भी 1936 में *प्रगतिशील साहित्यकार संघ* की प्रथम सभा के अपने अध्यक्षीय भाषण में इन्हीं कारणों से 'प्रगतिशील' प्रत्यय को साहित्य पर आरोपित किये जाने का विरोध मुखर शब्दों में किया था। श्री अरविन्द, गाँधी जी और प्रेमचन्द के विमर्शों में यदि 'प्रगति' में 'शील' (नैतिक बल) नहीं है—तो वह प्रगतिशील कैसे हो सकती है?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परन्तु तथाकथित वैतंडिक तो 'प्रगति' का अर्थ जीवन के मात्र 'भौतिक/आर्थिक' पक्ष की उन्नति में ही देखते हैं। 'नैतिक/आध्यात्मिक' पक्ष की उन्नति अथवा विकास पर आधारित सांस्कृतिक-सामाजिक विमर्श—जिसमें भौतिक पक्ष की भी सम्यक् उन्नति सन्निहित हो—उन्हें स्वीकार्य ही नहीं है। अतः माननीय अरुण माहेश्वरी जी ने रमेश चन्द्र शाह की सभ्यता-समीक्षा के महत् मानवीय सरोकारों को दरकिनार करते हुए, मोदी-सरकार का समाज के प्रति उत्तरदायित्व का आलम्बन लेकर, एक वैतंडिक आत्म-कथन का सृजन किया है। यह निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि माननीय अरुण माहेश्वरी जी एकमात्र ही वितंडा के आचार्य नहीं हैं—अरुन्धती राय जैसी विलक्षण प्रतिभावान लेखक पहले से ही वितंडा-परम्परा को पुष्ट करती रही हैं।

उपसंहार में यह कहा जा सकता है कि भारतीय दार्शनिक के.सी. भट्टाचार्य के *विश्वभारती जर्नल* (1954) में प्रकाशित आलेख—'स्वराज-इन-आइडियाज (वैचारिक स्वराज)' को आधार मानकर हमारे समय के मूर्धन्य विद्वान एवं लेखक रमेशचन्द्र शाह ने हमें मानसिक गुलामी के उत्तरोत्तर गहराते हुए खतरों के प्रति आगाह किया है। प्रो. भट्टाचार्य ने अपने उल्लिखित आलेख में यह बताया है कि राजनीतिक परतन्त्रता में जीवन के बाह्य पक्षों से सम्बन्धित स्वतन्त्रता का हरण होता है, व्यक्ति अपनी चेतना के स्तर पर स्वतन्त्र रह सकता है, किन्तु सांस्कृतिक गुलामी/परतन्त्रता अधिक भयावह इसलिए होती है, क्योंकि इसमें व्यक्ति के द्वारा गुलामी, चेतना के स्तर पर अन्तर्भुक्त कर ली जाती है, और इसी सांस्कृतिक विस्मृति के कारण सांस्कृतिक परतन्त्रता के प्रति विद्रोह करना भी कठिन-से-कठिनतर होता जाता है। जिस अवस्था में एक व्यक्ति इस प्रकार की मानसिक गुलामी से स्वतन्त्र होता है, उसी अवस्था/दशा का प्रो. भट्टाचार्य ने 'वैचारिक स्वराज' कहा था। (देखिए—*इण्डियन फिलॉसोफिकल क्वार्टरलि*—'स्वराज-इन-आइडियाज' अक्टूबर-दिसम्बर 1984, पृ. 385)। उसी वैचारिक स्वराज की प्रतीक्षा में भारत की प्रजा आज तक है। इसी सन्दर्भ में, रमेशचन्द्र शाह जी, भारतीय संघ के सत्तारूढ़ वर्ग (चाहे वह वर्ग वाम-केन्द्र अथवा दक्षिण के झुकाव का रहा हो) के, सांस्कृतिक उत्तरदायित्व को तार्किक विश्लेषण के साथ रेखांकित तथा प्रश्नांकित करते हैं। वस्तुतः जिस समाज में स्वाधीनता/स्वराज-अपने सम्पूर्ण अर्थों में—जिसमें आर्थिक, राजनीतिक, सामाजिक तथा सांस्कृतिक न्याय, समता और स्वतन्त्रता निहित होती है—प्रजा को उपलब्ध न हो, वहाँ गाँधी जी के *हिन्द स्वराज*, श्रीअरविन्द कृत *दि फाउण्डेशन ऑफ इण्डियन कल्चर* तथा के.सी. भट्टाचार्य कृत— *'स्वराज-इन-आइडियाज'* की मूल्य-निष्ठ सांस्कृतिक बहुलार्थकता तथा वैचारिक ऊर्जा को लोक चेतना में प्रवाहित करने का चिन्तक शाह जी का दृढ़ संकल्प तथा भगीरथ प्रयत्न, 'स्मृति-भ्रंश', भय, अन्याय तथा शोषण से पीड़ित भारत की प्रजा के लिए 'स्मृति-लब्ध' न होकर एक नये समतापरक, अहिंसक और सत्याग्रही भारत-निर्माण का महत्त्वपूर्ण आह्वान तथा आख्यान कहा जा सकता है।

 CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हाशिये के लोगों के मानवाधिकार और शिक्षा

जगमोहन सिंह राजपूत*

सभी जानते और समझते हैं कि मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है, वह सोच सकता है, मनन, चिन्तन कर सकता है, अपने विचारों और नवाचारों को व्यावहारिकता में ठोस शक्ल दे सकता है। जैसे-जैसे मानवीय सभ्यताओं का परिष्कार तथा संवर्धन हुआ है, मनुष्य ने अपनी दुनिया बदली है और पिछले कुछ दशकों में आश्चर्यजनक तेजी से बदली है। उसने मानव मात्र की शाश्वत एकता को पहचाना है। अनेक सतही विभिन्नताओं का विश्लेषण कर यह जाना है कि रंग, नस्ल, लिंग, जाति, पन्थिक जैसे अन्तर तथा ऐसे अन्य तत्त्व किसी भी एक वर्ग को दूसरे से श्रेष्ठ सिद्ध नहीं कर सकते है। उसने यह भी जाना है छुआछूत, रंग-भेद, दास-प्रथा, उपनिवेशवाद, अज्ञान, लालसा, धन-लिप्सा तथा साधनों और सम्पत्तियों पर ही नहीं देशों पर भी शासन करने की प्रथा मनुष्य की अस्वीकार्य प्रवृत्तियाँ तथा उनके परिणाम रहे है। मनुष्य के उर्वर मस्तिष्क ने इन्हें 21वीं सदी में सिरे से अस्वीकृत कर दिया है। मानवाधिकारों को लेकर जो बहस बीसवीं सदी में द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद तेजी से उभरी, उसके पहले भी काफी जमीन तैयार की जा चुकी थी। दास-प्रथा समाप्त हो चुकी थी, छुआछूत को समाप्त करने का आन्दोलन भारत में तेजी से उभर चुका था। भारत तथा अन्य देश स्वतन्त्र हो रहे थे, उपनिवेशवाद अन्तिम साँसें ले रहा था। यह भी सही था कि इनमें पूरी तरह समाप्त कुछ भी नहीं हुआ था—बँधुआ मजदूर दासों जैसी जिन्दगी जी रहे थे, छुआछूत के प्रचलित रहने के उदाहरण तब भी थे, आज भी हैं। उपनिवेशवाद अब आर्थिक स्वरूप ले रहा है, विकासशील देशों को आर्थिक ही नहीं, वैचारिक तथा सांस्कृतिक पक्ष पर भी हावी हो रहा है। अनेक देशों ने अपने पहले के आकाओं का अनुसरण करने में ही अपनी भलाई देखी है। प्रगति तथा विकास के लिए अपनी देशज वैचारिकता न अपनाने के कारण असन्तुलित विकास ही इन्हें मिल सकता था। ऐसी स्थिति में कुछ को अनावश्यक—छप्पर फाड़कर—लाभ मिला और बड़ा वर्ग कहीं-न-कहीं

*पूर्व निदेशक, राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्, नई दिल्ली

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अपने को और पीछे धकेला जो पाता रहा। सम्पन्न वर्ग सत्ता-सूत्रों की डोरी अपने हाथ में पूरी तरह जकड़ता गया- जो बाहर कर दिये गये थे, उनके अधिकार उनकी विवशता में परिवर्तित हो गये। वे और अधिक पीड़ित, वंचित तथा प्रताड़ित होते गये। सभ्य समाज इसे किसी भी रूप में स्वीकार नहीं कर सकता है। हर व्यक्ति को उसके अधिकार मिलें, इसके लिए राष्ट्रीय स्तर पर समेकित प्रयास आवश्यक है, मगर इनका जुड़ाव अन्तर्राष्ट्रीय स्तर के प्रयत्नों से भी होना आवश्यक है। इसे सुदृढ़ करने के लिए व्यक्तिगत, पारिवारिक तथा सामाजिक और सरकारी स्तर के प्रयास नींव के पत्थर हैं। यही मानवाधिकारों की सर्वव्यापकता के सपने को साकार कर सकते हैं।

वे सभी, जिनके अधिकारों का हनन आज भी हो रहा है, हाशिये पर माने जायेंगे। यहाँ यह आवश्यक नहीं है कि इनकी संख्या कम है या ज्यादा। थोड़े-से अंग्रेजों ने करोड़ों भारतीयों को हाशिये पर फेंक रखा था। दक्षिण अफ्रीका में मुट्ठी भर अंग्रेजों ने बहुसंख्यक काले कहे जानेवालों के अधिकारों का हनन बेहिचक किया। ऐसे अनेक उदाहरण हैं देश में, विदेश में। समय के साथ हो रहे परिवर्तन यह भी दर्शाते हैं कि 'कानून' मानव-निर्मित होता है और आवश्यक नहीं है कि वह सदा ही तर्कसंगत, नैतिक तथा मानवीय मूल्यों से ओतप्रोत ही हो। रंग-भेद, दास-प्रथा, नस्ल-भेद सभी कभी कानूनन मान्य थे। मानवीय मूल्यों तथा मानवता के आधार को सुदृढ़ करने का एकमात्र मार्ग शिक्षा तथा उससे प्रदत्त ज्ञान से ही आलोकित होता है, इसीलिए यह माना जाता है कि ज्ञान से अधिक पवित्र और कुछ नहीं होता है। अतः यह अपेक्षा तर्क-संगत है कि शिक्षा के संस्थान तथा ज्ञानसर्जन तथा वितरण के केन्द्र मानवाधिकारों के संरक्षण केन्द्र बने तथा जनसमाज में उनकी आवश्यकता का दीप लगातार जगमगाता रहे।

सबसे पहले व्यक्ति को मानवीय जीवन सार्थक बनाने के लिए जीवन जीने का अधिकार चाहिए। इसके साथ ही जुड़ते हैं स्वास्थ्य तथा परिवार के अधिकार, जिसमें लड़कियों तथा महिलाओं के बराबरी के अधिकार स्वतः ही आ जाते हैं। समानता के अधिकार के साथ जुड़ते हैं अभिव्यक्ति, पन्थ-पालन, सुशासन तथा सुरक्षा के अधिकार। ये व्यक्ति को तभी मिल सकते हैं या व्यक्ति तभी इन्हें पा सकता है, जब उसे बराबरी के स्तर पर शिक्षा का अधिकार मिले; जिसमें जीवन-कौशल, व्यावसायिक कौशल तथा अभिव्यक्ति के अधिकार शामिल हों। यही उसे नये विचार, नवाचार तथा प्रयोग करने का अधिकार तथा आत्म-विश्वास देता है। इसे अनेक प्रकार से परिभाषित तथा वर्णित किया जाता रहा है। शिक्षा व्यक्ति को संयमपूर्ण क्रियात्मक तथा सर्जनात्मक जीवन बिताने के लिए प्रेरित कर सकती है, समर्थ बना सकती है। शिक्षा का अधिकार ही हाशिये पर फेंके गये व्यक्तियों के जीवन पुनर्निर्माण का सबसे महत्त्वपूर्ण साधन तथा संसाधन है। इस दिशा में किया गया हर प्रयास शिक्षा को आधार बनाकर ही सफलतापूर्वक आगे बढ़ाया जा सकता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रजातन्त्र प्रणाली विभिन्न प्रकार के भेदों-विभेदों की उपस्थिति स्वीकार करते हुए सर्वसम्मति से ऐसी व्यवस्था लागू करने का प्रयास, जिसमें सभी की भागीदारी हो और अन्तिम छोर के व्यक्ति को भी लगे कि वह निर्णय लेने में बराबरी का हिस्सेदार है। सारी व्यवस्था स्वार्थ को तिलांजलि देने का प्रयास करे, न्याय सर्वसुलभ कराये और हाशिये के लोगों की मूलभूत दैनन्दिन आवश्यकताओं की पूर्ति के साथ यह भी क्रियान्वित करें कि हर व्यक्ति के अधिकार समान हैं और कोई दूसरा जाने या अनजाने इनका अतिक्रमण न कर सके। भारत की परिस्थितियों, विशेषकर सामाजिक, सांस्कृतिक तथा आर्थिक विषमताओं को ध्यान में रखकर संविधान में अध्याय तीन में मूल अधिकारों को विस्तार से शामिल किया गया है। इसके पहले यूनेस्को का मानवाधिकार घोषणा-पत्र 1948 को घोषित हो चुका था। अपने-आप में विश्व-स्तर पर उससे सशक्त दस्तावेज बनना तब असम्भव था। उसी तरह संविधान के अध्याय तीन में ईमानदारी से मानवाधिकारों की सर्व-सुलभता का अत्यन्त प्रभावकारी प्रयास किया गया है। समानता का अधिकार अनुच्छेद 14, 15(1), 15(2) में विशेष रूप से निहित किया गया है। इसी अध्याय में स्वतन्त्रता का अधिकार, शोषण के विरुद्ध अधिकार, धर्म की स्वतन्त्रता तथा सांस्कृतिक और शैक्षिक अधिकारों को भी स्पष्ट शब्दों में लिखा गया है। सम्बन्धित नियमों के संरक्षण तथा संविधान में निहित प्रावधानों का सार तत्त्व अन्ततः शोषित, उपेक्षित, प्रताड़ित तथा वंचित वर्गों यानी हाशिये पर जान-बूझकर पहुँचाये गये लोगों पर विशेष रूप से ही केन्द्रित होता है। भारत के स्वतन्त्रता संग्राम में लक्ष्य विदेशियों को हटाना मात्र नहीं था, देश का नवनिर्माण तथा पुनर्निर्माण करना भी था। 1922 में लिखे गये एक पत्र में महात्मा गाँधी ने सारे मानवाधिकार तत्त्वों को कुछ शब्द में पिरो दिया था, जब उन्होंने लिखा कि 'स्वराज' आने के बाद भी लोगों को 'खुशी' नहीं मिलेगी, क्योंकि अन्याय, प्रशासन का बोझ, चुनावों की विकृतियाँ तथा वर्ग की प्रताड़ना-अन्याय उन पर भारी पड़ेंगे' और वे कहने को सम्पन्न लगेंगे कि पहले अधिक न्याय तथा प्रशासनिक ईमानदारी थी। गाँधी जी ने शिक्षा को आशा की एक मात्र किरण बताया था, जिसका प्रकाश हर व्यक्ति तक पहुँचना चाहिए।

आजादी आने के बाद शिक्षा का विस्तार हुआ है, उसी सार्वभौमिक स्वीकार्यता बढ़ी है। साक्षरता दर 20 से बढ़कर 75 प्रतिशत के पास पहुँची है। क्या यह फैलाव सामाजिक विकृतियों तथा मानवाधिकार हनन को समाप्त कर पाया है? हाशिये पर सबसे बड़ा वर्ग है लड़कियों तथा महिलाओं का, जिनके प्रति अपराध, विशेषकर यौनिक अपराध बढ़ते ही जा रहे हैं। 17 फरवरी, 2014 को संसद में प्रस्तुत एक प्रतिवेदन में दिये गये आँकड़ों के अनुसार महिलाओं के विरुद्ध 2011 में 2.86 लाख अपराध दर्ज किये गये, जबकि 2010 में यह संख्या 2.13 लाख थी, यानी 7.1 प्रतिशत की बढ़ोतरी साल-भर में हुई। कन्या भ्रूणहत्या जैसा जघन्य मानवाधिकार हनन किसी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भी समाज के लिए लज्जाजनक है। बड़ी चिन्ता का तथ्य है—शिक्षित परिवारों द्वारा इसमें शामिल होना। कानूनी प्रावधानों का हनन भी प्रशिक्षित डॉक्टरों द्वारा होता है। अनेक राज्यों में लिंग अनुपात 900 से नीचे है तथा राष्ट्रीय स्तर पर यह 1000 : 940 है। संयुक्त पारिवारिक व्यवस्था में इसे रोके जाने की सम्भावना अधिक रहती है। दूसरी तरफ यह भी सही है कि एक-तिहाई बलात्कार 'जाने-पहचाने' लोगों द्वारा ही किये जाते हैं। समाज शिक्षा का पक्ष कमजोर होने पर ऐसी प्रवृत्तियाँ बनी रहती हैं। एक अन्य उदाहरण भी महत्त्वपूर्ण है, उत्तर-पूर्व का एक राज्य एक बड़ी आशाजनक तस्वीर पेश करता है। मिजोरम लगभग शत-प्रतिशत साक्षरता की ओर पहुँचनेवाला है या पहुँच गया है। इसके सरचिप जिले में साक्षरता दर भारत में सबसे अधिक 98.05 प्रतिशत है। यहाँ कन्या भ्रूणहत्या जैसी कोई समस्या नहीं हैं इसके आइजल और सरचिप जिलों में पुरुष : स्त्री अनुपात 1000 : 1025 है जो सारे भारत में सबसे आगे है। यहाँ परिवार तथा उसके जुड़ाव का महत्त्व कम नहीं हुआ है। यहाँ एक परिवार के 158 सदस्य संयुक्त परिवार के बन्धन में सामंजस्य तथा सद्भाव के साथ रहकर विश्व रिकार्ड स्थापित कर चुके हैं। इन स्थितियों के पीछे के कारकों का गहन अध्ययन आवश्यक है और उसे सारे देश को जानना चाहिए तथा जो उपयोगी तथा अनुकरणीय लगे उसे स्थानीय परिस्थितियों के आकलन के बाद अपनाना सम्भव होना चाहिए।

जनजाति तथा अनुसूचित जाति के लिए संविधान में आरक्षण की व्यवस्था की गयी। इसे बिना अधिक समय लगाये सभी ने स्वीकार कर लिया था। इस पर बाद में भाँति-भाँति की राजनीति की जाने लगी। पिछड़े वर्ग के लिए आरक्षण हुए, अनेक अन्य वर्ग इसी में शामिल किये जाते रहे, जाट समुदाय अभी चुनाव के पहले शामिल किया गया। मुस्लिम सम्प्रदाय को आरक्षण के दायरे में केन्द्र सरकार लाना चाहती है और इसके लिए सर्वोच्च न्यायालय में अपील गयी है। कुल लब्बो-लुबाव यह है कि चिन्ता इन वर्गों के मानवाधिकारों की नहीं; केवल अगले चुनाव तक सीमित कर दी जाती है। यदि ऐसा न होता तो देश में जनजातियों तथा वनवासियों की स्थिति आज भी गरीबी, भुखमरी, बीमारी से जकड़ी हुई न होती। जिन क्षेत्रों में यह बहुतायत से रहते हैं, वहाँ तेजी से खनन माफिया पर्दापण करता रहा है तथा इनका, नेताओं तथा नौकरशाहों का जबरदस्त गठबन्धन यहाँ सक्रिय रहा है। लाखों-करोड़ों लोग बेघर हुए प्रताड़ित और पीड़ित हुए। अनुसूचित जाति तथा जनजाति के लिए आरक्षण से जो लाभ हुए, वे एक छोटे दायरे में पीढ़ी-दर-पीढ़ी सिमटते जा रहे हैं। इनमें से अधिकांश लोग विभिन्न योजनाओं तथा प्रावधानों का उपयोग नहीं कर पा रहे हैं। कुछ ऐसी ही स्थिति अल्पसंख्यकों के लिए बनाये गये विशेष प्रावधानों पर भी बनी है। वहाँ भी जो तैयारी सभी को शिक्षा में लाकर तथा जीवन कौशलों और उत्पादकता को प्रखर करने के प्रशिक्षण देकर किया जा सकता था। वह अपेक्षित गति तथा कर्मठता के साथ न

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

किये जाने के कारण जो वर्ग अति पिछड़ा था, उस बड़े वर्ग का जीवन-स्तर ऊपर नहीं उठ सका। रंगनाथ मिश्र कमेटी तथा सच्चर कमेटी ने जो सुझाव दिये, वे तुलनात्मक स्थिति का आँकड़ों के आधार पर निरूपण करते हैं, सुझाव देते हैं, परन्तु ऐसा कुछ अधिक नहीं कहते हैं जो पहले से ज्ञात न रहा हो। आज मुस्लिम सम्प्रदाय का हर व्यक्ति हर स्तर पर शिक्षा के महत्त्व को पूरी तरह समझता है और उसके लिए प्रयत्नशील है। उसकी समस्या यह है कि सरकारी स्कूलों की साख अत्यन्त निचले स्तर पर पहुँच चुकी है और यह प्राइवेट स्कूलों में बच्चों को शिक्षा देने की सामर्थ्य वह नहीं रखता है। यदि बच्चों को ऐसे स्कूलों में पढ़ना पड़े जहाँ अध्यापक न हों या पूरी तरह प्रशिक्षित तथा कर्मठ न हो, स्कूल का कार्य-संस्कृति कमजोर हो तो यह सब भी मानवाधिकारों के हनन का उदाहरण ही माना जायेगा।

क्या करना आवश्यक है?

1. परिवारों को अपने अधिकारों की जानकारी मिले तथा उन्हें यह भी बताया जाए कि "सारा विश्व एक परिवार है" तथा मानव मात्र की एकता का व्यावहारिक अर्थ क्या है, परिवार किस प्रकार बच्चों को जाने-अनजाने अपने अन्तरमन में दूसरों के प्रति सम्मान निहित करा सकते हैं, कैसे वे सहिष्णुता तथा सामंजस्य के मूल्यों को अपनाने को प्रेरित कर सकते हैं? परिवार ही सबसे पहली अन्य धर्मों, संस्कृतियों, नस्लों, भाषाओं, रंग-भेद इत्यादि के अन्तर की समझ के साथ इनके आधार पर किसी प्रकार के भेदभाव से दूर रहने की आवश्यकता समझा सकते हैं। जब कालजयी साहित्य लिखा जाता है, तब वह विश्व की सम्पत्ति बन जाता है, कोई भेदभाव नहीं करता है। जब कम्प्यूटर चिप का आविष्कार होता है, तब वह किसी के साथ कोई भेदभाव नहीं करता है। प्रकृति मनुष्य के साथ भेदभाव नहीं करती, तब मनुष्य दूसरे मनुष्य से भेदभाव कैसे कर सकता है? ऐसी समझ आवश्यक है। 'वसुधैव कुटुम्बकम्' का सोच ही सही जीवन-दिशा दर्शाता है।
2. हाशिये के लागों को उनके मानवाधिकार तभी मिल पायेंगे, जब समाज का हर वर्ग मानवीय तथा नैतिक मूल्यों को व्यवहार रूप में अन्तर-निहित करे। मूल्यों के क्षरण से जो कठिनाइयाँ मनुष्य एवं प्रकृति के समक्ष उत्पन्न हो गयी हैं, उन्होंने भयावह रूप ले लिया है। अब सभी इस सबके दुष्परिणामों से परिचित हो गये हैं। आज भी व्यावहारिकता में छुआ-छूत, बाल-विवाह, कन्या भ्रूणहत्या, लिंग-भेद जैसे अस्वीकार्य प्रचलन मूल्यों के ह्रास तथा अज्ञान के कारण पूरी तरह समाप्त नहीं हुए हैं। इन्हें जड़मूल से वही समाज नष्ट कर पायेगा, जहाँ परिवार तथा शिक्षा शालायें प्रारम्भ से ही बालकों का विकास चरित्र-निर्माण के ठोस आधार पर करेंगे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

3. प्रजातन्त्र में प्रशासन व्यवस्था तथा अधिकारियों तथा जनता के आपसी सम्बन्ध आज भी सामन्तशाही व्यवस्था के प्रचलनों से मुक्त नहीं हो पाये हैं। शासक होने का अहम अधिकार प्राप्त लोगों को सामान्य जन के शोषण की ओर खींचता है, इन परिस्थितियों में नागरिक खीझता है और अपने को मजबूर तथा निरुपाय पाता है। यहीं पर भ्रष्टाचार जड़ें जमाता है। 'व्यवस्था बदलनी चाहिए' जैसे उद्बोधन लोगों को आकर्षित करते हैं। इस घुटन से लोगों को बाहर लाने का पहला उपाय तो व्यवस्था को स्वयं दिख जाना चाहिए। उसे अपनी जड़ता को दूर फेंककर समयानुसार अपना कलेवर बदलना चाहिए और अपनी गतिशीलता का विश्वास जन-सामान्य में पैदा करना चाहिए। परस्पर विश्वास बनाना आवश्यक है। शहरीकरण, बड़े बाँध, खनन, औद्योगिकीकरण जैसे कारकों ने लाखों लोगों को विस्थापित किया, उनके अधिकार छीने और उन्हें अपने हाल पर छोड़ दिया। यह स्वयं एक प्रकार की हिंसा है और हिंसा से दूसरी तरफ से हिंसक व्यवहार की ही अपेक्षा होती है, अतः इस सबमें दृष्टिकोण परिवर्तन अत्यावश्यक है।
4. चुनाव की प्रक्रिया में जो खामियाँ आ गयी हैं, वे अनेक प्रकार के भेदभाव कहे तथा बिना कहे पैदा कर रहे हैं। जाति तथा पन्थ के आधार पर मतों का विभाजन प्रेरित करना देश के विघटन की दिशा में लगे तत्त्वों को बढ़ावा देता है। धन का अत्यधिक तथा अनावश्यक दुरुपयोग व्यक्ति के अहम् तथा आत्म-सम्मान को नीचे लाता है, उसके स्वनिर्णय के अधिकार को छद्म उपायों से छीन लेता है। असामाजिक तत्त्वों का जन-प्रतिनिधि बन जाना मानवाधिकारों का घोर हनन है और इसके ज्यादातर भुक्तभोगी हाशिये के लोग ही होते हैं।
5. विकास की अवधारणा देशज ही होनी चाहिए। वह बाहर से लाकर रोपित नहीं की जा सकती है और न बिना स्थानीय परिस्थितियों का विश्लेषण किये कहीं से नकल कर देश में लागू की जा सकती है। अब हर व्यक्ति समझता है कि वर्तमान में विकास के नाम पर बनी नीतियाँ सम्पन्न को अधिक तेजी से सम्पन्नता के सोपान चढ़ाती हैं और बाकी लोग जहाँ के तहाँ रह जाते हैं। झारखण्ड, छत्तीसगढ़, ओड़िशा जैसे राज्य, जो प्राकृतिक खनिज-सम्पदा से भरपूर हैं, आज भी गरीबी, भुखमरी तथा विपन्नता के शिकार हैं। वहाँ के संसाधनों से कितने ही गिने-चुने लोग सम्पन्नता के शिखर पर जा बैठे हैं। इन प्रान्तों की बहुसंख्यक आबादी हाशिये पर है और प्रतीक्षारत है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

6. संचार माध्यमों की पहुँच अब महलों से झोपड़ियों तक निर्बाध तथा आवश्यक अंग के रूप में विद्यमान है। इनकी केन्द्रीयता अभी भी राजनीति, राजनेता, अभिनेता, धनी, बहुराष्ट्रीय कम्पनियाँ, वैभव, राष्ट्रों की वैमनस्यता इत्यादि के आस-पास घूमती है। इसमें बनवासी, दलित, पिछड़े, अल्पसंख्यक उनकी शिक्षा, स्वास्थ्य इत्यादि पीछे छूट जाते हैं। अनेक प्रकरणों को उद्धृत किया जा सकता जिनमें लोगों ने मीडिया की सक्रियता तथा उसकी ताकत को जाना और माना है। आज के तेजी से बदलते परिदृश्य में मीडिया हाशियों के लोगों का अत्यन्त प्रभावशाली सिम्बल बन सकता है। इसके लिए एक बड़े दृष्टिकोण परिवर्तन की आवश्यकता है।
7. सामाजिक संगठन परम्परागत ढंग से कई क्षेत्रों में कार्य करते रहे हैं, जिसमें विधवायें तथा निराश्रित महिलायें, परिवार-विहीन बच्चे, विकलांग बच्चे, असहाय वृद्ध जैसे लोग शामिल हैं। जब तक समाज इन्हें और सुदृढ़ नहीं करेगा, बच्चे बँधुआ मजदूर बनते रहेंगे, महिलाओं का शोषण बन्द नहीं होगा। गैर सरकारी संगठन, जो पारदर्शिता से कार्य कर सके और सत्ता के आकर्षण से बचे रह सकें, एक बड़ा उत्तरदायित्व निभा सकते हैं। अनेक बार संगठनों की कथनी और करनी में बड़ा अन्तर होता है। इसका ध्यान रखना अति आवश्यक है। गाँधी दर्शन में मानवाधिकारों की सर्वस्वीकार्यता तथा सार्वभौमिकता के व्यावहारिक समाधान उपलब्ध हैं। इन्हें यों समझा जा सकता है :

* प्रकृति के पास सभी की आवश्यकताओं की पूर्ति के साधन और संसाधन उपलब्ध हैं, परन्तु एक की लालच एवं लालसा की पूर्ति के लिए नहीं है।
* जो भी कार्य प्रारम्भ करो, पहले यह सोचो कि यह पंक्ति के अन्तिम छोर पर खड़े व्यक्ति के लिए कितना उपयोगी होगा।
* यदि प्रत्येक व्यक्ति अपने कर्तव्य का निर्वाह ईमानदारी से करे तो सभी को उनके अधिकार स्वतः ही मिल जायेंगे।
* इस सोच को अन्तर्निहित करनेवाली शिक्षा-व्यवस्था ही साकार स्वरूप प्रदान कर सकती है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रेजकारी

कमलेश

बाल्यकाल की कुछ स्मृतियाँ उभर रही हैं। पिता जी शाम को काम पर से घर वापस आते तो अपना कुर्ता उतारकर खूँटी पर टाँगकर आरामकुर्सी पर बैठ जाते थे। माँ गिलास में पानी लाती, वे पानी पी लेते और कुर्सी पर ही उढ़के रहते। थकान के कारण कभी-कभी उन्हें हल्की नींद भी आ जाती। मैं उन्हें सोता हुआ देखकर उठता और उनके कुर्ते की जेबें टटोलने लगता। जेब में जो भी रेजकारी होती उसे निकाल लेता। दो-चार दिनों में इतनी रेजकारी इकट्ठी हो जाती कि रेजकारी को रूमाल में बाँधकर उसे घुमाते हुए खन्न-खन्न की आवाज निकाली जा सकती थी। इस खनखनाहट में मेरी समृद्धि का रहस्य छिपा हुआ था। यह खनखनाहट पूरे जीवनभर सहारा बनी रही। पास में पैसा न होने पर भी कभी गरीबी नहीं महसूस हुई। कवि रघुवीर सहाय के शब्दों में– 'कभी-कभी ऐसा हुआ है, कि पास में पैसा हुआ है'। कभी-कभी पास में पैसा न होने पर भी रूमाल में बँधी रेजकारी की किसी दूरान्त में हो रही खनखनाहट अपनी समृद्धि की याद वापस लाने के लिए पर्याप्त होती थी।

सायंकाल दरवाजे के बाहर सड़क पर 'चनाजोर गरम' और 'कुलफी मलाई वाली' की आवाज सुनाई पड़ती। मैं अपनी रूमाल उठाकर भागता। अगर संयोगवश उस दिन रूमाल में रेजकारी नहीं हुई तो रवाना होने के पहले पिता जी के कुर्ते की जेब टटोल-खँगाल लेता। निराश कभी-कभी ही होना पड़ता था। इतनी रेजकारी तो निकल ही आती थी कि आधी कुलफी का दाम चुकाया जा सके। कुलफीवाला भी हमें निराश नहीं करता। पूरी कुलफी के लिए हमारे पास पैसा न भी हो तो भी वह थोड़ी-सी कुलफी काटकर दोने में रखकर हमें थमा दिया करता। अपनी जीभ के अग्रिम भाग को शीतल करते हुए बाल्यावस्था में ही रेजकारी का महत्त्व समझ में आ गया था।

उन दिनों रुपया अभी 100 पैसे का नहीं हुआ था। जब वह हुआ तब पैसे को पहले नया पैसा कहा जाने लगा। अभी रुपया 16 आने और 64 पैसे का ही हुआ

संपर्क : बी-25 वसन्त कुंज एन्क्लेव, नयी दिल्ली 110070, मो. 09873259909

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करता था। हम अंकगणित पढ़ते तो रुपये, आने, पाई की गिनती करते। पाई की गिनती सिर्फ किताबों-कापियों में होती थी। वह हमारी बाल्यावस्था के पहले ही चलन से विलग हो गयी थी। अब आने और पैसे ही चलते थे। एक कुलफी एक आने में आ जाती थी। दो आने में एक बड़े साँचे में ढली हुई मोटी कुलफी मिलती थी। यह देश के स्वतन्त्र होने के तीन-चार साल पहले की बात है। मेरी कुलफी खरीदने की सबसे पुरानी याद सन् 1945 की है। तब मैं कुल सात-आठ वर्ष का था। कुलफी के अलावा मैंने उस रेजकारी से कभी-कभी पेन्सिलें भी खरीदी थीं, जो उन दिनों एक आने में दो आती थीं। दो आने में पेस्टल रंगों का पूरा डिब्बा आ जाता था। मैं बहुत दिनों तक, 14-15 वर्ष की आयु तक दो आने की कॉपियों पर ही लिखता रहा था। ड्राइंग की कॉपी का कागज कुछ मोटा होता, लेकिन पृष्ठ कम होने के कारण वह भी दो-ढाई आने की ही आती। ब्रश और स्याही की कीमत भी इससे ज्यादा नहीं होती थी। इस तरह हम बालकों द्वारा बाजार में किया जानेवाला सारा क्रय-विक्रय रेजकारी में ही सम्पन्न हो जाता था। हम बालकों की विनिमय की सारी आवश्यकताएँ रेजकारी से ही पूरी हो जाती थीं।

132250

बड़ा होते-होते स्थिति बदलती गयी। पन्द्रह वर्ष की आयु होने पर रेजकारी में एक रुपये का सिक्का भी जुड़ने लगा। हमारी कई पाठ्य-पुस्तकें दो-ढाई रुपये की होने लगीं। मिडिल स्कूल में तीन वर्षों तक अंकगणित पढ़ने के लिए पर्याप्त माना जाने वाला पी.सी. द्वादश श्रेणी, अलीगढ़ द्वारा प्रकाशित 'अंकगणित चक्रवर्ती' अवश्य पाँच रुपये का आता था। ऐसा लगता है कि उसे मैंने अपनी कक्षा के विद्यार्थियों में वरीयता पाने के लिए पिता जी पर दबाव देकर खरीदवाया था। एक रुपये का कागज का नोट कब चलन में आया, यह याद नहीं आता। पर बात उन्हीं दिनों की है, जब स्कूल जाते हुए माँ दोपहर के 'टिफिन' के लिए कभी-कभी सिक्के के बजाय रुपये का नोट दे दिया करती थी। टिफिन के समय विद्यालय के द्वार पर ठेलेवालों की भीड़ लग जाती और हम अपनी जीभ की स्वादेच्छा पहचानने की कोशिश करते हुए जेब में पड़ी रेजकारी का इस्तेमाल करते, जिसमें अब कभी-कभी रुपये का सिक्का या नोट भी होता।

रेजकारी का महत्त्व बाद के जीवन में भी बना रहा। मैं 18 वर्ष का होते-होते घर छोड़कर दिल्ली आ गया। इस आयु तक घर से एक-दो बार भागना वयस्क होने का अनुष्ठान जैसा होता था। जो लड़का 18 वर्ष का हो गया और एक-आध बार घर छोड़कर नहीं भागा, उसके वयस्क होने में सन्देह होता था। कई लड़के तो उसी आयु में भागकर कानपुर या अहमदाबाद की कपड़ा मिलों में भर्ती हो जाते और जीवन-भर के लिए रोजगार पा लेते। मेरे मन में कभी नौकरी करने की इच्छा नहीं पैदा हुई। क्योंकि मेरे दिमाग में रूमाल में बँधी रेजकारी की खनखनाहट हमेशा बजती रही। सिर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पर से उसका साया कभी लुप्त नहीं हुआ और उतनी रेजकारी के बल पर ही मैं हमेशा अपने को समृद्ध मानता रहा।

नयी दिल्ली की कुछ सड़कों पर दोनों ओर इमली के पेड़ लगे हुए थे। उनके नये पत्तों की खटास दोपहर की भूख को शान्त करने के लिए पर्याप्त होती थी। शाम के भोजन के लिए पर्याप्त रेजकारी मिल जाती थी। भले ही वह किसी दोस्त की जेब में बची-खुची रेजकारी ही न हो। तीन वर्ष बाद जब मैं हैदराबाद गया तो दोपहर के भोजन का 'मसालाडोसा' भी सात-आठ आने की रेजकारी में ही आ जाता था। अपने पास इतनी रकम न होने पर मुनीम जी से अपने खाते में पेशगी पाने में कठिनाई नहीं होती थी। मुनीम जी को लगता था कि कैसा आदमी है, रोज रेजकारी माँग बैठता है। अब इतनी-सी रेजकारी के लिए कौन मना करे। मुझे लगता था कि मैं रेजकारी ही तो माँग कर रहा हूँ, कोई बड़ी रकम नहीं, जिसके लिए मैनेजर साहब से अनुमति लेने की जरूरत पड़ती हो।

मैं 45 वर्ष की आयु में एक बार बम्बई गया। मैंने तब तक समुद्र नहीं देखा था। मेरा बचपना इस तरह बना हुआ था कि मुझे लगता था कि रेजकारी से ही हर काम सम्पन्न किया जा सकता है। रेल का तीसरे दर्जे का किराया रेजकारी की ही सीमा में आता था। कई बार रेलवे प्रशासन ने टिकटों की कीमतें बढ़ाई थीं, लेकिन तीसरे दर्जे की कीमतें बढ़ाना उन्हें गरीबों की जान लेने जैसा लगता था। इसलिए तीसरे दर्जे की टिकट रेजकारी से ही खरीद ली जा सकती थी। बम्बई में घूमते हुए फोर्ट एरिया के उडिपि भोजनालय की इडली-साँभर की एक प्लेट का भुगतान रेजकारी से किया जा सकता था और पेट भरा महसूस करते हुए किताबों की दूकानों में घूमते रहा जा सकता था। सड़कों की पटरी पर कुछ ऐसे किताबवाले बैठते थे, जिनसे अपने उपयुक्त किताब मिलने पर मोल-भाव करके रेजकारी में ही कीमत देनी सम्भव हो जाती थी।

इस बीच कभी रिजर्व बैंक ने सिक्के ढालना कम कर दिया और बाजार में रेजकारी की कमी हो गयी। एक रुपये के कागजी नोट बाजार में इतनी मात्रा में आ गये कि लगता था कुछ ही दिनों में पचास पैसे का भी नोट चलने लगेगा। (इस बीच में रुपया 16 आने या 64 पैसे का होने के बजाय सौ नये पैसे का हो गया था।) अठन्नी की जगह पचास पैसे ने ले ली थी। अब एक रुपये, दो रुपये, पाँच रुपये और 10 रुपये के नोट चलन में आ गये थे। 100 रुपये का नोट अभी भी बड़ी रकम थी और कभी-कभी ही अपने हाथ में आती थी। सुना जाता था कि रिजर्व बैंक हजार रुपये के नोट भी छापता है और वे नोट बैंकों की तिजोरियों में ही पड़े रहते हैं। लोगों का कामकाज दो, पाँच, दस, सौ रुपये के नोटों से ही चल जाता है।

रुपये की कीमत एक बार गिरनी शुरू हुई तो फिर रुकी नहीं। मैंने 14-15 वर्ष की अवस्था में इंग्लैण्ड की छपी किताबें खरीदता था तो एक पौण्ड के लिए 5 रुपये

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कीमत देनी पड़ती थी। आजादी के समय द्वितीय महायुद्ध के लिए ब्रिटेन द्वारा भारत से लिया गया ऋण करोड़ों में था। उस समय रुपये की कीमत एक पौण्ड के बराबर थी। पण्डित नेहरू की सरकार ने देखते-देखते इसी दर से ब्रिटेन से लिये जानेवाले करोड़ों पौण्डों को रुपयों में बदल लिया। इसके बाद पौण्ड की कीमत बढ़ती ही गयी और आज (मई 2014) एक पौण्ड 100 रुपये के आस-पास पहुँच गया है। मान लीजिये हमने युद्ध ऋण के पौण्ड 1947-48 में ही बेच डालने के बजाय 2014 में बेचे होते तो हमें कितना लाभ मिला होता।

पिछले दिनों जब भी बम्बई गया तो फोर्ट एरिया के उडिपी भोजनालयों में ही इडली-साँभर ग्रहण करता और रेजकारी में उनकी कीमत चुकाता। बम्बई यात्रा पर यह आदत-सी बन गयी थी। इसलिए इस बार फोर्ट एरिया में पहुँचने पर दोपहर के समय फिर उडिपी भोजनालय ढूँढ़ने लगा। कई गलियाँ ढूँढ़ने पर जब कोई उडिपि भोजनालय नहीं दिखा तो आश्चर्य हुआ। मैंने एक दूकानवाले से निकट के उडिपी भोजनालय का संकेत पूछा, उनके जवाब से पता चला कि उस क्षेत्र में अब कोई उडिपि भोजनालय नहीं है। कई जगह लोगों से बातचीत हुई। निष्कर्ष यह निकला कि हाल के दिनों में ही सारे उडिपि भोजनालय बन्द हो गये। उनकी जगह आभूषणों, बैंकों और वस्त्र-अभिधानों की दूकानें खुल गयी हैं। भोजन के लिए किसी नये शाकाहारी भोजनालय में गया तो उनका सूचीपत्र देखने पर पता चला कि वहाँ एक प्लेट सब्जी की कीमत एक सौ रुपये है और एक रोटी 30 रुपये की आती है। यह सुसज्जित शाकाहारी भोजनालय उसी स्थान पर था, जहाँ कुछ ही वर्ष पहले उडिपि भोजनालय में 25 रुपये में भरपेट भोजन मिलता था। इस नये भोजनालय में रेजकारी देकर एक बिसलेरी का एक बोतल पानी भी नहीं मिलता था। 'मिनरल वाटर' की बोतल 40 रुपये में मिलती थी। अपनी जेब में पड़ी रेजकारी सँभालते हुए बिना कुछ खाये पिये दरवाजे से बाहर निकल जाना ही अच्छा था। सामने खड़े ठेले/खोमचेवाले से एक प्लेट केले-अमरूद की चाट की कीमत जरूर रेजकारी में चुकता की जा सकती थी। अभी यह न्यामत बची हुई थी।

रेजकारियों की चलन बन्द होना वस्तुतः चारों ओर फैल रही मुद्रास्फीति का परिणाम है। केन्द्र सरकार विशालतर विकास योजनाएँ शुरू करती आ रही है, गरीबों के नाम पर बहुत से अनुदान बँट रहे हैं। 'साग-सब्जी' के मूल्य बढ़ते जा रहे हैं, प्याज कभी 50 रुपये प्रति किलो पहुँच जाती है। हर सरकार उसकी कीमत गिराने का प्रयत्न करने लगती है। इन सारी बातों से मुद्रास्फीति बढ़ती जा रही है। सरकारी कर्मचारियों के वेतन-भत्ते हर वेतन आयोग की रिपोर्ट आने पर बढ़ जाते हैं, इसलिए उन पर मुद्रास्फीति से कोई ज्यादा अन्तर नहीं पड़ता। निजी क्षेत्रा के कर्मचारी भी अपने वेतन-भत्ते बढ़वाने में पीछे नहीं रहते। लेकिन समाज में बहुसंख्या ऐसे लोगों की है जो वेतनभोगी नहीं हैं, जो कहीं पर कर्मचारी नहीं हैं, उनमें से कुछ कलाओं में, साहित्य

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में, नृत्य और संगीत में कार्यरत हैं और इतने सफल नहीं हुए हैं कि मुद्रास्फीति के दबाव को नजरअन्दाज कर सकें। ऐसे लोगों पर मुद्रास्फीति की मार बहुत भारी पड़ती है।

संस्कृति के क्षेत्र में काम करनेवाले लोग अधिकांश अपनी जीविका रेजकारी पर चलाते हैं। उससे अधिक उनकी बिसात नहीं। अगर रेजकारी से काम चल जाया करे तो उन्हें मुद्रास्फीति का नाम भी नहीं सुनाई पड़ेगा। जब रेजकारी की कमी होने लगती है तो उन्हें अपने ऊपर हो रहा अन्याय दिखाई देने पड़ता है। कई संस्कृति कर्मियों के चेहरों से साफ प्रकट होने लगता है कि वे मुद्रास्फीति के शिकार हो रहे हैं।

यूरोप में प्रथम महायुद्ध के बाद अमरीका, इंग्लैण्ड आदि अनेक देशों के युवा लेखक जर्मनी जाकर रहने लगे थे। महायुद्ध के बाद जर्मनी भयंकर मुद्रास्फीति का शिकार हो गया था और उसकी मुद्रा की कीमत अन्य देशों की मुद्रा के मुकाबले में कम ही नहीं, नगण्य हो गयी थी। एक रोटी 1200 मार्क की मिलती थी, खुले बाजार में एक पाउण्ड में 2500 मार्क जितने मिल जाते थे। वैधानिक रूप से यह मूल कीमत का 2000 गुणा था। क्रिस्टोफर ईशरवुड, विस्टन ऑडेन, स्टेफेन स्पेण्डर और उनकी पीढ़ी के बहुत से लेखक महीनों बर्लिन और जर्मनी के अन्य नगरों में रहने लगे। बर्लिन में समलैंगिक और अन्य तरह की वेश्यावृत्ति बहुत बढ़ गयी। इंग्लैण्ड के पाउण्डों और अमरीकी डालरों के बल पर ये लेखक बर्लिन में आलीशान समय गुजार रहे थे। उन दिनों के बारे में क्रिस्टोफर इशरवुड की पुस्तक 'गुडबाई टु बर्लिन' आधुनिक अंग्रेजी साहित्य में 'क्लैसिक' का स्थान ग्रहण कर चुकी है।

स्थिति यह थी कि इंग्लैण्ड में नये साहित्यकारों को मुश्किल से कोई रोजगार मिलता था। टी.एस. इलियट अपने साहित्यिक जीवन के आरम्भ में ही अमरीका छोड़ कर पहले यूरोप, फिर कुछ दिनों बाद लन्दन में रहने लगे। उन्हें मजबूरी में लायड्स बैंक में किरानी का काम करना पड़ा। एजरा पाउण्ड से तब नहीं रहा गया। उन्होंने अनेक चिट्ठियाँ लिखीं— उन्होंने कहा कि 10 ऐसे लोग होने चाहिए, जो इलियट जैसे साहित्यिक को हर महीने 100 पाउण्ड दें, ताकि इलियट बैंक की नौकरी छोड़कर अपना सारा समय साहित्य को दे सकें। पोएट्री (शिकागो) की संस्थापक हैरिएट मनरो पहली व्यक्ति थीं, जिन्होंने इस सुझाव को मानकर अपने हिस्से की राशि भेजनी शुरू कर दी। इलियट और पाउण्ड के जीवन-चरित इस प्रसंग का पूरा खुलासा नहीं करते। ऐसा लगता है कि यह कार्यक्रम सफल हो, उसके पहले ही इलियट को 'फेबर एण्ड फेबर' में सम्पादकीय डायरेक्टर का काम मिल गया।

पाउण्ड ने सिर्फ इलियट के लिए यह व्यवस्था नहीं की थी। जेम्स ज्वाएस भी उन दिनों पेरिस में गरीबी में रह रहे थे। उनकी अनुपम कहानियाँ प्रकाशित हो चुकी थीं। 'यूलिसेज' की पाण्डुलिपि अभी उनके पास ही थी, क्योंकि वे उस पर लगातार काम करते रहते थे। उनका भी काम अभी तक दोस्तों के कोटों की जेब में पड़ी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रेजकारी से ही चल रहा था। पाउण्ड ने चिट्ठियाँ लिख-लिखकर ऐसे कई लोग तैयार किये, जो उन्हें अपने साधनों के अनुसार वजीफा देते रहे। पाउण्ड ने इस तरह की सहायता अनेक संगीतज्ञों, चित्राकारों और साहित्यकारों के लिए उपलब्ध की। उन लोगों को इतनी रेजकारी मिलने लगी कि वे अपना महत्त्वपूर्ण समय साहित्य या संगीत को दे सकें।

पाउण्ड ने साहित्यकारों और कुछ कलाकारों-संगीतज्ञों के लिए वृत्तियाँ प्राप्त करने का यह कार्य सिर्फ व्यक्तिगत स्तर पर किया ही। उन्होंने उस सम्पूर्ण आर्थिक व्यवस्था को समझने का प्रयत्न किया, जिसके कारण सांस्कृतिक क्षेत्र में काम करने वालों को सिर्फ रेजकारी गिनते हुए काम करना पड़ता है। आर्थिक व्यवस्था समझने के प्रयत्न में एजरा पाउण्ड स्वयं छोटे-बड़े अर्थशास्त्री भी बन गये। कुछ अर्थशास्त्री उन्हें पसन्द आये और उन्होंने उनकी वकालत भी शुरू कर दी। इन्हीं में 'सोशल क्रेडिट' आन्दोलन के अर्थशास्त्री कर्नल सी.एच. डगलस भी थे।

सोशल क्रेडिट आन्दोलन का कुछ सम्बन्ध भारत से भी था। बीसवीं शताब्दी के शुरू में भारत में 'वेस्टिंगहाउस इलेक्ट्रिक कम्पनी' काम करती थी। भारत में उसका सारा कार्य कर्नल सी.एच. डगलस देखते थे। कर्नल सी.एच. डगलस ने यह पाया कि वेस्टिंगहाउस कम्पनी भारतवर्ष में करोड़ों रुपये का व्यापार कर रही है। लेकिन उसने भारतवर्ष में एक भी पैसे का निवेश नहीं किया है। बिना कोई निवेश किये ही वह लाभ कमा रही है। उसका सारा कार्य बैंकों द्वारा दिये गये धन से चलता है। बैंकों ने वेस्टिंगहाउस से कोई गारण्टी भी नहीं ले रखी है। ऐसा इसलिए सम्भव हो पाया क्योंकि वेस्टिंगहाउस की बाजार में साख थी और उसके बल पर अपनी जरूरत की सारी राशि उन्हें बैंकों से मिल जाती थी। 'क्रेडिट' का महत्त्व समझ में आ जाने के बाद कर्नल डगलस ने एक ऐसी अर्थव्यवस्था का ढाँचा तैयार किया, जिसमें वर्ष-भर में समाज में हो रहे हर प्रकार के उत्पादनों की राशि के बराबर शासन नोट छाप ले और उसे नागरिकों में 'क्रेडिट' के रूप में बाँट दिया जाये, ताकि हर नागरिक अपनी सारी आवश्यकताएँ वर्ष में हुए उत्पादन में से क्रय करके पूरी कर सके। वह अपने इच्छानुसार कार्य करते हुए भी अपनी जीवनावश्यकताओं को पूरा करने के लिए साहित्यकार भी इस 'क्रेडिट' का उपयोग करते हुए अपना लेखन करने के लिए स्वतन्त्र रहेंगे, संगीतकार संगीत रचना कर सकेंगे और अन्य कलाकार भी अपना समय अपनी कलाओं को दे सकेंगे। उनकी जीवनावश्यकताएँ 'क्रेडिट' से पूरी होती रहेंगी।

यूरोपीय अर्थशास्त्रियों में गेसेल द्वारा निरूपित आर्थिक सिद्धान्तों में भी ऐसे प्रश्नों का समाधान था। मुसोलिनी ने अपने राज्य की अर्थव्यवस्था गेसेल के सिद्धान्तों के अनुरूप बनायी थी। इसीलिए एजरा पाउण्ड मुसोलिनी का समर्थन कर रहे थे। एजरा पाउण्ड के काव्यग्रन्थ 'कैण्टोज' के अनेक सर्गों में मुसोलिनी और गेसेल की

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रशंसा करते हुए उनके द्वारा अपनाई गयी अर्थव्यवस्था के कारण हो रहे सभ्यतामूलक विकास की कल्पना की गयी है। एक विख्यात साहित्यिक समर्थक मिलने पर, जो अमरीकी था, मुसोलिनी ने अपने प्रचार के लिए पाउण्ड का उपयोग करना शुरू कर दिया। रोम रेडियो से एजरा पाउण्ड के नियमित भाषण होने लगे। अंग्रेजी पाठक वर्ग में उनको फासिस्ट कहा जाने लगा। हालाँकि उनका फासिज्म कुल जमा रेजकारी के लिए था, ताकि कलाकार और साहित्यकार बिना माँगे इतनी रेजकारी पा सकें कि उनकी जीवन यात्रा चलती रहे और वे अपना मनोनुकूल कार्य करते रहें।

मुद्रास्फीति से साहित्य और संस्कृति की कितनी क्षति होती है, इसका हम लोग कोई आकलन नहीं करते। मुद्रास्फीति बढ़ती है तो नोटों का प्रचलन बढ़ने लगता है। सरकार इन नोटों को बढ़े वेतन के रूप में सरकारी कर्मचारियों को देती है। उन्हें रेजकारी की आवश्यकता नहीं पड़ती। रेजकारी की कीमत घट जाती है और वह बाजार से गायब होने लगती है। सांस्कृतिक-सृजनात्मक कार्यों में लगा हुआ कोई व्यक्ति यदि नियमित वेतन नहीं पाता तो उसे रेजकारी पर निर्भर रहना पड़ता है। जो सर्जक सरकार के वेतनभोगी होते हैं, उन्हें भी रेजकारी की आवश्यकता नहीं होती। रेजकारी की आवश्यकता उन्हीं को है, जो अपना सारा समय सांस्कृतिक समृद्धि के कार्यों में लगाते हैं और समाज के जीवन को समृद्ध बनाते हैं। उन्हें प्रायः रेजकारी पर ही गुजर-बसर करना पड़ता है।

दक्षिण मुम्बई में रेजकारी से मेरा काम इसलिए नहीं चला कि पटरियों पर बैठने वाले किताबों के दूकानदार मुम्बई की सुरक्षा को ध्यान में रखते हुए सड़क के किनारे के अपने स्थान से हटा दिये गये थे, उडिपि रेस्तराँ महँगाई की मार के बदौलत बन्द हो गये थे। उनके द्वारा बनाये जानेवाले पदार्थों में प्रयुक्त होनेवाले उपकरण अब इतने महँगे हो गये थे कि उनके ग्राहक अब बढ़े हुए दाम देने में असमर्थ थे। अब रेजकारी देकर पेट भर भोजन करना सम्भव नहीं था। मुद्रास्फीति ने अपने पाँव चारों ओर फैला लिए थे। इसलिए उन्हें अपने स्थान को पगड़ी पर उठा देना ज्यादा लाभदायक था। उन जगहों को बैंकों ने (अपनी शाखाएँ खोलने के लिए), जवाहरात बेचनेवालों, साड़ियाँ बेचनेवालों ने ले लिया। अब रेजकारी के बल पर भोजन करना असम्भव हो गया। उसके लिए भी नोटों की जरूरत पड़ने लगी।

मुद्रास्फीति अपने-आप नहीं आती। वह सरकार द्वारा व्यय होनेवाली राशि बहुविधि अनेक मदों में बड़ी मात्रा में बढ़ा दिये जाने से आती है। सरकार द्वारा नागरिकों पर प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष कर-भार बढ़ाने का परिणाम होती है। अब किसी रेस्तराँ में चाय पीने भोजन करने के बाद आनेवाले 'बिल' में 2-3 तरह के टैक्स जुड़ जाते हैं, जिससे कीमत तुरन्त 20 प्रतिशत बढ़ जाती है। उपयोग में आनेवाली सामग्री पर अनेक स्तरों पर तरह-तरह के कर लगे होते हैं। जिनसे पहले ही बिना आपके जाने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कीमत 30-40 प्रतिशत बढ़ गयी होती है। इसलिए यदि आप किसी रेस्तराँ में कुछ भोजन करते हैं तो उसकी कीमत का 50-60 प्रतिशत सरकार को चला जाता है। उदाहरण के लिए, जून 2014 के प्रारम्भ में दिल्ली के एक रेस्तराँ में दो मित्रों के साथ चाय-कॉफी पीने पर बिल में इस प्रकार के कर जोड़े हुए थे :

भोजन का बिल	रु. 540.00
. सरकारी सर्विस टैक्स -12 प्रतिशत, (भोजन के बिल का 40 प्रतिशत)	रु. 025.92
. एजुकेशन सेस- 2 प्रतिशत,	रु. 000.58
. हायर एजुकेशन सेस-1 प्रतिशत,	रु. 000.29
. वैट	रु. 057.50
कुल योग	रू. 634.00

हमें यह भी ध्यान रखना पड़ेगा कि रेस्तराँ मालिक एक किराये की जगह पर रेस्तराँ चला रहा है। उसे मकान मालिक को किराया देना पड़ रहा है। मकान मालिक से सरकार 'हाउस टैक्स' ले रही है। उसे मिलनेवाले किराये पर भी कई प्रकार के टैक्स लगेंगे। जिनमें प्रमुख केन्द्रीय आयकर हो सकता है। राज्य सरकार भी कई तरह के टैक्स लगाती है। रेस्तराँ का मालिक रेस्तराँ में उपयोग के सारे सामान बाजार से खरीदेगा। उसे खरीदते समय भी केन्द्रीय बिक्री कर, राज्य बिक्री कर देने पड़े होंगे। उस समय भी सर्विस टैक्स लगा होगा। यदि हर स्तर पर लगने वाले टैक्सों को जोड़ा जाये तो वे कम-से-कम 40-45 प्रतिशत हो जायेगा। अर्थात् सरकार लगातार इस कार्य में लगी हुई है कि रेजकारी से आपका काम न चले और आप हमेशा रोजगार ढूँढ़ने में, वेतनभोगी बनने में, वेतनदास बनने में दत्त-चित्त होकर लगे रहें और अपनी कामनाओं के अनुसार किसी सृजनात्मक कार्य में न लगें।

सरकार आपके दिये हुए कर का क्या-क्या उपयोग करती है, यह जानने का प्रयत्न करने पर उसमें बहुत-सा आपको निरर्थक भी लग सकता है। उसका बहुत-सा अंश सरकारी कर्मचारियों द्वारा अपहृत कर लिया गया होता है। इस तरह हम पर भार इतना होता जाता है कि हमारी रेजकारी बहुत काम की नहीं रह जाती। आजकल ऐसा ही हो गया है कि हमारी जेब में पड़ी रेजकारी अब महत्त्व खोने लगी है।

रेजकारी का चलन बन्द होने पर बहुत से व्यवसाय समाप्त हो जाते हैं। मैंने अपने शहर में पुराने कुल्फीवाले का पता लगाने की कोशिश की। अब उसका पुत्र सरकारी नौकरी करता है और पौत्र लोग सूचना प्रौद्योगिकी का प्रशिक्षण ले रहे हैं। परिवार में कुल्फी बनाने का कार्य बन्द हो गया है। पौत्र पीढ़ी इसका कौशल भी नहीं जानती। अब कुल्फी भी आइस्क्रीम कम्पनियाँ ही बनाती हैं और यह अपेक्षाकृत बड़ा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उद्योग बन गया है। इस उद्योग को अनेक स्तरों पर अनेक तरह के कर देने पड़ते हैं। इसलिए कुल्फी की कीमत भी बढ़ गयी है और आपको पूरी कुल्फी ही खरीदनी पड़ेगी। उसका आधा या चौथाई नहीं खरीदा जा सकता।

पिछले समय में सृजनात्मक कार्यों में लगे लोगों के लिए निर्वाह व्यय निकालने के कुछ साधन उपलब्ध हो सकते थे। जीविका के लिए पूरे समय की नौकरी करनी पड़े, यह आवश्यक नहीं था। पूरे समय की नौकरी आपके मनोनुकूल कार्य में लगनेवाले समय को सीमित कर देती है। आपके द्वारा किया गया सृजनात्मक कार्य से ऐसी गन्ध आती है, जैसे वह किसी थके-हारे आदमी की रचना हो। मुद्रास्फीति के दिनों में निर्वाह व्यय निकलना कठिन हो जाता है। जितनी मुद्रास्फीति बढ़ेगी, सांस्कृतिक- सृजनात्मक कार्यों में उतनी ही रुकावट आयेगी। उसके लिए अपेक्षित स्वतःस्फूर्ति कम होने लगेगी। मुद्रास्फीति दबाव में लोग ऊबने लगेंगे। रेजकारी मुद्रास्फीति की पूर्ववर्ती है। वह सांस्कृतिक-सृजनात्मक कार्यों के लिए आपसे वेतनदास बन जाने की अपेक्षा नहीं करती। आपका काम चला देती है और आपको कहती है कि आप अपने मनोनुकूल सृजनात्मक कार्य में लगे रहें। उसके लिए जिस तरह का अवकाश चाहिए वह भी आपको देती है। आपको कल के लिए, भविष्य के लिए चिन्तित होने से बचाती है। रेजकारी संस्कृति की प्रगति में सहायक है, मुद्रास्फीति संस्कृति को नष्ट करने की प्रवृत्ति है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अपने अपने कालिदास

सरजू प्रसाद मिश्र*

कथाकार, नाटककार मोहन राकेश ने 'आषाढ़ का एक दिन' नाटक में जिस कालिदास का व्यक्तित्व सिरजा है, वह बहुतों को ढुलमुल और निरीह दिखाई देता है। नाटक के आधार पर ही हम देख सकते हैं कि वह जीवन्त और प्रखर नहीं है? नाटक के प्रथम अंक में वह उज्जयिनी के राजकीय आमन्त्रण के उत्तर में राजकीय मुद्राओं से क्रीत न होने की बात करता है। अन्ततः प्रेमिका मल्लिका के आग्रह पर वह चला जाता है। राजदुहिता प्रियंगुमंजरी से ब्याह करके ख्याति, पद, प्रतिष्ठा सब प्राप्त करता है। दूसरे अंक में प्रियंगुमंजरी मल्लिका को उपकृत करने के बहाने उसे अपमानित करती है और कालिदास ग्राम-प्रान्तर में आकर भी अपनी प्रेमिका से मिलने नहीं आता है। तीसरे अंक में मल्लिका का जीवन हो जाने के बाद कालिदास उससे मिलने आता है तो समय के अधिक शक्तिशाली होने और किसी की प्रतीक्षा न करने की बात करता है और मल्लिका को उसी दुरवस्था में छोड़कर चल देता है। कालिदास अपने परिवर्तन को अभावपूर्ण जीवन की स्वाभाविक प्रतिक्रिया कहकर व्याख्यायित करता है। ठोस वास्तविकता के करीब जाते हुए भी नाटक उसे छूकर ही रह जाता है और समय के किसी के लिए न रुकने की बात कहकर एक रोमाण्टिक निष्कर्ष के साथ समाप्त हो जाता है। नाटक के प्रकाशित होने पर राकेश के मित्र राजेन्द्र यादव ने उसे पढ़कर उसकी खामी की ओर ध्यान खींचा था—"नाटक की सबसे बड़ी कमजोरी है कि उसकी कहानी एकदम आधुनिक है और संस्कृत के 'अकृष्ट पच्य' शब्दों से उसे प्राचीन 'लुक' देने की कोशिश की गयी है। जिस तरह रानी पियंगु अनुसन्धित्सुओं को प्रोत्साहित करती है, कवि के जीवन और काव्य सम्बन्धी चीजों में रुचि लेती या उनकी सुरक्षा का प्रबन्ध कराती है, या जिस ढंग से विजिट पे करती है वह नितान्त आधुनिक है।"[1] इसे नयी कहानी कहने के बदले काल-विपर्यय (राना क्रानिज्म) कहना ज्यादा

पता : 46, पठान ले-आउट, रिंग रोड, नागपुर—440020; मो. : 09422148067

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उचित होगा। प्राचीन या ऐतिहासिक काल में आधुनिकता का प्रवेश कितना होना चाहिए, यह विचारणीय प्रश्न है।

नाटककार कथाकार सुरेन्द्र वर्मा ने भी अपने नवीनतम उपन्यास 'काटना शमी का वृक्ष पद्मपंखुरी की धार से' में कालिदास का जीवनवृत्त प्रस्तुत किया है। 'आषाढ़ का एक दिन' के मातुल और प्रियंगुमंजरी यहाँ भी हैं, लेकिन मल्लिका और विलोम यहाँ नहीं है। मल्लिका का स्थान मुग्धा ने ले लिया है, जो सुन्दरदास की बेटी है। सुरेन्द वर्मा ने कालिदास के गाँव को नन्दीग्राम नाम दिया है। नन्दीग्राम का 'अलाबु' (कद्दू) अखिल आर्यावर्तीय ख्याति का कवि कैसे बन गया, यही इस उपन्यास की प्रधान कथा है। राकेश का तीन अंकी नाटक मूलतः मल्लिका केन्द्रित है। उसमें कालिदास के व्यक्तित्व के विविध आयाम और उनका समय साकार नहीं हो पाया है। नाटक-विधा की अपनी सीमाओं में यह सम्भव नहीं था। सुरेन्द्र वर्मा ने उपन्यास विधा को अपनाकर उसके वृहदाकार के माध्यम से बहुत कुछ कहा है। राकेश ने राज्याश्रय और साहित्य के पारस्परिक सम्बन्ध को उठाया है तो वर्मा जी ने एक प्रतिभाशाली साहित्यकार के रचनात्मक और जीवनगत संघर्ष को अभिव्यक्त किया है।

राकेश की अम्बिका की तरह सुरेन्द्र का मातुल व्यावहारिक है और काव्य के साथ उसका छत्तीस का आँकड़ा है। अपने भांजे की प्रख्यात कृति 'मेघदूतम्' के बारे में व्यक्त उनकी राय द्रष्टव्य है–'मेघ के द्वारा सन्देश भेजना। कोई विक्षिप्त भी नहीं करेगा। और सारा संसार बलिहारी जा रहा है इसके ऊपर।' पशुओं की चिकित्सा में प्रवीण मातुल की अपने कवि-हृदय भांजे के सम्बन्ध में टिप्पणी है–'आज की तिथि तक मैंने अनगिनत गायों, बैलों, भैंसों, घोड़ों, ऊँटों और गर्दभों का उपचार किया है, पर मैं सचमुच नहीं समझ पा रहा हूँ कि कवि नामक इस जन्तु का उपचार कैसे करूँ।' मातुल यह जानकर अत्यधिक प्रसन्न होते हैं कि कालिदास को अध्यापक की नौकरी मिल गयी है। अब वह मुग्धा के साथ गृहस्थी बसाकर सुख से जीवन-यापन कर सकता है। कालिदास नन्दीग्राम कूप का दादुर धनकर नहीं रहना चाहता, इसलिए अपने सपनों की नगरी उज्जयिनी के लिए चुपचाप निकल पड़ता है। पलायन के पूर्व मुग्धा के साथ गन्धर्व विवाह कर लिया है।

कालिदास के पूछने पर उज्जयिनी के मुख्य द्वार का प्रहरी इस नगरी का प्रशस्तिगान करते हुए कहता है–"आप गुप्त-साम्राज्य की राजधानी में आ पहुँचे, जो महाकाल का निवास है–आर्यावर्त की एक और अकेली उज्जयिनी, जहाँ लक्ष्मी और सरस्वती गलबहियाँ डाले विचरण करती हैं–कला जीवन-शैली है जहाँ–प्रतिभा की क्रीड़ा-स्थली और हर कर्मयोगी को समान रूप से अवसर प्रदात्री स्वर्गनगरी–जीवन का सम्पूर्ण रूपान्तरण करके कामनाओं को फलितार्थ करनेवाली कामधेनु उज्जयिनी।" कालिदास ने नगर में आगे बढ़ने पर राजकन्या प्रियंगुमंजरी के रथ को जाते देखा। तब

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वह नहीं जानता था कि राजकन्या उसके जीवन में महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा करेगी। सर्वप्रथम धर्मशाला में रिश्वत देकर टिकने की जगह पाता है। वहाँ के प्रबन्धक उसकी ज्ञान वृद्धि करते हुए बताते हैं कि उज्जयिनी में हर पाँचवें डग पर आप किसी कवि से टकराते पाये जाते हैं। उज्जयिनी के साहित्य एवं नाट्य संस्थाओं के उच्च पदों पर परम्परा, रूढ़ि और शास्त्रीयता में लिथड़े सामान्य प्रतिभा के अहंग्रस्त विद्वान पदासीन हैं, जो महत्त्वाकांक्षी कालिदास को जरा भी घास डालने को तैयार नहीं हैं। धर्मशाला से निकाले जाने पर कालिदास अश्वशाला में शरण लेता है। आचार्य आलोकवर्धन 'ऋतुसंहार' की पाण्डुलिपि पढ़े बिना ही फेंक देते हैं। हताश और टूटा हुआ कालिदास सोचता है–'सभ्य संसार की विश्वात्मिका राजधानी ने ऐसी ही कृपा बनाये रखी तो रामायण जैसा महान काव्य भले ही न रच पाओ, वाल्मीकि जैसे महान डाकू अवश्य बन जाओगे।'

अन्ततः निराशा से ऊबकर कालिदास नवोदितों के लिए प्रतिबन्धित क्षेत्र में प्रवेश करने में सफल रहता है। उसकी नाट्यकृति 'छद्मवेषी राजकन्या' राष्ट्रीय रंगमण्डल द्वारा प्रदर्शन हेतु स्वीकृत हो जाती है। प्रियंगुमंजरी का ध्यान प्रतिभा के धनी कालिदास की ओर जाता है और दोनों के बीच क्रमशः प्रगाढ़ता विकसित होती जाती है। नन्दीग्राम में वियोग के दिन काट रही मुग्धा का प्रेम कालिदास के हृदय में काँटे की तरह कसकता रहता है। यदि प्रियंगुमंजरी को इस प्रणय-सम्बन्ध की जानकारी मिल जाती तो आगे घटित होनेवाले वात्याचक्र को रोका जा सकता था। फिलहाल कालिदास के समक्ष अपने रचनात्मक विकास का ही लक्ष्य है, इसलिए प्रणय और परिणय के प्रसंगों को भविष्य के लिए स्थगित किये रहता है। सम्राट और साम्राज्ञी अपनी बेटी का ब्याह प्रतिष्ठित राजघराने में करने के लिए कृतसंकल्प हैं, हालाँकि गुप्तचर-सेवा उन्हें राजदुहिता और कवि कालिदास के सम्बन्धों की जानकारी देती रहती है। 'ऋतुसंहार' के बाद 'मेघदूतम्' की रचना ने कालिदास की ख्याति में चार चाँद लगा दिये। उनकी काव्य-प्रतिभा से प्रभावित राजदुहिता की सारवान प्रतिक्रिया है–"गुप्त साम्राज्य की सौन्दर्य-बोधीय मरुभूमि में आर्य कालिदास एक और अकेले हरित द्वीप हैं।"

उज्जयिनी कूप का दादुर बने रहने के बदले कालिदास अपने अनुभव-क्षितिज का विस्तार करने के लिए लम्बी-लम्बी यात्राएँ करने का संकल्प करता है। सम्राट की ओर से रघुकुल के बारे में महाकाव्य लिखने का उत्तरदायित्व सौंपे जाने पर इस संकल्प पर लग जाते हैं। नन्दीग्राम के अपने मित्र कीर्तिभट्ट को कालिदास पत्र द्वारा सूचित करता है–"मैं कई सागरों को पार करने वाली सुदीर्घ यात्रा पर जा रहा हूँ, रघु के गौरवशाली अभियान का अध्ययन करने के लिए।"

विभिन्न देशों, प्रदेशों की यात्रा करके कालिदास उज्जयिनी लौटे तो उनके साथ 'रघुवंश' की कच्ची पाण्डुलिपि भी थी। आर्यावर्त में जीते-जी जनश्रुति बन जाने का

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पहला उदाहरण कालिदास के रूप में प्रस्तुत था। कालिदास का प्रत्यावर्तन और प्रियंगुमंजरी का स्वयंवर एक साथ ही घटित हुए। राजदुहिता ने स्वयंवर की माला युवराज प्रचण्डबल के बदले कवि कालिदास के गले में डाल दी। राजघराने के लिए यह अभूतपूर्व घटना थी। अब कालिदास रहस्योद्घाटन करते हैं कि नन्दीग्राम की मुग्धा के साथ उनका गन्धर्व-विवाह हो चुका है। अन्ततः मुग्धा ही कालिदास और राजदुहिता के मार्ग से हट जाती है। मुग्धा ग्राम के नवयुवक सुकान्त से ब्याह कर लेती है। सुरेन्द्र वर्मा की 'मुग्धा' में राकेश की 'मल्लिका' के त्याग या 'कुर्बानी' के कीटाणु वर्तमान हैं। आखिर मोहन राकेश के प्रभाव ने सुरेन्द्र वर्मा पर अपना रंग जमा ही दिया। अन्ततः कालिदास उज्जयिनी से विदा ले लेता है।

सुरेन्द्र वर्मा ने अपने इस उपन्यास को 'एक दृश्य का व्याख्यान' कहा है। पाँच खण्डोंवाले इस उपन्यास के परिच्छेदों या अध्यायों को 'दृश्योच्छ्वास' कहा गया है। प्रत्येक अध्याय को शीर्षक दिया गया है। लेखक के पास रंगमंच और सिनेमा दोनों का अनुभव है, अतएव इस कृति में नाटकीयता के साथ-साथ 'स्क्रीन प्ले' की कला भी दिखाई पड़ती है। 'काटना शमी वृक्ष का' का कालिदास राकेश की निर्मिति जैसा ढुलमुल और निर्जीव नहीं है। वह बुद्धि और भावना दोनों धरातलों पर सक्रिय है। उसके जीवन का सुनिश्चित लक्ष्य है– संस्कृत साहित्य में अपनी रचनात्मकता की छाप छोड़ना। इसकी पूर्ति को वह सर्वोच्च प्राथमिकता देता है। अपमान, अवरोध तथा अभाव उसे झुका नहीं पाते हैं। लक्ष्य-पूर्ति होने तक प्रेम, सौन्दर्य और परिणय हाशिए पर प्रतीक्षा कर सकते हैं। उनकी चिन्ता उसे गमगीन नहीं बना पाती है। राकेश के कालिदास की तरह यह कालिदास राजदुहिता के प्रणय में बँधकर अपनी प्रेमिका का जीवन उद्ध्वसा नहीं करता है। राजदुहिता अवचेतन में दबे अनुराग से प्रेरित हो वरमाला कालिदास के गले में डाल देती है। कालिदास मुग्धा से गन्धर्व-विवाह की बात छिपाता नहीं है। यहाँ प्रियंगुमंजरी मुग्धा को न अपमानित करती है, न नीचा दिखाती है। वह दो प्रेमियों के मार्ग से हट जाने को प्रस्तुत है। मुग्धा ही अपने प्रिय कालिदास के लिए त्याग कर उदारतापूर्वक बीच से हट जाती है। यहाँ मल्लिका की तरह उसका जीवन उद्धवस्त नहीं होता। अन्ततः वह सुकान्त की परिणीता बन जाती है। विलोम यहाँ भी है, एक नहीं कई। साहित्य और नाट्य के क्षेत्र में उज्जयिनी में मठाधीश बने जो औसत प्रतिभा के कवि, नाटककार और समीक्षक हैं, ये सभी विलोम हैं, जिन्हें कालिदास की प्रखर प्रतिभा हाशिए में ढकेल देती है। मुनि विकराल नामक पात्र नियति-नटी प्रतिनिधि के रूप में दिखाई देता है। वह समय-समय पर कालिदास को आसन्न संकट के प्रति सचेत करता रहता है। कालिदास स्वयंवर की ओर जाने के लिए रथ में बैठ रहा है। रथ का मुँह बायीं ओर है। मुनि विकराल उसे दाहिनी ओर नन्दी ग्राम की ओर जाने को कहते हैं। उस संकेत को न मानने के कारण कालिदास संकट

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में फँस जाता है। प्रियंगुमंजरी वरमाला उनके गले में डाल देती है। प्रायः सभी प्रमुख पात्रों के मनोविज्ञान को उनके आन्तरिक अन्तर्द्वन्द्व, प्रतिक्रियाओं, कार्यों तथा हाव-भावों के द्वारा उद्घाटित किया गया है।

भाषा विज्ञानी सुरेन्द वर्मा के संस्कृत भाषा ज्ञान और कालिदास-साहित्य में गहरी पैठ ने कृति को कलात्मक, रचनात्मकता प्रदान की है। इसके पूर्व 'मुझे चाँद चाहिए' उपन्यास में लेखक का कालिदास प्रेम नायिका के पिता के माध्यम से व्यक्त हो चुका है। बिम्बों, प्रतीकों और काव्यात्मक भाषा के द्वारा सुरेन्द्र वर्मा पाठकों—विशेषतः कालिदास प्रेमियों का मन जीत लेते हैं। 'रागदरबारी' की तरह की हास्य-व्यंग्यात्मक कथन शैली उपन्यास की पठनीयता और रोचकता में इजाफा करती है। कालिदास अपने नाटक का द्वितीय अंक लिखने में लीन हैं और गाय पाण्डुलिपि के भोज पत्रों को मुँह में रख लेती है। मुग्धा के 'क्या हुआ' पूछने पर कालिदास ने गाय के उदर की ओर संकेत किया, 'शाकुन्तलम् के पहले अंक का मंचन चल रहा है यहाँ।'

राष्ट्रीय नाट्य केन्द्र में ललितेश्वर कालिदास को सलाह देता है कि वह अपनी पादुकाएँ बदल ले, क्योंकि 'जैसे केवल चरण-विरुदावली से ही राजसी प्रवेश की सूचना मिल जाती है, वैसे ही नाट्य केन्द्र के मुख्य द्वार पर तुम्हारा पदार्पण होते ही तुम्हारी मंजुल पादुका ध्वनि से अपने कार्यालय में बैठे हुए ही मुझे विदित हो जाता है कि अनुपम कवि नाट्य-शिल्पी कालिदास पधार रहे हैं।' उपन्यास में बीच-बीच में प्रसंगानुकूल कालिदास की कृतियों—ऋतुसंहार, मेघदूतम्, शाकुन्तलम्' के श्लोकों को उद्धृत किया गया है जिससे कालिदास के साहित्यिक व्यक्तित्व का गहरा प्रभाव पाठकों पर पड़ता है। पाद-टिप्पणियों में अर्थ देकर इस प्रक्रिया को सहज बना दिया गया है।

डॉ. नामवर सिंह ने 'काटना शमी का वृक्ष' को इस दशक का सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण उपन्यास कहा है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि सुरेन्द वर्मा ने कालिदास के जीवनवृत्त के माध्यम से प्रतिभाशाली कवि, लेखक और कलाकार के गहन जीवन-संघर्ष को अत्यधिक प्रभावशाली ढंग से प्रस्तुत किया है। विद्वान समीक्षक के ध्यान में उपन्यास की सबसे बड़ी कमी नहीं आयी है। मोहन राकेश की तरह सुरेन्द्र वर्मा भी यह मानकर चले हैं कि कालिदास सम्राट चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य के काल में हुए हैं। उपन्यासकार ने कालिदास के काल पर अपने समकाल को प्रक्षिप्त कर दिया है। विश्वविद्यालय के संस्कृत विभाग के आचार्य और अध्यक्ष आलोकवर्धन पाठ्यक्रम समिति की बैठक में जाते हैं, ग्यारह शोधार्थियों का साक्षात्कार लेते हैं, लाल और नीली मसि से तीव्र गति से शोध-प्रबन्ध का आकलन करते हैं और बाद में कालिदास के लोकप्रिय हो जाने पर उसकी कृति 'ऋतुसंहार' स्नातकोत्तर पाठ्यक्रम में सम्मिलित करवा दिये जाने की घोषणा करते हैं। आज शिक्षा-जगत में जो व्यवस्था है, जो प्रक्रिया

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और प्रविधि है, उसे तत्कालीन युग में भी यथावत वर्तमान मान लिया गया है। यानी प्राचीन के आवरण में आधुनिक जीवन पेश किया जा रहा है। क्या ऐसा करना औचित्यपूर्ण है?

किताब के 'प्रमोशन' के लिए लेखक द्वारा उपस्थित रहकर हस्ताक्षरित प्रतियाँ देना आज की घटना है, उसे कालिदास काल में जस-का-तस दर्शाया गया है—'साहित्य-केन्द्र का विक्रय विभाग। कक्ष के प्रदर्शन आधारों पर 'ऋतुसंहार' और 'छद्मवेषी राजकन्या' की प्रतियाँ रखी थीं। ग्राहकों की पंक्ति बनी थी। कालिदास एक-एक की प्रति पर हस्ताक्षर कर रहा था।'

उस समय ग्रन्थ की हस्तलिखित प्रतिलिपि तैयार की जाती थी। प्रेस और मुद्रण की व्यवस्था नहीं थी। कालिदास का साहित्य उत्कृष्ट है, उनके पाठक और प्रशंसक भी बहुत रहे होंगे, लेकिन पश्चिमी 'बेस्टसेलर' की अवधारणा को उस काल पर चस्पा करना एक प्रकार की विसंगति ही कही जायेगी। साहित्य केन्द्र के विक्रय विभाग की खिड़की के समक्ष 'मेघदूतम्' की प्रतियाँ खरीदनेवालों की भीड़ और खिड़की बन्द हो जाने पर, 'हमें चाहिए मेघदूतम्' 'हमें चाहिए मेघदूतम्' की पुकारों का उठना सर्वथा आधुनिक परिदृश्य से जुड़ी घटना है। सुरक्षाकर्मियों से घिरे कालिदास के रथ को आया देखकर भीड़ का समवेत स्वर में 'कालिदास-कालिदास' कहना भी आधुनिक फिल्म अभिनेता या माइकेल जैक्सन का स्वागत कर रही बेशुमार भीड़ की प्रतिक्रिया से सादृश्य रखता है। लेखक ने आधुनिक परिस्थितियों को तत्कालीन परिदृश्य पर आरोपित कर दिया है। इससे यथार्थ-चित्रण के बदले उसकी 'पैरोडी' ही ज्यादा साकार हुई है। डाक और यातायात व्यवस्था सम्बन्धी चित्रण भी वर्तमान के आधार पर रचा गया है। उपन्यास के प्रारम्भ में लेखक की भूमिका होनी चाहिए थी, जिसमें उन ग्रन्थों या स्रोतों का उल्लेख होता, जिसके आधार पर चित्रण किया गया है। वस्त्रों, गहनों आदि के वर्णन में सावधानी बरती गयी लगती है।

कवि श्वेतांग कालिदास से कहते हैं—"साहित्य केन्द्र गया था। वह पाँच खण्डों में मेरी रचनावली के प्रकाशन के लिए सहमत हो गये हैं।" कालिदास के विभोर हो जाने पर वह जानकारी देते हैं—"जानते हो एक लक्ष का होता है उनका पहला संस्करण—और विक्रेताओं का अखिल आर्यावर्त चक्र है। पाँच घरोंवाली मरुभूमि की विकट घाणी हो अथवा विकराल घड़ियालों से घिरा दुर्गम्य द्वीप पर कहीं अपनी पुस्तकें पहुँचाकर रहते हैं।" ग्रन्थावली या रचनावली का प्रकाशन तथा बिक्री के प्रभावशाली नेटवर्क आदि की बातें निश्चित रूप से वर्तमान युग की विशेषताएँ हैं। हम समझ नहीं पाते कि किस आधार पर लेखक ने इन्हें कालिदास-काल में प्रत्यारोपित किया है।

जिस प्रकार भारत सरकार के विशेषज्ञों ने तत्सम आधार पर पारिभाषिक शब्दावली बनायी है, उसी प्रकार सुरेन्द्र वर्मा ने तत्सम शब्दावली के आधार पर वर्तमान

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की व्यवस्थाओं को गुप्त-काल पर आरोपित कर दिया है। रंग मण्डल के सोमेश को धूमबत्ती सुलगाते हुए विचार लीन दिखाया गया है। पाद टिप्पणी में इसका अंग्रेजी पर्याय दिया गया है, 'चुरूट'। यानी वर्मा जी आज की हर चीज गुप्त काल में दिखाने पर आमादा हैं। कवि तुंगभद्र अपनी महत्ता का विस्फोट करते हुए कहते हैं—"कौन-सा विश्वविद्यालय है आर्यावर्त का, जिसका पाठ्यक्रम मेरे बिना पूरा हो जाता हो? दस सहस्र से ऊपर शोध-प्रबन्धों का विषय बन चुका हूँ?" हास्य की सामग्री बन चुकी वर्तमान युग की (विशेषतः हिन्दी के सन्दर्भ में) शोध-सम्बन्धी बीमारी को उस युग में प्रत्यारोपित कर लेखक ने कौन-सा लक्ष्य साधा है, जानना कठिन है। विक्रम विश्वविद्यालय के प्रांगण में युवा छात्रों की भीड़ और उनकी लन्तरानियाँ भी वर्तमान कैम्पसों में दिखाई देनेवाली गतिविधियों की अनुकृति मात्र हैं। निष्कर्ष यह है कि सुरेन्द्र वर्मा गुप्त काल में इक्कीसवीं शताब्दी को लिए-दिए प्रवेश करते हैं, लेकिन तत्सम शब्दावली की छौंक बघार से गुप्तकाल निर्मित नहीं हो जाता। इसे उपन्यासकार की स्वतन्त्रता के नाम पर भी क्षम्य नहीं माना जा सकता। काल सम्बन्धी इस अव्यवस्था और मनमानी से महाकवि कालिदास की जीवन-साधना और काव्य-साधना को ईमानदारी भरा जो गम्भीर आधार दिया गया है, वह भुरभुरा जाता है। हो सकता है कि कालिदास प्रेमी उनके काव्य और जीवन में डूबकर इस कमी को अनदेखा करें, लेकिन विवेकयुक्त समीक्षा इन तथ्यों की अनदेखी नहीं कर सकती। सुरेन्द्र वर्मा का कालिदास जीवन्त, प्राणवान और स्वाभाविक है। साहित्य-सर्जना उसका प्रधान लक्ष्य है, जीवन की अन्य एषणाएँ वह हाशिए में धकेल देता है। वह राजदुहिता के प्रति कृतज्ञ है, लेकिन किसी का दासत्व उसे स्वीकार नहीं। ख्याति, प्रतिष्ठा और लक्ष्मी की प्राप्ति के बाद भी वह इनके प्रति उदासीन रहता है और जीवन के उत्तरार्द्ध में उज्जयिनी से पलायन कर जाता है।

सन्दर्भ-संकेत

1. राकेश और परिवेश : पत्रों में, सम्पादक—जयदेव तनेजा, पृ. 332, पहला संस्करण -सं. 1995।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हिन्दू-मुस्लिम दंगों की समस्या

शंकर शरण*

राममनोहर लोहिया ने गाँधीजी की हत्या के सन्दर्भ में कहा था कि 'देश का विभाजन और गाँधीजी की हत्या एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। इन्हें अलग-अलग करके विचार नहीं किया जा सकता।' उनके इस कथन की गंभीरता सभी जानकार लोग समझते हैं। किन्तु फिर भी उन दो पहलुओं को कभी साथ-साथ नहीं देखा जाता, विचार करना तो दूर की बात है।

कहना चाहिए कि वही पलायनवादी रुख हिन्दू-मुस्लिम दंगों के सन्दर्भ में रहा है। भारत में आदि काल से विभिन्न समुदाय रहते हैं। ये समुदाय धर्म-विश्वास, संप्रदाय, जाति, भाषा, आदि अनेकानेक आधारों पर हैं। इनमें से कइयों के बीच आपस में मनमुटाव, उदासीनता या कभी-कभी दुराव जैसा संबंध भी रहा है। फिर भी किसी समुदाय की किसी विशेष समुदाय के साथ दंगों की कोई परम्परा नहीं है। इसका एक मात्र अपवाद हिन्दू-मुस्लिम दंगे हैं, जिसका सदियों पुराना इतिहास यथावत् जारी है। जर्मन इतिहासकार डॉ. माइकेल मान ने दिल्ली और आस-पास क्षेत्र के इतिहास पर अध्ययन करते हुए पाया कि यहाँ के शासकों के लिए अठारहवीं शती में भी जब-तब हिन्दू-मुस्लिम दंगे एक समस्या रही है। अयोध्या में रामजन्म-भूमिवाले स्थान पर ढाई सौ साल पहले से दंगे होते रहे हैं, इसका उल्लेख अनेक सरकारी, गैर-सरकारी दस्तावेजों में मिलता है। अस्तु।

अतः यह एक गंभीर प्रश्न बनता है कि बहुविध विभिन्नताओं के देश भारत में केवल एक विभिन्नता मुस्लिमों और हिन्दुओं की विभिन्नता—नियमित दंगों के रूप में भी व्यक्त होती है। वह भी देश के कई भागों में। सदियों से चल रही इस शोचनीय परिघटना पर हमारे देश (और विदेश भी) के सच्चे विद्वानों, विचारकों, राजनेताओं, शोधकर्ताओं, प्रशासकों ने अवश्य ही विचार किया होगा! बल्कि किया ही है। कई बार दंगों पर विभिन्न सरकारों द्वारा नियुक्त जाँच आयोग की विस्तृत रिपोर्टें और अनुशंसाएँ भी हैं। तब वह हमारे सामने क्यों नहीं है। क्यों हमारे लेखक, पत्रकार,

संपर्क : IV/44, एन.सी.ई.आर.टी. आवास, श्री अरविंद मार्ग, नई दिल्ली 110 016

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
विद्यार्थी आदि किसी ऐसे दस्तावेज या पुस्तक का उल्लेख नहीं कर पाते। अखबारों के सम्पादकीय, टेलीविजन चैलनों पर चर्चाएँ, लेख, आदि केवल चालू टीका-टिप्पणियों तक ही क्यों सीमित रह जाते हैं। यह खालीपन ध्यान देने लायक है।

इसका सीधा कारण यह है कि हिन्दू-मुस्लिम दंगों के संबंध में बुनियादी सच्चाइयों पर विचार करने के बजाय उनसे बचने की कोशिश की जाती है। यह अपने-आप में एक बड़ी समस्या और दंगों को रोकने की स्थायी व्यवस्था करने में एक बाधा है। दंगों की समस्या को उसके सभी पहलुओं के साथ नयी पीढ़ियों, जिनसे नये प्रशांसक, अध्यापक और नीति-निर्माता बनते हैं, के सामने कभी नहीं रखा जाता। बल्कि तत्संबंधी विचारों-विश्लेषणों को छिपाने के साथ-साथ उलटे एक नकली और झूठी तस्वीर एवं इतिहास हमारे बच्चों, युवाओं को पढ़ाते-सिखाते रहने की घातक परम्परा चल रही है। परिणामतः अनेकानेक शिक्षक, कर्तव्यनिष्ठ प्रशासक, पत्रकार, मेधावी छात्र, नये राजनीतिकर्मी आदि लोग दंगों के बारे में बुनियादी-स्थाई सच्चाइयों से नितांत अनजान रहते हैं। उससे भी बुरी बात कि झूठे पाठ, प्रचार के कारण वे गलत जानकारियों, पूर्वग्रहों से भरे रहते हैं। इसलिए भी दंगों की पुनरावृत्ति रोकने का उपाय नहीं हो पाता। क्योंकि जिस बीमारी के लक्षण ही छिपाए जाएँ; उलटे बीमार को स्वस्थ बताया जाये, उस बीमारी से तो मुक्ति नहीं हो सकती!

हिन्दू-मुस्लिम दंगे हमारे समाज का वह घाव है, जिसे वह छिपाकर ही जीते रहने की आदत डाले रहा है। इसी का दुष्परिणाम कि घाव जब-तब बलपूर्वक फूट पड़ता है। बल्कि सच तो यह है कि कुछ विशेष अवसरों पर इसे छिपाने की प्रतिक्रिया स्वरूप ही दंगे भड़क उठते हैं। जैसे गोधरा और गुजरात दंगा। 27 फरवरी, 2002 को हुए गोधरा कांड को दूसरे दिन से ही नकारने, बदलने, छिपाने के राजनीतिक-बौद्धिक प्रयास ने भी पीड़ित समुदाय के लोगों को बुरी तरह भड़का दिया। जिस तरह गुजराती लोग परम्परागत रूप से शांतिपूर्ण लोग हैं, उससे यह कहने का ठोस आधार है कि यदि साबरमती एक्सप्रेस कांड करनेवालों की बिना अगर-मगर भर्त्सना और कड़ी कार्रवाई की बात होती तो संभवतः प्रतिक्रिया स्वरूप वे दंगे न हुए होते। किन्तु हमारे राजनीतिक-बौद्धिक वर्ग के एक प्रभावशाली हिस्से ने गोधरा पर फौरन लीपापोती करके जले पर ढेर सारा नमक छिड़क दिया। आज ग्यारह वर्ष बाद भी नरेंद्र मोदी की निन्दा करनेवालों को इस सच्चाई का सामना करना शेष है। वह छिपी सच्चाई कि गोधरा कांड करनेवाले उस दंगे के मूल दोषी हैं, और मीडिया व सिविल सोसाइटी के सुंदर लोग भी, जिन्होंने एक दिन के अंदर गोधरा-कांड को खुद पीड़ित समुदाय के माथे डालने का निर्लज्ज, पर भयंकर प्रतिक्रियाजनक कार्य किया।

दरअसल, हर दंगे में, और आम तौर पर दंगों के पूरे प्रसंग में, जो सवाल निरपवाद रूप से कहीं-न-कहीं सिर उठाता ही है, वह है—'दोषी कौन'? यह सवाल इस पूरी बीमारी या समस्या का सबसे विकट, मगर एक जरूरी पहलू है। इतना विकट कि प्रायः यही इस बीमारी को छिपाने का मुख्य आधार हो जाता है! और इतना जरूरी कि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इससे बचकर कभी दंगों को रोकने की कोई व्यवस्था या कल्पना सफल नहीं हो सकती।

प्रायः किसी भी हिन्दू-मुस्लिम दंगे की रिपोर्टिंग में भी इस छिपाव को पहचाना जा सकता है। चाहें तो अभी हाल के ऐसे दो बड़े प्रसंगों में इसे आजमा लें। अगस्त 2013 में किश्तवाड़ (जम्मू) और सितंबर 2013 में मुजफ्फरनगर (उत्तर प्रदेश)। क्या सभी प्रमुख समाचार-पत्रों और टीवी चैनलों पर इनकी रिपोर्टिंग पूरी-पूरी अथवा किसी एक मानक के अनुसार हुई। पूरी-पूरी, अर्थात् घटनाओं का संपूर्ण यथावत् समाचार देना। एक मानक, अर्थात् दंगाई और पीड़ित हिन्दुओं व मुसलमानों के लिए एक जैसा रुख लेना। यदि नाम लेना हो, तो दोनों का लें। न लेना हो, तो किसी का न लें। यानी यथातथ्य या समरूप रिपोर्टिंग। न कि दंगाई या पीड़ित समुदाय का रूप देखकर रंग बदलते हुए रिपोर्ट या टिप्पणी करना।

उक्त दोनों प्रसंगों के समाचार कोई भी 10 अगस्त से 10 सितंबर तक के अखबारों और पत्रिकाओं में देख-पढ़कर स्वयं जाँच सकता है। यदि दो-तीन अखबारों या पत्रिकाओं की रिपोर्टों को साथ-साथ देखें, तो वह छिपाव की बीमारी और बीमारी का छिपाव, फौरन दिख जायेगा। यदि किसी हिंसा/दंगे में 'क' समुदाय के लोग पीड़ित हुए हैं तो रिपोर्टों में उसकी पहचान नहीं बताई जाती। फिर जल्द ही मामले को रफा-दफा भी मान लिया जाता है। दोषियों की खोज करने, दंडित करने आदि माँग, चर्चा आदि तो बात ही दूर रही। मगर यदि 'ख' समुदाय के लोग पीड़ित हुए, तो न केवल उसकी पहचान बताई जाती है, बल्कि पीड़ितों की, उनके परिवारवालों की मार्मिक कहानियाँ, उनके चित्र, बयान, उनके दुःखी-पीड़ित होने की कारुणिक बातें आसमान तक बारम्बार उछाली जाती हैं। देश-विदेश के हर मंच का उपयोग कर विविध प्रकार के वास्तविक-काल्पनिक दोषियों को दंडित करने की माँग की जाती है। यदि किश्तवाड़ दंगे पर कोई वैसी माँग नहीं हुई, तो कारण इंडिया टुडे, (16 अगस्त, 2013) की रपट पढ़कर समझ में आ जायेगा। उक्त दोहरेपन और छिपाव वृत्ति का झलक भी, जिससे हमारा राजनीतिक-बौद्धिक वर्ग ग्रस्त है।

यह छिपाव की हिंसा कैसे आरंभ हुई। किसने आरंभ की? क्या वह नितांत आकस्मिक थी, या किन्हीं लोगों की सोची-समझी योजना का परिणाम? कहाँ-कहाँ क्या-क्या हुआ? किन नेताओं और संगठनों ने क्या कहा और क्या किया? किनकी जानें गईं, किनकी क्या हानि हुई? मीडिया की रिपोर्टिंग से लेकर नेताओं और बुद्धिजीवियों के बयानों और टीका-टिप्पणियों में वह दोहरी बीमारी साफ-साफ नजर आयेगी : छिपाव की बीमारी और बीमारी का छिपाव। साथ-ही-साथ, समाचारों का विकृतिकरण और समय बीतने के साथ दंगे की वास्तविकता का खुला मिथ्याकरण भी कि दरअसल ऐसा नहीं, वैसा हुआ था। इस विकृतिकरण और मिथ्याकरण का सबसे सामयिक और क्लासिक उदाहरण ग्यारह वर्ष पहले का गुजरात दंगा ही है, जिसका उल्लेख आज भी किसी-न-किसी के द्वारा प्रायः हर रोज होता है! मगर होता है उस

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दंगे के आरंभ का मूल कारण, गोधरा में साबरमती एक्सप्रेस में हिन्दू-दहन, का उल्लेख किए बिना। उसी क्रम में किश्तवाड़ दंगा दो सप्ताह बाद ही चर्चा क्या, उल्लेख से भी बाहर हो गया! इस पलायनवादी रुख से दंगों की पुनरावृत्ति कभी नहीं रुकेगी।

उसी तरह, आखिर क्या कारण कि उत्तर प्रदेश में विगत एक साल में सौ दंगे होने के बाद भी वहाँ के शासक को इसके लिए किसी क्रोध, घृणा या संगठित निन्दा अभियान का सामना नहीं करना पड़ा है। जबकि गुजरात में ग्यारह वर्ष पहले हुए केवल एक दंगे के लिए वहाँ के शासक को आज भी हरेक घृणित, वीभत्स विशेषणों, लांछनों से रोज दुरदुराया जाता है। यदि लगे कि किसी दंगे की भीषणता या पीड़ितों की बड़ी संख्या आदि कारणों से किसी शासक के विरुद्ध ऐसा अभूतपूर्व निन्दा-अभियान चला और चल रहा है, तो 1984 के दिल्ली दंगे से तुलना कर लें। उस पर वैसा केंद्रित अभियान तो दूर, किसी को मालूम भी नहीं कि तब दिल्ली का शासक कौन था! इसलिए, दंगों के सन्दर्भ में छिपाव और विकृतिकरण की बीमारी का कारण कुछ और है। उसी कारण में दंगों का कारण और निदान का सूत्र भी छिपा है।

वस्तुतः यह दोहरापन, छिपाव और विकृतिकरण दंगों की मानसिकता को खुराक ही देता है। जिन प्रभावशाली नेताओं, मीडिया मैनेजरों और चालू बौद्धिकों ने किश्तवाड़ दंगे के विवरणों को सामने नहीं आने दिया, न पीड़ितों की चित्र-कथाएँ सुनाईं, न सुनने दीं, वे अपने को 'जिम्मेदार' समझते हैं! पूछने पर बड़ी ठसक से कहते हैं कि सारी बातें बताने, दिखाने से 'माहौल बिगड़ेगा'। इसलिए अपनी ओर से कथित जिम्मेदारी निभाते हुए, वे दंगों के बारे में बनाव-छिपाव को प्रश्रय देते हैं। घाव को सामने लाने के बजाय छिपाकर उसे नासूर में बदलने देते हैं। जो समय के साथ पकता रहता है, और दोनों समुदायों में अलग-अलग रोष भरता जाता है। यही रोष पर्याप्त जमा हो जाने पर किसी नयी घटना से फट पड़ता है। पुनः दंगे भड़क उठते हैं। पुनः वह बनाव, छिपाव की 'जिम्मेदारी' निभाई जाती है। इस तरह यह अन्तहीन क्रिया चल रही है...

शारीरिक बीमारी की तरह किसी सामाजिक बीमारी को भी तब तक ठीक नहीं किया जा सकता, जब तक पहले उसके सभी लक्षणों, कारणों और संबंधित विवरणों को डॉक्टरों के सामने रखा न जाये। उसके बाद ही उसका सही उपचार हो सकता है। किसी सामाजिक बीमारी के बारे में ऐसे डॉक्टर उस समाज के सबसे विचारशील, ज्ञानी और दूरदर्शी लोग ही होते हैं। हमारे समाज में भी ऐसे मनीषी रहे हैं। उदाहरण के लिए, महान लेखक बंकिमचंद्र, शरतचंद्र; कवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर, निराला, अज्ञेय; दार्शनिक स्वामी विवेकानन्द, श्रीअरविन्द; विदुषी भगिनी निवेदिता, एनी बेसेंट; नेता लाला लाजपत राय, लोकमान्य तिलक, स्वामी श्रद्धानन्द, डॉ. भीमराव आंबेडकर आदि का स्मरण किया जा सकता है। मुस्लिम नेताओं व विचारकों में मौलाना अब्दुल मौदूदी, सैयद अहमद खान, अल्ताफ हुसैन हाली, अल्लामा इकबाल, मौलाना शौकत अली व मुहम्मद अली, मौलाना हुसैन अहमद मदनी, मौलाना अकबर शाह खान, ख्वाजा हसन निजामी, फजलुल हक, मुहम्मद अली जिन्ना तथा मौलाना अबुल कलाम

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आजाद के विचारों को भी साथ-ही-साथ देखा जाना चाहिए। उन सबके तुलनात्मक अवलोकनों के अध्ययन से भारत में हिन्दू-मुस्लिम संबंधों, तनावों और झगड़ों की संपूर्ण प्रकृति आप-से-आप समझ में आ जाती है।

उदाहरण के लिए, डॉ. आंबेडकर की पुस्तक 'पाकिस्तान ऑर पार्टीशन ऑफ इंडिया' (1940) इस समस्या को समझने के लिए एक बहुमूल्य दस्तावेज है। पुस्तक के द्वितीय संस्करण की प्रस्तावना में डॉ. आंबेडकर ने लिखा भी था, 'यह भारतीय इतिहास और भारतीय राजनीति के सांप्रदायिक पहलुओं की एक विश्लेषणात्मक प्रस्तुति है।' इसमें तब विगत पचास वर्ष के हिन्दू-मुस्लिम संबंधों का प्रामाणिक विश्लेषण है। चूँकि डॉ. आंबेडकर हिन्दू धर्म-समाज के कटु आलोचक थे, इसलिए उन पर किसी पक्षपात का आरोप लगाना भी संभव नहीं। न वह कभी लगा। उलटे जिन्ना जैसे प्रखर मुस्लिम नेता ने भी उसे पठनीय बताया था। उस पुस्तक में डॉ. आंबेडकर ने सन् 1920 से 1940 तक के बीच यहाँ हुए अनगिनत दंगों का सविस्तार विश्लेषण किया है। पुस्तक के पूरे छह अध्याय, 7 से 12, इस बीमारी को समझने के लिए एक प्रामाणिक सामग्री है। यह केवल एक विचारक का उदाहरण है।

उसके आगे, सन् 1947 से लेकर अभी तक के दंगों पर उतने ही प्रखर और सत्यनिष्ठ विश्लेषण के लिए बेल्जियन विद्वान डॉ. कोएनराड एल्स्ट की पुस्तक 'द सैफ्रन स्वस्तिका : द नोशन ऑफ 'हिन्दू फासिज्म', खण्ड 2 (नयी दिल्लीः वायस ऑफ इंडिया, 2010), का सातवाँ अध्याय 'कम्युनल वायोलेंस एंड प्रोपेगंडा' के कुल एक सौ ग्यारह पृष्ठ पढ़ लेना पर्याप्त है। हमारी समझ से इस अध्याय को हिन्दू-मुस्लिम शिक्षित वर्ग तथा सभी जिम्मेदार प्रशासकों, नीति-निर्माताओं के बीच प्रसारित करना दंगों की बीमारी रोकने में अत्यंत मुफीद होगा! बल्कि सभी पुलिस और प्रशासनिक अकादमियों में प्रशिक्षु अधिकारियों के लिए डॉ. आंबेडकर की पुस्तक के उन अध्यायों और डॉ. एल्स्ट के इस अध्याय को अनिवार्य टेक्स्ट के रूप में पढ़ाया जाना चाहिए। इससे उन्हें भविष्यत दंगे रोक लेने का उपाय करना बिलकुल सरल हो जायेगा!

मगर हमारे 'जिम्मेदार' कर्णधारों ने उलटे ऐसे सभी सत्यनिष्ठ विश्लषणों, विचारों, तजवीजों को भी छिपा देने का कार्य किया है! उसी झक में, कि वह सब छिपाना, छिपाए रखना ही ठीक है। नहीं तो माहौल बिगड़ेगा। जबकि, वास्तव में, ठीक इसी छिपाव से झूठी बातों, नारों और सिद्धांतों को फैलाने का खुला मैदान मिलता है। नतीजन वही गलतियाँ दोहराई जाती हैं। जिससे हिन्दुओं और मुस्लिमों का आपसी मानसिक माहौल सदैव बिगड़ा रहता है। वह सन्देह और अफवाह का शिकार होने के लिए तैयार बैठा रहता है। हमारे नेताओं और बुद्धिजीवियों द्वारा सच्चाई न छिपाने और हरेक समुदाय के दोषियों या पीड़ितों के प्रति सदैव समान, समरूप बर्ताव क़रने से ऐसा न होता।

यह सार्वभौमिक सत्य है कि प्रायः हरेक समाज, समुदाय में अधिक संख्या भले और न्यायशील लोगों की होती है। मगर किसी अप्रिय परिघटना की पूरी सच्चाई सामने रखने से ही उन्हें वास्तविक गड़बड़ी पकड़ में आयेगी। सही दोषी की पहचान

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तभी होगी, चाहे वह जो भी हो। तब स्वस्थ जनमत बनने में भी स्वतः मदद मिलेगी। समझना चाहिए कि सच्चाई और अच्छाई का सीधा संबंध है। उसी तरह, मिथ्याचार और बुराई का भी। महान रूसी लेखक सोल्झेनित्सिन ने तो सिद्धांत में 'झूठ' का व्यवहार में 'हिंसा' का अनिवार्य संबंध बताया है। उनके शब्दों में, 'हिंसा को मात्र झूठ द्वारा छिपाया जा सकता है, और झूठ को केवल हिंसा द्वारा कायम रखा जा सकता है। जिसने भी एक बार हिंसा को अपना तरीका घोषित कर दिया वह हर हाल में झूठ को अपना सिद्धांत बनाने के लिए बाध्य हो जायेगा।' उन्होंने यह कम्युनिस्ट विचारों और हिंसा के सन्दर्भ में कहा था। किन्तु यही बात हमारे देश में दंगों की विचारधारा और हिंसा के लिए भी बिलकुल सटीक बैठती है।

कहने का अर्थ यह कि दंगों के बारे में सच छिपाने से केवल बुरे, हिंसक लोगों और बुराई को ही मदद मिलती है। फिर उससे अनुचित प्रतिक्रिया को, तथा अफवाह फैलाने वालों, बदमाशों, सस्ते राजनीतिबाजों और पक्षपातियों को मौका मिलता है। इन सबसे अन्ततः दोनों समुदायों के बीच अविश्वास बढ़ता ही जाता है। उसी अविश्वास में समय-समय पर छोटी-से-छोटी घटना किसी भारी दंगे का कारण बन जाती है। यह मोटी-सी बात हमारे कर्णधारों को समझ में नहीं आई है। वे समझते हैं कि लोगों को सही या गलत केवल उतनी ही जानकारी रहेगी, जितनी वे देते या देना चाहते हैं। जबकि वास्तव में लोगों की समझ विविध स्रोतों, घटनाओं, परम्परागत ज्ञान, तथा अपने एवं दूर दुनिया के विविध अनुभवों, अवलोकनों से बनती है।

फिर, हिन्दू और मुस्लिम इस देश में सदियों से एक-दूसरे को देख, समझ और भुगत रहे हैं। इसके अतिरिक्त दोनों ही दुनिया में और देशों में, और अन्य समुदायों के साथ भी रह रहे हैं। उन दूसरों, तीसरों के साथ इन समुदायों का कैसा आपसी संबंध है, उनके बीच किस तरह की घटनाएँ घटती या नहीं घटती हैं, यह सब भी यहाँ के हिन्दू-मुस्लिम संबंधों की आपसी समझ को प्रभावित करता है। जगजाहिर है कि हिन्दू स्वभाव से ही शांतिप्रिय लोग हैं। गाँधीजी जैसे व्यक्ति ने भी इसे नोट करते हुए यहाँ तक कहा कि इसी कारण हिन्दू 'कायरता की हद' तक चले जाते हैं। दूसरी ओर, गाँधीजी के ही शब्दों में, 'सदियों से साम्राज्य-विस्तार परम्परा के कारण' मुसलमान स्वभाव से ही 'उद्धत' (bully) होते हैं। यह तुलनात्मक सच्चाई विश्व-पटल पर आज भी देखी जा सकती है। आप्रवासी हिन्दू बड़ी संख्या में अमेरिका, यूरोप, अफ्रीका और दक्षिण एशिया के कई देशों में लंबे समय से रह रहे हैं। उन्हें कहीं भी झगड़ालू समुदाय के रूप में नहीं देखा जाता। जबकि आप्रवासी मुस्लिम समुदाय का दुनिया के हर देश में दूसरे समुदाय से झगड़े, हिंसा और सन्देह का संबंध है। सेटेलाइट टेलीविजन और इण्टरनेट के कारण सभी लोग इस रोजमर्रा की सच्चाई को जानते, देखते हैं। क्या इस बात का हमारे यहाँ सांप्रदायिक दंगों के यथार्थ से कोई संबंध नहीं।

मगर हमारे 'जिम्मेदार' लोग गोधरा या किश्तवाड़ की घटनाओं को, या उसकी वास्तविक तफसील को छिपाकर समझते हैं कि उन्होंने हिन्दुओं और मुसलमानों के बीच

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

माहौल बिगड़ने से बचा लिया। उन्होंने कभी ठंडे दिमाग से नहीं सोचा कि ऐसी बचकानी तिकड़मों के बाद भी उन्हें इस बीमारी को खत्म करने में सफलता क्यों नहीं मिली।

वस्तुतः भारत में हिन्दू-मुस्लिम दंगे जब भी होते हैं, उसके पीछे विगत घटनाओं, शासकीय भेद-भाव, निर्णयों, वक्तव्यों, अन्यायों, शिकायतों, आदि का इकट्ठा रोष भी रहता है। एक तरह से यह आपसी रोष, मनमुटाव और गलतफहमियों का घड़ा भरते रहना कह सकते हैं। इसीलिए कोई दंगा किसी तात्कालिक घटना का परिणाम भर नहीं होता। उसमें पिछली घटनाओं, अन्य संबंधित बातों की तुर्शी भी रहती है, जिस पर तब तो कुछ नहीं हुआ था। किन्तु जिसने इस या उस समुदाय में कोई अस्वस्थ भाव पैदा किया था, अन्याय या अहंकार का भाव, जो आगे किसी मामूली प्रसंग को आकस्मिक रूप से भयंकर रूप देने में औचित्य या प्रेरक का काम करता है।

इसलिए जो लोग मुजफ्फरनगर दंगे को बिलुकल अलग करके देखना चाहेंगे, वे वास्तविकता तक नहीं पहुँच सकेंगे। सामान्य स्थिति में कुछ लड़कों द्वारा किसी राह चलती लड़की से साथ छेड़खानी, और फिर उस लड़की के भाई द्वारा बदले में उन लड़कों में से किसी को मारने की घटना से इलाके के गाँव-गाँव तक दंगा नहीं हो जाता। यदि मुजफ्फरनगर में यही हुआ, तो समझना चाहिए कि दो-तरफा तनाव पहले से मौजूद था और सूखे घास-फूस, पत्ते के ढेर के रूप में बढ़ता जा रहा था। उसे किसी दुर्भाग्यपूर्ण घटना ने हिंसक चिनगारी दिखा दी। वह घटना एक बहाना-भर बनी, जो बहाना कोई और घटना भी हो सकती थी।

कौन दावा करना चाहता है कि कमाल फारुकी ने जमा होते तनाव में एक और सूखा पत्ता नहीं डाला, जब उसने उत्तर प्रदेश के मन्त्री पद से कहा कि यासीन भटकल जैसे भयंकर आतंकवादी को उसके अपराधों के कारण नहीं, बल्कि 'मुसलमान होने के कारण' गिरफ्तार किया गया है। यानी उसे गलत प्रताड़ित किया जा रहा है। उसी तरह, जम्मू-कश्मीर के सबसे प्रमुख नेता, बल्कि पूरे कश्मीरी मुस्लिम समुदाय द्वारा संसद पर आतंकी हमला करने वाले मुहम्मद अफजल को सजा देने का विरोध करना भी वैसा ही एक सूखा पत्ता न था? या कांग्रेस के वरिष्ठ नेता द्वारा बटाला हाउस मुठभेड़ में मुस्लिम आतंकियों द्वारा एक पुलिस अधिकारी के मारे जाने के बाद आतंकी को ही 'निर्दोष' बताने, और उसके घर जाकर संवेदना प्रकट करने से एक और सूखी लकड़ी नहीं जमा हुई।

उसी तरह, देश के सत्ताधारी दल द्वारा ऐसा विचित्र, बददिमाग कानून बनाने का प्रस्ताव लाना जो सभी सांप्रदायिक दंगे के लिए आगे से सदैव हिन्दुओं को दोषी मानकर, तदनुरूप उन्हें दंडित करने की तैयारी कर रहा था—क्या वह भी सूखे पत्तों का पूरा बंडल ही जोड़ना नहीं था? अथवा, विविध राजनीतिक दलों द्वारा संविधान की खुली अवहेलना करके नौकरियों में मजहबी आधार पर मुस्लिम समुदाय को आरक्षण देने की भेद-भावकारी जुगत लगाना भी वैसा ही कार्य न था। अथवा, भटकल, अफजल आदि अनगिन आतंकियों के प्रति निर्विकार रुख लेने, यहाँ तक कि 'निर्दोष'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बतानेवालों द्वारा देश के सबसे लोकप्रिय नेता नरेंद्र मोदी को निरंतर अपशब्द कहना और उसे ग्यारह वर्ष पहले हुए एक दंगे का 'दागी' ठहराते हुए मनमाने दंडित करने के लिए हर छल-प्रपंच का सहारा लेना? ऐसी सभी पक्षपाती घटनाएँ, शरारती क्रिया-कलाप, वक्तव्य आदि वास्तव में अगले आकस्मिक अग्निकांड के लिए सूखे पत्ते, लकड़ियाँ जमा करते जाने जैसी बात ही है। उसमें चिनगारी कब-कैसे-कौन लगाता है, यह भिन्न बात है। मगर ऐसी लकड़ियाँ, सूखे पत्ते जमा करते जानेवाले भी दंगों के लिए उतने ही दोषी हैं।

यह समझना ही होगा कि सामुदायिक भेद-भाव का खुला प्रदर्शन करनेवाली राजनीतिक घटनाओं, प्रक्रियाओं, प्रस्तावों, वक्तव्यों की सभी देखने-सुननेवालों पर एक प्रतिक्रिया होती ही है। यदि उनसे समाज में क्षोभ पैदा हो, और उस क्षोभ का निराकरण न हो, न ही उस दुःख, क्षोभ और आक्रोश को निकलने का कोई स्थान मिले—तो वह अस्वस्थकर भावना के रूप में एकत्र होता है। वह या तो किसी के मन में नये घाव बनाता है, या पुराने घाव को बढ़ाता है।

भारत में हिन्दू-मुस्लिम दंगे समय-समय पर उन्हीं घावों का सम्मिलित रूप से फूट पड़ना है। विगत सौ वर्षों से चल रही इसी प्रक्रिया का एक परिणाम देश का खूनी विभाजन भी था। स्वयं जिन्ना ने स्वीकार किया था कि बिना दंगे किए उन्हें पाकिस्तान नहीं मिलनेवाला था। नेहरू ने मुस्लिम लीग की यही पहचान ही बताई थी कि वह 'सड़कों पर हिन्दू-विरोधी दंगे करने के सिवाय और कुछ नहीं करती'। इस प्रकार, नेहरू और जिन्ना, दोनों के ही अनुसार मुस्लिम लीग ने दंगों को अपने हथियार के रूप में राजनीतिक इस्तेमाल किया। यदि यह ऐतिहासिक सत्य है, तो क्या आज वह बदल गया है। क्या आज मुस्लिम नेता अपनी चित्र-विचित्र माँगों के लिए कोई और तरीका या भाषा इस्तेमाल करते हैं। वह सब मीडिया में समय-समय पर सबको दिखाई देता है। इसलिए दंगों की पुरानी बीमारी के कारण भी कुछ नये नहीं हो गये हैं। यह ऐसा सदाबहार नजारा है, कि छिपाए भी नहीं छिप सकता। इसीलिए मिथ्याचार का सहारा लिया जाता है।

कुछ लोग दंगों का गणित चतुराईपूर्वक इस्तेमाल करते हैं, ताकि दंगों का व्याकरण छिपा लिया जाये! साथ ही, वे जिहादी आतंकवाद और सांप्रदायिक दंगों को भी अलग-अलग करके देखने की जिद ठानते हैं, ताकि पुनः गणित की चतुराई चल जाये। इसीलिए वे जिहादियों द्वारा सदैव किसी समुदाय विशेष को निशाना बनाकर की गयी सामूहिक हिंसा के गणित को 'सांप्रदायिक हिंसा' के हिसाब से अलग करते हैं। फिर वे भारत, पाकिस्तान और बंगलादेश में हिन्दुओं और मुसलमानों के विरुद्ध हिंसा और परिणामों को भी अपने गणित में नहीं जोड़ना चाहते। जबकि अन्ततः चाहे ये तीनों आज एक ही देश नहीं, पर दंगों की समस्या पर ऐतिहासिक रूप से विचार करने की दृष्टि से एक ही देश हैं! साथ ही, दंगों की समस्या के रूप में तो एक ही परिघटना के तीन दृश्य हैं। अतः भारत, पाकिस्तान और बाङ्लादेश में समेकित रूप से

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
हिन्दू-मुस्लिम 'दंगों' का हिसाब क्या है—यह छिपाना फिजूल है। बल्कि विपरीत परिणामदायक है।

मगर यही हो रहा है। यह सब वास्तविकता को छिपाने की बीमारी ही है। जबकि वास्तव में छिपता कुछ नहीं। न केवल भारत में, बल्कि दूसरे देशों में भी एक जैसी घटनाओं की पुनरावृत्ति अन्ततः सबको सच्चाई का आभास दे देती है। उलटे छिपाव के प्रयासों से गड़बड़ियाँ, जटिलताएँ बढ़ती हैं। हर हाल में, भारतीय समाज में हिन्दू-मुस्लिम दंगों की बीमारी की यथावत उपस्थिति बताती है कि हमने इतिहास से कुछ नहीं सीखा। इन दंगों और सभी सांप्रदायिक हिंसा पर दुनिया-भर में इतनी विस्तृत सामग्री उपलब्ध है, कि उनका वैज्ञानिक विश्लेषण बिलुकल सटीक उपचार स्वतः सुझाता है।

फिलहाल उपचार के बारे में संक्षेप में इतना ही कि दंगों का मुख्य कारण और उसके दोषी उसे उकसानेवाले, आरंभ करनेवाले और शामिल लोग नहीं—बल्कि वह मतवादी विचारधारा है जो अपने लोगों में दंगे, हिंसा और विशेषाधिकार की मानसिकता को पोषण देती है। उनकी दिन-रात मगज-धुलाई (इनडॉक्ट्रिनेशन) करती है। इसे पहचानना कठिन नहीं है। न ही इसे परास्त करना। यह रोचक और सुखद बात है कि यदि इस मतवादी विचारधारा को खुली वैचारिक चुनौती दी जाये तो बिना किसी हिंसा के यह हिंसक मानसिकता ध्वस्त हो जायेगी!

जो लोग उपर्युक्त बातों को 'किसी समुदाय के विरुद्ध घृणा फैलाना' कहते हैं, और बदले में झूठी। नकली मधुर बातें कह-कहकर दंगों या जिहादी आतंकवाद को शांत करना चाहते हैं, उन्हें डॉ. कोएनराड एल्स्ट का एक अवलोकन याद रखना चाहिए। एल्स्ट ने अन्तरराष्ट्रीय स्तर पर दिख रहे इस रोचक तथ्य को रेखांकित किया है कि जो लोग इस्लामी मतवाद की आलोचना करते हैं, उन्होंने कभी एक भी मुसलमान को शारीरिक चोट नहीं पहुँचाई है। जैसे रामस्वरूप, सीताराम गोयल, अरुण शौरी या एल्स्ट स्वयं। जबकि जो लोग इस्लाम को भरपूर श्रद्धा-सुमन चढ़ाते रहते हैं, जैसे जॉर्ज बुश, टोनी ब्लेयर, याहया खान, अल कायदा, हिजबुल मुजाहिदीन, लश्करे तोयबा, आदि—उन्हीं लोगों ने लाखों मुसलमानों को मारा है। सीधा आदेश देकर या स्वयं भाग लेकर। पाकिस्तान, अफगानिस्तान, ईरान, सीरिया, इराक, आदि देशों में मुसलमान किनके हाथों मारे जा रहे हैं। किसी 'समुदाय के विरुद्ध घृणा फैलाने' वाली लफ्फाजी में क्या इस तथ्य को भी हिसाब में नहीं लेना चाहिए।

किसी विचारधारा के विरुद्ध कुछ कहना उस विचारधारा के अनुयायियों के विरुद्ध कहने के समान नहीं है। इस्लाम और मुसलमान दो बिलकुल भिन्न चीज हैं। एक की आलोचना दूसरे की नहीं मानी जानी चाहिए। जैसे तीस वर्ष पहले मार्क्सवाद-लेनिनवाद की आलोचना करना रूसियों या चीनियों के विरुद्ध घृणा फैलाना नहीं होता था। इस्लाम को आलोचना से बचाने के लिए ऐसी ओछी चतुराई का सहारा लेना बताता है कि वास्तव में गड़बड़ी ठीक यहीं है!

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हिन्दी की वर्तनी : कुछ सुझाव

धर्मदेव तिवारी 'शास्त्री'*

आजकल हिन्दी की वर्तनी पर *प्रिण्ट मिडिया* पूरी तरह से हावी है। वह मनमाने ढंग से हिन्दी की वर्तनी को नियम-विरुद्ध लिखने और उसे प्रचारित करने में दृढ़ संकल्प है। ऐसे पत्रकार अपने-अपको सबसे अधिक ज्ञानी-पण्डित मानते हैं और शुद्ध वर्तनी को तोड़-मरोड़कर असंगत अशुद्ध वर्तनी का व्यवहार करते हैं। यथा, दैनिक समाचार पत्र वाले हुयी/हुये लिखते हैं और गई/गए। इस हठधर्मी प्रयोग से स्वयं को विद्वत्मण्डली से श्रेष्ठ मानते हैं। मैं नागपुर विश्वविद्यालय में तत्कालीन हिन्दी-विभाग के आचार्य एवं अध्यक्ष डॉ. यज्ञ प्रसाद तिवारी द्वारा आयोजित संगोष्ठी में भाग लेने गया था। संगोष्ठी के मंच पर मेरे साथ स्थानीय 'दैनिक जागरण' के सम्पादक भी बैठे हुए थे। जब संगोष्ठी के बाद हम एक जगह बैठे, तब मैंने उनसे कहा, "*आप के समाचार पत्र में हुयी/हुये तथा गई/गए मुद्रित होता है। वस्तुतः गया + ई = गयी और गया + ए = गये होना चाहिए। हमें यकार ध्वनि को लुप्त करने का अधिकार नहीं है, किन्तु हुआ + ई = हुई और हुआ + ए = हुए होता है। यहाँ यकार का आगम किसी भी नियम से नहीं हो सकता।* उन्होंने समाधान करते हुए कहा, "*मुख सुख के कारण ऐसा किया जाता है।*" मैंने पूछा, "*आपको गयी, गये में यकार ध्वनि अनावश्यक प्रतीत होती है, और हुयी, हुए में आवश्यक—यह कैसा और किसका मुख-सुख है?*" वे निरुत्तर हो गये और उन्होंने कहा, "*आप शाम को हमारे कार्यालय में आयें। मैं गाड़ी भेज दूँगा।*" उन्होंने शाम में विश्वविद्यालय के अतिथि भवन में गाड़ी भेज दी। मैं अन्य तीन सहभागी प्राध्यापकों के साथ उनके कार्यालय गया। हमारा साक्षात्कार लिया गया। साक्षात्कार का प्रमुख विषय हिन्दी की वर्तनी था। उक्त साक्षात्कार को सचित्र प्रथम पृष्ठ पर ही प्रकाशित किया गया अवश्य, पर दूसरे-तीसरे पृष्ठों पर उसी का उल्लंघन कर हुयी/हुये मुद्रित किया गया। यह पत्रकारों की दुराचारिता-हठधर्मिता है या हिन्दी

*वर्तमान पता : ग्राम—चकिया, डाकघर—पूर, जिला—बलिया—277124; चलभाष—08564981130, 09435110159

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शुद्ध वर्तनी को नष्ट-भ्रष्ट कर उसे घृणित बनाने की दुष्ट व्यवस्था का अंग है, जिसने हिन्दी के शब्दों को बरबाद करने की कसम खायी है।

आज हिन्दी न केवल सर्वभारतीय है, बल्कि वह दिनानुदिन विश्व भाषा बनती जा रही है। यदि *'प्रिण्ट मिडिया'* की हठधर्मिता इसी तरह बरकरार रही, तो हिन्दी हिन्दीभाषियों के लिए भी दुरूह बन जायेगी। जो भाषा स्वतः सरलीकरण के मार्ग पर नियमबद्ध होकर चल रही है, उसे नियम-विरुद्ध बनाकर सरलीकरण का खोखला दावा करना अत्यन्त घातक और हिन्दी के विकास-पथ में बाधक है। *'प्रिण्ट मिडिया'* ने सत्व, महत्व, तत्व, सता, महता, आदि वर्तनी लिखना प्रारम्भ किया और हिन्दी के विद्वानों के समक्ष हिन्दी को सरल बनाने का ढपोरशंखी नारा लगा दिया। मैं ऐसे विद्वानों से पूछना चाहता हूँ कि क्या संस्कृत से विकसित भारत की समस्त भाषाओं में तकारान्त शब्दों से *त्व* प्रत्यय आने पर एक तकार ही लिखने की प्रथा है? जिसकी अनुरूपता पर हमारे पत्रकारों ने एक तकार लिखना आरम्भ कर दिया। किन्तु ऐसा है नहीं। असमिया, बाङ्ला, आदि भाषाओं में दो तकार लिखा जाता है, जो सर्वथा साधु प्रयोग है। जब उक्त भाषा के विद्वान हिन्दी में एक तकार देखते हैं, तब चौंक जाते हैं। मुझसे असमिया और बाङ्ला भाषा के छात्रों/विद्वानों ने *सत्व, महत्व, तत्व* आदि वर्तनी को देखकर पूछा है कि *"हिन्दी में उक्त शब्दों में त + त(त्त्व) क्यों नहीं लिखा जाता?"* ऐसी स्थिति में एक तकार लिखना कितना सार्थक है—यह विचार करने योग्य है। इसलिए भी *सत्त्व, महत्त्व, तत्त्व, सत्ता, महत्ता, विद्वत्ता* आदि वर्तनी साधु है। 'प्रिण्ट मिडिया' को उक्त शब्दों के प्रयोग के लिए बाध्य करना चाहिए।

एक समय था, जब अध्यापक अपने छात्रों को भाषा सुधारने के लिए दैनिक समाचार-पत्र पढ़ने की सलाह देता था। इसके विपरीत आज किसी भी व्यक्ति को अपनी भाषा भ्रष्ट तथा असाधु करनी हो, तो उसे दैनिक समाचार पत्र पढ़ना चाहिए। आज छात्र ही नहीं, बल्कि अच्छे साहित्यकार और रचनाकार भी उक्त निर्जीव, बेजान और असाधु भाषा-प्रयोग की चपेट में आ गये हैं और साहित्यिक पत्रिकाएँ भी। उनके लेखन से *चन्द्रबिन्दु* तो गायब ही हो गया है, साथ ही *महत्त्व, सत्त्व, सत्ता* आदि शब्दों से एक तकार लुप्त हो गया है। एक पत्रिका के सम्पादक से जब मैंने उक्त शब्दों में एक तकार की बात उठायी, तब उन्होंने सहज भाव से कहा—*"हम संस्कृत नहीं लिखते हैं। तद्भव में एक ही तकार होगा।"* मैंने पूछा—*"हिंन्दी सीखनेवाले जब उक्त शब्दों का प्रकृति-प्रत्यय जानना चाहेंगे, तब उन्हें क्या जवाब दिया जायेगा? क्या तद्भव शब्द बिना प्रकृति-प्रत्यय के लिखे जाते हैं?"* उत्तर न मिलने पर वे खीझ गये। झुँझलाकर उन्होंने कहा— *"हिन्दी को इस प्रकार के झमेले से मुक्त करना है।"* स्पष्ट है कि विश्व की प्रत्येक जीवित भाषा के शब्द गठन प्रकृति (मूल शब्द) और प्रत्यय से ही होता है। उक्त विचारधारा से हिन्दी में अनाचारपूर्ण हठधर्मिता का बोल-बाला होगा, जिससे हिन्दी का भविष्य घनघोर तिमिराच्छन्न प्रतीत होता है, यही विदेशी भाषा को स्थिर और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रचारित करनेवालों की उत्कट मनोवांच्छा है। यहाँ द्विधारहित होकर स्वीकार किया जायेगा कि यदि हिन्दी-प्रेमी तथा उसे विकसित करनेवाला प्रबुद्ध वर्ग अभी सचेत नहीं हुआ, तो आनेवाली पीढ़ी उन्हें कभी भी क्षमा नहीं करेगी। वस्तुतः विदेशीपन के दलाल हिन्दी के बढ़ते चरण से घबड़ाकर उसे अपदस्थ करने के उपाय उसी प्रकार कर रहे हैं, जिस प्रकार विदेशीपन को स्थापित करना।

यह निर्विवाद रूप से स्वीकार किया जायेगा कि हमारा स्वतन्त्रता आन्दोलन पूर्णतः स्वदेशी बनाम विदेशी था, पर चन्द स्वार्थी लोगों ने विदेशियों से राजसत्ता हस्तान्तरित कर ली अवश्य, पर स्वदेशीपन की बलि देकर। स्वदेशी लोगों ने छद्म रूप से विदेशीपन को कायम रखा। 15 अगस्त, 1947 के पूर्व जिन विदेशीपन का बहिष्कार किया गया था, उन्हें ही 15 अगस्त, 1947 के बाद आयत्त करने में होड़ लग गयी और वे ही वस्तुएँ हमारे तथाकथित आभिजात्य की निशानी बन गयीं। इसके विपरीत स्वदेशीपन ढोंगी, रूढ़िवादी, परम्परावादी, पिछड़ापन, गँवारपन का अभिलक्षण बन गया। *'निज भाषा उन्नति अहै'* के स्थान पर *"निज भाषा अवनति भी है"* को प्रचारित-प्रसारित कर जन-जन तक पहुँचाया गया। सत्ता हस्तान्तरण का इससे बड़ा प्रमाण क्या होगा? विदेशियों ने हमारे देश को विभक्त किया। तत् स्थानापन्न स्वदेशियों ने हमें धर्म, जाति, अगली, पिछड़ी जाति, क्षेत्रवाद आदि विभिन्न रूपों में विभक्त कर हमें अन्दर से शक्तिहीन बना दिया और अपनी बात को मजबूती से किसी के समक्ष स्थापित करने लायक नहीं छोड़ा। विदेशी भाषा और विदेशी वस्तुओं को अकूत संग्रह कर वे समाज में सम्पूज्य बन गये, साथ ही विदेशी भाषा की दिन-प्रतिदिन अभिवृद्धि कर भारतीय भाषाओं का अवमूल्यन कर हमारे ऊपर कुशासन का तन्त्र चला रहे थे, जो आजतक बरकरार है। हाँ, सोलहवीं लोकसभा के गठन से जनता ने परिवर्तन की अजस्र आशा की है अवश्य, जिसका प्रतिफल भविष्य पर निर्भर है। जिस देश की सर्वोच्च न्यायपालिका स्वदेशी भाषा में काम करना अपनी गरिमा के विरुद्ध मानती है, उस देश की भाषा का अवमूल्यन कितना हो गया है—यह केवल महसूस करने की बात है। यह सत्य है कि यही विदेशीपन की अबोधित गहरी मनोवृत्ति हमारी भाषा तथा वर्तनी को दूषित कर रही है। विदेशीपन या विदेशियों का वर्चस्व तथा कथित आभिजात्य वर्ग पर है, जो विधायिका और कार्यपालिका पर अपना नियंत्रण मजबूती से रखता है।

गौर करने की बात है कि विदेशी आक्रमणकारियों ने हर तरह से तो लूटा ही, साथ ही हमारी भाषा को भी अपदस्थ कर दिया और उसने अपनी भाषा को रोजगार से जोड़कर अर्थकारी बनाया साथ ही, उसके पठन-पाठन तथा प्रचार-प्रसार पर पूरा ध्यान दिया। इसके साथ ही यह सिद्ध कर दिया कि भारतीय साहित्य कपोल-कल्पित, निरर्थक और दकियानूसी से ओत-प्रोत है। भारतीय भाषा के माध्यम से भारत विकसित जैसा स्वादिष्ट फल प्राप्त नहीं कर सकता है। हमारी प्राचीन अकूत निधि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जिससे विश्व घबड़ाता था, विदेशियों ने उसके अध्ययन-अध्यापन पर प्रतिबन्ध लगाकर कालान्तर में उसे कूड़ा-करकट, अलूल-जलूल, कपोल-कल्पित, वायवीय सिद्ध कर दिया और उसके समस्त विकास के मार्ग को अवरुद्ध कर दिया। हम गुलामी की बेड़ी से इस तरह जकड़ गये थे कि उनके कहने पर अपने भाई की हत्या करते थे, फिर भाषा के सम्बन्ध में सोचने की बुद्धि किसके पास रह गयी थी। सत्ता हस्तान्तरण के बाद हमने अपनी प्राचीन अकूत निधि को पहचानने की अल्पमात्र भी चेष्टा नहीं की। विदेशियों की राह पर ही चलते आ रहे हैं।

विश्व में औद्योगिक क्रान्ति आयी। जिन देशों ने उसे स्वदेशी भाषा में ग्रहण किया, वे विकसित होकर महाशक्ति और शक्ति-सम्पन्न देश बने हुए हैं और जिन देशों ने उसे विदेशी भाषा में ग्रहण करने का असफल प्रयास किया वे आज भी विकासशील के अति कमजोर रज्जु से लटके हुए हैं। उनको विश्व में वह सम्प्रीति पूर्ण सम्मान नहीं प्राप्त है, जो विकसित देशों को प्राप्त है। स्वदेशी भाषा में चीन, रूस, जापान, जर्मनी, फ्रान्स आदि देश ग्रहण करनेवाले हैं और विदेशी भाषा के पिछलग्गू भारत, पाकिस्तान आदि देश। यह सामान्य नियम है कि जिस देश के नागरिक दूसरे देश के पीछे रहते हैं, वह देश न तो विकसित हो सकता है और न उस देश के नागरिक निजस्व को पहचान पाते हैं। ऐसी स्थिति में स्व भाषा की उन्नति ही सबके विकास का मूल तत्त्व है–इसी सन्दर्भ में *"निज भाषा उन्नति अहै"* कहा गया।

हम स्वीकार कर चुके हैं कि हमारी हिन्दी वर्तनी को अंग्रेजी के परिप्रेक्ष्य में देखा जाता है। यह कितना हास्यास्पद अननुमेय है। कोई भी व्यक्ति *राष्ट्र, पात्र, पुत्र को राष्ट्रा, पात्रा, पुत्रा* नहीं कहता, किन्तु जब वह किसी सामासिक पद का अन्तिम खण्ड होता है, तब लोग *राष्ट्रा, पात्रा,* जैसा उच्चारण तथा कभी लिखते भी हैं। यथा, *महाराष्ट्रा, महापात्रा, ब्रह्मपुत्रा–पाटलीपुत्रा* इत्यादि। इस प्रकार की मदहोशी से वर्तनी का कभी कल्याण नहीं होता है। प्रयोक्ता का तर्क है कि अन्त में रोमन लिपि का एकार आता है, इसके कारण आकारान्त का लेखन-उच्चारण होता है। उक्त तर्क कितना निर्बल और निराधार है, हर भारतीय यह जानता है, क्योंकि *'मन'*, *'मान'* और *'मैन'* को रोमन लिपि में लिखने पर सर्वत्र एकार ही आता है, उसका उच्चारण आवश्यकतानुसार बदलता जाता है। ऐसी स्थिति में रोमन के *एकार* के कारण अन्त में आकार नहीं आता, बल्कि असावधानता के कारण आता है। जब हम भाषा-प्रयोग के समय सावधान नहीं होंगे, तब कब होंगे, क्योंकि भाषा/शब्द हमारी संस्कृति के संवाहक हैं। यदि वही बिगड़ गया, तो संस्कृति भी बिगड़ जायेगी। यही कारण है कि मैंने अन्यत्र कथन-लेखन के द्वारा प्रतिपादित किया है कि *'अन्तर्राष्ट्रीय'* लिखना भारतीय संस्कृति के विरुद्ध हैं, क्योंकि भारतीय स्वजाति (मानव-मानव जाति) के सिर पर नहीं बैठती है, किन्तु उक्त शब्द में रेफ अपने सवर्णी रकार के सिर पर बैठा है। अतः अन्तरराष्ट्रीय लिखा जाना ही साधु प्रयोग है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अनुस्वार–चन्द्रबिन्दु के प्रयोग की अराजकता फैलाना *प्रिण्ट मीडिया* का प्रमुख लक्ष्य हो गया है। कम्प्यूटर की दुहाई की आड़ में यह किया जाता है। जिस प्रकार ईश्वर की आड़ में भ्रष्ट कार्य किये जाते हैं, क्योंकि हर भ्रष्टाचारी किसी-न-किसी देवी-देवता का पूजन अवश्य करता है, उसी प्रकार चन्द्रबिन्दु लुप्त करनेवाले भीषण विद्वान कम्प्यूटर की दुहाई देते हैं, जो सर्वथा लचर और आधारहीन तर्क है। मैं चन्द्रबिन्दु का प्रयोग हिन्दी वर्तनी में नहीं करनेवालों से पूछना चाहता हूँ कि क्या भारत की समस्त भाषाओं में चन्द्रबिन्दु लिखना बन्द कर दिया गया है। इसका उत्तर निषेधात्मक ही होगा। ऐसी स्थिति में केवल हिन्दी/देवनागरी में चन्द्रबिन्दु का प्रयोग क्यों बन्द कर दिया जाय?

वस्तुतः जो शब्द तत्सम है, उनमें चन्द्रबिन्दु का प्रयोग नहीं होगा। केवल तद्भव शब्दों में ही चन्द्रबिन्दु का प्रयोग किया जाता है। चन्द्रबिन्दु का उच्चारण तो अनुस्वार से भिन्न है ही, साथ ही, उसके कारण अर्थभेद भी होता है। यथा–*हंस-हँस। 'हँसना'* हमारी मनोवैज्ञानिक प्रवृत्ति का परिचायक है। यदि चन्द्रबिन्दु का लेखन बन्द कर दिया जाता है, तो कालान्तर में हमारे शब्दकोश से उक्त क्रिया का अभाव हो जायेगा। जिससे आनेवाली पीढ़ी प्रभावित होगी। हम जो भी कार्य करते हैं, जो धन संचय करते हैं या जो भाषागत नियम निर्धारण करते हैं, वह आनेवाली पीढ़ी की अमूल्य धरोहर होती है। अतः किसी भी क्षेत्र में *अंधा कानून* नहीं बनाना चाहिए। चन्द्र बिन्दु लेखन नहीं करना–*अन्धा कानून* के बराबर है। हाँ, यह सत्य है कि 'नहीं', 'में', 'हैं' जैसे स्थलों में चन्द्रबिन्दु का प्रयोग होना चाहिए था, पर उक्त शब्दों में चन्द्रबिन्दु के स्थान पर अनुस्वार का प्रयोग किया गया है। जब उक्त शब्द चन्द्रबिन्दु विहीन स्वीकार्य हैं, तब अन्य शब्द क्यों नहीं, यानी चन्द्रबिन्दु का प्रयोग की आवश्यकता स्वतः निरस्त हो जाती है। पूर्वोक्त तर्क सार्वदेशिक तथा सार्वकालिक नहीं हो सकता। यहाँ यह मत स्वीकार करना चाहिए कि जिन तद्भव शब्दों के ऊपर मात्रा नहीं रहती है, उनके साथ चन्दुबिन्दु का प्रयोग होना चाहिए। यथा, पाँच, साँप, गाँव, आऊँ, सोऊँ इत्यादि। इसके विपरीत जिन शब्दों के सिर पर मात्रा का प्रयोग होता है, उनके साथ सुगमता की दृष्टि से अनुस्वार का प्रयोग होना चाहिए। इससे तद्भव शब्दों में अनुस्वार-चन्द्रबिन्दु प्रयोग की समस्या का समाधान हो जाता है।

स्वीकार किया गया है कि, *"सम्भावनार्थक रूपों में गा-गी-गे जोड़कर भविष्यत के रूप बनाने की प्रक्रिया हमारा आविष्कृत गुर नहीं है, अपितु भाषा-वैज्ञानिक तथ्य हैं।* (चिन्तन-सृजन, वर्ष–11, अंक 3, पृ. 119 से उदधृत) उक्त नियम-निर्धारण को डॉ. धीरेन्द्र वर्मा से लेकर प्रायः सभी भाषा वैज्ञानिकों ने स्वीकार किया है। इससे विचलित होने का बहुत बड़ा कारण परिलक्षित नहीं होता, पर एक निवेदन है :–भविष्यत् काल साधु रूप है, *चलेगा, पढ़ेगा, लिखेगा, हँसेगा* इत्यादि। इन सिद्ध रूपों को यदि विभाजित किया जायेगा, तो *चल + एगा, पढ़ + एगा, लिख + एगा, हँस + एगा* प्राप्त

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

होंगे। ऐसी अवस्था में यदि *एगा, एँगे, ओगे, ऊँगा* को भविष्यत् काल का प्रत्यय मान लिया जाय, तो सुगमता-सरलता की दृष्टि से अधिक सुकर होगा, तथा समझाने-बुझाने में भी अधिक सुगम होगा। यदि विद्वत्मण्डली को उक्त सुझाव मान्य होगा, तो ग्राह्य होगा अन्यथा त्याज्य तो है ही।

पं. किशोरीदास वाजपेयी ने अपने *शब्दानुशासन* नामक ग्रन्थ में *पढ़े गा, लिखे गा* जैसी वर्तनी की वकालत की है, मैं इसे अनावश्यक मानता हूँ और पढ़ेगा, लिखेगा ही सर्वमान्य है और रहना भी चाहिए।

कारकीय विभक्तियों के लेखन की समस्या का समाधान यह है कि संज्ञा के साथ उक्त विभक्तियों को अलग लिखा जाना उचित होगा और सर्वनाम रूपों के साथ मिलाकर। यथा, हरि ने, हरि को, हरि से तथा उसने, इसने, उससे, उसकी, उसका इत्यादि।

चाहिए-चाहिये, चाहिएँ पर भी थोड़ा विचार कर लेना असंगत नहीं होगा। वस्तुतः इनका प्रयोग अपेक्षा, आवश्यकता, के अर्थ में किया जाता है। स्वीकार किया गया है—"*चाहिए का प्रयोग(अपेक्षा, आवश्यकता, औचित्य के अर्थ में) क्रिया के स्थान पर होता है—और यह है भी क्रिया ही, किन्तु आधुनिक हिन्दी में इसका रूप एक अव्यय का हो गया है : सभी पुरुषों, वचनों में चाहिए ही बोला और लिखा जाता है।*** किन्तु कुछ लोग अपेक्षित वस्तु अथवा कार्य को बहुवचन बनाकर चाहिएँ लिखते हैं—मुझे दो कपड़े चाहिएँ, उन्हें ऐसी बातें नहीं करनी चाहिएँ। *** रूप की दृष्टि से चाहिए अव्यय बन चुका है। उक्त विचार से* वैमत्य होने का कोई प्रश्न नहीं है।" (वहीं) यही कारण है कि 'चाहिए' सिद्ध रूप पर पुरुष, वचन और लिंग का प्रभाव नहीं पड़ता है। उसका स्वरूप अपरिवर्तित रहता है।

एक शब्द का लेखन क्यों? हिन्दी की वाक्य-रचना में *'एक'* के प्रयोग का उल्लेख कहीं भी नहीं किया गया है, फिर अंग्रेजी वाक्य-रचना के आधार पर हिन्दी में *'एक'* शब्द का प्रयोग असावधानी के कारण होने लगा और आज वह वाक्य का आवश्यक धर्म बन गया है। यथा, *इसका रूप एक अव्यय हो गया है* (चिन्तन-सृजन वर्ष—11, अंक-3, पृ. 120) उक्त उदाहृत वाक्य में *'एक'* शब्द अव्यय का विशेषण बनकर आया है, जिसका अर्थ है— *एकत्व बोध* को सम्पुष्ट करना, जो काम क्रिया से हो रहा है। ऐसी अवस्था में *'एक'* का प्रयोग निरर्थक है। इसी वजन पर Ram is a good boy का भारतीय भाषाओं में अनुवाद होता है—हिन्दी : *राम एक अच्छा लड़का है।*, असमिया : *राम ए जन भाल ल'रा।* बाङ्ला : *राम एकटि भालो छेले।* संस्कृतः—(आधु.) : *रामः एकः सुष्ठु बालकः अस्ति।* हमने देखा कि अंग्रेजी का एकार का *एक* अनुवाद भारतीय भाषाओं में निःसंकोच रूप से किया जाता है। वस्तुतः अंग्रेजी व्याकरण के अनुसार, *a, an* और *the* आर्टिकिल हैं, जो वाक्य में आवश्यक रूप से प्रयुक्त होते हैं, किन्तु भारतीय भाषाएँ उक्त नियम से पूर्णतः मुक्त हैं, फिर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उक्त शब्दों में से 'ए' प्रयोग क्यों? यह विचारणीय है। वस्तुतः 'एक' वाक्य का अनावश्यक अधिक पद है, जिसका लेखन पूर्णतः त्याज्य होना चाहिए। पुस्तकों के शीर्षक दिये जाते हैं :— *गोदान : एक अध्ययन/एक विश्लेषण/एक विवेचनात्मक अध्ययन* इत्यादि। इन समस्त उपवाक्यों में : 'एक' शब्द अनावश्यक तथा निरर्थक है। अतः ऐसे प्रयोग से न केवल हिन्दी को बल्कि सम्पूर्ण भारतीय भाषाओं को बचना चाहिए। इससे भाषा में चुस्ती आयेगी।

आदरवाचक क्रिया नित्य रूप से बहुवचन होती है। यथा, *आप कल जायेंगे*। अतः क्रिया के आधार पर कर्ता भी बहुवचन होगा। गुरु जी आये हैं, वे आप से मिलना चाहते हैं, जैसा वाक्य साधु है। कोई-कोई *वे* के स्थान पर *वह* का प्रयोग करता है, जो असाधु प्रयोग माना जायेगा।

आकारान्त आदि संज्ञाओं के बहुवचन में *'एँ'* प्रत्यय आता है। उनके साथ *यकार* प्रयोग वर्जित है। यथा *रचनाएँ, बालिकाएँ, सूचनाएँ, समस्याएँ, गौएँ, बहुएँ* इत्यादि इनके स्थान पर कुछ लोग *रचनायें, बालिकायें, सूचनायें, समस्यायें, गौयें/गौवें, बहुयें* जैसी वर्तनी का प्रयोग करते हैं, जो सर्वथा त्याज्य है। हाँ, इकारान्त स्त्रीलिंग शब्द से बहुवचन प्रत्यय *'आँ'* जब आता है, तब संस्कृत के आधार *इयङ्* यानी *यकार* का आगम हो जाता है, जिसके कारण *लड़की + आँ = लड़कियाँ, बच्ची + आँ = बच्चियाँ* इत्यादि। संस्कृत में उकारान्त शब्दों से विभक्ति/प्रत्यय आने पर *उवङ्* यानी *वकार* का आगम होता था अवश्य, किन्तु हिन्दी ने अपने सरलीकरण के स्वभाव के कारण *वकार* के आगम को त्याग दिया। अतः *बहुवें* नहीं *बहुएँ* ही शुद्ध रूप है।

सादृश्यवाचक *'सा'* शब्द के प्रयोग की समस्या है अवश्य, पर इसके लेखन में भी आज ननु-नच नहीं रह गया है। संज्ञा के साथ सम्बन्ध-बोध कराने के लिए दोनों के मध्य योजक चिह्न देना चाहिए। यथा *कमल-सा नयन, चूहा-सा शरीर* इत्यादि। यदि कोई योजन चिह्न हटाकर लिखने की वकालत करेगा, तो अर्थवत्ता दुरूह हो जायेगी। यथा, कमलसा, चन्द्रमासा इत्यादि को कोई कम लसा/चन्द्र मासा भी पढ़ सकता है। इसी द्विधाभाव को समाप्त करने का लिए ही सादृश्यवाचक *'सा'* का प्रयोग योजन चिह्न के साथ ही करना चाहिए।

श्री का प्रयोग संज्ञा के साथ लिखने की प्रथा दुरूह है, क्योंकि यदि किसी के मूलनाम में *श्री* है, तो *श्रीश्री* का प्रयोग करना पड़ेगा, जो सुनने-लिखने-बोलने में भद्दा लगेगा। यथा, *श्रीनिवास* के साथ *श्री* लगाने पर *श्रीश्रीनिवास* रूप होगा, जो भद्देपन का परिचायक है। अतः दोनों को अलग-अलग लिखना श्रेयस्कर होगा। *श्री श्रीनिवास*।

जी का प्रयोग कब किया जाय। कुछ लोगों का विचार है कि जब संज्ञा पूर्व *श्री* शब्द का प्रयोग होता है, तब संज्ञा के बाद *जी* शब्द का प्रयोग नहीं किया जाय, क्योंकि श्री और जी का एक साथ प्रयोग अच्छा नहीं लगता है। अतः दोनों आदरवाचक शब्दों में से किसी एक का ही प्रयोग होना चाहिए, पर आज उक्त मान्यता खण्डित हो गयी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है और प्रचलन में दोनों आदरवाचक शब्दों का प्रयोग होता है। यथा, *श्री हरिनाराय* *जी* आये हैं इत्यादि। अब दूसरा प्रश्न है कि कैसे लिखा जाय? संज्ञा से अलग या उसं मिलाकर। मेरा मन्तव्य है कि *'जी'* संज्ञा से हटाकर ही लिखा जाना चाहिए। श्र *हरिनारायण जी*—इसी रूप में लिखने पर अधिक सुकर और सुगम होगा।

ड/ढ ध्वनियाँ संस्कृत लेखन में व्यवहृत होती हैं, हिन्दी में ये ध्वनियाँ *ड़/ढ़* ह गयी हैं। संस्कृत शब्द भी जब हिन्दी में लिखे-बोले जाते हैं, तब *ड़/ढ़* के रूप में ही यथा *पीडा > पीड़ा, क्रीडा > क्रीड़ा, सुदृढ > सुदृढ़* इत्यादि। अतः हिन्दी में इ ध्वनियों के लेखन में किसी प्रकार की कठिनाई नहीं है। हिन्दी में सर्वत्र *गूढ़, रूढ़, मूढ़ प्रौढ़, पीड़ा, क्रीड़ा, ताड़ने, ताड़ित आदि* शब्दों का निर्बाध रूप से प्रयोग होता है।

अस्तु हिन्दी अस्मिता को अक्षुण्ण रखने के लिए 1950 के *कल्पना* के अंक मे जो प्रश्न उठाये गये थे, वे आज भी सजीव हैं और उसी आलोक में मैंने अपने सुझाव सबके सामने रखे हैं। मुझे पूरा विश्वास है कि *कल्पना* (अगस्त-अंक्टूबर, 1950) मे जो वर्तनी विषयक बहस उपस्थापित की गयी थी, उसे *चिन्तन-सृजन* परिणाम तक पहुँचायेगा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ललित निबंध

'काल' : एक सत्य, एक अनुभव

श्रीराम परिहार*

समय शाश्वत है। यह सृष्टि समय की अनंतता में ही बहती-मिटती रहती है। भारतीय मनीषा ने समय को चक्रीय अनुभव किया। एक पहिए की तरह है समय। उसका आदि-अन्त नहीं है। वह अनंत है। वह निरंतर है। सब उसी में उत्पन्न होते हैं। उसी में समाहित होते हैं। वह सबसे बलवान है। उससे अधिक बलवान महाकाल के अतिरिक्त कोई नहीं है। वह अपने में उत्पन्न जीवों और तत्त्वों को बलवान बनाता है। उनको बलहीन भी करता है। अर्जुन की धनुष्टंकार से दिशाओं में कंपन उत्पन्न होने लगता था। वही अर्जुन भीलों द्वारा लूटे गए। न अपने परिजनों की रक्षा कर पाए, न ही स्वयं की। इसलिए कहा है—'पुरुष बली नहीं होत है, समय होत बलवान। भिल्लनी लूटी गोपिका, वही अर्जुन वही बान।'

समय को 'काल' कहा गया है। 'क' व्यंजन समूह का प्रथम अक्षर है। 'क' का उच्चारण कंठ से होता है। इसे स्पर्श वर्ण भी कहते हैं। 'क' तत्त्व या भाव का सूचक है। अतः सृष्टि में यह पहला तत्त्व है। अर्थात् काल सृष्टि में पहला तत्त्व है। देवनागरी वर्णमाला का दूसरा व्यंजन 'ख' है। 'ख' आकाश का या खगोल का सूचक है। यह सृष्टि का दूसरा तत्त्व है। अतः काल पहला तत्त्व है और आकाश अर्थात् दिक् दूसरा तत्त्व है। दिक् की उत्पत्ति काल से होती है। दिक् काल से ही उत्पन्न होकर उसी में लय हो जाता है। दिक् के तिरोभाव की दशा में भी काल बना रहता है। वह समाप्त नहीं होता। इसीलिए काल के स्वरूप को ईश्वरत्व से भी जोड़कर व्याख्यायित किया जाता है। वह ईश्वर तुल्य है। सर्व भूतों का नियंत्रक और परिचालक है। वह महाकाल बनकर सर्वभूतहितरत प्रवहमान है। काल अखण्ड है। सतत है। रहस्य है। अमित है। अपरिमित है। अदृश्य है। वह ईश्वर की तरह अनुभव ही किया जा सकता है। ईश्वरीय अनुभव आत्मा का या ज्ञान का क्षेत्र हो सकता है। काल का अनुभव हम

*आज़ाद नगर, खण्डवा 450001

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परिवर्तन की प्रक्रिया और गतिशीलता से ही पा सकते हैं। उसका बोध बुद्धि का क्षे हो सकता है।

'काल' का उद्भव परम सत्ता की इच्छा का परिणाम है। सृष्टि-विधान के त में परमचिति का जो लीलामय उद्रेक है, वह निरंतर स्पंदित है। सुसुप्ति के बाद जागर की स्थिति में परमप्रकृति का लीलाभाव सृष्टि के पुनर्कल्प में अभिव्यक्त हुआ है। अत संपूर्ण सृष्टि विभु की इच्छा और क्रिया का परिणाम है। जगत की त्रिआयामी संरचन में इच्छा जहाँ समय या 'काल' का प्रतीक है, वहीं क्रिया 'दिक्' का प्रतीक है। इन् दोनों के मध्य संज्ञान या 'ऊर्जा' (शक्ति) सृष्टि जीवन में लीलामय आनन्द-स्वरू अभिव्यक्त हो रही है। ये तीन आयाम ही समय, स्थान और ऊर्जा (Time, Spac and Enrgy) वैज्ञानिक चिंतन के आधार भी हैं। 'काल' इस तरह महाकाल की इच्छ का स्पंदित स्वरूप है, जो दिक् की रचना करता है। काल की स्थिति या उसर्क अमापी-परिमिति का आभास सृष्टि स्थित वस्तु की परिवर्तनशीलता और जीवों क गतिशीलता से ही होता है। इसलिए कि काल अदृश्य है। स्पर्श से बाहर है। वह वस् की गति की सापेक्षता में ही जाना जा सकता है। लेकिन अद्भुत बात यह है कि सृष् की स्पंदनशीलता काल की परिधि के भीतर ही है। सृष्टि के नाश के बाद भी का बचा रहता है। काल, महाकाल में स्थित होकर 'शून्य' दशा में रूपांतरित हो जाता है जहाँ सब कुछ मौन होता है। स्पंदनशील होता है। विराट शांत होता है। सघन चु होता है। अपने परम संज्ञान में गहरे प्रशांत और अचल होता है।

यह सृष्टि बहुत सुंदर है। इसमें आदमी सबसे सुंदर है। व्यक्ति का सुंदर हो उसके ज्ञान से, उसके बोध से, उसके शेष सृष्टि से जुड़ाव से, उसकी दृष्टि से त उसके आत्म-विस्तार से संबंधित है। शरीर-सौंदर्य या चाम-सुंदरता को इस देश ने क आवश्यकता से अधिक महत्त्व नहीं दिया। यह अष्टावक्रों का देश है। ऋषियों, मुनि मनीषियों का देश है। यह व्यक्ति की सर्वोच्चता शेष सृष्टि के अनुपात में ही सि करता है। व्यक्ति है, क्योंकि तृण है, धरती है, आकाश है, हवा है, चिनगारी है व्यक्ति के भीतर भी चिनगारी है। आकाश में टिमटिमाते असंख्य नक्षत्र हैं। नीलाका की अनंतता और रहस्यता भारतीय चिंतन को आमन्त्रित करती रही है। वह नी रहस्यों को खोलने की चुनौती को स्वीकार कर मेघों के पार जाने की कोशिश कर रही है। सँवलाए और आग-पानी का उत्स स्वयं में समेटे मेघों में चमकती बिजुली औ टापुर-टुपुर टपकती बूँदों के रिश्ते को धरती-आकाश के प्रसंगों में खोजने की अनुचेष् करती रही है।

इस सृष्टि में सूर्य अद्भुत संरचना है। वह एक अधिक चमकता तारा है ज्योति-पुंज है। प्रकाश का झरना है। नक्षत्र देव है। पृथ्वी का रक्षक है। जन्मदाता भी वह है तो दुनिया के सारे रंग हैं। दुनिया उससे रोशन है। वह है इसलिए ही जीव सृ वर्तमान स्वरूप में है। वह नहीं होता तो इस रंगमय दुनिया का क्या रंग होता, कौ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कह सकता है? लेकिन समय ने अपने काल-विस्तार में ही सूर्य को भी पैदा होते देखा और पृथ्वी सहित अन्य ग्रहों को भी अपनी-अपनी किलकारियों के साथ सुना और आनन्द पाया। आनन्द भारतीय दृष्टि के मूल में है। यह सृष्टि महाचिति की सजग चेष्टा का आनन्द-फल है। मनुष्य-जीवन पाप का परिणाम नहीं; जन्मजन्मांतरों के संचित फल का रसमय आकार है। जीवन सौभाग्य है, सुंदर है, अलभ्य है, आनन्द से उत्पन्न आनन्द फल है, लीलामय आनन्द का मूल स्रोत परमचिति है, परम सत्ता है, जिसे हम ईश्वर कहें, भगवान कहें, स्रष्ट्रा कहें, चिदानन्द कहें, आनन्दघन कहें या परमप्रकृति कहें। चाहें जो नाम दें। अनादि चेतना का विस्तार ही यह जगत है, ऐसा भारतीय चिंतन ने अपनी अन्तर्दृष्टि से जाना।

मनुष्य ने आँख खोली, तो उसने देखा कि वह अनुपम सौंदर्यमय निःसर्ग की गोद में है। उसने महसूसा कि प्रकृति उसे हलरा रही है। मनुष्य में जन्मजात कुछ गुण होते हैं, जो उसका निजत्व से सर्व की ओर विस्तार करते हैं। मनुष्य में जन्मजात प्रतिभा होती है, जिससे वह स्वयं को जानते हुए अपने आस-पास और फिर सबको ठीक-ठीक जानने की सहज जिज्ञासा और क्रिया करता है। भरतभूमि के मनुष्य ने स्वयं और निःसर्ग को सृष्टि के अखण्ड रिश्तों में खोजा और पाया। 'अनंत रमणीय' को जानने और स्वयं को पहचानने की विकल रागिनी पार्श्व-संगीत की तरह उसकी हृत्तंत्री में बजती रही है। इस अनंत-अनंत ब्रह्माण्ड में स्थित दिक् में जो गतिमान है, उसे भी जानने, पहचानने, पकड़ने और मापने का अनुष्ठान रचता रहा है। यह मनुष्य का पुरुषार्थ है कि उसने आकाश की नीलिमा में चमकते ग्रहों-नक्षत्रों से लेकर पृथ्वी और पृथ्वीगर्भ के अद्‌भुतों की चमक से साक्षात्कार किया और पाया कि स्वयं श्रेष्ठ होते हुए भी सृष्टि में वह ही सब कुछ नहीं। उसकी श्रेष्ठता दूसरों के होने से है। उसका अस्तित्व दूसरों के अस्तित्व से है। इसलिए कह सकते हैं कि भारतीय अवधारणा में यह सदा से अमान्य किया जाता रहा है कि जो शक्तिशाली है वह ही जिन्दा रहता है, अशक्त जीवित नहीं रहता। यह धारणा भारतीय जमीन पर अस्वीकार्य रही है। यहाँ बूँद से समुद्र, तृण से वृक्ष, चींटी से हाथी, राई से पर्वत, लघु से विराट का अटूट और अखण्ड संबंध अनुभव किया गया है। सिंह जंगल का राजा होगा, परंतु उसका होना अन्य वन्यप्राणियों के होने से ही है। इसलिए सृष्टि में महत्त्वहीन कोई नहीं और कुछ नहीं है।

सबका होना उनकी क्रियाशीलता में ही प्रमाणित होता है। क्रियाशीलता समय के भीतर ही सम्पन्न हो रही है। अनंत क्षणों से यह घटित हो रही है, जिससे जगत परिभाषा पाता है। मनुष्य ने अपनी प्रज्ञा से सूर्य-चंद्र में इसी क्रियमाणता के स्रोत अनुभव किए। सूर्य का उगना-डूबना निःसर्ग की महज एक सहज प्रक्रिया होते भी वह पृथ्वी-अन्तरिक्ष में अनेक स्थितियों और परिवर्तनों को जन्म देती है। समय की अखण्डता को सम्मानित रखते हुए प्रज्ञा-पुरुष ने समय को लघु-से-लघुतम में देखने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और छूने का महनीय प्रयास किया। मनुष्य की पलकें उठती हैं तो अनंत रमणीय जगत अपनी परिवर्तनशीलता की सहज-बान में नित नवीन दिखाई देता है। पलकें गिरती हैं तो भीतर आत्म-स्वरूप अपने निखालिश ढंग में सामने होता है। मनुष्य ने पाया कि आँखों का खुलना और बन्द होना बड़ा चामत्कारिक और रहस्योद्घाटक है। पलकों का खुलकर बन्द होना मनुष्य की मनीषा के चिंतन में काल की सबसे छोटी इकाई बनकर उभर आया। ध्यान रहे यह अतिसाधारण किंतु अपने प्रभाव और क्रिया-कारण में अति असाधारण घटना है, यह मनुष्य से सम्पृक्त है, यंत्र सम्पृक्त नहीं। घड़ी-घंटाला की खोजें तो विज्ञान के अतिवाद की उपज हैं। भारतीय चिंतन में काल की अवधारणा की मापक सरणियाँ मुनष्य से ही फ़ूटती हैं।

पलकों पर पलकें झपकती रहीं। पलकों का गिरकर फिर उठना निमिष कहलाया 18 निमिष हुए तो एक काष्ठा बन गयी। 30 काष्ठा से एक कला की अवधारणा की गयी। 60 कलाएँ मिलकर एक अंश के बराबर हुईं। 30 अंश से एक राशि बनी या एक राशि में 30 अंश होते हैं। 12 राशियों से एक वर्ष का चक्र पूरा होता है। एक वर्ष में 365 दिन होते हैं। सूर्य सिद्धांत में एक वर्ष 365. 258756484 दिनों का माना जाता है। 8 प्रहर मिलकर एक दिन-रात का विस्तार हुआ। 30 दिन का मास बना। 12 मासों का एक वर्ष हुआ। एक वर्ष ब्रह्मा का एक दिन होता है। यह ही संवत्सर कहा गया। चार युगों की अवधारणा मूर्त्त हुई। सूर्य को केंद्र मानकर जो समय का मापक निर्धारित हुआ उसमें इन युगों की परिकल्पना भारतीय चिंतन की अनुपम खोज है। काल गणना की जो लघुतम और विशालतम अवधारणाएँ भारतीय जमीन ने कीं, वे विश्व में अन्यतम हैं। कलियुग, द्वापर, त्रेता एवं सतयुग चार युगों में 'काल' की अखण्डता को विस्तार दिया गया। कलियुग की अवधि 4,32,000 सौर वर्षों की है। द्वापर का फैलाव 8,64,000 वर्षों में होता है। त्रेता में 12,96,000 वर्ष अपनी धड़कनों के साथ गतिमान होते हैं। सतयुग की सात्त्विकता 17,28,000 वर्षों में तरंगायित होती है। चारों को मिलाकर एक महायुग होता है, जिसमें 43,20,000 सौर वर्ष होते हैं। 1000 महायुगों (चतुर्युगों) की पूर्णता होने पर एक कल्प विस्तार पाता है। तुलसी कहते हैं—'कल्प-कल्प लगि प्रभु अवतरेहुँ।' स्पष्ट है कि यह चक्र निरंतर चलता रहता है। निमिष, प्रहर, दिन, रात सप्ताह, मास, वर्ष, युग, महायुग, कल्प बीतते रहते हैं और समय का चक्र चलता रहता है। निरंतर, अबाध, अनवरत,। वर्तमान में सातवाँ वैवस्वत मन्वंतर एवं श्वेतवाराह कल्प चल रहा है। सनतानधर्मी के मुख से प्रत्येक शुभ कार्य के आरंभ में संकल्प स्फुरित होता है—

ॐ तत्सदद्य ब्रह्मणे द्वितीयपरार्धे, श्री श्वेतवाराहकल्पे;
जम्बूद्वीपे भरतखण्डे आर्यावर्तैकदेशांतर्गते कुमारिकानाम क्षेत्रे
वैवस्वत्तमन्वतन्रे अष्टाविंशतितमे कलियुगे कलि प्रथम चरणे...।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भारतीय वाङ्मय में वेद प्राचीनतम हैं। ऋग्वेद में 'काल' का बोध वर्तमान से ही है। जो निरंतर वर्तन करता है वह वर्तमान है। अतः इस अर्थ में भूत और भविष्य भी प्रकारांतर से वर्तमान में स्थित होते हैं। भूत स्मृतियों के माध्यम से वर्तमान में स्थित हो जाता है और भविष्य आशाओं-आकांक्षाओं में झिलमिलाता हुआ आकर वर्तमान में बैठ जाता है। इसलिए भारतीय काल की अवधारणा में बीता हुआ भी कभी रीतता नहीं और संभावित कभी पहुँच के पार नहीं होता है। इसी व्यापक बोध के कारण अनुभव किया गया कि कोई क्रिया, परिवर्तन या रूपांतरण काल के भीतर ही संभव है। किसी वस्तु या घटना में गति का क्रम ही परिवर्तन है। अथर्ववेद में काल को 'घोड़े' के स्वरूप में चित्रित किया गया है, जिसके मुँह में सात लगाम हैं। ऋग्वेद में 'काल' के चार चक्र व हजार आँखोंवाला निरूपित किया गया है। प्रत्येक चक्र में बाहर आरा हैं। वैदिक ऋषि यज्ञ करता था। ऋग्वेद के पुरुष सूक्त में काल को यज्ञ के विभिन्न उपादानों से जोड़ा गया है। ऋषि की दृष्टि ने संपूर्ण सृष्टि में यज्ञ की संपन्नता अनुभव करते हुए पाया कि वर्षा घी है। ग्रीष्म ज्वलित लकड़ी के समान है। शिशिर ब्राह्मण को दी जानेवाली दक्षिणा है। ऋग्वेद में द्युलोक स्थित काल-चक्र में बारह अविनाशी आरा हैं। ये बारह आरा बाहर राशि या बारह महीनों के संकेतक हैं।

भारतीय ज्ञानात्मक संवेदना की अनुपम उपलब्धि है—नक्षत्र विज्ञान की खोज। नक्षत्र विज्ञान से ही जुड़ा है...ज्योतिषशास्त्र। यदि ज्ञानात्मक संवदेना नहीं होती तो मानव और सृष्टि की क्रियाशीलता के आधार के रूप में नक्षत्रों की स्थिति को नहीं देखा जाता। विज्ञान भी सौर मंडल के ग्रहों-उपग्रहों को जानने की जिज्ञासा में लगा है, लेकिन वह उन्हें एक वस्तु या सृष्टि का उपकरण मानकर उनका अध्ययन कर रहा है। भारतीय चिंतन में सूर्य को काल से सम्पृक्त कर उसके परिमण्डल से समस्त सृष्टि की गतिशीलता को प्रभावित पाया गया है। यह विशेष और असधारण तथ्य है। सृष्टि में पृथ्वी और आकाश की स्थिति प्रकृति और पुरुष, जननी और जनक की मानी गयी है। आकाश में ग्रह-नक्षत्रों की स्थिति का पृथ्वी के जीवों की क्रियाओं पर प्रभाव पड़ता है। नक्षत्र मंडल में सूर्य और चंद्र तो प्रमुख हैं ही, साथ-साथ बृहस्पति, बुध, मंगल, शुक्र और शनि पाँच ग्रहों की स्थिति का भी काल के संबंध में चिंतन किया। राहु और केतु सहित नौ ग्रहों को सूर्य-चंद्र के क्रान्तिवृत्त में कभी हासमय, कभी विषादमय, कभी कृपामय और कभी रौद्रमय रूप में पाया गया।

सूर्य जिस, आकाश मार्ग से नक्षत्र-मंडल में होकर जाता है, मनीषियों ने उस ऋजुचक्र के बारह समान भाग कर मेष, वृषभ, मिथुन, कर्क, सिंह, कन्या, तुला, वृश्चिक, धनु, मकर, कुंभ, मीन आदि राशियों की उपस्थिति मानी। सूर्य का एक राशि से दूसरी राशि में प्रवेश के प्रभावों के आधार पर 'काल' की स्थिति और गतिशीलता का अध्ययन महत्त्वपूर्ण है। मेष राशि में प्रवेश करके शनैः-शनैः प्रत्येक राशि बारह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राशियों में संक्रमण करते हुए जब सूर्य पुनः मेष राशि में संक्रमण की स्थिति में आता है, तब एक सौर वर्ष या एक संवत्सर पूरा होता है। प्रत्येक राशि से प्रत्येक सौर मास का संबंध है, जिसके केंद्र में सूर्य है। चैत्र-मास का संबंध मेष राशि से वैशाख का वृषभ राशि से। इस तरह प्रत्येक राशि से माहों का संबंध है। इसीलिए रीतिकाल के षट्ऋतु वर्णन के अन्तर्गत ग्रीष्म-वर्णन में कवि कहता है—'वृष को तरनि तेज सहसों किरण करि, ज्वालन के ज्वाल विकराल बरसत है।' उसी तरह चंद्र की स्थिति का नक्षत्र मंडल में अध्ययन कर चंद्रमाहों की उत्पत्ति हुई। आकाश के चंद्रपथ में 27 नक्षत्रों की उपस्थिति है। प्रत्येक नक्षत्र में चंद्र का संक्रमण और उसकी सृष्टि के क्रिया-कलापों पर सीधे प्रभाव का भारतीयता के सन्दर्भ में महीन विश्लेषण हुआ है। चंद्रमा का संक्रमण नक्षत्र विशेष में होते ही सृष्टि के तमाम तत्त्वों की क्रियाएँ और गति प्रभावित होती है। समुद्र पर ज्वार-भाटे के रूप में इसका प्रमाण जगत के पास है। हमारी मन की गति चंद्रमा द्वारा प्रभावित होती है, क्योंकि यह ईश्वर के हृदय स्थान से उत्पन्न हुआ है। 'चंद्रमा मनसो जातः' कहा भी गया है। जिस मास की पूर्णिमा में चंद्रमा जिस नक्षत्र से युक्त रहता है, उसके आधार पर भारतीय मासों का नामकरण हुआ है। अर्थात् जिस माह की पूर्णिमा की रात्रि को चंद्र चित्रा नक्षत्र के पास या उससे युत रहता है, उसे चैत्र, विशाखा से वैशाख, ज्येष्ठा से ज्येष्ठ, आषाढ़ा से आषाढ़, श्रवण से श्रावण, भाद्रपद से भाद्रपद, अश्विनी से आश्विन, कृतिका से कार्तिक, मृगशिरा से मार्गशीर्ष, पुष्य से पौष, मघा से माघ और फाल्गुनी से फाल्गुन मास के नाम रखे गये।

मानवीय क्रियाओं और जीव चेतना का जो अद्भुत संसार दृष्टिगत होता है, उसके आधार में दिन-रात के उजले-धुँधले पक्ष बहुत अर्थवान हैं। भारतीय संज्ञान की यह विशेष उपलब्धि है कि सप्ताह के सात दिनों के नाम उसके पास हैं। ये नाम किसी देवी-देवताओं पर आधारित नहीं हैं। ये नाम सूर्य की अन्य ग्रहों के साथ स्थिति को आधार बनाकर रखे गये हैं। भारतीय मनीषियों द्वारा रखे गये दिनों या वारों के ये नाम समस्त विश्व में प्रचलित हैं। भाषा भिन्न होती है लेकिन रविवार पूरे विश्व में सूर्यवार (रविवार) ही कहा जाता है। इसी तरह सोमवार, मंगलवार, बुधवार, गुरुवार, शुक्रवार और शनिवार भी संपूर्ण विश्व में भारतीय सप्ताह के वारों के नाम के क्रम में ही प्रचलित हैं। भारतीय ग्रन्थों में इसका प्रमाण यह है कि चैत्र शुक्ल प्रतिपदा को जब सब ग्रह मेष राशि के आदि में थे, उस समय इस कल्प का आरंभ हुआ। उसी दिन सृष्टि में पहला सूर्योदय हुआ। ब्रह्मा ने उसी दिन सृष्टि की रचना आरंभ की। पहले मनुष्य की किलकारी से धरती का मौन मुखरित और वत्सल हो उठा।

एक सूर्योदय से दूसरे तक व्यक्ति की चेतना ने कई रंग देखे। किरणों के अनेक ढंग देखे। सूरज के ताप के कई-स्तर अनुभव किए। रात की काली छाया देखी। रात

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के आँचल में प्रकाश बिखेरता चंद्रमा देखा। चंपई चाँदनी में जड़-चेतन को नहाता देखा। उज्ज्वल ज्योत्सना से मन की लहरों की उठान और बिछलन अनुभव की। अरुणोदय तक के इस उजले-काले, स्वर्णिम-रजत चक्र को 'अहोरात्र' कहा गया। एक भाग दिवस और दूसरा रात्रि कहलाया। काल की सूक्ष्म गणना के लिए दिन और रात प्रत्येक के छह-छह भाग किए गये, जिन्हें लग्न कहा गया। इस तरह 12 लग्नों का एक अहोरात्र हुआ। लग्न के आधे भाग को 'होरा' कहा जाता है। एक दिन-रात में 24 होरा होते हैं। यह 'होरा' शब्द 'अहोरा' शब्द के मध्य में है। सूर्य सबसे अधिक तेजवान नक्षत्र है। वह सृष्टि के प्रथम 'होरा' का स्वामी माना गया। आकाश स्थित नक्षत्र कक्षा में सूर्य की स्थिति काल गणना का मूल स्रोत है। जब प्रथम होरा का स्वामी सूर्य हुआ तब अगले छह 'होरा' के स्वामी क्रमशः शुक्र, बुध, चंद्रमा, शनि, बृहस्पति, मंगल हुए। आठवें होरा का स्वामी फिर सूर्य हुआ और उसके बाद के होराओं के स्वामी पूर्वानुसार अन्य ग्रह हुए। यह क्रम चौबीसवें होरा तक चलता है, तब दूसरा दिन हो जाता है। चौबीसवें होरा का स्वामी बुध हुआ। इसके साथ ही एक दिन-रात का समय पूरा हुआ। अलगे सूर्योदय के समय के होरा का स्वामी (पचीसवें होरा) चंद्रमा, हुआ, अतः विचार के बाद के दिन का नाम चंद्रवार या सोमवार रखा गया। इसी क्रम से अहोरात्र के प्रथम होरा के अधिष्ठाता के नाम पर अहोरात्र के नाम पड़ते चले गये। जिस दिन सूर्योदय के समय होरा का जो अधिष्ठाता ग्रह है, उस दिन का नाम उसी ग्रह के नाम पर है। सात वारों के नामों का यह क्रम सृष्टि के प्रथम दिन से चला आ रहा है।

भारतीय संवदेनात्मक ज्ञान की यह खूबी रही है कि वह एक बिन्दु पर जाकर रुका नहीं है। उसकी संवदेना नवीन की खोज और अनुपम की प्राप्ति की चाह लिए रहती है। वेदों में लिखा जा चुका है वह भी उसके लिए अन्तिम नहीं। उसका संबल और स्रोत तो वेद हैं, लेकिन उसकी विकासमानता सदैव अग्रगामी बनी रही है। उपनिषद् के तत्त्ववेत्ता ने काल को एक नदी की तरह सतत प्रवहमान देखा है। कितनी साम्यपूर्ण बात है कि भारतीय लोक भी काल को बहती नदी की तरह मानता है। वह समुद्र के समान भी है, जिसमें अनेक नदियाँ आकर मिलती हैं तथा जो कभी सूखता नहीं है। तैतरीय उपनिषद् में आता है—

नदीव प्रभवात् काचित् अक्षयात् स्यंदते यथा।
तां नद्योभि समायान्ति सोरुः सती न निवर्तते।।

ऐतरेय आरण्यक में काल को 'प्राण' स्वरूप माना गया है। 'प्राण' का संबंध दिन-रात को स्वीकार किया है। दिन को 'प्राण' के रूप में और रात को 'अपान' के रूप में निदर्शित किया है। दिनारंभ के समय 'प्राण' का विस्तार होता है अतः उन समय-क्षणों को प्रातः कहते हैं। दिनांत के समय प्राण सिकुड़ता है, इसलिए उसे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'सायम्' कहते हैं। जीव सृष्टि में जिस तरह 'प्राण' मूल तत्त्व है उसी तरह अखिल सृष्टि में 'काल' मूल तत्त्व है। यह काल ही परिवर्तन का स्रोत है। 'विपरिणाम हेतुः कालः।' नारायण ही काल रूप में स्थित है। जिसकी परिवर्तनकारी और गतिमान स्वरूप हमें दिन-रात के द्वारा होने वाले क्रिया-उपादानों में लक्षित होता है। दिन-रात से मास और मास चंद्रमास, सौरमास, मलमास, ऋतुओं, उत्तरायण और दक्षिणायन में रूपांतरित और अभिकल्पित होता है। चिंतन की प्रक्रिया इतनी सूक्ष्म रही है कि क्षण-क्षण की गतिशीलता और विपर्यय को रखते हुए काल की समग्रता को (अखण्ड काल और खण्ड काल या व्यावहारिक विभाजन) आत्मसात कर अभिव्यक्त करने का सद्प्रयास किया गया है। काल का सातत्य और शाश्वतता को मान्य करते हुए उसके अतिलघु मान को प्रकाशित किया गया है। यह भारतीय चिंतन की वह विशेषता है जो प्रकृति की निरंतरता में 'काल' की निरंतरता को आधार में पाते हुए भी मानव की क्रियाओं के परिप्रेक्ष्य 'काल' को देती है।

भारतीय सन्दर्भ में 'काल' कभी चिंतन के समक्ष चुनौती नहीं रहा। वह शाश्वत तत्त्व के रूप में जिज्ञासा बनकर मनुष्य की चिंतना को आमन्त्रित अवश्य करता रहा। इसलिए भारतीय जीवन की संपूर्ण यात्रा में 'काल' के साथ टकराहटें नहीं हैं। समय से टकरानेवाला मुहावरा साहित्य में बाहर से आया है। यहाँ प्रकृति को स्वीकार कर उसके साथ संस्कृत होकर चलने का भाव प्रमुख रहा है। इस दिशा में चलते हुए, भारतीय तत्त्व ने 'काल' को अखण्ड और चक्रिय मानते हुए उसके अस्तित्व के होने में स्वयं के अस्तित्व का होना अनुभव किया है। यह अनुभव-खोज पुराणों तक आते-आते और सूक्ष्मतम होती चली गयी। पुराणकारों ने काल की इकाइयों को इतने सूक्ष्मतम ढंग से व्यावहारिकता दी कि 'काल' को उसके 'परमाणु' से लेकर 'कल्प' तक समझा जा सके। श्रीमद्भागवत पुराण, वायु पुराण और मत्स्य पुराण की स्पष्ट मान्यता में 'काल' की इकाइयों का निर्धारण है—3 परमाणु=1 अणु, 3 अणु=1 वेध, 3 वेध=1 लव, 3 लव=1 निमिष, 3 निमिष=1 क्षण, 5 क्षण=1 काष्ठा, 14 काष्ठा=1 लघु, 15 लधु=1 नाड़िक, 2 नाड़िक=1 मुहूर्त, 7 नाड़िक=1 प्रहर या याम, 8 प्रहर=1 दिन 1 रात, 15 दिन-रात=1 पक्ष, 2 पक्ष=1 मास, 2 मास= 1 ऋतु, 6 मास=1 अयन, 2 अयन=1 वर्ष या 1 संवत्सर, 71 चतुर्युग=1 मन्वंतर, 14 मन्वंतर=1 कल्प होता है। कल्प के अन्त में विश्व का नाश प्रलय के कारण होता है। पुनः कल्प के देवता (ब्रह्मा) विश्व की नयी सृष्टि करते हैं।

काल का उपर्युक्त विभाजन व्यावहारिक है। वस्तु में परिवर्तन और व्यक्ति के कार्य की संपन्नता या संभावना को दृष्टिगत रखते हुए 'काल' के विभाग का उपक्रम है। अन्यथा काल अखण्ड है। भूत-भविष्य-वर्तमान संज्ञाओं को भी इसी कारण बौद्ध दार्शनिकों ने अज्ञान के कारण उत्पन्न माना है। बौद्धों ने भूत-वर्तमान-भविष्य में निरंतरता के क्रम से ही काल की अवधारणा चक्रीय मानी है। लेकिन समस्त वस्तुओं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में परिवर्तन का कारण 'काल' ही है। वह सबमें परिवर्तन का निमित्त होते हुए भी अपरिवर्तनीय है। जैनागमों में इसी कारण 'काल' को सत् माना गया है। यह सत् ही पुद्गल में परिवर्तन का निमित्त बनता है। जिसके कारण पुद्गल में स्वभावगत परिवर्तन होता है। वह निमित्त 'काल' है। बौद्धों और जैनों ने दार्शनिकता की अपेक्षा वैज्ञानिकता का अधिक आधार लिया है और काल की व्याख्या वस्तुगत संसार या दृश्यमान जगत के बदलाव के नैमित्तिक की है। आगे चलकर एक बारीक साम्य की रेखा न्यायवैशेषिक में दिखाई देती है। जहाँ काल को सृष्टि का शाश्वत आधार माना है। 'जन्यतां जनकः, जनकः कालो जगतमाश्रयो मतः।' न्यायवैशेषिक 'काल' संबंधी वैदिक व्याख्यानों के इस रूप में निकट है कि यहाँ भी समय का संबंध सूर्य माना गया है। पदार्थों या सृष्टि में जिन गुणों का बदलाव होता है उसका कारण गत्यात्मकता है, जिसका संबंध सूर्य से माना गया है। पदार्थों या सृष्टि में जिन गुणों का बदलाव होता है उसका कारण गत्यात्मकता है, जिसका संबंध सूर्य से है। काल गति का आधार है और गति का परिवर्तन का।

यह निःसर्ग विभु की इच्छा का ही परिणाम है। प्रसाद कामयानी में कहते हैं—'सर्ग इच्छा का परिणाम'। सांख्य योग में सृष्टि के विकास की सुंदर व्याख्या है। सत-रज-तम से युक्त यह सृष्टि है। रजस् की सक्रियता ही सृष्टि विकास का परिणाम है। सांख्य योग की मान्यता है कि किसी तत्त्व की स्थान परिवर्तन की स्थिति ही काल की इकाई है। अणु का स्थान-परिवर्तन काल की सबसे छोटी इकाई हो सकती है, जिसे क्षण कहते हैं, इस जगत का विकास अणु के स्थान बदलने से होता है। काल का विभाजन मानसिक प्रत्यय हो सकता है, जबकि काल अखण्ड है। हमने कहा कि यह सृष्टि किसी की इच्छा का परिणाम है। अतः सृष्टि विकास में 'काल' सहायक या आधारभूत तत्त्व के रूप में तो है लेकिन काल स्वयं ईश्वर नहीं है। भगवान श्रीकृष्ण गीता में कहते हैं—मैं समस्त अध्यात्म तथा भौतिक जगतों का कारण हूँ। प्रत्येक वस्तु मुझी से उद्भूत है। 'अहं सर्वस्य प्रभव मत्तः सर्वं प्रवर्तते।'

भवभूति कहते हैं—यह पृथ्वी विपुला है तथा काल निरवधि है। जो निरवधि है, अदृश्य है, सतत है, निरपेक्ष है। उसका प्रमाण कैसे और क्या है; कि वह है? 'काल' है या उसका अस्तित्व है यह प्रमाणित कैसे हो सकता है? 'काल' इस स्थिति में एक तरह से ईश्वरीय गुणवत्ता के सन्निकट है। ईश्वर की तरह ही उसका भी अनुभव किया जा सकता है। जगत की उत्पत्ति, स्थिति और लय ईश्वर की इच्छानुसार होता है, लेकिन उद्भव से संहार तक परिवर्तन की गतिशीलता से 'काल' का आभास होता है। 'अब' और 'तब' आगे 'कब' की मानसिक विचार सरणियाँ कालगत प्रत्ययों का संकेत देती हैं।

समय किसी के लिए रुकता नहीं है। वह किसी की प्रतीक्षा नहीं करता। वह कहीं विरमता नहीं। कहीं ठहरता नहीं। नदी की तरह बह रहा है। बहता चला जा रहा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है। हम नदी के किनारे खड़े आँखों से उसका बहना देख सकते हैं तथा नदी-जल में खड़े होकर अपनी त्वचा से उसका अनुभव कर सकते हैं। ऐसा ही कुछ-कुछ (पूर्णतः नहीं) समय के संबंध में है। हमारी तन्मात्राएँ उसका आभास पा सकती हैं। उसे पकड़ नहीं सकतीं। वह किसी का सगा नहीं। किसी का बैरी नहीं। वह किसी के लिए थमता नहीं। लेकिन समय की अवधारणाओं के केंद्र में जिस 'सूर्य' को माना गया है, उसके संबंध में तुलसीदास जी रामजन्म के अवसर पर जो लिखते हैं :

मास दिवस कर दिवस भा, मरम न जानहिं कोय।
रथ समेत रवि थाकेहुँ, निसा कवन विधि होय।

भगवान राम का जन्म हुआ। अयोध्या जन्मोत्सव से भरी-पूरी हो गयी। उत्सव इतना प्रगाढ़ और सचराचर जग को आप्लावित कर देने वाला था कि राम के अवतरण के उल्लासाकाश में अपने रथ सहित भुवन भास्कर रुक गये। एक माह का एक दिन हुआ। अर्थात् एक माह के समय के बराबर एक दिन का विस्तार था। इस मर्म को कोई नहीं जान पाया। इसमें समय की परिधि में जीता-जागता यह जगत ही अपनी गति में शून्य हो गया था; या 'काल' का कोई ऐसा पेंच है जिससे जीवन-जगत के सारे मनोभाव उत्सव की गंगा में स्नान करते-करते समय का बोध खो चुके थे। सामान्यतः दुःखावस्था में समय की अवधि-लंबी आभासित होती है। सुख में, उत्सव में तो लम्बा समय लगता है पलक झपकते बीत गया। यहाँ तुलसी बाबा सुख में समय को विस्तार दे रहे हैं। या यह कहना ठीक होगा कि राम-जन्म की उत्सवधर्मी मानसिकता अपने सत् स्वरूप में इतनी फैल गयी कि वह उसमें दिन-रात का विभेद भूल गयी और उत्सव की उजास इतनी तेज रही कि रात का अँधेरा अनुभव ही नहीं हो पाया। कितने-दिन और कितनी रातें बीत गईं; यह भाव ही जाता रहा और जब लोग अपने में लौटे तो पता चला कि एक माह बीत चुका है।

हमने अपने जीवन की सुख-दुःखमय दशाओं को समय से जोड़ते हुए कई सूत्र गढ़ लिए हैं। अभी समय अच्छा नहीं है। बुरे दिन चल रहे हैं। समय बहुत खराब चल रहा है। यह सब समय का फेर है। अच्छे दिन आएँगे, सब ठीक हो जायेगा। 'जब नीके दिन आइहैं, बनत न लगिहैं देर।' अभी विपरीत समय है। उसके दिन फिर गये। मेरा समय लौट आया है। उसके दिन शिखर पर हैं। उसके सोने के दिन चाँदी की रातें हैं। लोक गीत है—'आज दिन सोने का हुआ मोरे राजा, सोने का दिन हुआ, चाँदी की रात हुई, कुंकुम कलश भराओ मोरे राजा।' सब समय की बात है। समय बहुत बली होता है। आदि-आदि। इन सब में समय की सापेक्षता में सन्दर्भ बुने गये हैं, जबकि सच यह है कि इन सब में हमारा (मनुष्य का) भाग्य, कर्म, नियति, उन्नति, अनुकूलता, प्रतिकूलता सक्रियता, निष्क्रियता, उल्लास, विषाद और कर्मफल संचय ही मुखर हो रहा है। समय स्वयं में न अच्छा है न बुरा, न अनुकूल न प्रतिकूल। हमारे कार्यों के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परिणाम ही उसे इस तरह के परिप्रेक्ष्य देते हैं। समय तो साक्षी भाव से चलता रहता है। सब कुछ देखता रहता है।

कहते सुना गया है कि इस पृथ्वी पर जन्मे अनेक महापुरुषों ने समय की धारा मोड़ दी। यह मनुष्य की गर्वोक्ति है। लेकिन इसमें मनुष्य का पुरुषार्थ रेखांकित और प्रमाणित हो रहा है। समय की धारा को मोड़ने का ध्वन्यार्थ यह है कि एक पुरुष ने अपने पुरुषार्थ से संपूर्ण मानव समाज को नयी दिशा की ओर अग्रसर किया। स्वाभाविक है कि उसके सत्कार्यों की मंगलवर्षा में सृष्टि-मात्र निहाल हो उठती है। अर्थात् परिवर्तन की दिशा और गति में व्यक्ति के पुरुषार्थ के कारण अन्तर आता है, जो काल से अभिन्न रूप से जुड़ा होता है। यह परिवर्तन काल की उपस्थिति का संकेत और प्रमाण है।

यह भी कहते सुना जा रहा है कि आज का समय बड़ा कठिन है। या हम समय के कठिक दौर से गुजर रहे हैं। कठिन और सरल विशेषण भी समय पर चस्पा नहीं किए जा सकते। जिस तरह ईश्वर सारे विशेषणों से युक्त होने पर भी विशेषण रहित विशेष्य है। उसी तरह की स्थिति समय या 'काल' के साथ भी है, क्योंकि ये सारे विशेषण हमारे दिए हुए हैं, जबकि वह तो गुण रहित है। निर्गुण है। हालाँकि 'वह निर्गुण है' यह कहना भी एक गुण का ही सूचक है, लेकिन इससे हम उसकी शून्य अवस्था के अधिकतम पास पहुँचा हुआ अनुभव करते हैं। जटिलताएँ और सरलताएँ हमारी ही जायी हैं। हमने ही उत्पन्न की हैं, जिनसे जगत कच-मच है। उन्हीं की संधियों के पार जाने की कोशिश में समय को सरल-कठिन से अभिहीत करते चलते हैं।

मराठी भाषा साहित्य के आध्यात्मिक उद्गम पर समाधिस्थ सन्त ज्ञानेश्वर अपने ग्रंथ *अमृतानुभव* में माया के परिप्रेक्ष्य में काल पर विचार करते हुए कहते हैं–शून्यानुभूति या आत्मस्वरूप का साक्षात्कार होना ही माया की परिधि से परे जाकर काल की सीमा से भी मुक्त हो जाना है। यह अनुभूति गुरु-कृपा से संभव हो सकती है। इसके क्रम में बिन्दु, रंग, तेज़, नाद से भी बढ़कर शून्य की अनुभूति है। आत्मा की जो सत्ता है उसके कारण दृश्य की सिद्धि संभव है। माया दृश्य का निमित्त है और आत्मा के योग से वह सच लगती है। माया और आत्मा के बीच काल की स्थिति है। माया की समाप्ति पर शून्य अनुभूति या आत्मस्वरूप के साक्षात्कार की स्थिति वैसी ही होती है जैसे पानी यदि सूख जाता है तो प्रतिबिंब कहाँ लुप्त हो जाता है? वह प्रतिबिम्ब निज बिंब में ही समा जाता है। (*अमृतानुभव* 782-860)

मराठी भाषा के ही सन्त प्रवर समर्थ रामदास काल की चिंतना से निष्कर्ष देते हुए कहते हैं–

मूल माया जगदेश्वर, पुठे अष्टदेचा विस्तार
सृष्टिक्रमे कालवेल आकार ला।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सारी माया जगदीश्वर की ही है और उसी का विस्तार आठों दिशाओं में है। सृष्टि में जो आकार रूप है उसका निमित्त काल है। सब परमात्मा स्वरूप हैं। काल ईश्वर का ही दूसरा रूप है, लेकिन निराकार ब्रह्म की जगह काल का कोई स्थान नहीं है। जब चंचल (माया) की बात होती है तो काल आता है जब तक चंचल का अस्तित्व है तब तक काल है। जो हो चुका है और जो होने वाला है इसमें जो भेद है वह काल रूप है। समर्थ रामदास अपने ग्रन्थ *दासबोध* (दसवाँ अध्याय) में कहते हैं कि निश्चल निराकार में काल नहीं है। दृश्य पर ही काल की सत्ता होती है। अव्यक्त से व्यक्त और व्यक्त से अव्यक्त बात काल के अनुरोध से चलती है। इसलिए ब्रह्माण्ड जहाँ से निर्मित हुआ वहाँ तक पहुँचना केवल भक्ति और विवेक से संभव है।

प्रसिद्ध पाश्चात्य विद्वान इमेनुएल कॉण्ट काल को केवल आभास मानते हुए कहते हैं—काल विश्व का वास्तव धर्म नहीं है। काल केवल आभास है। काल का प्रवाहित्व, उसकी अनंतता और उसका सातत्य ये काल को समझने में अड़चनें हैं।

वृद्ध कहते हैं कि हमारा समय स्वर्णयुग था। मूल्य थे। नीति थी। मर्यादाएँ थीं। सदाचार था। ईमानदारी थी। वह समय अब नहीं रहा। यह सब भी जगत के आचरण की बीती कहानियों की स्मृतियाँ हैं। समय सबका होते हुए भी किसी का नहीं है। जैसे धरती, आकाश, हवा, पानी, आग सबके होते हुए भी व्यापक और बारीक अर्थों में किसी के नहीं है। इनमें और इनके कारण हम परिभाषित हो रहे हैं और समय को परिभाषित करने का अहंकार कर रहे हैं। जिस तरह ईश्वर परिभाषा में नहीं बाँधा जा सकता; 'काल' भी नहीं।

भारतीय वाङ्मय में काल मृत्यु के स्वरूप में भी अनेक पंक्तियों में विस्तार पाता रहा है। उसे काल ने घेर लिया। उसे काल खा गया। उसका काल उसे वहाँ ले गया। उसका काल आ गया था। काल के सामने किसी की नहीं चलती। हम सब काल की मुट्ठी में हैं। काल के सामने सब विवश हैं। काल के घेरे से कोई बाहर नहीं। जो इस धरती पर जन्म लेता है, उसे मरण-धर्म निभाना है। यह जड़-चेतन दोनों की देह का धर्म है। 'धरा कौ प्रमाण यहै तुलसी, जो फरा सो झरा, जो जरा सो बुताना।' राम और कृष्ण ने भी इसका प्रमाण दिया। इस धर्म का सहजभाव से परिपालन किया। काल स्वयं तापस रूप में आकर राम से एकांत में कहता है—आपकी मानव शरीर की आयु पूर्ण होने के साथ ही भूमि को अत्याचारियों से मुक्त कराने का संकल्प पूर्ण हुआ है। 'स ते मनोरथः पूर्णः पूर्णे चायुषि ते नृषु।' (अध्यात्म रामायण, उत्तरकांड-32) राम को प्रजाजनों के साथ पृथ्वी से जाना पड़ा। कृष्ण को भी जरा (व्याध) द्वारा बाण मारने पर दिव्य ज्योति में रूपांतरित होकर देह त्यागना पड़ा। जरा काल ही तो था। राम-कृष्ण जैसे पूर्ण पुरुषों को काल के संकेतों पर देह छोड़ महाप्रयाण करना पड़ा, तब सामान्य जन-जगत की क्या बिसात? पृथ्वी पर जो है काल के ग्रास हैं। कबीर कहते हैं—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

झूठे सुख को सुख कहे, मानत है मन मोद।
जगत चबीणा काल का, कुछ मुख में कुछ गोद।

हम कहते नहीं अघाते कि हम सौभाग्यशाली हैं। हम फलाँ व्यक्ति के समय में पैदा हुए। वास्तव में समय किसी व्यक्ति विशेष का नहीं होता है लेकिन उस व्यक्ति की कर्मसुवास से मानवता का मस्तक ऊँचा होता है, इसलिए हम अपने साथ समय की अनंतता के विशेष खण्ड को भी अपने रंग में रंग देते हैं। यह मनुष्य की स्वयं की सृष्टि सन्दर्भों तक विस्तार की आकुल आकांक्षा है। आखिर समय भी तो मनुष्य और सृष्टि की कर्मशीलता और गति से ही गौरव पाता है।

सड़क किनारे सावधानी-सूचक पत्थर पर लिखा वाक्य पढ़ता हूँ—'समय बहुमूल्य है, लेकिन जीवन अमूल्य है।' सच है जीवन का कोई मोल नहीं, क्योंकि यह जगत के वस्तुतत्व की ही नहीं, जीवसृष्टि की भी सर्वोत्तम और सौभाग्यमय रचना है। लेकिन क्या समय की भी किसी भौतिक वस्तु से या मानवीय अवदान से कीमत की जा सकती है? मनुष्य का यह भ्रम है कि उसने समय की कीमत चुकाई है। वास्तव में वह अपने कर्म के माध्यम से जीवन की सक्रियता में ही अग्रसर होता है। समय हवा से भी महीन और जल से भी पतला है। उसे कैसे और कहाँ कैद करेंगे? तब उसे मुट्ठी में तो क्या, घर-भवन, आकाश-पाताल में कहीं कैद कर सकते हैं? वास्तविकता यह है कि समय की निरपेक्षता में हम स्वयं की सापेक्षता को सिद्ध करते हैं। हम अपनी कर्मण्यता में अपना होना सिद्ध करते हैं। हम अपने होने में जीवन का एक पुनश्चरण पूरा करते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्राकृतिक आपदाओं के प्रबंधन की ओर

दिनेश मणि*

मानव सनातन काल से प्राकृतिक आपदाओं की विभीषिकाओं से परिचित रहा है, किन्तु वर्तमान युग में शहरीकरण, औद्योगीकरण तथा जनसंख्या वृद्धि के कारण कुछ प्राकृतिक आपदाओं की आवृत्तियों में वृद्धि हुई है, उनका रूप अधिक उग्र हुआ है और वे अधिक विनाशकारी सिद्ध हुई हैं। जिन देशों में प्राकृतिक आपदाएँ आती हैं, उनका आर्थिक विकास रुकता ही नहीं अपितु वर्षों पीछे खिसक जाता है। प्राकृतिक आपदाओं से होनेवाले ध्वंस की मरम्मत में वर्षों लग जाते हैं, जिसमें तमाम अतिरिक्त संसाधनों की आवश्यकता पड़ती है।

प्राकृतिक आपदाएँ भौतिक समग्रता एवं सम्पदा को प्रभावित करती हैं। प्राकृतिक आपदाएँ हमारे देश की ही नहीं, अपितु सारी दुनिया की समस्याएँ हैं। हमारे देश में तो ये समस्याएँ बहुतायत में हैं। यहाँ तक कि एक साथ किसी भाग में भयंकर सूखा पड़ता है तो दूसरे भाग में बाढ़ से भयंकर तबाही मची होती है और कोई स्थान भूकम्प के झटकों से आक्रांत होता है। ये आपदाएँ न केवल जन-धन-सम्पत्ति को हानि पहुँचाती हैं, बल्कि प्रगति की गति में रुकावट बन जाती हैं। सामान्यतः आपदाएँ प्रकृति के प्रकोप से आती हैं, परन्तु मानव की अनचाही क्रियाएँ भी कई आपदाओं का कारण बनती हैं।

आपदा एक ऐसी असामान्य घटना है, जो सीमित अवधि के लिए आती हैं, किन्तु किसी भू-भाग या देश की अर्थव्यवस्था को छिन्न-भिन्न कर देती है। जिस देश में प्राकृतिक आपदाएँ आती हैं, उसका आर्थिक विकास रुकता ही नहीं, अपितु वह वर्षों पीछे खिसक जाता है। प्राकृतिक आपदाओं से होने वाले ध्वंस की मरम्मत में वर्षों लग जाते हैं, जिसमें तमाम अतिरिक्त संसाधनों की आवश्यकता पड़ती है। आपदाओं से होनेवाली क्षति से बचने के लिए आपदाओं के बारे में समग्र जानकारी होना आवश्यक है।

---

* दिनेश मणि, डी. फिल, डीएस-सी, पूर्व सम्पादक, "विज्ञान" मासिक पत्रिका, 35/3, जवाहर लाल नेहरू रोड, जार्ज टाउन, इलाहाबाद-211002

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बाढ़ एक ऐसी प्राकृतिक आपदा है, जो अकारण और सूखे की भाँति राष्ट्र के ार्थिक/सामाजिक ढाँचे को छिन्न-भिन्न कर डालती है। अचानक ही जब नदी में ानी का बहाव क्षमता से अधिक हो जाता है, तब नदी का पानी उसके किनारों को ोड़कर आस-पास के क्षेत्रों में फैलकर गाँव, शहर, खेत, पशु तथा मनुष्यों को नुकसान हुँचाने लग जाता है, तो उसे बाढ़ कहते हैं। बाढ़ जैसी राष्ट्रीय विपत्ति से बचने के लिए तथा बाढ़ पर नियंत्रण पाने के लिए विशेषज्ञों ने दो प्रकार के उपाय सुझाए —प्रथम सुझाव में वे उपाय हैं, जो बाढ़ आने से पहले अर्थात् बाढ़ आने न पाए उसके लिए हैं। दूसरे शब्दों में बाढ़ आने से पूर्व किए जानेवाले प्रयास। दूसरे उपाय वे हैं जो ाढ़ आने के बाद अपनाए जाते हैं। बाढ़ से पूर्व इस प्रकार के प्रयास किए जाने ाहिए, जिनसे बाढ़ का खतरा टल जाये, या बाढ़ की गम्भीरता घट जाये। इन्हें निरोधात्मक उपाय भी कहते हैं। बाढ़ के बाद के प्रयास में राहत कार्य तथा पुनर्वास कार्यक्रम आते हैं।

सूखा भी एक प्राकृतिक आपदा है। सूखा किसी भी क्षेत्र में किसी भी समय पड़ सकता है। किसी क्षेत्र में होनेवाली वर्षा की मात्रा तथा उस क्षेत्र की वैज्ञानिक और सामाजिक प्रगति के बावजूद उस क्षेत्र में सूखा पड़ सकता है। सूखा के परिणामस्वरूप ीने के लिए, सिंचाई के लिए, उद्योगों और शहरी आवश्यकताओं के लिए जल का अभाव हो सकता है। सूखा के कारण मृदा में नमी की कमी भी हो जाती है और भूमि अनुत्पादक बन जाती है। सूखे से बचाव के उपायों में वर्षा जल के संग्रहण, वृक्षारोपण तथा सूखारोधी फसलों की खेती आदि शामिल हैं। भूजल के भंडारों की खोज के लिए दूर संवेदन उपग्रह मानचित्रण तथा भौगोलिक सूचना-तन्त्र जैसी युक्तियों का उपयोग किया जाना चाहिए।

हमारे देश में ही नहीं, अपितु विश्व के बड़े-बड़े भू-भागों पर मरुस्थल का विस्तार हो रहा है। संयुक्त राष्ट्र पर्यावरण कार्यक्रम की रिपोर्ट में कहा गया है कि धरती को रेगिस्तान के प्रभाव से बचाने के लिए अपेक्षित धनराशि उपलब्ध न होने से न प्रयासों को जबरदस्त आघात पहुँचा है। मरुस्थलीकरण का सीधा सम्बन्ध भूमि के निम्नीकरण से है, जिसके कारण जमीन अपनी उत्पादकता खो देती है। विभिन्न कानूनों द्वारा वनों की कटाई में कमी, वृक्षारोपण के प्रति उत्साह तथा पर्यावरण के सन्दर्भ में जनसामान्य में जागरूकता पैदा करके इस समस्या को कम किया जा सकता है।

भूस्खलन भी एक प्राकृतिक आपदा के रूप में जन-धन की हानि के लिए जिम्मेदार है। भूस्खलन का सामान्य अर्थ विभिन्न प्रकार की चट्टानों, मिट्टियों के खिसकने तथा उनके नीचे की ओर स्थानान्तरित होने से है। भूस्खलन होने के कई कारण हैं—तटों की प्रवणता तथा उनकी भूवैज्ञानिक संरचना, अधोभूमि के जलों का

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बाहर निकलना, जलाशयों/नदियों आदि में जल स्तर का घटना-बढ़ना आदि। भूस्खलन को रोकने के प्रमुख उपायों में भूस्खलन प्रक्रियाओं को नियंत्रित करना अनिवार्य है। भूस्खलन की रोकथाम हेतु प्रपाती प्रवणतावाले स्थानों का प्रावण्य कम कर दिया जाता है, इस प्रकार सीधी ढाल मंद ढाल में परिवर्तित हो जाती है। नदी अथवा समुद्र द्वारा तट के नीचे काटे जाने की क्रिया की उग्रता से तट की सुरक्षा हेतु जल नियंत्रण करनेवाली तरंगरोधों का निर्माण करते हैं।

भूगर्भ से किसी नली अथवा निकास से बाहर निकलने वाला पिघला हुआ पदार्थ निकास के चारों ओर एक टीले के शक्ल में संचित हो जाता है, इसे ज्वालामुखी कहते हैं। ज्वालामुखी से लावा के अतिरिक्त शैलों तथा खनिजों के टुकड़े भी बाहर आते हैं। ज्वालामुखी उद्गार से निकलने वाली धूल वायुमंडल में काफी दूर तक और घनी पायी गयी है। ज्वालामुखी उद्गार से निकलनेवाली गैसों में सल्फर डाई ऑक्साइड, हाइड्रोजन, मीथेन, कार्बन डाई ऑक्साइड प्रमुख हैं।

प्राकृतिक आपदाओं में भूकंप सबसे भयानक होते हैं, क्योंकि इनसे एकाएक बिना किसी पूर्वाभास के कुछ क्षणों में ही हजारों-लाखों प्राणियों की मृत्यु हो जाती है। भूकंपों के प्रभावों से बचने के दो उपाय हैं। पहला भूकंप की भविष्यवाणी द्वारा और दूसरा यह है कि इमारतों और दूसरी संरचनाओं को इस प्रकार बनाना कि भूकंप आने पर कम-से-कम नुकसान पहुँचे। आवश्यकता पड़ने पर हवाई सर्वेक्षण द्वारा कम समय में ही कुल क्षति का अनुमान लगाकर राहत तथा पुनर्वास कार्यक्रम उच्च प्राथमिकता के स्तर पर चलाना चाहिए।

चक्रवात निम्न वायुदाब का वह भाग है, जो चारों ओर से उच्च वायुदाब द्वारा घिरा हुआ होता है। वायु चारों ओर से चक्रवात के निम्न वायुदाब वाले केन्द्र की ओर चलती है। उष्ण कटिबंधीय चक्रवातों का आकार छोटा होता है और दाब प्रवणता तीव्र होने के कारण वायु बड़ी तीव्रता से चलती है। अतः इससे जान-माल की भारी हानि होती है। आज चक्रवात की चेतावनी व्यवस्था में उल्लेखनीय सुधार हुए हैं। कम्प्यूटर द्वारा बनाए गये मॉडलों की सहायता से चक्रवात के पवनों की दिशा और तीव्रता तथा इसके पथ की दिशा की काफी हद तक सही भविष्यवाणी की जा सकती है।

सुनामी समुद्री लहरों की उन शृंखलाओं को कहा जाता है, जो पानी से उठी तीव्र हलचल के कारण पैदा होती है। पानी के भीतर यह हलचल या व्यवधान भूकंप, भूस्खलन, ज्वालामुखी फटने, किसी विस्फोट या उल्कापिंड गिरने के चलते आता है। इंटरनेशनल सुनामी वार्निंग सिस्टम भूकंप वैज्ञानिकों का एक ऐसा समूह है, जो पृथ्वी के अंदर के कंपनों का अध्ययन कर बड़े भूकंपों का अनुमान लगाता है तथा सुनामी के घटने की भविष्यवाणी करता है। सुनामी लहरों पर चढ़कर आई तबाही के बाद केन्द्र सरकार ने अब इन लहरों के बारे में सूचना देनेवाली वैश्विक प्रणाली से जुड़ने का फैसला किया है, ताकि इससे होनेवाली तबाही से बचा जा सके।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समुद्री तूफान या हरिकेन एक वायुमंडलीय परिघटना है, जो ताप में होनेवाले परिवर्तन एवं वायुधाराओं की स्थिति में होने वाले बदलाव की वजह से पैदा होता है। यह अपने प्रभाव-क्षेत्र में आनेवाली प्रत्येक चीज को तहस-नहस कर देता है। वैसे तो इसका पूर्वानुमान लगाने की तकनीक वैज्ञानिकों ने विकसित कर ली है, परंतु विश्व में ऐसा कोई मॉडल मौजूद नहीं है, जो इसकी तीव्रता की वास्तविक जानकारी दे सके।

आपदा प्रबंधन में निवारक और संरक्षी उपाय, तैयारी तथा मानवों पर आपदा के प्रभाव को कम करने के लिए राहत कार्यों की व्यवस्था तथा आपदा प्रवण क्षेत्रों के सामाजिक, आर्थिक पक्ष सम्मिलित किए जाते हैं। हम प्रकृति के अनुकूल रहना भूल चुके हैं। अतः समय-समय पर आपदाएँ तो आती ही रहेंगी, लेकिन जान-माल के नुकसान और तबाही की तकलीफ कम करने के लिए हमें निर्णायक तरीके से काम करना चाहिए।

विभिन्न आपदाओं के लिए एक व्यापक पूर्व चेतावनी प्रणाली विकसित की जा रही है। संयुक्त राष्ट्र विकास कार्यक्रम की सहायता से एक समुदाय आधारित आपदा जोखिम प्रबंध कार्यक्रम आरंभ किया गया है। इसमें संसाधन मानचित्र, जोखिम मानचित्र, आश्रय और बाहर निकालने संबंधी मानचित्र तथा आपदा केंद्रित निवारण गतिविधियों की पहचान करना शामिल है।

ऐसा माना जाता है कि जो राष्ट्र जितना ही विकसित-होगा वह आपदाओं के प्रति उतना ही जागरूक होगा। प्रायः विकासशील देश, जिसमें निर्धन देशों की संख्या अधिक है–बारंबार आपदाओं के शिकार बनते आए हैं। आपदाओं से पीड़ितों की सहायता एवं रक्षा करना समाज या राष्ट्र का कर्तव्य है। अव्यवस्थित तन्त्र के बल पर आपदाओं का सामना नहीं किया जा सकता है। फलस्वरूप विगत कई दशकों से अन्तरराष्ट्रीय स्तर पर आपदा प्रबंधन के प्रयास किए जाते रहे हैं। संप्रति आपदा प्रबंधन बहुआयामी व्यवस्था बन चुकी है, जो अधुनातन प्रौद्योगिकी की सहायता लेकर कम-से-कम समय में आपदाओं की पूर्व सूचना, चेतावनी, बचाव, राहत, पुनर्वास आदि के साधन जुटाती है। अतः वर्तमान युग में आपदा प्रबंधन की महत्ता सर्वस्वीकृत है।

अब आपदा पबंधन अन्तःशास्त्रीय विषय बन चुका है और इसका प्रशिक्षण भी दिया जाता है। सरकारी तन्त्र के अलावा वैयक्तिक तन्त्र भी अपने अपने ढंग से कार्य करते हैं, किंतु आपदा-प्रबंधन में जो पीड़ित हैं, उनकी सहभागिता भी आवश्यक है। आपदा प्रबंधन में परम्परागत ज्ञान का सदुपयोग भी किया जाना चाहिए और आपदा के हट जाने के बाद भी आपदा प्रबंधन चालू रहना चाहिए। कोई भी आपदा, चाहे वह प्राकृतिक हो या मानवकृत, उससे जान-माल को भारी क्षति पहुँचती है, आपदाओं से मनुष्यों, पशुओं, पेड़-पौधों तथा इमारतों को तो क्षति पहुँचती ही है, इनका मनोवैज्ञानिक प्रभाव भी पड़ता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आपदा को रोकना एक चुनौती है क्योंकि आपदा प्रबंधन के प्रयासों सन्नद्धता तथा न्यूनीकरण के परिणाम अदृश्य रहते हैं। इसलिए आपदा प्रबंधन त सफल कहा जाता है, जब लोगों के जीवन तथा जीविका पर आपदा का कम-से-क प्रभाव पड़े।

पर्यावरणीय परिवर्तन तथा प्राकृतिक आपदाएँ परस्पर शृंखलित हैं। प्राकृति संसाधनों का दोहन—शहरी विकास तथा पर्यावरणीय ह्रास—ये सभी खतरों को प्रभावित करते हैं। पर्यावरणीय ह्रास, गरीबी तथा आपदा जन्य खतरे समान कारणों उत्पन्न होते हैं और मानव सुरक्षा एवं कल्याण पर इनका एक-सा प्रभाव पड़ता पर्यावरण प्राकृतिक आपदाओं के प्रभाव को बढ़ाता है, समग्र प्रतिरोध शक्ति को करता है और सामना करने वाली पारम्परिक रणनीतियों को चुनौती देता है।

विकासशील देशों में प्राकृतिक आपदाओं से संबद्ध आर्थिक क्षतियों में बेतह वृद्धि हुई है, जिससे आर्थिक विकास में काफी बाधाएँ आती हैं। प्राकृतिक आपदा से हुई विनाश-लीला से विकासशील देशों में वैश्विक अर्थव्यवस्था से स्पर्धा करने शक्ति पर विपरीत प्रभाव पड़ता है।

आपदा कार्यों के नियोजन, कार्यान्वयन तथा मॉनीटरन में समुदायों के सद का शामिल होना समुदाय से सहभागिता है। इसमें हर व्यक्ति या परिवार स्व कोई-न-कोई जिम्मेदारी लेता है। यूँ कि समुदाय के व्यक्ति ही अपनी स्थिति को बेह ढंग से समझते हैं, अतः वे अपने विकास के स्वयं एजेंट बन जाते हैं। इसके लिए उ यह क्षमता होनी चाहिए कि वे स्थिति को भाँप सकें, तमाम संभावनाओं को तौल स और निजी योगदान का अनुमान भी लगा सकें।

आपदा प्रबंधन के लिए आवश्यक है कि—

1. आपदा की प्रकृति तथा आपदा के कारणों के विषय में सूचना के माध्य से समुदायों की शिक्षित करना।
2. आपदा के खतरों को नियंत्रण में करने की विधियों के विषय में शि प्रदान करना।
3. चौबीसों घंटे समुदाय को सूचना प्रदान करने के लिए प्रभावशाली प्रबं सूचना-तन्त्र तैयार करना।
4. समुदायों के मनोबल को बढ़ाए रखना, जिससे वे असहाय अनुभव न क और आपदा का डटकर मुकाबला करें।
5. किसी दुर्घटना से बचने के लिए "करो न करो" (विधि निषेध) शिक्षा-प्रदान करना।

किसी भी आपदा प्रबंधन पहल का उद्देश्य आपदा-प्रतिरोधी समुदाय तैय करना है, जो अपने विकासात्मक कार्यों के लिए अधिक सुरक्षित जीवन-शैली त टिकाऊ आजीविका के लिए हो।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जापान के याकोहामा शहर में 23-27 मई। 1994 को प्राकृतिक आपदा न्यूनीकरण सम्मेलन आयोजित किया गया था। इस सम्मेलन में सभी देशों को मिल-जुलकर अधिक सुरक्षित विश्व के निर्माण की भावना से कार्य करने की रणनीति बनाई गयी, जिससे मनुष्यों का जीवन बचाया जा सके, क्योंकि प्राकृतिक आपदाएँ सीमाओं का आदर नहीं करतीं। अतः प्रत्येक देश की सर्वोपरि जिम्मेदारी है कि वह प्राकृतिक आपदाओं से अपने नागरिकों की रक्षा करे। इसके लिए विकासशील देशों पर सर्वोपरि ध्यान दिया जाये। राष्ट्रीय क्षमताओं तथा सामर्थ्यों को विकसित एवं प्रचलित किया जाये। प्राकृतिक आपदाओं को रोकने, कम करने एवं उनका सामना करने के कार्यों में उपक्षेत्रीय, क्षेत्रीय एवं अन्तरराष्ट्रीय सहयोग को बढ़ावा दिया जाये और उसे प्रबल बनाया जाये। इसमें मानव तथा सांस्थानिक क्षमता-निर्माण, प्रौद्योगिकी की साझेदारी, सूचना का संग्रहण, प्रसारण तथा उपयोग और संसाधनों के जुटाव पर ध्यान दिया जाये।

प्राप्ति-स्वीकार

पिछले अंकों में सूचीबद्ध पुस्तकों/पत्रिकाओं के अतिरिक्त प्राप्त नयी पुस्तकें/पत्रिकाएँ

पत्रिका :

अन्तिम जन, वर्ष-3, अंक-3, संख्या-26, मार्च-2014; प्रधान सम्पादक : मणिमाला; मानद सम्पादक : डॉ. राजीव रंजन गिरि; प्रकाशकः गाँधी स्मृति एवं दर्शन समिति, गाँधी दर्शन, राजघाट, नयी दिल्ली-110002; मुद्रक : दीप कलर स्कैन प्रा.लि., दिल्ली-110095; पृष्ठः 64; मूल्यः 10 रुपये।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शंकरदेव और उनके बरगीत

जयन्त कुमार बोरो*

महापुरुष श्रीमन्त शंकरदेव का जन्म मध्य असम के नगाँव जिले के आलिपुखु (बरदोवा) गाँव में सन् 1449 ई. को हुआ था। उनके पिता का नाम कुसुमवर भुइ था और माता सत्यसन्ध्या थीं। बाल्यकाल में ही उनके पिता और नाना का देहान्त हो गया। उनके लालन पालन का सम्पूर्ण भार उनकी दादी खेरसुती ने उठाया। जनश्रुति के आधार पर शंकरदेव का बचपन अधिक चंचल, उच्छृंखल और स्वच्छन्द या मुक्त प्रवृत्ति का रहा था। लगभग बारह वर्ष का आयु में वे 'महेन्द्र कन्दलि' नामक गुरु की पाठशाला में जाकर अध्ययन प्रारम्भ किया। आश्रम में केवल आठ वर्षों में निरन्तर विविध प्रकार के शास्त्रों का अध्ययन सम्पूर्ण कर लिया। वहाँ रहकर उन्होंने मन के योग के साथ-साथ शरीर योग की भी साधना की। अध्ययन समाप्त करने के पश्चात् यही कोई इक्कीस वर्ष की अवस्था में शंकरदेव ने 'सूर्यवती' नाम की एक कन्या से विवाह कर घर एवं पिता के सभी दायित्वों को अपने ऊपर ले लिया। विवाह के कुछ समय पश्चात् सूर्यवती ने एक पुत्री (मनु) को जन्म दिया, जिससे शंकरदेव को पिता बनने का गर्व प्राप्त हुआ। पिता तो बने परन्तु मनु के जन्म के नौ महीने बाद ही पत्नी का देहान्त हो गया। कुछ वर्षों के बाद अपनी पुत्री का कन्यादान कर बत्तीस वर्ष की आयु में वे सांसारिक बन्धन से मुक्त होकर तीर्थ के लिए निकल गये। बारह वर्षों तक भारत के विभिन्न तीर्थस्थलों का भ्रमण कर भक्ति धर्म के प्रति गम्भीर रूप से अनुरक्त होकर वे घर लौट आते हैं। परन्तु घरवाले और परिजनों के दबाब के कारण 'कालिन्दी' नाम की कन्या से विवाह कर पुनः सांसारिक जीवन-यापन करने लग जाते है। लेकिन अब उनको सांसारिक बन्धन में बँधना स्वीकार नहीं था। उन्होंने असम के नगाँव जिले के 'बरदोआ' नामक स्थान में 'नामघर' (नामघर उस स्थान को कहा जाता है जहाँ पर वैष्णव भक्त एक साथ बैठकर प्रभु का स्मरण, श्रवण कीर्तन, बरगीत आदि किया

सम्पर्क : जयन्त कुमार बोरो, सहायक प्रोफेसर, हिन्दी विभाग, कोकराझार सरकारी महाविद्याल कोकराझार 783370, असम; फोन : 07399002082 (मो.); Email– jayantkok@gmail.com

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करते हैं। परन्तु वर्तमान समय में सभी धर्म और सम्प्रदाय के लोग यहाँ जाकर हरि भक्ति करते हैं।) का निर्माण कर वैष्णव धर्म का प्रचार करने लगे। वे अपने जीवन के अन्तिम समय तक वैष्णव धर्म का ही प्रचार करते रहे। शरीर में असहनीय पीड़ा होने के कारण सन् 1568 ई. में उनका देहावसान हो गया।

असमिया साहित्य में शंकरदेव को विशिष्ट वैष्णव कवि, गीतकार, नाटककार संगीतकार के रूप में परिगणित किया जाता है। उनकी कुछ प्रामाणिक रचनाएँ हैं, जैसे–1. भक्ति रत्नाकार। यह एक भक्ति सिद्धान्त-विषयक ग्रन्थ है, इसकी भाषा संस्कृत है। 2. बरगीत। इसमें कुल 36 पद हैं। 3. पत्नी प्रसाद (नाटक), 4. कालिदमन (नाटक), 5. केलि गोपाल (नाटक), 6. रुकमिणी हरण (नाटक), 7. पारिजात हरण (नाटक), 8. राम विजय (नाटक)। इन सबकी भाषा ब्रजबुली है। आलोचक ब्रजबुली को एक प्रकार की कृत्रिम भाषा कहते हैं। ब्रजाबुली में हमें संस्कृत, ब्रज, प्राचीन असमिया, हिन्दी, ओड़िया, बाङ्ला आदि भाषा का रूप देखने को मिलता है। 9. भक्ति प्रदीप (भक्ति सिद्धान्त-विषयक ग्रन्थ), 10. हरिचन्द्र उपाख्यान (काव्य), 11. रुकमिणी हरण (काव्य), 12. गुणमाला (काव्य), 13. उत्तरकाण्ड रामायण (काव्य), 14. भटिमा (स्फुट पद), 15. कीर्तन घोषा (काव्य संकलन), 16. भागवत (अनूदित काव्य)। इन सबकी भाषा प्राचीन असमिया है। शंकरदेव की रचनाओं में हमें भाषा की बहुलता देखने को मिलता है। उपर्युक्त ग्रन्थों के माध्यम ये उन्होंने तत्कालीन असमिया समाज में जन जागृति फैलाने का प्रयास किया था।

शंकरदेव के बरगीत

पंद्रहवीं शताब्दी से पूर्व हमारे देश के विभिन्न प्रान्त समाजिक और धार्मिक परिवर्तन का साक्षी रहा है। धर्म के नाम पर समाज में कई प्रकार के अन्धविश्वास विद्यमान थे। ईश्वर के अस्तित्व को लेकर कई प्रकार से समाज में आस्था बनी हुई थी। 15वीं शताब्दी मध्यकाल का समय रहा है इस समय भारत के विभिन्न प्रान्तों में भिन्न-भिन्न दर्शन को लेकर सन्तों का आविर्भाव हुआ। इनके समय में धर्म एक जाति-विशेष की वस्तु के रूप में प्रयुक्त किया जाने लगा तथा एक तरह से धर्म के नाम पर अराजकता फैला हुआ था। उस समय के सन्तों ने समाज को धर्म की विसंगतियों से बचाने के लिए अपनी एक अहम् भूमिका का निर्वाह किया। उन सन्तों में प्रमुख हैं, जैसे– रामानन्द (1440-1470), कबीर (1398-1518), वल्लभाचार्य (1478-1531), श्री चैतन्य (1458-1533), तुलसीदास (1583-1623), गुरुनानक (1469-1539) आदि। ये सभी सन्त वैष्णव धर्म एवं दर्शन से प्रभावित थे। उपर्युक्त सभी सन्तों ने तत्कालीन समाज को एक सूत्र में बाँधे रखने का अथाह प्रयास किया। ताकि विविध वर्ण और समुदाय एक साथ मिल-जुलकर रह सके। असम के सन्त श्रीमंत शंकरदेव भी इन्हीं के समकक्ष ठहरते हैं, पर यह एक दुःख का विषय है कि हिन्दी साहित्य के इतिहास में शंकरदेव का नाम विस्तार से कहीं भी देखने को नहीं मिलता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शंकरदेव मात्र एक साहित्यकार ही नहीं, एक सच्चे धर्म प्रचारक, प्रवर्तक, समाज सुधारक, कलाकार इत्यादि सभी गरिमाओं से युक्त थे और साथ-ही-साथ एक अच्छे युगद्रष्टा भी थे। इसलिए उनको 'महापुरुष श्रीमन्त' की संज्ञा से अलंकृत किया गया। शंकरदेव (1449-1568 ई.) कालीन असम में किसी एक शक्तिशाली केन्द्रीय सत्ता का अभाव था। पूरा-का-पूरा राज्य छोटे-छोटे राजाओं और सामंतों में बँटा हुआ था। पश्चिमी असम के प्रान्तों में कोच, मध्य असम में भुइयाँ और पूर्वी असम में कछारी, आहोम तथा चुतिया (चुतिया असम के एक जनजाति समुदाय के लोग हैं) आदि राजाओं का शासन था। एक तरह से देखा जाये तो तत्कालीन कामरूप (राज्य) राजनैतिक दृष्टि से अशान्त था। उनके समय में पूरे असम में आर्य और आर्येतर दोनों प्रकार के वर्ग रहते थे। समाज विभिन्न टोलियों और समुदायों में बँटा हुआ था तथा उनके खान-पान एवं रीति-रिवाजों में भी काफी अन्तर देखने को मिलता है। असम में ब्राह्मणों का सामाजिक जीवन में अधिक प्रभुता और धर्म के क्षेत्र में भी काफी विविधता थी। राजनीतिक, धार्मिक, और सामाजिक दृष्टि से उस समय का जन-जीवन बड़ा ही कलह पूर्ण रहा।

साहित्यकार का सीधा-सीधा सम्बन्ध समाज से ही होता है। साहित्यकार होने के नाते युगीन परिस्थितियों का प्रभाव पड़ना तो आवश्यक है। साहित्यकार भी समाज का अंग होता है। इसलिए वह भी समाज में घटित घटनाओं पर दृष्टि किये बिना नहीं रह सकता। बरगीत को शंकरदेव ने अपने भक्ति मार्ग का और उसके प्रचार का एक माध्यम बनाया। बरगीत को उन्होंने सिर्फ भक्ति तक ही सीमित नहीं रखा। समाज के विभिन्न समुदायों के साधारण लोगों को भक्ति से जोड़ने का एक प्रयास किया। उत्तर भारत में कबीरदास ने जिस तरह से निर्गुण भक्ति का प्रचार कर ब्राह्मणवाद के खिलाफ खड़ा किया और समाज के सभी उच्च और नीच माने जानेवाले समुदायों को भक्ति भी से परिचित कराया। ठीक इसी प्रकार शंकरदेव ने भी असम में ब्राह्मण धर्म के विरोध में नव वैष्णव भक्ति को खड़ा किया। इसके लिए शंकरदेव ने निर्गुण भक्ति मार्ग को चुना पर उसमें वैष्णव विचारधारा का प्रभाव था।

असमिया वैष्णव साहित्य का बरगीत एक महत्त्वपूर्ण शाखा है। शंकरदेव के समय को असमिया साहित्य का भक्तिकाल तथा उनके तत्कालीन समय को 'शंकरी युग' की संज्ञा से अभिहित किया जाता है। क्योंकि शंकरदेव तत्कालीन समय के एक महान चरित्रवाले युग-नायक थे। उनकी इसी महानता के कारण आलोचकों ने उनके समय को 'शंकरी युग' के नाम अभिहित किया। असमिया गीतीकाव्य के क्षेत्र में बरगीत अपनी साहित्यिक, सांस्कृतिक और ऐतिहासिक महत्त्व को स्थापित करता है। असम में वैष्णव धर्म का प्रचार करने के लिए शंकरदेव और उनके शिष्य माधवदेव का प्रथम प्रयास बरगीत रहा है। यानी कि बरगीत के द्वारा शंकरदेव ने वैष्णव धर्म को फैलाने का बीड़ा उठाया। असमिया साहित्य में वैष्णव आन्दोलन को 'नव वैष्णव धर्म'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की संज्ञा दिया जाता है। यह 'नव वैष्णव धर्म' बाह्मण्यवाद धर्म के खिलाफ उठ खड़ा हुआ। इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि तत्कालीन समाज में बाह्मणों का वर्चस्व अधिक रहा और समाज में वर्ण-व्यवस्था भी व्याप्त था। यदि धार्मिक दृष्टिकोण से देखा जाए तो वह युग बड़ा ही उथल-पुथलवाला रहा है।

शंकरदेव के बरगीत एक भक्ति-परक रचना है। अगर उनके बरगीतों की विशेषताओं को देखा जाये तो उसमें हमें मुख्यतः कृष्ण वन्दना, कृष्ण के रूप-सौन्दर्य का वर्णन, कवि का दैन्य भाव, नाम महिमा, भक्ति की महत्ता, गोपी विरह और कहीं-कहीं हमें श्रीराम का वर्णन भी देखने को मिलता है। उपर्युक्त सभी विशेषताओं को अपने बरगीत का वर्ण्य-विषय बनाया। 'शंकरदेव के बरगीतों को कवि और भक्ति मानस की मनोविजय का काव्य कहा जा सकता है।' यहाँ पर जिज्ञासा हेतु एक प्रश्न किया जा सकता है कि आखिर बरगीत किसे कहा जायेगा? लेकिन एक बात कहना आवश्यक है कि शंकरदेव और माधवदेव ने अपने गीतों को कभी भी बरगीत नहीं कहा। परवर्ती आलोचकों ने उनके गीत समूहों को 'बरगीत' नाम से अलंकरण किया।

बरगीत के सम्बन्ध में डॉ. वाणीकान्त काकति का मानना है कि " शंकरदेव के और माधवदेव के बरगीत उच्च नैतिक और आध्यात्मिक भावों पर प्रतिस्थित है। इसीलिए उन गीतों को बरगीत कहा जाता है। अंग्रेजी के कवि हेरिकेक (Herrick) ने भी आध्यात्मिक भाव पर आधारित कुछ कविता रचकर उनको 'Noble Numbers' नाम दिया था। हमारे साहित्य में भी बरगीत 'Noble Numbers' हैं।" बरगीत से हम यह अभिप्राय ले सकते हैं कि 'बर अर्थात् श्रेष्ठ और गीत अर्थात् गीत। यानी जो गीत श्रेष्ठ कहलाने का अधिकारी हो वही बरगीत है। शंकरदेव और माधवदेव (शंकरदेव के शिष्य) के गीतों को असम में श्रेष्ठ गीत के रूप में स्वीकार किया जाता है। जिसमें नैतिकता के साथ उच्च आध्यात्मिकता का भाव और परमार्थ की बात कही गयी है। इसीलिए उसे बरगीत की संज्ञा से अभिहित किया जाता है। आज भी शंकरदेव और माधवदेव द्वारा रचित गीतों को विभिन्न धार्मिक अनुष्ठानों में बरगीत के रूप में गाया और सुना जाता है। शंकरदेव और उनके शिष्य माधवदेव द्वारा रचित भक्तिपक गीत समूहों को ही असमिया वैष्णव समाज ने बरगीत के रूप में स्वीकार किया है। आज बरगीत उनके गीतों का पर्याय बन चुका है। शंकरदेव और माधवदेव के परवर्ती काल में कुछ प्रमुख वैष्णव कवि हुए जैसे रामचरण ठाकुर, भवानी पुरीया, गोपाल आता, अनिरिद्ध देव, श्रीराम आता आदि। इन लोगों ने भी उनकी (शंकरदेव और माधवदेव) भाँति उसी शैली में कुछ भक्तिपरक गीतों की रचनाएँ कीं। तथा उन गीतों को किसी-किसी क्षेत्रों में बरगीत के रूप में गाया भी जाता था। परन्तु असमिया वैष्णव समाज ने उन गीत समूहों को बरगीत के रूप में स्वीकार नहीं किया और न ही उस श्रेणी में ही रखा। केवल शंकरदेव और माधवदेव के द्वारा रचित भक्तिपरक गीतों को ही बरगीत के रूप में ग्रहण किया। राजमोहन नाथ, कालिराम मेधि, देवेन्द्रनाथ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बेजबरुवा, डॉ. वाणीकान्त काकति, डॉ. महेश्वर नेउग आदि प्रमुख आलोचकों ने भी शंकरदेव और माधवदेव के गीतों को ही बरगीत की संज्ञा से अभिहित किया। कालिराम मेधि ने बरगीत को 'महान् गीत' या 'स्वर्गीय गीत' (Great Song या Song Celestial) कहकर उच्च आध्यात्मिक आदर्श की ओर इशारा किया। शंकरदेव के बाद उनके शिष्य माधवदेव ने बरगीत कीं परम्परा को आगे बढ़ाया। यहाँ पर हम कह सकते है कि 'शंकरदेव और माधवदेव के द्वारा रचित भक्ति-परक गीत या पद ही बरगीत के श्रेणी में आते हैं, अन्य वैष्णव कवियों के नहीं।'

शंकरदेव ने अपने बरगीतों के माध्यम से पूरे असमिया जाति, समाज और संस्कृति को एक सूत्र में बाँधने का प्रयास किया था। इसीलिए शंकरदेव के बरगीतों को विशेष महत्त्व दिया जाता है और आज भी शंकरदेव असम प्रान्त के नामघरों में जीवित पाये जाते हैं। शंकरदेव के बरगीत अपना एक अलग पहचान और महत्त्व को स्थापित करता है। पूरे प्रान्तों में शंकरदेव को गुरु और उनके बरगीत को एक तरह से गुरुवाणी के रूप में सम्मान दिया जाता है। धर्म की दृष्टि से देखा जाये तो उसमें आध्यात्मिकता का विपुल सागर बहता है, संगीतात्मकता के दृष्टिकोण से देखा जाये तो उसमें विभिन्न राग (जैसे : धनश्री, मल्लार, गौरी, केदार आदि), सुर तालों का समिश्रण दृष्टिगोचर होता है। शंकरदेव के बरगीतों में साहित्यिकता, काव्यात्मकता एवं संगीतात्मकता का मनमोहक उदाहरण मिलता है। उनके बरगीतों में जनमानस को मन्त्र मुग्ध कर देनी की भी अपार क्षमता है। जिस प्रकार गीतों के लिए उपयोगी भाषा, छन्द, अनुप्रास युक्त शब्दों की प्रतिध्वनि, सुर, तालों का सुमधुर सम्बन्ध होता है, वैसा ही गुण उनके बरगीतों में भी पाया जाता है। शंकरदेव ने बरगीत के प्रथम दो पंक्तियाँ ध्रुव और फिर पद का नियोजन किया है। उदाहरण द्रष्टव्य है—

ध्रुव : विरहे आकुल गोपी हामाकू निमिउ।
झूरे नयनक नीर थिर नोहे चिउ।।
पद : माधव कहय उद्धव धरि हात।
कह मोहे गोपिनीक सन्देश वात।।
जानय नाहि गोपी मोहि विने आन।
देह बोध उद्धव गोपीक रहु प्राण।।
नाहि सुहृदय मोहे गोपीक समान।
ताहेर दुख शुनि छुटे मोर प्राण।।

(अर्थ : संगीतात्मकता के दृष्टिकोण से प्रस्तुत बरगीत के पद में भूपाली राग और एकताल है। मथुरा में कृष्ण उद्धव का हाथ पकड़कर कह रहे हैं कि सारी गोपियाँ मेरे विरह में आकुल हो उठी हैं। वे नयनों से अश्रु की धारा बहाकर अपने चित की व्याकुलता को प्रकट कर रही है। हे उद्धव! तुम वृन्दावन जाकर गोपियों तक मेरा सन्देश पहुँचाकर उन्हें सान्त्वना देना और उनके प्राणों की रक्षा करना। मेरे अलावा वे

 CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और कुछ भी नहीं जानती हैं। गोपियों के समान मेरा कोई अन्य सहृदय नहीं है उनके दुःखों की बात सुनकर मेरा प्राण निकला जा रहा है। इस पद में ब्रजाबुली भाषा का प्रयोग किया गया।)

शंकरदेव अपने बरगीत के पदों के माध्यम से प्रेम तत्त्व के महत्त्व को स्थापित करना चाहते हैं। उनका मानना है कि इस नश्वर संसार में जीते-जी मनुष्य मात्र से प्रेम करना चाहिए। शंकरदेव ने संसार की असारता को बरगीत में अभिव्यक्त किया है। वे संसार की लघुता और माया को लाँघ जाने की बात करते हुए प्रभु श्रीकृष्ण के चरणों में पड़कर निवेदन प्रकट करते हैं कि

ध्रुव : पावे पिर हरि करोहो कातरि
प्राण राखबि मोर।
विषय विषधर विषे जड़ जड़
जीवन नारहे थोर ॥
पद : अथिर धन जन जीवन यौवन
अथिर एहु संसार।
पुत्र परिवार सबहि असार
करबो काहेरि सार ॥
कदम दल जल चित चंचल
थिर नोहे तिल एक।
नाहि भयोभव भोगे हरि हरि
परम पद परतेक ॥
कहतु शंकर ए दुख सागर
पारा करा हृषिकेश।
तहु गति, मति देहु श्रीपति
तत्त्व पन्थ उपदेश ॥

(अर्थ : संगीतात्मकता के दृष्टिकोण से प्रस्तुत बरगीत में केदार राग है। हे हरि! मैं तुम्हारे पैरों में पड़कर विनम्र भाव से प्रार्थना करता हूँ कि आप मेरे प्राणों की रक्षा करना। क्योंकि मैंने भौतिक सुखों को भोगने में अपना सब कुछ खो दिया है। सांसारिक मोह-माया और विषय-वासना रूपी विषैले सर्प ने मुझे जकड़कर एकदम चेतना शून्य बना दिया है यदि आपकी कृपा नहीं हुई तो मेरे जीवन का कोई अस्तित्व नहीं रहेगा। शंकरदेव ने इस पद के द्वारा संसार को क्षणभंगुर और सभी सांसारिक वस्तुओं को धन-दौलत, मनुष्य का जीवन, यौवन, घर, पुत्र, परिवार, सगे-सम्बन्धी सभी को मूल्यहीन बताया है। कवि लोगों के समक्ष उदाहरण रखते हैं कि जिस प्रकार कमल के फूल की पत्तियों पर पानी ठहर नहीं सकता। ठीक इसी प्रकार मनुष्य का मन भी चंचल और अस्थिर है, कहीं भी क्षण-भर के लिए ठीक से नहीं रह सकता। संसार

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की भौतिक वस्तुओं की प्राप्ति को ही परमार्थ समझ लेना मूर्खता है। कवि शंकरदेव कहते हैं कि मनुष्यों को सांसारिक दुःखों से ईश्वर ही पार करा सकता है। वे पद के अन्त में कहते हैं कि अब मेरे मन में सांसारिक वस्तुओं के प्रति न कोई इच्छा-आकांक्षा है और न ही किसी प्रकार का भय रह गया है। भोग-विलास में कोई विश्वास नहीं रहा। हे हरि! तुम मेरे मन को ऐसी भक्ति दो कि मैं तुम्हारे उपदेश पर चलकर परम तत्त्व को प्राप्त कर सकूँ।)

शंकरदेव ने भी कबीरदास की भाँति संसार की असारता, माया, क्षणभंगुरता की बात कहकर भक्ति पर बल दिया है। उपर्युक्त सभी बातें कबीरदास के वाणी के समान शंकरदेव के बरगीतों में पाया जाता है। कबीर ने संसार को माया कहकर ठगिनी रूप में प्रस्तुत किया है। जैसे–

माया महा ठगिनि हम जानी।
तिरगुन फाँसि लिये कर डोलै, बोलै मधुरी बानी ॥
केशव के कमला होई बैठी, सिव के भवन भवानी।
पंडा के मूरत होय बैठी, तीरथ हूँ में पानी ॥
जोगी के जोगिन होई बैठी, राजा के घर की रानी।
काहू के हीरा होई बैठ, काहू के कौड़ी कानी ॥
भक्तन के भक्तिन होई बैठी, ब्रह्मा के ब्रह्मानी।
कहै कबीर सुनो भाई साधो, यह सब अकथ कहानी ॥

शंकरदेव के बरगीतों में जैसे असम के वैष्णव भक्ति और आदर्श घनीभूत होकर गीतों के माध्यम से प्रकाश हो उठा है। वैष्णवों का एक मात्र पूजनीय देवता विष्णु या श्रीकृष्ण है। उन्हीं के चरणों में वे आत्म-समर्पण कर भक्तिभाव से गुणगान और दूसरों को भी अपने आराध्य देवता की शरण लेने की बात करते हैं। संसार की असारता और विषय-वासना के विपरीत हरि भक्ति को श्रेष्ठ और सारतत्त्व बताकर सांसारिक मनुष्यों के मन को बरगीतों के द्वारा आकर्षित करने का प्रयास किया है। आधे से अधिक उनके बरगीत 'प्रार्थना' और 'वन्दना' पर आधारित हैं। जैसे 'गोपाल कि गति बैले, गोविन्द कि मति दिले', 'जय जय यादव जलनिधिजादव', 'नारायण काहे भकति करो तेरा', 'नारायण चरणे करोहो गोहारि', 'नारायण लीला जानव काहे, 'कैसे नरहरि तरण उपाय', आदि उत्कृष्ट और विख्यात वन्दनामूलक तथा प्रार्थनासूचक बरगीत हैं। वैष्णवों के लिए जानकीनाथ (श्रीराम) और श्रीकृष्ण ये दोनों अवतारी पुरुष तथा दोनों ही परमात्मा का प्रतीक स्वरूप हैं।

शंकरदेव के बरगीत में श्रीकृष्ण के साथ-साथ श्रीराम की वन्दना या वर्णन भी देखने को मिलता है। जैसे–'पामरु मन राम चरणे चिऊ देहु', 'मन मरि राम चरणहि लगाऊ', 'बोलेहु राम रामसे मुकुति निदान', 'श्रीराम मई हरि पापी पामरु', आदि। कुछ-कुछ गीतों के पदों में राम और कृष्ण के वर्णन में भाव एक समान दिखता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जनश्रुतियों के अनुसार प्रथम बरगीत की रचना 'मन मेरि राम चरणहि लगाउ' प्राचीन कामरूप राज्य वर्तमान असम) के बाहर 'बद्रिकाश्रम' में किया था। ऐसा अनुमान लगाया जा सकता है कि 'लम्बी तीर्थयात्रा के दौरान शंकरदेव ने उत्तर भारत के पश्चिमी क्षेत्रों के राम भक्ति शाखा के कवियों और वैष्णवों के सम्पर्क में आये और उनका प्रभाव उन पर पड़ा। इसलिए उन्होंने काव्य के साथ-साथ असमिया वैष्णव समाज में भी राम कथा को अवतरित किया। असमिया वैष्णव समाज में एकमात्र श्रीकृष्ण को केन्द्रीय चरित्र में रखा गया है। कारण यही हो सकता है कि शंकरदेव ने भक्ति आन्दोलन और उसके प्रचार के दौरान श्रीकृष्ण के चरित्र एवं व्यक्तित्व को आधार बनाया होगा। लेकिन सर्व भारतीय वैष्णव साहित्य और समाज में श्रीराम को भी यथोचित् स्थान दिया गया है। शंकरदेव के साहित्य और असमिया वैष्णव साहित्य में श्रीकृष्ण के भुवन मोहन रूप का वर्णन देखने को मिलता है। जैसे–'उरे सखि पेखोरे कंजलोचल चलिल नन्दकुमार', 'मधुर मुरुति मुरारु, मन देख हृदय हमारु', 'देखु सखि मुरति हरि', 'आनन्दे गोविन्द वाय वृन्दावने वेनु', 'बालक गोपाल करतरे केलि', आदि। शंकरदेव के दो-तीन बरगीत के पदों में बाल कृष्ण का रूप-वर्णन भी मिलता है। यहाँ पर एक बात कह सकते हैं कि 'शंकरदेव के शिष्य एवं कृष्ण भक्त कवि माधवदेव और सूरदास के पदों में जिस प्रचुर मात्रा में कृष्ण के बाल रूप एवं लीला का वर्णन मिलता है वैसा शंकरदेव के बरगीतों में नहीं मिलता।' शंकरदेव के कुछ बरगीतों में भाव अभिव्यक्त की रीति अन्य पदों से किंचित् भिन्न है। जैसे–

ध्रुव : शुन शुन रे सूर बैरी प्रमाणा,
निशाचर नाश निदाना।
राम नाम यम समरक साजि,
समदले कयलि पयाना ॥
पद : ठाट प्रकट पट्टु कोटि-कोटि कपि,
गिरि गर-गर पद धावे।
बारधि तरि-तरि करे गुरुतर गिरि,
धरि-धरि समरक धावे ॥
हाट घाट बहु बाट बियपी,
चौगड़ बेढ़ली लंका।
गुरु घन-घन घोष घरिषण गर्जन,
श्रवणे जनमय शंका ॥
धीर वीर शुर शेखर राघव,
रावण तुवापरि जाम्पे।
सूर नर किन्नर फनधर थर थर,
महीधर तरसि प्रकम्पे।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अन्ध मुगुध दशस्कन्ध पापबुध,
जानकी शिरत चराई।
रघुपति पदकर धर रजनीचर,
शंकर कहतु उपाय।।

प्रस्तुत पद में शंकरदेव ने आशोवाली राग और परि ताल का सुन्दर प्रयोग किया है। इस पद में शंकरदेव ने रावण के विरुद्ध रामचन्द्र की युद्ध यात्रा का चित्रण कर 'अन्ध मुगुध दशस्कन्ध' में रावण को पाप का प्रतीक मानकर उन्हें 'रघुपति पदकर' में आश्रय लेने की बात करते हैं। एक तरह से यह बरगीत धर्मोपदेश ही कहा जायेगा। इस तरह की विशेषताएँ भी शंकरदेव के बरगीतों में पाये जाते हैं। शंकरदेव के बरगीत की एक विशेषताओं के केन्द्र में हम कृष्ण और गोपियों के मध्य रहस्यमय सम्बन्ध को लेकर लिखे गये बरगीत को भी देख सकते हैं। उनके कुछ पदों में गोपियों का विरह वर्णन भी परिलक्षित होता है। उनके बरगीतों में श्रीकृष्ण के मथुरा गमन के पश्चात् गोपियों की विरह दशा और उद्धव को मध्यस्त व्यक्ति के रूप में वर्णन सजीव हो उठा है। जैसे–

ध्रुव : उद्धव बुध मधुपुरी प्राण हामारि,
जीऊ हामारि।
यदुपुरी पावत पुनु नावत,
कत सहबि विरह कुमारी ॥
पद : कैसे केशव पुनु पाय।
दुःख मेरी मोचन राजीवलोचन,
चरण नाहेरि जीव जाय ॥
कहे मोहे कानुक बाते।
नन्दनन्दन पुनु पावत गोपपुरा,
परशि जीयावत हाते ॥

शंकरदेव ने इस पद में एक तरफ गोपियों को और दूसरी तरफ कृष्ण को उद्धव के सम्मुख विच्छेद की यातनाओं को प्रकट कराया है। शंकरदेव के बरगीत का मूल भाव दास्य भक्ति है और इस भाव को आम जनता में प्रचार करना उनका उद्देश्य था। लगभग उनके सभी पदों के अन्त में दास्य भाव की भक्ति के उदाहरण देख सकते हैं। जैसे–'रामचरणे लेहु शरण जप गोविन्द नामा', 'चरण चिउ लाई', 'देह राम बिना गति नहे', 'शंकर कहे हरि सेवक तोर' आदि। असम के सम्पूर्ण वैष्णव साहित्य के सभी शाखाओं में दास्य भाव की भक्ति का प्रभाव को देखा जा सकता है।

उपर्युक्त विश्लेषण के आधार पर बरगीत के विषय-वस्तु के सम्बन्ध में यह सकते हैं कि वैष्णव धर्म के प्रचार के उद्देश्य से बरगीत का प्रणयन किया गया था। इसके माध्यम से निर्गुण निराकार परम ब्रह्म को साकार रूप में विविध नाम देकर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्रीकृष्ण, राम, नारायण और गोपाल आदि को एकमात्र उपास्य देवता मानकर उन्हीं का गुण-गान किया है। शंकरदेव के बरगीत में कृष्ण को रासलीला करनेवाले प्रेमी के रूप में नहीं, अपितु उनको परमात्मा का स्वरूप मानकर वर्णन एवं चित्रण किया गया है। बरगीत में श्रीकृष्ण को परित्राण कर्ता और पापविनाशक रूप में वर्णन किया गया है। शंकरदेव के बरगीतों की चर्चा की सुविधा के लिए इसे चार भागों में विभक्त कर सकते हैं। जैसे—(क) बरगीत में बाल गोपाल का वर्णन, (ख) बरगीत में गोपी उद्धव संवाद वर्णन, (ग) बरगीत में सच्चिदानन्द भगवान नारायण का वर्णन, और (घ) बरगीत में अभिव्यक्त आध्यात्मिक और दार्शनिक आदर्श। बरगीत को हम आध्यात्मिकता की कसौटी पर उतारकर देख सकते हैं।

(क) बरगीत में बाल गोपाल का वर्णन : कृष्ण के बाल-वर्णन के अन्तर्गत वृन्दावन के कालिन्दी नदी के किनारे गौ चराना, बाँसुरी बजाना, और नाना प्रकार के नृत्य कर आनन्द की अनुभूति करना आदि का चित्रण किया गया है। जैसे—

ध्रुव : आनन्दे गोविन्दे वाय वृन्दावन वेणु।
रूपे भुवन भुले
रहिया कदम्ब मूले
कालिन्दी तीरे राखे धेनु ॥

x x x x

ध्रुव : बालक गोपाल करतरे केलि।
उच्चाया पाञ्चयनि नाचे हासे गोप मेलि ॥

बरगीत में बाल गोपाल का रूप-चित्रण अति मनमोहक बन पड़ा है। उनका रूप सबको भा जाता है। एक सखी दूसरी सखी से कहती है कि—

ध्रुव : देखु सखी मधुर मूरुति हरि।
धरि अधरे पूरे मूरति ॥
पद : तनु अभिनव घनकाला।
उरे लुले कदम्बकु माला ॥
पीत अम्बर तड़ित ज्योति।
जले कम्बुगले गजमोति ॥
मनि कौस्तुभ कण्ठत लुले।
चारि शिरे शिखण्डक डोले ॥
नील अलक लोले कपाले।
कर्णत मरक कुण्डल डोले ॥
भुज कंकन रण्जे केयुरे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कटिक कनक किंकणि झुरे ॥
पदपंकज मंजरी रोले।
कृष्णकिंकर शंकर बोले ॥

(ख) बरगीत में गोपी उद्धव संवाद वर्णन : गोपी उद्धव संवाद के अन्तर्गत कृष्ण का वृन्दावन तथा गोकुल छोड़कर मथुरा गमन आदि का चित्रण किया गया है। कृष्ण के मथुरा गमन के पश्चात् उनके परम् भक्ति गोपिनी और प्राण प्रिय गोकुलवासियों की वेदना और पीड़ा का मार्मिक चित्रण किया गया है। श्रीकृष्ण सब कुछ जानकर अपने परम् मित्र उद्धव को गोकुल भेजते हैं। गोपियाँ उद्धव से अपने प्राण प्रिय कृष्ण के बारे में पूछती हैं तथा श्रीकृष्ण का गुण-वर्णन करते हुए गापियाँ कहती हैं कि जिस गोपाल को हम हमेशा हृदय से ध्यान करते हैं, वह कृष्ण सम्पूर्ण गोकुल वासी के लिए जीवन-धन है। उस केशव के बिना हम जीवन को कैसे धारण कर सकते हैं। शंकरदेव ने कृष्ण को बरगीत में परमात्मा और गोपियों को जीवात्मा का प्रतीक स्वरूप में वर्णन किया। आत्मा का परमात्मा के बिना जीवन निरर्थक है। कवि शंकरदेव कहते हैं कि—

ध्रुव : कि कहब उद्धव, कि कहब प्राण।
गोविन्द बिने भयो गोकुल उछान ॥
पद : शून्य भेल अंगिना बिरिन्दा बिविन।
ना शोभे रयनी जैसे चान्दबिहिन ॥
नाहि चारब धेनु कालिन्दीक कूल।
आर न शुनबो बेनु कदम्बक मूल ॥
मथुरा रहल सब गोपिनीक पीऊ।
केशव बिने कैसे धरबहो जीऊ ॥

सभी गोपियाँ उद्धव से कहती हैं कि हम लोगों ने पति-पुत्र की अभिलाषा त्याग कर सिर्फ कृष्ण के चरणों की ही चिन्ता कर रहे हैं। जैसे—

ध्रुव : कह मोहे उद्धव जीऊ।
कैसे छाड़ल गोष्ठ कृष्ण प्राणपिऊ ॥

पद : पति सुत सुहृद सबहि अभिलाषा।
छोड़ि कयलों कृष्ण चरणकु आशा ॥
तबहु रहलि मेरि बन्धु मधुपुरी।
निकरुण कानु नावे अवहु बहुरि ॥
ब्रजकु जीवन धन नन्दक कुमार।
बिछुड़ल पूरबक सुनेह हामार ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कैसे धरबो अब ब्रजबधु प्राण।
कृष्णकिंकर रस शंकरे भाण ॥

(ग) बरगीत में सच्चिदानन्द भगवान नारायण का वर्णन : भगवान नारायण ही इस मायामय संसार से भक्तों को मुक्ति दिला सकते हैं। बरगीत के इस भाग में कवि ने कहा है कि मायामय संसार के भोग-विलास में लिप्त रहने पर उससे उद्धार होने का उपाय नहीं है। यदि काम, क्रोध, लोभ, माया, वासना, मद, माधुर्य आदि सांसारिक रूपों से बचे रहना है तो हरिनाम का श्रवण कीर्तन और स्मरण करते रहना होगा। इस संसार से राम-नाम ही एकमात्र मुक्ति का मार्ग है।

ध्रुव : बोलहु राम नामेसे मूकुति निदाना।
भव बैतरणी-तरणी सुख सरणी
नाहि नाहि राम नाम समाना ॥

(घ) बरगीत में अभिव्यक्त आध्यात्मिक और दार्शनिक आदर्श : बरगीत में शंकरदेव ने ईश्वर को तीनों लोकों में सत्य बताया है। वह माया से परे सच्चिदानन्द स्परूप है। शंकरदेव कहते हैं कि—

जगजन जीवन अजन जनार्दन
दनुजदमन दुखहारी।
महादानन्दकन्द परमानन्द
नन्दनन्दन बनचारी ॥

कवि ने भारतीय वेदान्त दर्शन के अद्वैतवाद अर्थात् ब्रह्म सत्य जगत मिथ्या को प्रकाशित किया है। परम ब्रह्म ही सगुण रूप धारण कर राम, हरि, विष्णु आदि नामों से विभूषित होकर एकमात्र भजनीय और उपास्य देवता के रूप में अवतरित हुआ है।

ध्रुव : नाहि नाहि रमया बिने पापतारक कोई।
परमानन्द-पद-मरकन्द सेवहु मन मोई ॥

सांसारिक प्रवृत्तियाँ काम, क्रोध, लोभ, मद, वासना, माया आदि मुनष्य को पथ भ्रमित कर उलझाती रहती है। शंकरदेव कहते हैं कि इस संसार से उद्धार और सत्य की ओर अग्रसर होने के लिए राम या नारायण के चरणों के अलावा कोई दूसरा मार्ग नहीं है। वही सब पापों का नाश कर मुक्ति दे सकते है।

ध्रुव : नारायण चरणे करहों गोहारी।
बिषय-बिलास-पाशे छान्दि इन्द्रिय मोहि
उहि लुटै बाटौवारी ॥

शंकरदेव ने बरगीत में भक्ति से ही ईश्वर की करुणा लाभ करने का उपाय बताया है। बरगीत में श्रवण-कीर्तन के अलावा प्रेमभक्ति, दास्यभक्ति और एकचरण भक्ति

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मार्ग का वर्णन किया है। 'एक नाम धर्म' ही शंकरदेव के भक्ति मार्ग का प्रमुख सिद्धा है। बरगीत के विषय-वस्तुओं ने जिस तरह लोगों को आकर्षित और अपने महत्त्व स्थापित किया है। ठीक इसी प्रकार बरगीत का साहित्यिक सौन्दर्य अपने महत्त्व बनाये रखने में सफल हो सका है। कवि ने बरगीत में शब्दालंकारों और अर्थालंक का सुन्दर और यथोचित प्रयोग कर गीतों के सौन्दर्य में वृद्धि कराया है। इसमें हमें अनुप्रा अन्त्यानुप्रास आदि अलंकारों का सुन्दर उदाहरण मिलता है। जैसे—

1. शुन शुन रे सूर बैरी प्रमाणा, निशाचर नाश निदाना।
राम नाम यम समरक साजि, समदले कयलि पयाना ॥
2. जगजन जीवन अजन जनार्दन दनुजदमन दुखहारी।
महादानन्दकन्द परमानन्द नन्दनन्दन बनचारी ॥

निःसन्देह शंकरदेव के द्वारा रचित भक्तिपरक पदों को ही बरगीत कहा जा है। शेकरदेव के बरगीत गीतिकाव्य का एक श्रेष्ठ उदाहरण है। नाटक पद अपेक्षाकृत शंकरदेव के गीतों ने ही वैष्णव आन्दोलन को प्रचारित करने में अधि सहायता किया। इसके माध्यम से उन्होंने नव वैष्णव धर्म का काफी प्रचार किय आज भी नामघरों में बरगीत को गाया जाता है। बरगीत वैष्णव और पूरे असमि जाति के लिए गुरुवाणी है। विविध जाति और समुदायों में बीच आज भी शंकर जीवित पाये जाते हैं। कबीर की भाँति शंकरदेव भी एक क्रान्तिकारी भक्त कवि थे उनकी भक्ति, बरगीत और समाज-दर्शन की प्रासंगिकता आज भी है। ऐसे भक्त क की आवश्यकता हर काल में होती है।

बरगीत महापुरुष श्रीमन्त शंकरदेव का अभिनव अवदान है। हम वैष्णव भक्ति को सगुण भक्ति के रूप जानते हैं। परन्तु शंकरदेव एक मात्र ऐसे सन्त कवि हु जिन्होंने वैष्णव भक्ति को निर्गुण भक्ति के रूप में प्रचार किया। आज भी असम नामघरों में ईश्वर के किसी भी सगुण रूप का दर्शन नहीं होता है। उनका उद्देश्य कि वैष्णव भक्ति को आर्येतर समुदायों में भी स्थान मिले तथा यह किसी एक जा और वर्ण-विशेष का धर्म बनकर न रहे। इसे ब्राह्मणवाद के घेरे से निकालकर आ लोगों तक पहुँचाना था। क्योंकि पूर्वोत्तर भारत विविध भाषा-भाषीवाला प्रान्त रहा और यह आर्यो और अनार्यो दोनों समुदायों का वासस्थल है। सामाजिकता के सम्बन्ध में कबीर और शंकरदेव आपस में मेल खाते हैं। शंकरदेव असम प्रान्त के भक्ति आन्दोलन के प्रवर्तक माने जाते है तथा उनका भक्ति आन्दोलन के दौरान समाज विविध सामाजिक विसंगतियों को दूर करने का प्रयास रहा है अपने भक्ति सिद्धा 'एक नाम धर्म' की स्थापना कर 'नव वैष्णव भक्ति' का प्रचार करना चाहते थे। ए नाम धर्म से अभिप्राय है कि सम्पूर्ण जगत में एक ही ईश्वर है, उसी का स्मरण, ज तप, प्रार्थना और भक्ति करनी चाहिए। उनके भक्ति मार्ग का बरगीत एक माध्यम र

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है और उसके लिए ब्रजाबुली भाषा का प्रयोग किया। यह ब्रजाबुली एक प्रकार की कृत्रिम भाषा है। जिसमें असमिया, संस्कृत, ब्रज, हिन्दी, ओड़िया, बाङ्ला आदि को मिलाकर एक भाषा तैयार किया गया। असम के सामाजिक और सांस्कृतिक जीवन में बरगीत का विशेष महत्त्व है। इसमें साहित्यिकता, काव्यात्मकता और संगीतात्मकता का सुन्दर समाहार रूप देखने को मिलता है। असमिया साहित्य में बरगीत गीतिकाव्य और दास्य भक्ति का एक उत्कृष्ट उदाहरण है।

टिप्पणी– इस आलेख में जितने भी शंकरदेव के द्वारा रचित बरगीत के पद लिये गये हैं सभी का मैंने मूल भाषा असमिया से हिन्दी में लिप्यन्तरण किया है।

सन्दर्भ ग्रन्थ

असमिया

1. बरुवा, शान्तनु कौशिक, सम्पादन और संकलनकर्ता, (तृतीय संस्करण, 2009), माहपुरुष श्री श्री शंकरदेव और माधवदेव विरचित बरगीत, प्रकाशक–ज्योति प्रकाशन, पानबजार, गौहाटी 01, असम।
2. वर्मन, शिवनाथ, सम्पादक, (प्रथम संस्करण, जून, 1991), शंकरदेव, असमिया साहित्यर बुरंजी, प्रकाशक–आनन्दराम बरुवा भाषा-कला-संस्कृति संस्था, उत्तर गौहाटी 30, असम।
3. महन्त, बापचन्द्र, (द्वितीय संस्करण, अक्टूबर, 2012), महापुरुषर शंकरदेवर बरगीत, प्रबन्ध गानर परम्परागत बरगीत, प्रकाशक–बनलता, नतुन बजार, डिबरुगढ़ 01, असम।
4. महन्त, बापचन्द्र, सम्पादक, (प्रथम संस्करण, अगस्त, 1992), बरगीत, प्रकाशक–स्टुडेण्ट स्टोरस, कॉलेज होस्टेल रोड, गौहाटी 01, असम।
5. शर्मा, कुसुम चन्द्र, (प्रथम संस्करण, अक्टूबर, 2004), शंकरदेव साहित्यर आभाख, वैष्णव भक्तिवाद शंकरदेव आरु माधवदेवर साहित्य आलोचना, प्रकाशक–श्रीमती कामेश्वेरी देवी, हेमन्तिका, जापारकुसि, नलवारी, असम।
6. काकति, डॉ. वाणीकान्त, (पंचम संस्करण, अगस्त, 2011), बरगीत शीर्षक प्रबन्ध, पुरनि असमिया साहित्य, प्रकाशक–राजेन्द्र प्रसाद मजूमदार, असम प्रकाशन परिषद, गौहाटी 21, असम।

हिन्दी

7. द्विवेदी, आचार्य हजारीप्रसाद, (तेरहवीं आवृत्ति, 2006), कबीर, प्रकाशक–राजकमल प्रकाशन प्रा. लि., नयी दिल्ली- 02।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राम और राष्ट्र को समर्पित स्वाभिमानी साहित्यकार डॉ. रमानाथ त्रिपाठी

रुक्मिणी*

अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति के राम-साहित्य विशेष, बहुभाषाविद् सहृदय साहित्यकार निःस्पृह देशभक्त डॉ. रमानाथ त्रिपाठी का जन्म यमुना-तट पर स्थित क्यों गाँवा(औरेया—इटावा) के कान्यकुब्ज ब्राह्मण-परिवार में 5 अगस्त, 1924 ई. को हु था। उस दिन नागपंचमी थी। त्रिपाठी जी को ब्राह्मणों के विधि-निषेधों का पालन क उठाकर करना पड़ा था। अभावों में पले रमानाथ जी का सम्पूर्ण जीवन ही संघर्ष रहा। वे बचपन से ही मेधावी, जिद्दी, स्वाभिमानी, विविध कलाप्रिय और निः राष्ट्रभक्त रहे हैं। हाई स्कूल में पढ़ते समय स्वयंपाकी ब्राह्मण होने के कारण वे ह से भोजन बनाया करते थे। दोनों समय भोजन बनाने के कष्ट से बचने के लिए केवल एक बार भोजन करते थे। कक्षा का मेधावी छात्र होने के कारण उन्हें सरक छात्रवृत्ति मिली थी। दसवीं की परीक्षा में उन्हें प्रथम श्रेणी प्राप्त हुई। घर के चाहते थे कि वे नौकरी कर परिवार का पालन करें। जिद्दी रमानाथ ने घोर विरोध परवाह न कर कॉलेज में पढ़ने का निश्चय किया। प्रथम श्रेणी होने के कारण का के विक्रमजीतसिंह सनातन धर्म कॉलेज ने उनकी पूरी फीस माफ कर दी और छात्रवृत्ति भी दे दी। उन्हें एक ट्यूशन भी मिल गया। इतने से गुजारा नहीं होता यहाँ भी वे असहाय होने के कारण केवल एक बार भोजन करने के लिए विवश यह कॉलेज पूरे देश में कॉमर्स कॉलेज के रूप में विख्यात था।

इण्टर में आर्ट्स विषय नहीं पढ़ाये जाते थे। मजबूर होकर त्रिपाठी जी स्वभाव के विरुद्ध कॉमर्स विषय लेने पड़े। शॉर्टहैण्ड-टाइपिंग और एकाउण्टैन्सी

एसोसिएट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग, पी.जी.डी.ए.वी. कॉलेज(सान्ध्य), दिल्ली विश्वविद्यालय, सदस्य, विद्वत परिषद, दिल्ली विश्वविद्यालय। पता : 26/95, शक्ति नगर, दिल्ली—1100
मो. : 09811381925

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रूखे विषय पढ़ने और भूख से लड़ने में ही उनकी ऊर्जा शेष होती रही। किसी ने भी उन्हें एक पैसे की सहायता नहीं दी।

मैस में प्रत्येक रविवार को स्पेशल डाइट बनती थी। इसके लिए चार डाइटों के पैसे लिए जाते थे। त्रिपाठी जी कल्पित बहिन के यहाँ जाने का बहाना कर गंगा-घाट की छत पर भूखे-प्यासे लेटे रहते और भोजन का समय निकल जाने पर कमरे में आ जाते। इस प्रकार वे चार डाइटों के पैसे बचा लिया करते थे। सप्ताह में एक-दो दिन वे 7 किलोमीटर पैदल चलकर गया प्रसाद शुक्ल लाइब्रेरी जाकर विविध पत्रिकाओं का अध्ययन किया करते थे। इस प्रकार साहित्य से उनका सम्बन्ध जुड़ा रहा।

आई.कॉम. की परीक्षा में प्रथम श्रेणी आने के बावजूद उन्होंने कॉमर्स छोड़कर बी.ए. में प्रवेश लिया। उन्हें यूनिवर्सिटी स्कॉलरशिप मिल गई, कॉलेज में उनकी ख्याति मेधावी छात्र, सहृदय कवि और संघ के निष्ठावान स्वयंसेवक के रूप में थी। एम.ए. करने के बाद वे उसी कॉलेज में हिन्दी प्राध्यापक नियुक्त हुए। वे परिश्रमी और दक्ष अध्यापक तो थे ही, यूथ फेस्टिबल के प्रभारी होने के नाते प्रतिभाशाली छात्रों के विकास के लिए भी प्रयत्नशील रहा करते थे। उन्होंने अभिनय, भाषा-शिक्षा और साहित्य से सम्बन्धित कई संस्थाओं का संचालन किया था।

यहाँ 14 वर्षों तक पढ़ाने के पश्चात् उनकी नियुक्ति दिल्ली विश्वविद्यालय के सान्ध्य स्नातकोत्तर विभाग में हुई। विभागाध्यक्ष डॉ. नगेन्द्र ने योग्यता के आधार पर उन्हें लगाया था, किसी की सिफारिश के कारण नहीं। उस समय विश्वविद्यालय के पूरे चार-पाँच सौ अध्यापकों में केवल चार लोग डी.लिट्. थे। त्रिपाठी जी उनमें एक थे। वे निरन्तर अपनी योग्यता बढ़ाते गये। निरन्तर उनके ग्रन्थ छपते रहे। डॉ. नगेन्द्र के सम्पादन में छपनेवाले कई ग्रन्थों में असमिया, बाङ्ला और ओड़िया साहित्य से सम्बन्धित शोधकार्य में त्रिपाठी जी ने सहयोग दिया था। प्रायः किसी अध्यापक को किसी एक वैकल्पिक विषय का विशेषज्ञ माना जाता है। त्रिपाठी जी से आठ-आठ वैकल्पिक विषय पढ़वाये गये। उन्होंने आदि, मध्य और आधुनिक साहित्य का अध्यापन किया। पालि, बाङ्ला और असमिया साहित्य भी पढ़ाया। किसी कारण किसी विषय का अध्यापक उपलब्ध नहीं होता था तो वह विषय त्रिपाठी जी पर थोप दिया जाता था। वे जितनी अपनी योग्यता बढ़ाते गये विश्वविद्यालय उतनी ही उनकी उपेक्षा करता गया। बत्तीस वर्ष तक उच्च कक्षाओं में पढ़ाने के अनुभव के बाद उनकी प्रोन्नति हो सकी। बार-बार ठुकराये जाने से वे बारबार टूटते रहे।

1991 ई. में सेवामुक्त होने के पश्चात् वे भोपाल के भारत भवन की निराला सृजन पीठ के निदेशक नियुक्त हुए थे।

किशोरावस्था से ही रमानाथ जी को देशभक्ति के संस्कार मिले थे। क्रान्तिकारी शचीन्द्रनाथ सान्याल की पुस्तक 'बन्दी जीवन' पढ़कर वे क्रान्तिकारियों से प्रभावित हुए थे। वे रात के अँधेरे में घर-भवनों के बाहर 'वन्दे मातरम्' लिख आते थे या तिरंगा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ध्वज बना दिया करते थे। अंग्रेजों के क्रूर शासन में यह दुःसाहस से भरा कार्य था
त्रिपाठी जी ने 1942 के प्रसिद्ध आन्दोलन में भाग लेकर औरैया थाना के भवन
झण्डा फहराने का प्रयास किया था। पुलिस की फायरिंग में दर्जनों लोग हताहत हु
थे। पुलिस छात्रों की धर-पकड़ कर अमानुषिक अत्याचार कर रही थी। त्रिपाठी
जिला छोड़कर भूमिगत हो गये थे। प्रतिकूल परिस्थितियों में रहने के कारण
जानलेवा मलेरिया ज्वर और पीलिया के शिकार होकर मुश्किल से बच पाये थे।

कानपुर आने पर उनका परिचय *राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ* से हुआ। संघ
अनुशासन, संगठन-कौशल और निस्पृह उत्कट देशभक्ति से प्रभावित होकर वे स्व
सेवक बन गये। कॉलेज की पढ़ाई और ट्यूशन करते हुए भी वे नित्य तीन-चार घ
का समय देकर संघ-कार्य करते रहे। 1948 ई. में महात्मा गाँधी की जघन्य हत्या
झूठा आरोप लगाकर नेहरू सरकार ने संघ को प्रतिबन्धित कर दिया। संघ की ए
अनिवार्य गुप्त बैठक में भाग लेने के कारण त्रिपाठी जी एक पेपर नहीं दे पाये। इस
सदैव प्रथम श्रेणी पानेवाले त्रिपाठी जी का बी.ए. का परीक्षा फल प्रभावित हुआ। सं
ने प्रतिबन्ध के विरुद्ध विराट् सत्याग्रह किया था। सत्याग्रहियों से पूरे देश की जेलें भ
गयी थीं। छात्र कैरियर की परवाह न करते हुए त्रिपाठी जी ने भी सत्याग्रह किया था
उन्हें ढाई मास के सश्रम कारावास का दण्ड मिला था। परीक्षा से केवल 10-15 दि
पहले छूटकर आये त्रिपाठी जी के पास न तो भोजन के लिए पैसे थे और न पढ़ने
लिए पुस्तकें थीं। बिना किसी तैयारी के उन्होंने कलम के बल पर परीक्षा दी थी। च
अंकों से उनकी प्रथम श्रेणी मारी गयी थी।

1964 ई. में वे दिल्ली आ गये थे। यहाँ भी वे राष्ट्रीय विचारधारा
प्रचार-प्रसार के लिए छात्रों, प्राध्यापकों और साहित्यकारों के संगठन-कार्य में जुटे रहे
वे कई वर्ष तक *अखिल भारतीय साहित्य परिषद्* के केन्द्रीय अध्यक्ष रहे। उन्हों
जनसंघ और भारतीय जनता पार्टी की सदस्यता ग्रहण न करते हुए भी जमकर का
किया। *इमरजेन्सी* के दौरान इन्दिरा सरकार ने उन पर दो-दो धाराएँ लगाकर तिहा
जेल में बन्द कर दिया था। जेल में साथियों का मनोबल बनाये रखने के लिए
बाङ्ला भाषा की कक्षाएँ लेते और रामकथा से सम्बन्धित प्रेरणादायक व्याख्यान दि
करते थे। जमानत से छूटने के बाद भी वे इन्दिरा के काले शासन के विरुद्ध आ
उगलते रहते थे।

बहुभाषाविद् डॉ. त्रिपाठी ने किशोरावस्था में ही बाङ्ला लेखक बंकिम च
चट्टोपाध्याय, रवीन्द्र नाथ ठाकुर और शरच्चन्द्र चट्टोपाध्याय के अनेक अनूदित उपन्यास
पढ़ डाले थे। वे बाङ्ला संस्कृति और नारी से बहुत प्रभावित हुए थे। रद्दी में पड़े ए
बाङ्ला अखबार को बार-बार पढ़कर उन्होंने बाङ्ला लिपि और भाषा सीख ली थी
कानपुर आकर बंगालियों के साहचर्य में रहकर दुर्गापूजा आदि के अवसरों पर बाङ्ला
में भाषण देने लगे थे। वे बाङ्ला नाटकों में अभिनय भी किया करते थे। इसी प्रका

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उन्होंने जब किसी असमिया और ओड़िया भाषी व्यक्ति के चेहरे तक नहीं देखे थे, तब उन्होंने इन भाषाओं का ज्ञान पुस्तकों के माध्यम से कर लिया था। उन्होंने इन तीनों भाषाओं की रामायणों का 'मानस' के साथ तुलनात्मक अध्ययन कर पी-एच.डी. और डी.लिट्. की उपाधियाँ प्राप्त की थीं। इससे पहले इन भाषाओं के लेखकों ने भी अपनी रामायणों पर शोधकार्य नहीं किया था। त्रिपाठी जी उनके मार्गदर्शक बने। इन भाषाओं के बड़े-बड़े साहित्यिक समारोहों में वे आमन्त्रित हुए और उन्होंने इन भाषाओं में धाराप्रवाह भाषण दिये। उन्होंने इन तीनों भाषाओं से हिन्दी और हिन्दी से इन भाषाओं में अनुवाद किये। उन्होंने एम.ए. परीक्षाओं में विकल्प के रूप में बाङ्ला और ओड़िया भाषा के प्रश्नपत्र बनाये। गौहाटी विश्वविद्यालय ने असमिया में लिखे लगभग दर्जन शोध-प्रबन्धों का मूल्यांकन उनसे कराया।

पूर्वी बंगाल (आधुनिक बाङ्लादेश) में असंख्य आख्यान-गीत लिखे गये हैं। इनका अध्ययन कर डॉ. रमानाथ ने नयी विधा का 'शंख-सिन्दूर' उपन्यास लिखा है। इसमें बंगाल की लोक-संस्कृति, परिवेश और नयी-नयी उपमाओं का मनोहारी चित्रण है। इस ऐतिहासिक और आंचलिक उपन्यास को प्रकाण्ड विद्वान डॉ. हजारीप्रसाद द्विवेदी ने सराहा था। ओड़िया, असमिया और अंग्रेजी में इनके अनुवाद हुए हैं। उ.प्र. हिन्दी संस्थान ने तत्कालीन राज्यपाल के माध्यम से इसे पुरस्कृत किया था। असमिया परिवेश पर आधारित उनका 'कामरूपा' उपन्यास भी चर्चित है। ओड़िसा की कवयित्री कुन्तला कुमारी (जैनेन्द्र की कल्याणी) पर भी उनकी पुस्तक प्रकाशित हुई है।

ढाई वर्ष के शिशु रमानाथ ने माँ की गोद में बैठकर धनुषयज्ञ लीला देखी थी। माँ की गोद में बैठकर ही उसने 'रामचरितमानस' के छन्द सुने थे। किशोर होने पर वह रात-रात-भर जागकर रामलीला देखा करता था। इस प्रकार त्रिपाठी जी को *रामकथा* घुट्टी में मिली थी। उन्होंने आठ भाषाओं की रामायणें मूल में पढ़ीं, शेष के अनुवाद पढ़े। भाषा-रामायणों पर उनके दो शोध-प्रबन्ध और दो निबन्ध-संग्रह प्रकाशित हैं। वाल्मीकि की कथा ने कैसे-कैसे नये मोड़ स्वीकार किये और उसमें आँचलिक तत्त्वों का कैसे समावेश होता गया, इसकी खोज त्रिपाठी जी ने विशेष रूप से की है। उनकी दृष्टि में रामायण घरेलू जीवन का महाकाव्य है। ऐसा ग्रन्थ विश्व के किसी देश-संस्कृति को उपलब्ध नहीं है। उनकी दृष्टि में राम के उदात्त चरित्र से निम्न प्रेरणाएँ मिलती हैं–

1. घर-परिवार और समाज के लिए बड़े-से-बड़ा त्याग
2. सदाचार-मय जीवन-यापन
3. समाज के सन्तप्त और उपेक्षित जनों के लिए अपनत्व
4. आततायी क्रूर शक्ति के विरुद्ध निर्भय होकर संघर्ष।

रामकथा के क्षेत्र में त्रिपाठी जी का दूसरा प्रयास है, *विदेश-स्थित* रामकथाओं का अध्ययन। उन्होंने दक्षिण-पूर्व एशिया के 14 देशों की रामकथाओं का बारीकी से

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अध्ययन किया है। त्रिपाठी जी की खोज के अनुसार इन रामायणों में प्रायः निम्न प्रसं आये हैं—

1. सीता रावण की पुत्री है।
2. सीता ने रावण का चित्र बनाया था, इस कारण उनका निर्वासन हुआ
3. वाल्मीकि ने सीता के एक अतिरिक्त पुत्र की सृष्टि की।
4. रामायणी पात्रों में परस्पर रक्त सम्बन्ध स्थापित किये गये।
5. कुछ रामायणों पर बौद्ध धर्म का भी प्रभाव है।

इस क्षेत्र में डॉ. रमानाथ जी का तीसरा शोधकार्य है वन्यजातियों में उपलब्ध कथा-प्रसंग। असम से केरल तक लगभग 300 वन्यजातियाँ हैं। अधिकांश वन्यजाति में रामकथा-प्रसंग हैं, कुछ में तो पूरी रामायण ही है। त्रिपाठी जी ने बताया है- "वन्यजातियों को राम बहुत अच्छे लगे हैं। राम उन्हीं की तरह धनुर्धर हैं, उन्हीं की तरह वन-वन भटकते हैं। उन्हीं की तरह पशु-पक्षियों को प्यार करते हैं। परिवार के जनों, विशेषतः पत्नी के प्रति राम उन्हीं की तरह सहृदय हैं।" त्रिपाठी जी ने यह भी बताया है कि—वनवासियों की दृष्टि में सृष्टि में जो कुछ भी अच्छा है वह राम-सीता के वरदान के कारण है, तथा जो कुछ भी बुरा है वह उनके शाप के कारण।

पचास वर्षों तक विभिन्न दृष्टियों से रामकथाओं का अध्ययन कर उन्होंने रामकथा के ऐतिहासिक स्वरूप को मन में सुनिश्चित कर रामगाथा उपन्यास लिखा है इसमें महामानव राम के सत्य स्वरूप का चित्रण है। त्रिपाठी जी ने इसमें भाषा-रामायणों के रोचक प्रसंगों का समावेश भी किया है। कहीं-कहीं लोकतत्त्व भी जोड़ दिये गये हैं इसे पढ़कर पाठक त्रेतायुग के परिवेश में पहुँच जायेगा। इस उपन्यास के सीता-निर्वासन जैसे प्रसंग पाठक को रुला देते हैं। इसके अनुवाद अंग्रेजी, गुजराती और तेलुगु में हुए हैं।

रमानाथ जी मूलतः कवि और कथाकार रहे हैं। मिडिल स्कूल में पढ़ते समय वे दोहा और कवित्त-सवैया छन्द लिखने लगे थे। हाई स्कूल में पढ़ते समय उन्होंने कई गीतों की रचना की थी। राम और राष्ट्र के प्रति वे ऐसे समर्पित हुए कि अपने इन गुणों का विकास न कर सके। उनका समग्र कविता-संग्रह 'अपूर्वा' प्रकाशित है। जिसमें हिन्दी के सभी काव्यान्दोलनों की झलक है। 'फूल बेला के' नाम का कहानी-संग्रह भी प्रकाशित है।

त्रिपाठी जी के कथा-साहित्य पर 'पथेर पांचाली' के लेखक विभतिभूषण वन्द्योपाध्याय, शरच्चन्द्र चट्टोपाध्याय और गुरुदत्त वैद्य का प्रभाव है। उनके उपन्यासों में श्रृंगार-वात्सल्य के साथ सामयिक राजनीतिक परिस्थितियों की भी झलक है। उदाहरण है 'कली और धुआँ' उपन्यास। उनके उपन्यास राष्ट्र के प्रति समर्पण की प्रेरणा देते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

डॉ. त्रिपाठी के यात्रा-वृत्तान्त 'हिम किरीट से सागर' में केदारनाथ, बदरीनाथ, कन्याकुमारी, रामेश्वरम् और मॉरीशस की साहित्यिक यात्राओं का रोचक वर्णन है। इस पुस्तक पर उ.प्र. हिन्दी संस्थान ने पूर्व प्रधानमन्त्री श्री अटल बिहारी वाजपेयी के कर कमलों से अज्ञेय पुरस्कार प्रदान किया था। त्रिपाठी जी की आत्मकथाएँ 'वनफूल' और 'महानागर' एक अपराजेय व्यक्ति की संघर्ष गाथा हैं। ये सामाजिक-राजनीतिक गतिविधियों और लुप्तप्राय लोकतत्त्वों की दस्तावेज भी हैं।

राम साहित्य के विशेषज्ञ के रूप में डॉ. त्रिपाठी आकाशवाणी, दूरदर्शन, कई विश्वविद्यालयों और कई स्तरीय संस्थाओं द्वारा आमन्त्रित हुए हैं। भारत सरकार ने उन्हें दो-दो बार विश्व रामायण सेमिनारों में भाग लेने के लिए मॉरीशस भेजा है। हिन्दू यूनिवर्सिटी ऑफ अमेरिका ने उन्हें 'विश्व तुलसी सम्मान' प्रदान किया है। लगभग 40 पुस्तकों के लेखक डॉ. त्रिपाठी को 30 पुरस्कार-सम्मान मिले हैं।

भोपाल से प्रकाशित पत्रिका 'साक्षात्कार' में प्रस्तुत भेंटवार्ता में त्रिपाठी जी ने कहा है—"मुझे न कोई शौक है और न कोई लत, रोटी-दाल-चावल-सब्जी पसन्द करता हूँ। कभी-कभी रोटी-सब्जी से ही काम निकल जाता है। होटल और सिनेमा जाने को शौक नहीं। सिगरेट और शराब जैसी चीजों को छूता भी नहीं। हाथ के धुले सादे कपड़े पहनता हूँ। मेरा कोई स्टडी रूम नहीं है। पलँग को ही मेज बनाकर मोढ़े पर बैठकर तब तक पढ़-लिख लेता हूँ जब तक बीमार आँखें साथ देती हैं। पत्नी पास में ही रिमोट हाथ में लिये टी.वी. देखती रहती है। मेरी एकाग्रता पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता।"

स्वाभिमानी डॉ. त्रिपाठी को किसी समर्थ व्यक्ति का संरक्षण या प्रोत्साहन नहीं मिला। किसी मठाधीश के आगे उन्होंने हाथ नहीं पसारे, साहित्यिक गुटबाजी से दूर रहे। उन्हें उनका प्राप्य नहीं मिला। वे बार-बार सताये गये, बार-बार उपेक्षित हुए। वे बार-बार बुरी तरह टूटे हैं। राम के उदात्त चरित्र से प्रेरणा लेकर वे बार-बार सँभले हैं। उन्होंने पेन्शन न लेने की भूल की है। बिना किसी की सहायता लिए जैसे-तैसे गुजारा कर रहे हैं। अनेक रोगों से ग्रस्त दोनों पति-पत्नी एकदम अकेले और बेसहारा हो गये हैं। (कुछ ऐसी बातें हैं जिनको लिखने के लिए उन्होंने मुझे रोक दिया है।) कभी-कभी वे हिम्मत हारने लग जाते हैं। उन्हें न ठीक दिखाई पड़ता है और न ठीक सुनायी पड़ता है। हम सबकी मंगलकामना है कि नब्बे वर्ष के स्वाभिमानी राष्ट्रवादी मूकसाधक डॉ. त्रिपाठी अपने मनोबल को ऊँचा रखकर कष्टमुक्त जीवन जीते हुए अपनी आयु का शतक पूरा करें।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

डॉ. रामविलास शर्मा की दृष्टि में सुब्रह्मण्य भारती का जीवन और साहित्य-कर्म

विजय कुमार रविदास*

डॉ. रामविलास शर्मा के अनुसार सुब्रह्मण्य भारती तमिल भाषी क्षेत्र के नवजागरण के अग्रदूत हैं। भारती तमिल साहित्य के सबसे बड़े एवं अप्रतिम कवि हैं। साहित्य जगत में उनका प्रवेश एक क्रान्तिकारी कवि के रूप में होता है। वे "सबसे पहले देशभक्त कवि के रूप में प्रसिद्ध हुए। उनके पास मधुर और ओजस्वी वाणी थी। और इसी के बल पर वह भारत के प्राचीन गौरव, राजनीतिक पराधीनता तथा सुनहले भविष्य पर लिखे गये अपने गीतों को गाकर जन-समूह को मन्त्रमुग्ध"[1] किये। उन्होंने तमिल साहित्य को एक नयी दृष्टि और एक नयी दिशा दी। डॉ. शर्मा की दृष्टि में उनका साहित्य केवल तमिलनाडु के लिए ही नहीं बल्कि पूरे भारत के लिए प्रासंगिक है। वे लिखते हैं—"भारती का दृष्टिकोण केवल तमिलनाडु के लिए नहीं, केवल उस युग के लिए नहीं, वरन् इस युग के लिए, पूरे भारत के लिए प्रासंगिक है।"[2] तमिल साहित्य में भारती का योगदान अविस्मरणीय है। "वास्तव में सुब्रह्मण्य भारती ने ही पहली बार बहुत बड़े उद्वेग के साथ तमिल प्रदेश में नवजागरण का शंख फूँका, जिसके परिणामस्वरूप तमिल प्रदेश अपनी लम्बी निद्रा और तन्द्रा से अँगड़ाई लेने लगा और अपने को झकझोरकर जाग उठा। अपने अनेक गीतों, लेखों और निबन्धों में भारती ने इस बात को स्पष्ट किया कि पराधीन देश में साहित्य, संगीत, और कला आदि का समुचित विकास होने की कतई गुंजाइश नहीं...।"[3] डॉ. रामविलास शर्मा ने तमिल जातीयता और राष्ट्रीयता के सन्दर्भ में भारती के जीवन और साहित्य पर गम्भीरता से विचार किया है।

---

*शोधार्थी, विश्व-भारती, शांतिनिकेतन, संपर्क : 16 वेस्ट कापते पारा रोड, पोस्ट-आतपुर जिला-उत्तर 24 परगना, पश्चिम बंगाल-743128, मो.-8100157970, ई-मेल bijaypresi@redffimail.com

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भारती का जीवन संघर्ष

सुब्रह्मण्य भारती का जन्म नवम्बर, 1882 ई. को तमिलनाडु के एक छोटे से गाँव में हुआ था। भारती तमिलनाडु के जिस क्षेत्र में पैदा हुए थे वह कला और साहित्य के लिए विख्यात था। वहीं एट्टयपुरम् नाम की एक रियासत थी। वहाँ भारती के पिता चिन्नस्वामी अय्यर जमींदार की सेवा में कार्यरत थे। उन्हें तमिल साहित्य का बहुत अच्छा ज्ञान था, परन्तु उनका ध्यान प्रौद्योगिकी की ओर अधिक था। सुब्रह्मण्य भारती, चिन्नस्वामी अय्यर के पहले पुत्र थे और बचपन से ही माँ के ममता से वंचित थे। माता की मृत्यु के बाद भारती का जीवन अपने नाना के यहाँ बीता। उनके नाना भी "तमिल साहित्य के प्रेमी थे और बालक भारती को उन्होंने तमिल काव्य से परिचित कराया। माता के अभाव में और पिता के कठोर अनुशासन के कारण भारती कविता में डूबे रहते थे और स्वयं भी बहुत जल्दी कविता करने लगे थे।"[4] भारती बचपन से ही कविता रचने लगे थे। 11 वर्ष की उम्र में, उनकी काव्य-प्रतिभा से चकित होकर उन्हें 'भारती' की उपाधि दी गयी थी। 15 वर्ष की अवस्था में भारती का विवाह चेलम्मा नाम की एक बालिका से करा दिया जाता है। उस समय उनकी पत्नी 7 वर्ष की थी। दुर्भाग्य से उसी वर्ष उनके पिता की मृत्यु हो जाती है। फिर वह अपनी मामी के पास बनारस चले जाते हैं। बनारस प्रवास ने भारती के व्यक्तित्व में खासा परिवर्तन ला दिया। "उन्होंने अंग्रेजी, संस्कृत, और हिन्दी का गहन ज्ञान प्राप्त किया। इलाहाबाद विश्वविद्यालय की एंट्रेंस परीक्षा विशेष पुरस्कारपूर्वक पास की। वह घनी मूँछें रखने लगे और उनकी चाल में शालीनता आ गयी।"[5] बनारस में शिक्षा प्राप्त करने के बाद जीविका उपार्जित करने के लिए भारती एट्टयपुरम् के राजा के पास लौट आये। राजा के साथ काम करना उन्हें पसन्द नहीं था। इसलिए उस नौकरी को छोड़कर वे 1904 में मदुरई के एक हाई स्कूल में तमिल के अध्यापक हो गये। वहाँ भारती की मुलाकात 'स्वदेशमित्रन्' पत्रिका के सम्पादक सुब्रह्मण्यम् अय्यर से हुई। वे भारती के व्यक्तित्व से इतना प्रभावित हुए कि 1904 में उन्हें इस पत्रिका का सम्पादक बना दिया। बाद में भारती मासिक पत्रिका 'चक्रवर्तिनी', साप्ताहिक पत्र 'इण्डिया' के भी सम्पादक बने। इन पत्रिकाओं में भारती, स्वामी विवेकानन्द, अरविन्द घोष तथा बालगंगाधर तिलक जैसे महान नेताओं के भाषणों का अनुवाद तमिल में करके छापा करते थे। भारती का सम्बन्ध 'विजय', 'बाल-भारत', 'कर्मयोगी' और 'सूर्योदय' जैसे पत्रों से भी था। इन पत्रिकाओं में भारती की रचनायें छपा करती थी। उनकी रचनायें तत्कालीन सामाजिक विसंगतियों से प्रभावित होती थीं। भारती की रचनओं के बारे में डॉ. शर्मा लिखते हैं : "भारती की रचनाओं के लिए बहुत से लेखक उनकी प्रशंसा करते थे परन्तु कट्टर रूढ़िवादी उनका विरोध भी जोरों से कर रहे थे, क्योंकि भारती अस्पृश्यता और जातिप्रथा के विरुद्ध आन्दोलन कर रहे थे।"[6]

भारती की कविताएँ राजनीतिक चेतना से प्रभावित होती थीं। 'इण्डिया' पत्र में जो सम्पादकीय होते थे, वे अंग्रेजों को बिल्कुल पसन्द नहीं था। भारती पर प्रतिबन्ध लगाने के लिए अंग्रेजों ने उनके नाम से वारण्ट जारी कर दिया था। गिरफ्तारी से बचने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के लिए भारती पाण्डिचेरी पहुँच गये। 1918 में भारती जब पाण्डिचेरी से ब्रिटिश भारत में लौट आये तो अंग्रेजों ने उन्हें पकड़कर जेल में बन्द कर दिया। 24 दिन तक वे जेल में रहे। बाद में "एनी बेसेंट, सी. पी. रामस्वामी अय्यर, आयंगार आदि प्रभावशाली व्यक्तियों के हस्तक्षेप से सरकार ने उन्हें छोड़ दिया।"[7] जेल से बाहर आने पर उनकी आर्थिक स्थिति बिगड़-सी गयी थी। वे अपने परिवारवालों को दो वक्त की रोटी भी नहीं खिला पाते थे। "निर्धनता और पुष्टिकारक भोजन के अभाव से उनकी जीवनी शक्ति क्षीण हो गयी थी।"[8] फिर भी वे निरन्तर रचना-कर्म में लगे रहे। उनके जीवन के अन्तिम दिनों के बारे में डॉ. शर्मा लिखते हैं—"ट्रिप्लीकेन में एक मन्दिर के हाथी को और दिनों की तरह उन्होंने एक नारियल दिया। परन्तु वे जानते न थे कि हाथी मदोन्मद था। हाथी ने उन्हें सूँड़ से उठाकर पटक दिया। वे घायल हो गये। यद्यपि उन्हें तुरन्त अस्पताल ले जाया गया, फिर भी वे कुछ दिनों तक गम्भीर रूप से बीमार रहे। 12 सितम्बर, 1921 को 39 वर्ष की आयु में उनका देहान्त हो गया।"[9]

सुब्रह्मण्य भारती एक देशभक्त कवि थे। उनके लेखन की यह विशेषता होती थी कि वे किसी भी विषय पर लिखे चाहे कला पर या कविता पर, उसे अपने क्रान्तिकारी और राजनीतिक चेतना के रंग से रंग देते थे। उनके जीवन का उद्देश्य था—भारत की राजनीतिक स्वतन्त्रता, जातिभेद की समाप्ति और भारतीय स्त्रियों के उत्थान के लिए लड़ते रहना। डॉ. शर्मा लिखते हैं—"कविता के लिए भारती ने अनेक कष्ट सहे और कविता ने इन कष्टों में उन्हें सान्त्वना भी दी। कविता का विषय जितना भारती है, उससे अधिक भारत और तमिलनाडु है।"[10]

साहित्य कर्म

सुब्रह्मण्य भारती एक समाज सुधारक के रूप में हमारे सामने आते हैं। उनकी दृष्टि वर्तमानकालीन सामाजिक कुरीतियों पर था। भारती अपने समय के सामाजिक व्यवस्था से खुश नहीं थे। उनके सामने जाति-प्रथा एक बहुत बड़ी चुनौती थी। वे ऐसे समाज की माँग करते हैं, जहाँ ब्राह्मण और शूद्र सब एक समान हों। उन्होंने अपनी अनेक कविताओं में सामाजिक समानता की बात कही है :

ब्राह्मण हो या अब्राह्मण, हम सब समान हैं
इस धरती पर जन्मे सब मानव समान हैं।
जाति-धर्म का दम न भरेंगे
ऊँच-नीच के भेद तजेंगे।
हम बन्दे मातरम् कहेंगे।
जो अछूत हैं, वे भी कोई और नहीं हैं
वे भी तो रहते हम सबके साथ यहीं हैं।
अपने कहीं पराये, होंगे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और हमारा अहित करेंगे।
हम बन्दे मातरम् कहेंगे।

(भारतीय संस्कृति और हिन्दी प्रदेश भाग-2, पृष्ठ संख्या-495)

भारती मनुष्य को वर्ण के आधार पर नहीं कर्म के आधार पर देखते हैं। उनका कहना है–"गीता में वर्ण-व्यवस्था के बारे में जो कुछ कहा गया है, उससे वर्तमान स्थिति कोसों दूर है। ब्राह्मण अब वेद शास्त्र नहीं रचते। बहुत समय से उन्होंने शाश्वत सत्य, या इस पृथ्वी से सम्बन्धित विज्ञान के बारे में सोचना बन्द कर दिया है। प्राचीन और शुद्ध ग्रन्थों का अर्थ वे पूरी तरह भूल गये हैं।...क्षत्रियों ने शासन कार्य, एक युग हुआ, छोड़ दिया। इस भेड़ियाधसान में वैश्य और शूद्र भी शामिल हो गये। वे ईमानदार हैं, परन्तु अज्ञानी हैं और दलित हैं। गीता में जो सामाजिक आदर्श बताया गया है, उसके अनुरूप कार्य करने में वे नितान्त अक्षम हैं। अब चार वर्णों के बदले चार हजार जातियाँ हैं, इनके अस्तित्व का समर्थन करने के लिए अब लोग दुनिया-भर के विज्ञानों का नाम लेते हैं। हमारे अज्ञानी जन-समुदायों को यह विश्वास दिलाया गया है कि यह जाति-प्रथा का घपला विशेष दैवी वरदान है, जो हमारे देश को मिला है और जो भी इस प्रथा का उल्लंघन करता है, वह नरक जाता है। अन्य बातों की अपेक्षा यह विश्वास लोगों को जाति-प्रथा के दुष्परिणामों की ओर अचेत कर देता है।"[11] भारती ने अपनी रचनाओं में बराबर जाति-प्रथा का विरोध किया हैं। उसे समाप्त करने की बात कही हैं। इसके लिए उन्होंने महत्त्वपूर्ण सूत्र दिये हैं। भारतीय समाज में जाति-प्रथा समाप्त हो इसके लिए "सब जातियों के लोग आपस में खान-पान के सम्बन्ध कायम करें, खान-पान के सम्बन्धों के साथ वे आपस में विवाह-सम्बन्ध कायम करें।...विभिन्न जातियों को आपस में विवाह-सम्बन्ध कायम करनें पर बहुत-सी कठिनाइयों का सामना करना होगा, पर वे ऐसी नहीं हैं कि उन पर विजय न पायी जा सके। विवाह-सम्बन्ध कायम करने के अलावा इस प्रथा को खत्म करने के लिए और कोई कारगार उपाय नहीं।"[12] भारत में जाति-प्रथा एक विकराल समस्या बनी हुई है। यह समाज को आगे बढ़ने नहीं दे रही। इस रूढ़ परम्परा को समाप्त करने के लिए "गौतम बुद्ध से लेकर विवेकानन्द तक बहुत से ज्ञानियों ने जाति-प्रथा की निन्दा की, परन्तु वह फिर भी जारी है। वह भारतीय जनता के रक्त में घुल-मिल गयी है, ...ढाई हजार वर्षों में बहुत-से बड़े आदमियों ने इस प्रथा की निन्दा की है। अब उसमें कोई गुण बाकी नहीं रह गया। वह निर्जीव हो गयी है। किसी को इस बात पर खुश न होना चाहिए कि जाति-प्रथा को खत्म होने में इतना समय लग रहा है, क्योंकि जितना ही समय लगेगा, उतना ही उसका रूप भयावह होगा।"[13]

हमारे देश में परम्परा के नाम पर बहुत-सी कुरीतियाँ प्रचलित हैं। इनमें से कुछ का सम्बन्ध स्त्रियों से है। भारती ने यह लक्ष्य किया है कि हमारे समाज में स्त्रियों की दशा दासों के समान है। उसे मात्र भोग-विलास की वस्तु ही समझा गया है। वर्षों से लगातार पुरुष वर्ग उनका शोषण ही करते आये हैं। डॉ. शर्मा के अनुसार वर्तमान

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भारत में नारी मुक्ति आन्दोलन के लिए भारती के विचार अत्यंत प्रासंगिक हैं। भारती ने नारी स्वाधीनता को राष्ट्रीय आन्दोलन से जोड़ा हैं। भारती कहते हैं–"भारतवासी अंग्रेजों से अपेक्षा करते हैं कि वे उन्हें स्वाधीनता प्रदान करें। क्या भारतवासी स्वयं उसी तरह निःस्वार्थ भाव से नारी को स्वतन्त्र करेंगे।"[14] अंग्रेजों की गुलामी खत्म होने पर केवल पुरुषों को स्वाधीन नहीं होना है, उनके साथ स्त्रियों का भी स्वाधीन होना जरूरी है। भारती कहते हैं कि जब हम भारतीय महिलाओं के शिक्षा के बारे में विचार करते हैं तब हम "इस बात का ध्यान रखते हैं कि वह शिक्षा इतनी ही हो कि वे कुछ नैतिक उपदेश वाली कहानियाँ पढ़ लें, पतिव्रता का धर्म सराहने वाले कुछ उपन्यास पढ़ लें और हारमोनियम जैसे घटिया बाजे पर कुछ घिसी-पिटी धुनें बजा लें। उनका मुख्या धन्धा भोजन बनाना है और मानवता के जीवन और प्रगति में उनका एकमात्र योगदान बच्चे पैदा करना है; और इस सबका जो सुन्दर परिणाम निकलता है, जिस पर हम कभी-कभी गर्व भी प्रगट करते हैं, वह यह कि हमारी स्त्रियाँ कट्टरता और रूढ़िवाद की स्तम्भ हैं। इसका अर्थ यह है कि वे हमारे धार्मिक, सामाजिक और राजनीतिक जीवन में गुलामी की परिस्थितियों को सुरक्षित और अपरिवर्तित बनाये रखने में जबरदस्त सहायता करती हैं।"[15] रूढ़िवादी होने के कारण हमारी स्त्रियाँ अपनी गुलामी को अपना धर्म मानती हैं एवं उसे और बढ़ावा देती हैं। इस रूढ़िवादी मानसिकता को बदलने के लिए हमें सबसे पहले स्त्रियों को वैचारिक स्तर पर स्वाधीन करना होगा। क्योंकि सामाजिक विकास की प्रक्रिया में स्त्रियों की भूमिका महत्त्वपूर्ण है। इनके बिना एक प्रगतिशील समाज की कल्पना नहीं की जा सकती। "भारती स्त्रियों के बारे में जो कुछ कहते हैं, उसमें जातिभेद नहीं है, साम्प्रदायिक भेद नहीं है। उनके लिए सभी जातियों, सभी सम्प्रदायों की स्त्रियाँ एक विशाल दासियों का समुदाय है।"[16] उनकी दृष्टि में स्त्रियाँ हमारे समाज की नींव हैं। उन्हें भी पुरुषों की तरह सामान अधिकार प्राप्त हैं। भारती का यह प्रगतिशील दृष्टिकोण उन्हें अपने समय के अन्य साहित्यकारों से एकदम अलग करता है। डॉ. शर्मा लिखते हैं–"भारती देश की सांस्कृतिक गरिमा के प्रबल समर्थक हैं, परन्तु वह रूढ़िवाद को इस गरिमा का पर्याय नहीं मानते। भारतीय स्वाधीनता का समर्थन करने में, ब्रिटिश साम्राज्यवाद का विरोध करने में, वह अपने बहुत से समकालीनों से आगे हैं और जहाँ तक सामाजिक क्रान्ति का सम्बन्ध है। वे परवर्ती बहुत-से साहित्यकारों से अब भी आगे हैं।"[17]

सुब्रह्मण्य भारती तमिल भाषा के जातीय कवि हैं। उन्होंने तमिल भाषा और साहित्य को सांस्कृतिक विरासत के रूप में अर्जित किया था। जितना उन्हें अपने देश से प्रेम था, उतना ही अपने भाषा से प्रेम था। ब्रिटिश भारत में भारती ने तमिल जाति में राष्ट्रीय चेतना का भाव जगाया। 18 वर्ष की अवस्था में उन्होंने अपनी पत्नी को जो पत्र लिखा था, उसमें उनका भाषा-प्रेम देखा जा सकता है। वे लिखते हैं–"मेरी प्यारी पत्नी चेलम्मा को आशीर्वाद। तुम्हारा पत्र मिला। मैं ऐसे कोई कार्य नहीं कर रहा हूँ, जिनसे तुम इतना डर रही हो। ....इस तरह चिन्तित रहने के बजाय अगर तुम

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तमिल अच्छी तरह पढो, तो मैं बहुत प्रसन्न होऊँगा।"[18] भारती का ध्यान तमिल भाषा पर था। वे मुख्य रूप से तमिल भाषा के विकास के बारे में सोच रहे थे, इसलिए वे चाहते थे कि उनकी पत्नी तमिल अच्छी तरह से पढ़ सके।

अंग्रेज भारतीय भाषाओं की तुलना में अंग्रेजी को श्रेष्ठ भाषा समझते थे। वे भारतीय भाषाओं के लिए वर्नाकुलर जैसे शब्द का प्रयोग घृणा भाव से करते थे। उनका मानना था कि भारतीय भाषाएँ अविकसित हैं। उसमें उच्च शिक्षा देने की पर्याप्त क्षमता नहीं है। इसलिए यहाँ भारतीय भाषाओं में शिक्षा न देकर अंग्रेजी भाषा में शिक्षा देने की व्यवस्था होनी चाहिए। भारती अंग्रेजों की इस शिक्षा नीति के पक्ष में नहीं थे। उनके अनुसार भारतीय साहित्य में महान साहित्य है। वे कहते हैं—"मैं समझता हूँ कि समय आ गया है, अब इस तरह की बहस में भाग लेनेवाले सभी पक्षों को बता दिया जाये कि अधिकांश भारतीय भाषाओं में महान ऐतिहासिक और जीवन्त साहित्य है। निःसन्देह, पिछले दिनों आर्थिक परिस्थितियों के कारण इनकी आभा कुछ मन्द हुई है। इस देश के अंग्रेजी-शिक्षित अल्पसंख्यक जन क्षमा के योग्य हैं कि वे हमारे जातीय साहित्यों की उच्चतर अवस्थाओं के बारे में कुछ भी नहीं जानते। लेकिन उनके लिए यह अच्छा होगा कि हमारी भाषाओं के बारे में, ऊँचे आसन से संरक्षकों की तरह, लिखना और बोलना छोड़ दें। उनका यह ढंग हमें अच्छा नहीं लगता। उदहारण के लिए, तमिल भाषा में ऐसा जीवन्त काव्य और दार्शनिक साहित्य है, जो मेरी समझ में इंग्लैण्ड की 'वर्नाकुलर' से कहीं अधिक भव्य है।"[19] अंग्रेजों ने यहाँ की भाषा और साहित्य को समझे बिना उसके लिए 'वर्नाकुलर' जैसे शब्द का प्रयोग कर रहे थे। भारती ने भी यूरोपीय साहित्य के लिए 'वर्नाकुलर' शब्द का प्रयोग करते हैं। भारती ने सिर्फ अंग्रेजों की ही नहीं, बल्कि अंग्रेजी जाननेवाले अल्पसंख्यक भारतीयों की भी आलोचना की है, जो भारतीय साहित्य की श्रेष्ठ उपलब्धियों से अपरिचित है।

भारती तमिल के समर्थक थे। तमिलनाडु में वे तमिल को ही शिक्षा का माध्यम बनाना चाहते थे। लेकिन राष्ट्र भाषा के लिए वे संस्कृत का प्रचार आवश्यक मानते थे। उनका विचार था, "पूरे भारतवर्ष में सदा की तरह संस्कृत का प्रचार-प्रसार हो। देश-भर में संस्कृत का अध्ययन-अध्यापन इतना बढ़ जाये कि हम सही अर्थों में राष्ट्रीय एकता की स्थापना कर सकें।"[20] भारती तमिलनाडु में तमिल और राष्ट्र की एकता के प्रचार-प्रसार के लिए संस्कृत को बढ़ावा देना चाहते थे। लेकिन इसका अर्थ यह नहीं है कि वे अन्य भारतीय भाषाओं का विरोध करते थे। बनारस में रहते हुए वे हिन्दी अच्छी तरह सीख गये थे। इतना ही नहीं, तमिलनाडु में उन्होंने हिन्दी के पठन-पाठन की व्यवस्था भी की थी। मई, 1908 में तिलक को सम्बोधित करते हुए उन्होंने लिखा था—"एक चिट्ठी मुझे पण्डित कृष्ण वर्मा से मिली है, जिसमें हमसे कहा गया है कि हम मद्रास में चेन्नै जन संगम के सौजन्य से हिन्दी पाठ की एक कक्षा खोलें। हमने तो पहले ही एक छोटी-सी कक्षा खोल रखी है। उम्मीद है कि आनेवाले दिनों में इस कक्षा के द्वारा अध्ययन करनेवालों की संख्या में वृद्धि हो जायेगी। इसकी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रगति के बारे में मैं बाद में सूचित करूँगा।"[21] तमिलनाडु में भारती बहुत पहले से हिन्दी का प्रचार-प्रसार आरम्भ कर चुके थे।

शिक्षा के क्षेत्र में भारती अपने पिता की तरह औद्योगिक शिक्षा के पक्षपाती थे। वे नौजवानों को साहित्य के साथ-साथ औद्योगिक शिक्षा प्राप्त करने की बात करते हैं। भारती का मानना था कि हम जो शिक्षा प्राप्त कर रहे हैं, वह सिर्फ साहित्य-सृजन तक सीमित नहीं होना चाहिए, बल्कि विभिन्न प्रकार के उद्योग एवं व्यवसाय से भी सम्बन्धित होना चाहिए। तभी हमारे देश में धन की वृद्धि हो पायेगी। डॉ. शर्मा लिखते हैं—"भारती का स्वप्न था कि स्वाधीन भारत में औद्योगिक शिक्षा की व्यवस्था होगी। यहाँ भारतीय जनता अस्त्र-शस्त्र बनायेगी, कागज का उत्पादन करेगी, वायुयान बनायेगी, कृषि के लिए उपयोगी यन्त्र बनायेगी और ऐसे जलयान बनायेगी, जिससे दुनिया काँप उठे।"[22] राष्ट्रीय शिक्षा के अन्तर्गत भारती प्रादेशिक इतिहास के महत्त्व पर बहुत ज्यादा जोर देते हैं। वे कहते हैं—"जिस गाँव या शहर में स्कूल खोला जा रहा है, वह गाँव या शहर जिस प्रदेश या राज्य में स्थित हो, वहाँ का इतिहास विशेष रूप से पढ़ाया जाना चाहिए।"[23] इसी तरह भूगोल पढ़ाते समय भारती अध्यापकों से जातीय प्रदेशों पर ध्यान देने के लिए कहते हैं। "भारत का भूगोल, यहाँ के विभिन्न प्रदेश, भाषागत विभिन्नता के अनुसार स्वाभाविक रूप से विभक्त देश के विभिन्न भूखण्ड—इन विषयों को बड़ी सावधानी से पढ़ाया जाना चाहिए।"[24]

भारती ने तमिल में काव्य रचते समय वहाँ की लोक-संस्कृति को अपने साहित्य में समेट लिया है। उनके साहित्य में एक तरफ वेद, उपनिषद् और गीता के सन्देश हैं तो दूसरी तरफ तमिलनाडु के लोकगीत और लोकनृत्य हैं। 'कुम्मी' नाम के लोकनृत्य के बारे में भारती कहते हैं—"नृत्य की यह विधा शायद दक्षिण भारत में ही पायी जाती है। इसमें युवतियाँ एक घेरा बनाकर नाचती हैं। इस सुन्दर नृत्य के साथ गाये जाने वाले गीत को भी कुम्मी कहा जाता है।"[25] डॉ. शर्मा की दृष्टि में भारती ने कहीं-कहीं पर तमिल भाषा का महत्त्व प्रतिपादित करने के लिए प्रेमकथाओं एवं किंवदन्तियों का भी सहारा लिया है। "तमिल मूर्तियाँ, तमिल कहावतें, तमिल प्रकृति, ये सब भारती के काव्य में समेट ली गयी हैं। इसलिए वह राष्ट्रीय कवि होने के साथ तमिलनाडु के जातीय कवि भी हैं।"[26]

अन्ततः सुब्रह्मण्य भारती ने भाषा और साहित्य को जनसाधारण के निकट लाने का प्रयास किया। भारती के लिए जातीयता और राष्ट्रीयता में कोई विरोध नहीं है। "तमिल भाषा की जय, तमिल जनता की जय, भारती के लिए दोनों एक ही चीज हैं। तमिल जन की जय बोलने के साथ वह भारत भूमि की जय भी बोलते हैं।"[27] उन्हें अपने देश की सांस्कृतिक विरासत पर गर्व था। उससे सुसज्जित होकर उन्होंने दृढ़तापूर्वक साम्राज्यवाद का विरोध किया। "वे पूँजीवाद के विरोधी हैं। दार्शनिक चिन्तन और आचार-विचार के स्तर पर भारत में जो बहुत-सी रूढ़ियाँ प्रचलित थीं, उन्होंने उनका भी डटकर विरोध किया।"[28] उनके चिन्तन की मुख्या धारा वेदान्त है। वेदान्त के आधार पर ही उन्होंने हिन्दुओं और मुसलमानों को जातीय तथा राष्ट्रीय स्तर पर मिलाने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

का प्रयत्न किया। "साहित्य के क्षेत्र में यह सबसे बड़ी क्रान्ति मानी जायेगी...भारती की कविता का मूल स्वर देशभक्ति ही रहा है और उसके आधार पर ही सामाजिक सुधार, भाषा-प्रेम आदि विभिन्न विषयों को काव्य का विषय बनाया था।"[29]

सन्दर्भ-सूची

1. लेखिका–प्रेमानन्द कुमार, अनुवादिका–सुमति अय्यर, भारती, साहित्य अकादेमी, नयी दिल्ली, प्रथम संस्करण–1979, पृष्ठ संख्या–23
2. रामविलास शर्मा–भारतीय संस्कृति और हिन्दी प्रदेश भाग–2, किताबघर प्रकाशन, नयी दिल्ली, संस्करण 2012, पृष्ठ संख्या–544
3. उपर्युक्त, पृष्ठ संख्या–545
4. उपर्युक्त, पृष्ठ संख्या–520
5. उपर्युक्त, पृष्ठ संख्या–521
6. उपर्युक्त, पृष्ठ संख्या–521
7. उपर्युक्त, पृष्ठ संख्या–522
8. उपर्युक्त, पृष्ठ संख्या–522
9. उपर्युक्त, पृष्ठ संख्या–522
10. उपर्युक्त, पृष्ठ संख्या–523
11. उपर्युक्त, पृष्ठ संख्या–496
12. उपर्युक्त, पृष्ठ संख्या–496
13. उपर्युक्त, पृष्ठ संख्या–496, 497
14. उपर्युक्त, पृष्ठ संख्या–500
15. उपर्युक्त, पृष्ठ संख्या–500
16. उपर्युक्त, पृष्ठ संख्या–503
17. उपर्युक्त, पृष्ठ संख्या–502
18. उपर्युक्त, पृष्ठ संख्या–529
19. उपर्युक्त, पृष्ठ संख्या–484, 485
20. उपर्युक्त, पृष्ठ संख्या–525
21. उपर्युक्त, पृष्ठ संख्या–526
22. उपर्युक्त, पृष्ठ संख्या–526
23. उपर्युक्त, पृष्ठ संख्या–527
24. उपर्युक्त, पृष्ठ संख्या–527
25. उपर्युक्त, पृष्ठ संख्या–532, 533
26. उपर्युक्त, पृष्ठ संख्या–534
27. उपर्युक्त, पृष्ठ संख्या–532
28. उपर्युक्त, पृष्ठ संख्या–491
29. उपर्युक्त, पृष्ठ संख्या–545, 546।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

झारखण्डी जनजातीय समाज की लोक-संस्कृति

युगल झा*

सन्ताल परगना की आदिम जनजातियाँ प्रकृति और इतिहास की साझा धरोहर इनकी परम्परागत संस्थाएँ सामाजिक चेतना की आधारशिला हैं। वस्तुतः आ जनजातियों की आत्मसात शक्तियाँ सभी अर्थों में प्रकृति की सहचरी बनी रही और इसकी यह विरासत जिन्हें हम भौगोलिक संरचना भी कह सकते हैं, लोक-संस् के गर्भ से निकली सामाजिक जीवन की विराट छाया है। सम्पूर्ण जनजातीय समाज अनुशासन और मानवीय सम्बन्ध उसी छत्र-छाया में पुष्पित और पल्लवित होते रहे लोक-संस्कृति की आत्मा से जुड़े हैं, इनके नृत्य-संगीत, इनकी चित्रकला, इनका ना अभिमंचन और इनकी गृह-सज्जा। वस्तुतः कला और संस्कृति के विविध आयाम इसकी लोक-संस्कृति के ऐतिहासिक दस्तावेज हैं। लेकिन इसका आधार बना इनका लोक-साहित्य। गुणवत्ता और प्रामाणिकता की दृष्टि से इनका लोक-साहि लोकगीतों, लोक-कथाओं, लोकोक्तियों एवं पहेलियों की साझी विरासत है। वस् लोकजीवन का प्राणाधार एवं लोकमानस का दर्पण लोक-संस्कृति ही है। प्रति साम्यवादी चिन्तक ए.एस. नम्बूदिरिपाद ने अपनी पुस्तक 'कला साहित्य और संस् में लोक (जन) संस्कृति की परिभाषा करते हुए लिखा है[1] "मानव समाज में निरन्तरता है, सांस्कृतिक निरन्तरता। बेशक यह निरन्तरता अपने-आप में पूर्ण है। इसके साथ-साथ उनके विभाजन भी हैं। हर बार अतीत संरक्षित रहता है। ले हर बार अतीत से मुक्ति भी होती है। मानव समाज के विकास की द्वन्द्वात्मक प्रक्रि यही है। इसलिए अतीत में जो कुछ कलात्मक है, अच्छा है, जो कुछ महान है विवेकपूर्ण है उसके संरक्षण और जो कुछ बुरा है उससे मुक्ति की प्रक्रिया में ही सम का विकास सम्भव है। अतः कला और साहित्य की जन परिभाषा समाज सांस्कृतिक चेतना, जिसमें सामाजिक सामुदायिक स्वीकृति है वही स्वीकार्य है

* एसोसियेट प्रोफेसर, के.के.एम. कॉलेज, पाकुड़, सिदो कान्हू मुर्मू विश्वविद्यालय, दुम
ई-मेल—yugaljha@rediffmail.com

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

निःसन्देह ऐतिहासिक दस्तावेजों के प्रमाण एवं विद्वानों के पुरातात्त्विक सर्वेक्षण एवं पुराने खण्डहरों की खुदाई के अवशेष उनके वास्तुशिल्प एवं नक्काशी को अपनी ज्ञानशिला पर खँगालने की कोशिश करते हैं और उनकी भाषा में बड़ी-बड़ी सभ्यताओं के प्रमाण खोजते हैं। परन्तु लोक-साहित्य लोक-संस्कृति का बोलता हुआ इतिहास है, जिसे केवल विद्वान ही नहीं अनपढ़ और अशिक्षित लोग भी पढ़ते हैं। प्रसिद्ध साहित्यकार रामनरेश त्रिपाठी के अनुसार 'राष्ट्र की जीवन संस्कृति का सबसे बड़ा आधार लोक-साहित्य होता है और यह लोक-संस्कृति का अभिन्न हिस्सा होता है, जिसमें समाज का हर आदमी अपनी सहभागिता सम्पूर्णतः पाता है। लोक-संस्कृति का साहित्य किसी प्रकार के सिक्कों या शिलालेख में नहीं, भोज-पत्रों या तार-पत्रों में नहीं, गुफाओं या कन्दराओं में नहीं, प्रत्युत युग-युगान्तर से उनके जनसाहित्य में सुरक्षित होता आया है।'[2] वस्तुतः जनजातीय समाज की लोक-संस्कृति आज भी मौखिक अवस्था में या फिर दृश्य या श्रव्य की धर्मिता पर आधारित है। इनकी विशिष्ट सामग्रियाँ लोक-कथाओं एवं लोकगीतों के ही संवाद हैं।

प्रसिद्ध चिन्तक एवं सन्त आचार्य विनोबा भावे ने आदिम जनजातियों के विष्टिताओं का उल्लेख करते हुए लिखा है "प्रकृति और पर्यावरण मानव जाति के आत्मज्ञान, विज्ञान एवं साहित्य की सहचरी रहे हैं और इन तीनों के स्वरूप का रेखाचित्र हमें वनवासियों की दिनचर्याओं में देखने को मिलता है। सच तो यह है कि हमारे वनवासी भाई अपनी इस सामान्य दिनचर्या में पर्यावरण के मित्र हैं, प्रकृति के पूजक हैं एवं लोक-साहित्य के सेतु हैं।" वस्तुतः आचार्य भावे की धारणा जंनजातीय समाज के प्रति उनकी सांस्कृतिक चेतना एवं समृद्ध विरासत की पृष्ठभूमि में बनी है। उनके अनुसार 'भारत की लोक-संस्कृति एक विकसित शतदल पुष्प के समान है जिसकी गाँठ की सुन्दरता जनजातीय समाज की लोकसंस्कृति है।'[3] अतः जनजातीय समाज के वैचारिक एवं सांस्कृतिक पृष्ठिभूमि में लोकसंस्कृति के विविध आयाम को निम्नलिखित रूपों में देखा जा सकता है।

क. नाटक एवं अभिमंचन—नदी, पहाड़ एवं जंगलों से सुसज्जित जनजातीय समाज का यह प्रदेश लोकरंगों की अनूठी कला एवं संस्कृति से समरस है। झारखण्ड की संस्कृति में निहित सामूहिकता, सामुदायिकता एवं प्रकृति एवं प्रकृति के प्रति अगाध प्रेम हम जनजातीय समाज के भाव-भंगिमाओं एवं नाटक तथा अभिमंचन में देख सकते हैं। इतना ही नहीं इनके विविध रंगों की सृजनधर्मिता में प्रयोग एवं प्रतिरोध की लाली भी दिखाई पड़ती है। वस्तुतः परम्परागत जनजातीय समाज अपनी व्यवस्थाओं की विशिष्टताओं के ऊपर अपने मान एवं सम्मान को अपनी भाव-भंगिमाओं एवं अपनी रूप-सज्जा के द्वारा ही अभिव्यक्त करता है। साथ ही व्यवस्थाओं में बनी विकृति और प्रतिरोधी शक्तियों के प्रदर्शन में अपने गुस्से एवं आक्रोश की अभिव्यक्ति इन्हीं नाट्य एवं अभिमंचन द्वारा करता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वस्तुतः नाट्य एवं अभिमंचन की विशिष्टता के सम्बन्ध में भारतीय जन-ना संघ से जुड़े हुए प्रेम प्रकाश[4] के विचार को यहाँ देखा जा सकता है। प्रेम प्रकाश क हैं 'प्रकृति प्रेम, सामूहिकता, एकता, संघर्ष व प्रतिरोध तथा जनतान्त्रिक मूल्य जनजा समाज की प्रमाणिक विशिष्टता है। इस परम्परा में जीवन के तमाम रस-प्रेम, वि करुणा, वात्सल्य, वीरता, क्रोध, हास्य, बीभत्स, शृंगार सभी सम्प्रेषित होते हैं, क्यों इन तत्त्वों के बगैर लोककलाओं की इतनी ऊर्जावान प्रस्तुती हो ही नहीं सक झारखण्डी नाट्य परम्परा की पहली कड़ी में स्वतन्त्रता के बाद स्पष्ट रूप इन विधा में देखा जा सकता है। साथ ही इन परम्पराओं की खास विशेषता यह है कि सृष्टि सृजन में मानव विकास की क्रमिक गाथा को यह रेखांकित करती है। यहाँ न क कलाकार होता है और न कोई दर्शक। सम्पूर्ण समाज सहभागी स्वरूप में कला अभिव्यक्ति की जवाबदेही लेता है, क्योंकि इस नाट्य परम्परा का जन्म न किसी रा के दरबार में हुआ है और न किसी जमींदारों के दलान पर। इस नाट्य परम्परा जन्म सामाजिक एवं सामूहिक प्रयास की सतत कहानी है। जिसे हम जनजा समाज या फिर झारखण्डी समाज की सबसे बड़ी विरासत कह सकते हैं।

सच है कि आधुनिक बाजारवादी संस्कृति एवं साम्राज्यवादी हस्तक्षेप के का झारखण्डी समाज की इस नाट्य परम्परा के अभिनय एवं मंचन में बिखराव भी आ है। लेकिन झारखण्डी जनजातीय समाज की श्रुति परम्परा ने नाट्य मंचन की क्षम को नया आयाम दिया है, और इसे अन्तर्राष्ट्रीय पहचान भी। इस परम्परा जनजातीय समाज की लोक-कथाओं एवं जनश्रुतियों को कलात्मक अभिव्यक्ति दी आज इन अभिव्यक्तियों की दस्तावेजीकरण के प्रयास हो रहे हैं। झारखण्ड साहित्यकारों ने इन लोक-कथाओं का संग्रह एवं प्रकाशन की जिम्मेदारी ली है। इ जैसी सांस्कृतिक संगठनों ने इन्हें मुखरित एवं मंच पर मंचीकरण का प्रयास किया है

परन्तु विडम्बना इस बात की है कि जिस जनजातीय संस्कृति एवं जनमानस लोकरंग की समृद्ध परम्परा के लिए एवं उसके विकास के लिए झारखण्ड का निर्मा हुआ, उस प्रान्त की सरकार ऐसी कलात्मक प्रतिभाओं के समायोजन एवं उत्कर्ष बेखबर है। बाजारवाद अपनी भौंड़ी संस्कृति के द्वारा हमारी लोक-संस्कृति को नष्ट क देने की तैयारी कर रही है। जिसमें हमारी पहचान नहीं के बराबर होगी। जाहिर है ज संस्कृति ही न रहेगी तो नाट्य परम्परा व लोक-कलाओं की अभिव्यक्ति की बात की कौड़ी होगी। झारखण्ड सरकार के पास लोक-कला की परम्पराओं को समृद्ध ए विकसित करने की न तो कोई स्पष्ट नीति है और न ही नियत। अगर ऐसा होता अखड़ा मेला के तर्ज पर झारखण्ड के प्रत्येक शहर तथा गाँव में मुक्तागण अथ चबूतरा होता या फिर मुक्ताकाशीय मंच होता। डॉ. रामदयाल मुण्डा कहते हैं 'झारखण्ड के जिस गाँव में अखड़ा है, उस गाँव के एकता तथा जागरूकता देख बनती है तथा जिस गाँव में बाजार या आर्थिक गतिविधियाँ होती हैं, वहाँ सबसे ज्या

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नशाखोर एवं बेईमान होते हैं। असली आर्थिक समृद्धि सांस्कृतिक समृद्धि के रास्ते से ही आता है।[5] अतः आज जरूरत है सम्पूर्ण झारखण्डी समाज में एक वृहद सांस्कृतिक चेतना की एवं संकल्प के साथ झारखण्ड की इस कलात्मक अभिव्यक्ति को मजबूत दावेदारी के रूप में रखने की, तभी हमारी संस्कृति बचेगी और हमारी पहचान की सुरक्षा होगी और हम झारखण्डी नाट्य परम्परा को, इनकी लोक-कलाओं को एक मजबूत अभियान दे सकेंगे।

अफसोस की बात यह है कि आज की आदिवासी पीढ़ी को उनकी इतनी महत्त्वपूर्ण संस्कृति की ओर मोड़ा नहीं जा रहा है। हम आज के युग को प्रतिस्पर्द्धा का युग कहकर बच्चों को सांस्कृतिक शिक्षा नहीं दे रहे हैं। इस भेड़ चाल से हमारा समाज सांस्कृतिक रूप से क्षतिग्रस्त हो रहा है। अगर पैसा कमाने से ही हमारे आदिवासी समाज की उन्नति होती तो आज शहर में रह रहे उच्च वर्गीय आदिवासी अपने समाज के कर्णधार होते। लेकिन इसके ठीक विपरीत यही आदिवासी अपना आदिवासियत खो चुके हैं। न अपनी भाषा आती है न अपनी संस्कृति की सामूहिकता की पहचान है न वे अपना त्यौहार मनाते हैं न अपनी संस्कृति के आंचलिकता के व्यापक दृश्य को समझते हैं। ऐसा इसलिए होता है कि हमारा समाज आँख बन्द कर दूसरों की नकल कर रहा है। और नकल में कभी आत्मविश्वास नहीं होता। डॉ. मुण्डा कहते हैं 'पूरे विश्व को कोयल सी कूक' की संगीत प्रदान करने की शक्ति हमारे संस्कृति में है। हमारी संस्कृति विश्व चेतना की आरण्यक आस्था है जिसमें अनन्त आत्मविश्वास भरा पड़ा है। जरूरत है समरस जीवन से, देशज संस्कृति से इसमें रंग भरने की। संस्कृति अभिव्यक्ति की कला है। इसकी आराधना ही मानवीय समाज के सशक्तिकरण का शास्वत प्रयास है। जितना सरल और विश्वास से भरी होगी हमारी अभिव्यक्ति उतना ही आत्मविश्वास से भरा होगा हमारा जीवन चरित्र, जो हमें समाज के निर्माण के प्रक्रिया को एक-चौथाई आधार देगा। यही झारखण्ड के नवनिर्माण का मजबूत सांस्कृतिक पक्ष है।"

ख. चित्रकला—चित्रकला का इतिहास अतिप्राचीन है। कला का इतिहास प्राचीन विश्व सभ्यता की देन है। वस्तुतः आदि मानवों द्वारा बनाये गये चित्र भारत के विभिन्न गुफाओं में आज भी देखने को मिलता है। सिन्धु घाटी की सभ्यता से प्राप्त मिट्टी के बने मृदभण्डों पर विभिन्न प्रकार की चित्रकलाओं को अंकित किया गया है। अजन्ता का चित्रकला विश्व प्रसिद्ध है। अर्थात् तमाम पुरातात्त्विक साक्ष्य इस बात को प्रमाणित करते हैं कि 5वीं-6ठीं शताब्दी के पूर्व भी जिस चित्रकला की ख्याति चरमोत्कर्ष पर थी, उसको साँचे एवं आकृतियों में ढालने का काम ये आदिम जनजाति ही कर रही थी। अतः आदि मानव की चेतना के साथ चित्रकला की विकास-यात्रा को भी जोड़ा जा सकता है। झारखण्ड के इलाके में लगभग 30 आदिवासी समाज सदियों से निवास करती आ रही है। जाहिर है कि जनजातियों की अपनी परम्परागत संस्थाएँ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हैं, जीवन शैली, धार्मिक व सांस्कृतिक मान्यताएँ हैं। जो इनके चित्रों में स्पष्ट रूप परिलक्षित होते हैं। सम्पूर्ण आदिवासी समाज की विशिष्ट जीवन-शैली को इन विविध लोकचित्रों में देखा जा सकता है। इतना ही नहीं इन चित्रों में अंकित आदि प्रतीक चिह्न, मिथक, लोकविश्वास व अलंकरण तथा आकारों में प्राचीनता के साथ-साथ आधुनिकता का भावबोध भी है। पूरे झारखण्ड क्षेत्रों में प्राचीन काल से ही इस जनजातीय समाज की अपनी जीवन-शैली, ग्रामीण सभ्यता एवं देशज संस्कृति की झलक इनके लोकचित्रों में देखा जा सकता है।

ग. गृह सज्जा—झारखण्ड का जनजातीय समाज अपनी कलात्मक अभिव्यक्ति के लिए निःसन्देह प्रशंसनीय रहा है। अपनी जीवन-शैली में अपनी गृह सज्जा व सम्पूर्ण जनजातीय समाज अपने जीवन-चक्र के अनुरूप कलात्मक अभिव्यक्ति देता है। इनके घर की दीवारें एवं इनकी ग्रामीण संरचना इस बात की स्पष्ट व्याख्या करते हैं कि इनकी ग्रामीण व्यवस्था की धरती और आकाश पर गृह सज्जा का व्यापक प्रभाव रहता है। अपने सम्पूर्ण आवास एवं गृह व्यवस्था के ऊपरी भाग का छाजन एवं तोरण पुरुष करते हैं तथा घर के निचले भाग जिसे दीवार एवं चबूतरा के रूप में देखा जा सकता है, पर कलात्मक अभिव्यक्ति देने का काम घर की महिलाएँ करती हैं। सच है कि झारखण्ड में लोक-चित्रकला कई स्वरूपों में विकसित हुई है। इनके घर की दीवारों पर बने रंग-बिरंगे चित्र, इनके पूजा और त्यौहार एवं जीवन की सांस्कृतिक लोक-चर्चाओं को रेखाचित्रों में देखा जा सकता है। जाहिर है कि जनजातीय समाज की ग्रामीण संरचना पर उनके पर्व एवं त्यौहारों का व्यापक प्रभाव रहता है, जिसकी सबसे बड़ी अभिव्यक्ति इनके गृह सज्जा को देखने से मिलती है। वस्तुतः ये लोकचित्र गाँव के चौपालों एवं चबूतरों की सजावट एक दिन की अभिव्यक्ति नहीं है, बल्कि पीढ़ियों से चली आ रही एक ऐसी विरासत है, जिसे यह जनजातीय समाज अपनी सांस्कृतिक चेतना के रूप में निखारती आ रही है। सन्ताल परगना के प्रसिद्ध वकील स्व. वासुदेव बेसरा ने जनजातीय समाज के इस चित्रकला की कलात्मक अभिव्यक्ति को ग्रामीण अंचलों का सौन्दर्यशास्त्र कहा है, वे लिखते हैं 'डॉ. हाना निजकोवा (चेकोस्लोवाकिया) के विश्वविद्यालय से सन्ताल परगना आयी थी, उनके शोध का विषय ही जनजातीय सौन्दर्यशास्त्र[6] था। डॉ. हाना ने भारत के विभिन्न जनजातीय स्थलों में ग्रामीण भित्तिचित्रों का संकलन किया था। उनके अनुसार इन चित्रों में सौन्दर्य शास्त्र के नये आयाम दिखाई पड़ते हैं जिसकी पुष्टि देशों में नहीं, बल्कि विदेशों के शोध एवं अन्वेषण से होता है।"

घ. कोहवर चित्रकला—कला की अभिव्यक्ति आदिम जनजातियों की सामाजिक सांस्कृतिक जीवन-शैली है। वस्तुतः सिन्धु घाटी की सभ्यता हो या उससे निकले हड़प्पा एवं मोहनजोदड़ो की संस्कृति हो, सबों के साथ आदिम जनजातियों का इतिहास जुड़ा हुआ है। आदिवासियों का पूरा जीवन-चक्र जैसे वंशवृद्धि, विवाह-शादी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रूप शृंगार एवं दीर्घ व सुखमय दाम्पत्य जीवन के लिए कोहवर चित्रकला की परम्परा पीढ़ियों से समाज में चली आ रही है। फसल, खेतीबाड़ी, फूल-पौधे, आदि का चित्रण अपनी जीवन्त-शैली में ये जनजाति करती रही है। सच तो यह है कि राजा-रानी, देवी-देवता एवं ग्रामीण संरचनाओं में प्राकृतिक सत्ता की आध्यात्मिक चेतना एवं उनके लिए बने प्रतीकों का चित्रण भी इनके शिल्प की विशिष्टता है। जनजातीय समाज अपनी कृषि व्यवस्था एवं आरण्यक संस्कृति को समृद्ध करने के लिए पशु-पक्षी एवं वन प्राणियों का सहारा लेते हैं। अतः अपनी सामाजिक एवं आर्थिक सम्पन्नता के लिए इन पशुओं को जिसमें हाथी, घोड़ा, बैल, मोर, छिपकली, सूअर आदि प्रजातियों के विभिन्न चित्रों को ये अपनी ग्रामीण संरचना की जीवन-शैली में एवं भित्तिकला में रेखांकित करते हैं। जनजातीय समाज का दाम्पत्य जीवन एवं नवजात शिशु के साथ प्रजनन से लेकर मरण तक की सारी क्रियाओं को चित्रों के द्वारा सजाकर रखता है। सबसे बड़ी विशिष्टता तो चित्रों के निर्माण में विवाहित महिलाएँ या किशोरी महिलाओं के उन सुखद क्षणों को सँजोती है जिसे शादी के बाद दाम्पत्य सुख के लिए तैयार किया जाता है। इन सुखद सुहाग की नित्यता के लिए कोहवर घर का निर्माण ये महिलाएँ करती हैं। इसके लिए घर के बाहरी व भीतरी दीवारों पर मांगलिक तस्वीरों का चित्रण किया जाता है।

सच तो यह है कि ये जनजातीय महिलाएँ शरद ऋतु में फरवरी से जून माह के बीच अपने घरों को सजाने का काम करती हैं। बसन्त पंचमी के बाद यूँ तो दीवारों पर उकेरी जानेवाली आकृतियाँ अपनी कलात्मक अभिव्यक्ति में शिल्प से भरी होती है। लेकिन इनके प्रत्येक चिह्न समुदाय विशेष के अनुसार भिन्नता लिये हुए चित्रित किये जाते हैं। जैसे मुण्डा समाज के घरों में इन्द्रधनुष, हवा में लहराते सर्प तथा उराँव समाज के घरों में लता, पुष्प एवं पूर्वज के गणचिह्न को अवश्य ही चित्रित किया जाता है। रेखाएँ काफी बोल्ड होती हैं। चटख रंगों का उपयोग बहुत ही कम होता है। चित्रण के पहले दीवारों पर सफेद मिट्टी से लिपाई की जाती है, ताकि रंगों और आकृतियों का उभार ठीक ढंग से उभर सके। दीवार पर एक खास तरह का टैक्स्चर बनाने के लिए अँगुलियों तथा कंघी के दाँतों का उपयोग किया जाता है। दीवार की पोताई ठीक ढंग से सूखने के बाद चित्र बनाने का काम शुरू होता है। रंगों में सफेद रंग, लाईट क्रिम, पीले रंग, काले रंगों का उपयोग ज्यादा होता है। प्राकृतिक आकारों के अलावा ज्यामितिक आकारों की भी संरचना काफी देखने को मिलती है। चित्रों में ज्यादातर प्राकृतिक रंगों का प्रयोग किया जाता है। दातून की कूची या फिर लकड़ी पर पुराने कपड़े को लपेटकर बनाये गये ब्रश का प्रयोग किया जाता है।

कोहवर चित्रकला[7] को देश व दुनिया के स्तर पर ख्याति प्रदान करने के लिए सन्ताल परगना एवं छोटानागपुर के अनेक चित्रकारों ने महत्त्वपूर्ण उपलब्धियाँ हासिल की है। सन्ताल परगना के कलाकार स्व. रामदास टुडू एवं हजारीबाग के चित्रकार श्री

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ब्लू इमाम की चर्चा इस क्षेत्र में की जा सकती है। श्री ब्लू इमाम झारखण्ड के पर्यावरणविद् भी हैं एवं उन्होंने कोहवर चित्रकला पर अपने रेखाचित्र भी प्रस्तुत किये हैं। हजारीबाग के मांडू गाँव के श्रीमतह पुलति के बनाए कोहवर चित्रों की प्रदर्शनी ऑस्ट्रेलिया, ईटली, ब्रिटेन तथा जर्मनी में हो चुकी है।

ङ. जादोपटिया चित्रकला—जादोपटिया चित्रकला भारत के जनजातीय समाज की प्राचीन परम्परा की विशिष्ट विरासत है। मुख्यरूप से यह एक स्क्रेलपेंटिंग है। सन्ताल समाज अपनी आरण्यक संस्कृति, अपने समाज का इतिहास एवं जीवन दर्शन में प्राप्त लोक-परम्पराओं की अभिव्यक्ति इस चित्रकला के द्वारा करता है। झारखण्ड का जनजातीय समाज अपने विभिन्न परम्परागत संरचनाओं के उद्भव, विकास, रहन-सहन, धार्मिक विश्वास व मान्यताएँ तथा नैतिकता को भी इसमें रेखांकित करता है। यह चित्र जादो समुदाय द्वारा चित्रित किया जाता है।

सनद रहे कि जादो समुदाय आदिवासी नहीं है। इसका सम्बन्ध महाराष्ट्र के चित्रकाठी तथा बंगाल और उड़ीसा के 'पटुबा' से जुड़ता है। झारखण्ड में इनका उपनाम चित्रकार है। इनका मुख्य कार्य चित्र बनाना और दिखाना है। अपने समय के नायक, महत्त्वपूर्ण घटना, ईश्वर एवं आस्था, सन्ताली मिथक एवं आस्था, जीवन-मृत्यु, यमराज द्वारा जीवन में किये गये गलत कार्य के अनुसार दण्ड, उत्सव, जीवन-दृष्टि, नैतिकमूल्य, सौन्दर्य, पृथ्वी व सृष्टि की उत्पत्ति आदि की कथा इन चित्रों के विषय होते हैं। इसके अतिरिक्त सिदो कान्हू के विद्रोह की कथा, महाभारत, रामायण, कृष्णलीला का भी अभिचित्रण किया जाता है। आज के परिवेश में जनजातीय समाज की जीवन-शैली में काफी परिवर्तन हुआ है। अतः चित्रकला के स्वरूपों में भी फर्क आया है। समय के साथ इन चित्रों के विषय कम होते गये हैं। वस्तुतः जीवन-मरण की मानवीय संवेदना और फिर स्वर्ग-नरक की कथाओं में मनुष्य के बीच यमराज की भूमिका, जीवन के कर्मकाण्ड का एक हिस्सा है। जादोपटिया चित्रकला इन आकृतियों के विभिन्न स्वरूप की सर्जना के लिए विख्यात है। जादोपटिया चित्रकला कपड़े या कागज पर बनाये जाते हैं। कपड़े पर सूई-धागे से सिलाई कर पाँच से बीस फीट लम्बा तथा डेढ़ से दो फीट चौड़ा पर तैयार किया जाता है। कपड़े पर कागज को बेल के गोंद से चिपकाया जाता है। एक कथा के लिए लगभग छह से दस चित्रों को समायोजित किया जाता है। एक कथा को दिखाने में लगभग आधे घंटे का समय लगता है। रंग ज्यादातर प्राकृतिक होते हैं, जिन्हें बकरी की पूँछ के बालों से निर्मित कूची से भरा जाता है। चित्रों में ज्यादातर काला, हरा तथा पीले रंगों का प्रयोग किया जाता है। चित्रों में बॉर्डर अवश्य होते हैं।

कथा के अनुसार मानव कृति, पेड़ पौधे, पशु-पक्षी, देवता, गुरु, यमराज आदि को समायोजित किया जाता है। इन चित्रों को जादो समुदाय के लोग गाँव में घूम-घूम कर दिखाते हैं तथा इन चित्रों को दिखाने के क्रम में कथावाचन करते हैं। यही इनके

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जीवन-यापन का जरिया है। चित्र दिखाने के बाद इन्हें पैसा या अनाज आदि मिल जाता है। गहराई से विचार मन्थन करने पर जनजातीय समाज की इस परम्परागत पेशे को आज सरकारी सहायता की जरूरत है, क्योंकि जीविका के लिए इस पेशे की परम्परागत शैली से कुछ हासिल नहीं हो सकता। अतः इस चित्रकला शैली को अगर आगे की पीढ़ी के लिए बचाना है तो इसे विशेष शक्लों में ढालना होगा। इसकी चित्रांकन शैली को बढ़ावा देने के लिए अलग से 'अकादमी' बनाने की जरूरत है। ऐसा करने से सामाजिक व्यवस्था में कलाकारों को विशेष महत्त्व मिलेगा और शास्त्रीय-कला को आगे लाने के लिए लोक-कला के विविध आयाम पर संग्रहण, संचयन, एवं कार्य-योजना बनाने की जरूरत है।

जादोपटिया पेंटिंग का इतिहास आदिमजाति के साथ जुड़ा है। लेकिन ऐतिहासिक प्रमाणिकता के साथ यह कहा जा सकता है कि चन्द्रगुप्त के काल में इस कला का विकास हुआ था, क्योंकि इस प्रकार के यमपट का उल्लेख महाकवि विशाखदत्त द्वारा लिखित 'मुद्राराक्षस' नामक नाटक के प्रथम अंक में भी मिलता है। मुद्राराक्षस नाटक में चाणक्य ने जिन गुप्तचरों को नियुक्त किया था। उसके पास भी एक प्रकार का यमपट था। यमपट का अर्थ है यमलोक में यमराज द्वारा दिये जाने वाले दण्डों के विभिन्न दृश्यों से अंकित पट्टी से है। इसे संस्कृत भाषा में यमपटेन[8] कहा गया है। इस कथा की पृष्ठभूमि में गुप्तकाल में गुप्तचरों के द्वारा जनता के बीच सूचनाओं को फैलाने की प्रक्रिया थी। जाहिर है कि शासन व्यवस्था में जनता के बीच शान्ति स्थापित करने के लिए गुप्तचर द्वारा जनता के गलत कार्यों में नियन्त्रण लगाने के लिए पाप-पुण्य की इस कथा को यमराज के द्वारा प्रचारित किया गया। लेकिन सच्चाई यह है कि सन्ताल परगना के क्षेत्र में या पूरे झारखण्ड में जादो पेण्टिंग की कलात्मक अभिव्यक्ति जीविकोपार्जन के लिए की गयी है। सम्पूर्ण कथा में यादव बाबा को गुरु के रूप में स्थापित किया गया है। साथ-ही-साथ सन्ताल समाज में पुनर्जीवन के विश्वास को स्थापित किया गया है।

च. नृत्य—झारखण्ड में जनजातीय समाज सामूहिकता की संस्कृति में विश्वास करता है वस्तुतः जीवन की आवश्यकताओं से जुड़ी हर विशिष्ट व्यवस्था की चेतना सामुदायिक होती है। अर्थात लोक-रंग एवं लोक-संस्कृति में समूह की जीवन संस्कृति जनजातीय समाज का आधार है। लोक-नृत्य भी सामूहिक संस्कृति की चेतना है। इन लोक-कलाओं में झारखण्ड के लोक-नृत्य को पाईका, लौडिया तथा छोऊ देश की नाट्य परम्परा को भी इसमें शामिल किया गया है। वस्तुतः पाईका व छोऊ में जिस प्रकार से संघर्षरत जीवन के विभिन्न रंगों को बिना संवाद के कलाकारों द्वारा आंगिक अभिनय में प्रस्तुत किया जाता है, वह वाचिक तथा आंगिक का संयुक्त रूप से प्रस्तुती है। सम्प्रेषण की यह कला नृत्य के विभिन्न रूपों में लोक-जीवन की विभिन्न दिशाओं की ओर इशारा करता है। छौऊ नृत्य की प्रस्तुती में कलाकार अपने-अपने चेहरे पर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मुखौटा लगाये होते हैं। जबकि आज की नाट्य परम्परा में चेहरे को अति महत्त्वपूर्ण समझा जाता है।

जनजातीय समाज का लोक-नृत्य कलाकारों के विभिन्न अंगों के सम्प्रेषण से अभिव्यक्त होता है। खासकर आँख, नाक व ओष्ट को विभिन्न भाव भंगिमाओं में प्रस्तुत करना इस नृत्य परम्परा की विशिष्टता है। पारम्परिक वाद्य यन्त्र जैसे ढोल, नगारे, झाल, करताल एवं पैजनीक का प्रयोग इस लोक-नृत्य में किया जाता है। सम्भवतः जनजातीय समाज के विभिन्न सांस्कृतिक पर्वों पर इनका प्रदर्शन लोक-मनोरंजन की विशिष्ट परम्परा है। आज नृत्य के क्षेत्र में उचित प्रशिक्षण, परिवर्धन एवं संरक्षण की आवश्यकता है। झारखण्ड के सम्पूर्ण सांस्कृतिक चेतना पर अपनी बेचैनी को अभिव्यक्त करते हुए डॉ. रामदयाल मुण्डा ने बहुत छोटी-सी पंक्ति में झारखण्डी लोकनृत्य की आत्मा को इस तरह से रखा है। स्व. रामदयाल मुण्डा की यह बात 'जे नाची से बाची'[9] जनजातीय समाज के लोकनृत्य परम्परा की सतत सृजनशीलता को स्पष्ट रूप से रेखांकित करता है। वस्तुतः कुछ ही महीने पूर्व स्व. रामदयाल मुण्डा की जन्मशती की पुण्यतिथि पर झारखण्ड के सांस्कृतिक कर्मियों ने मुण्डा के द्वारा झारखण्ड की लोक-संस्कृति के विस्तार एवं संवर्धन हेतु जिन विशिष्ट योजना की नींव डाली थी, उसे पूरा करने का संकल्प लिया है। आनेवाली पीढ़ी मुण्डा के स्वप्न को पूरा करेगी। इस कार्य में सन्ताल परगना का 'नृत्य कला केन्द्र, दुमका' भी अपनी प्रबल भागीदारी प्रस्तुत करेगी, जिससे सम्पूर्ण झारखण्ड में लोक-नृत्य की एक नयी संस्कृति का विकास हो सकेगा।

डॉ. मुण्डा ने इसी आत्मविश्वास को जगाने के लिए सांस्कृतिक आन्दोलन का सहारा लिया था। मूलतः मुण्डा की विचार क्रान्ति संस्कृति और संस्कार को नाच-गान की प्रतिध्वनि मानता है, बल्कि यही जीवन की समरस पद्धति अपने समाज को बौद्धिकता और मौलिकता की पहचान के साथ जीने का अद्वितीय तरीका प्रदान करती है। आज झारखण्ड की जो सांस्कृतिक पहचान विश्व पटल पर बनी है इसमें स्व. श्री मुण्डा का बहुत बड़ा योगदान है। वस्तुतः जनजातीय संस्कृति, नृत्य और संगीत साज के दृष्टिकोण से ढोल, माँदर, नगारा की अन्यतम प्रस्तुती है। लेकिन आंचलिकता की विशिष्टता से बँधा यह वाद्य यन्त्र ध्वनि और लोक-संगीत की विधा में सबसे श्रेष्ठ है। सन् 1990 में रूस में आयोजित 'फेस्टिवल ऑफ नेशन' में भारत की ओर से झारखण्ड के पाईका नृत्य की प्रस्तुति की गयी थी, जिसकी अगुवाई डॉ. मुण्डा ने ही की थी। जहाँ जाकर उन्होंने रूसी दर्शकों को ऐसा मन्त्रमुग्ध किया कि वहाँ पर बॉलीवुड के सितारों के द्वारा प्रस्तुत कार्यक्रम भी फीकी पड़ गया।

इसी तरह सन् 2008 में पाकिस्तान के द्वारा एक संगीत दल 'जुनून' द्वारा आयोजित वर्ल्ड सोशल फोरम का उदघाटन करने आया था, लेकिन किसी कारण से संगीत दल के ज्यादा सदस्यों को भारत का वीजा नहीं मिल पाया। कार्यक्रम की

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रतिष्ठा सन्देह के घेरे में आ गयी। जुनून के संयोजक ने झारखण्डी संगीत के साथ अपने कार्यक्रम के लिए डॉ. मुण्डा को निमन्त्रित किया। उन्होंने पाकिस्तानी मित्रों के साथ जनजातीय लोक-संगीत की बेहतरीन प्रस्तुति की और मुम्बई का यह समारोह फिल्मी महोत्सव की ऊँचाइयों से भी ऊपर निकल गया। इन दोनों अवसरों की प्रस्तुति ने झारखण्डी लोकसंगीत को दुनिया के मंच पर मजबूती और श्रेष्ठता प्रदान की। डॉ. मुण्डा के पुत्र गुंजल इकिर मुण्डा आई.आई.टी. के छात्र हैं। इन्होंने अपने पिता की विरासत को झारखण्डी लोक-संस्कृति एवं लोक-संगीत का ही अन्यतम अध्याय माना है और इनके अनुसार 'आवा के जाने के बाद इस विधा को जिसमें हजारों वर्षों की आदिवासियत सन्निहित है, को आगे बढ़ाने की चुनौती है। झारखण्ड में संस्कृति जागरण का यह पक्ष जिस समूह के द्वारा संचालित होगा, उसे हम लोगों ने रूम्बल का नाम दिया है, जिसका मुण्डारी भाषा में अर्थ होता है, प्रतिध्वनि।'[10] इसी संस्था के द्वारा झारखण्ड के हर गाँव में छऊ नृत्य के कार्यक्रम की प्रस्तुति होगी और इसका विस्तार व्यापक स्तर पर होगा। यही स्व. रामदयाल मुण्डा के प्रति सच्ची श्रद्धांजलि होगी।

सन्दर्भ स्रोत

1. कला साहित्य और संस्कृति : ए.एस. नम्बूदरीपाद, जनशक्ति प्रेस, नयी दिल्ली 1970।
2. साहित्य एवं संस्कृति श्री रामनरेश त्रिपाठी : संस्कृति दर्शन, पृ. 15।
3. साक्षरता संवाद : नेशनल बुक ट्रस्ट, वर्ष 17 अंक 9 सितम्बर, 2012।
4. अनमोल संस्कृति, अनूठी विरासत : दैनिक जागरण, पृ. 11, 30 मार्च, 2012।
5. जनजातीय संस्कृति के विविध आयाम : ब्लू इनाम, दैनिक जागरण, पृ. 11 सितम्बर 2012।
6. स्मारिका जनजातीय हिजला मेला दुमका 12 फरवरी, 1994, जनजातियों के सांस्कृतिक रंग, स्व. वासुदेव बेसरा, दुमका।
7. मायूस हुए झारखण्डी लोक चित्र : शेखर संस्कृतिकर्मी, पृ. 11, दैनिक जागरण 2012।
8. परविद्या संस्कृति और समाज : डॉ. के.एन.झा, शोधपत्र प्रतिध्वनि दिल्ली।
9. डॉ. रामदयाल मुण्डा की विरासत की जीवन्त यात्रा : श्री गुंजल इकिर मुण्डा, प्रभात खबर, जून 2013 पृ. 11।
10. प्रतिध्वनि की अविराम यात्रा (रूमवल), श्री गुंजल इकिर मुण्डा, प्रभात खबर, अक्टूबर, 2013 पृ. 11।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हिन्दी ब्लॉगिंग के दशक (2013) वर्ष पर विशेष

इण्टरनेट पर हिन्दी ब्लॉगिंग का बढ़ता आकर्षण

आकांक्षा यादव

भूमण्डलीकरण ने समग्र विश्व को एक ग्लोबल विलेज में परिवर्तित कर दिया, जहाँ सूचना-प्रौद्योगिकी के बढ़ते कदमों के साथ सारी जानकारियाँ एक क्लिक मात्र पर उपलब्ध होने लगीं। वास्तविक दुनिया की बजाय लोग आभासी दुनिया में ज्यादा विचरण करने लगे। भूमण्डलीकरण, उदारीकृत अर्थव्यवस्था, संचार क्रान्ति, सूचना का बढ़ता दायरा एवं इस क्षेत्र में प्रविष्ट होती नवीनतम प्रौद्योगिकियों ने पूरी दुनिया को और करीब ला दिया और इसी के साथ एक नये प्रकार के मीडिया का भी जन्म हुआ। एक ऐसा मीडिया जहाँ न तो खबरों के लिए अगले दिन के अखबार का इन्तजार करना पड़ता है और न ही इलेक्ट्रॉनिक मीडिया की भूलभुलैया में दौड़ना होता है। आलमारियों की बन्द किताबों से अलग इसे दुनिया के किसी भी कोने में बैठकर किसी भी समय पढ़ा-देखा जा सकता है। यह दौर है नित्य अपडेट होती वेबसाइट्स का, सोशल नेटवर्किंग वेबसाइट्स और ब्लॉगिंग का। वेबसाइट्स के लिए प्रोफेशनलिज्म व धन की जरूरत है, वहीं सोशल नेटवर्किंग वेबसाइट्स की अपनी शाब्दिक सीमाएँ हैं। इससे परे ब्लॉग या चिट्ठा एक ऐसा स्पेस देता है, जहाँ लोग अपनी अनुभूतियों को न सिर्फ अन-सेंसर्ड रूप में अभिव्यक्त करते हैं, बल्कि पाठकों से अन्तहीन खुला संवाद भी स्थापित करते हैं। आज ब्लॉगिंग (चिट्ठाकारी) का आकर्षण दिनों-ब-दिन बढ़ता जा रहा है। जहाँ वेबसाइट्स में सामान्यतया एकतरफा सम्प्रेषण होता है, वहीं ब्लॉग में यह लेखकीय-पाठकीय दोनों स्तर पर होता है। ब्लॉग सिर्फ जानकारी देने का माध्यम नहीं बल्कि संवाद, प्रतिसंवाद, सूचना, विचार और अभिव्यक्ति का भी सशक्त ग्लोबल मंच

संपर्क : टाइप 5 निदेशक बँगला, जी.पी.ओ. कैम्पस, सिविल लाइन्स, इलाहाबाद (उ.प्र.)–211001,
ई-मेल : kk_akanksha@yahoo.com ब्लॉग : http:èèshabdshikhar.blogspot.in

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है। ब्लॉगिंग को कुछ लोग खुले संवाद का तरीका मानते हैं तो कुछेक लोग इसे निजी डायरी मात्र। ब्लॉग को ऑक्सफोर्ड डिक्शनरी में कुछ इस प्रकार परिभाषित किया गया है–"एक इण्टरनेट वेबसाइट जिसमें किसी की लचीली अभिव्यक्ति का चयन संकलित होता है और जो हमेशा अपडेट होती रहती है।"

वर्ष 1999 में आरम्भ हुआ ब्लॉग वर्ष 2012 में 13 साल का सफर पूरा कर चुका है। गौरतलब है कि पीटर महारेल्ज ने 1999 में 'वी ब्लाग' नाम की निजी वेबसाइट आरम्भ की थी, जिसमें से कालान्तर में 'वी' शब्द हटकर मात्र 'ब्लॉग' रह गया। 1999 में अमेरिका में सैनफ्रांसिस्को में इण्टरनेट में ऐसी अनुपम व्यवस्था का इजाद किया गया, जिसमें कई लोग अपनी अभिव्यक्तियाँ न सिर्फ लिख सकें, बल्कि उन्हें नियमित रूप से अपडेट भी कर सकें। अगस्त 1999 में पियारा लैब्स के इवान विलियम्स व मैग होरिहान ने ब्लॉगर नाम से मुफ्त ब्लॉगर सेवा आरम्भ की, जिसकी लोकप्रियता देखते हुए बाद में गूगल ने खरीद लिया। यद्यपि कुछ लोग ब्लॉग का आरम्भ 1994 से मानते हैं जब एक युवा अमेरिकी जस्टिन हॉल ने ऑन लाइन डायरी रूप में अपनी अभिव्यक्तियाँ नियमित रूप से अपनी वेबसाइट में लिखना आरम्भ किया तो कुछ लोग इसका श्रेय 1997 में जान बर्जर द्वारा आरम्भ की गयी 'वेबलॉग' यानी इण्टरनेट डायरी को भी देते हैं। ब्लॉग की शुरुआत में किसी ने सोचा भी नहीं था कि एक दिन न्यू मीडिया के रूप में ब्लॉग इतनी बड़ी व्यवस्था बन जायेगा कि दुनिया की नामचीन हस्तियाँ भी अपनी दिल की बात इसके माध्यम से ही कहने लगेंगी। आज पूरी दुनिया में 15 करोड़ से ज्यादा ब्लॉगर्स हैं जिसमें 4 करोड़ से ज्यादा लोग ब्लॉग सिर्फ अंग्रेजी में लिखते हैं। टेक्नोरेटी द्वारा किये गये सर्वेक्षण की मानें तो विश्व के कुल ब्लॉग्स में से सर्वाधिक 37 प्रतिशत जापानी भाषा में, 36 प्रतिशत अंग्रेजी और 8 प्रतिशत चीनी तीसरे नम्बर पर है। इसके मुकाबले भारत में मात्र 37 लाख लोग ब्लॉगिंग से जुड़े हुए हैं और इनमें भी हिन्दी ब्लॉग की संख्या लगभग 30 हजार के करीब है। यद्यपि वैश्विक स्तर पर हिन्दी में ब्लॉगिंग करनेवालों के 80 हजार से एक लाख के आँकड़े बताये जा रहे हैं। स्पष्ट है कि हिन्दी ब्लॉगिंग को अभी बहुत लम्बा सफर तय करना है। वर्ष 2003 में यूनीकोड हिन्दी में आया और तदनुसार हिन्दी ब्लॉग का भी आरम्भ हुआ। यद्यपि इससे पूर्व विनय जैन ने 19 अक्टूबर, 2002 को अंग्रेजी ब्लॉग पर हिन्दी की कड़ी सर्वप्रथम आरम्भ कर इसका आगाज किया था, पर पूर्णतया हिन्दी में ब्लॉगिंग आरम्भ करने का श्रेय आलोक को जाता है, जिन्होंने 21 अप्रैल, 2003 को हिन्दी के प्रथम ब्लॉग 'नौ दो ग्यारह' से इसका आगाज किया। यहाँ तक कि 'ब्लॉग' के लिए 'चिट्ठा' शब्द भी उन्हीं का दिया हुआ है। वर्ष 2005 में वर्ड प्रेस में भी ब्लॉगिंग की सुविधा सामने आयी।

ब्लॉगिंग का क्रेज पूरे विश्व में छाया हुआ है। अमेरिका में सवा तीन करोड़ से ज्यादा लोग नियमित ब्लॉगिंग से जुड़े हुए हैं, जो कि वहाँ के मतदाताओं का कुल 20 फीसदी हैं। इसकी महत्ता का अन्दाजा इसी से लगाया जा सकता है कि 2008 में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सम्पन्न अमरीकी राष्ट्रपति के चुनाव के दौरान इस हेतु 1494 नये ब्लॉग आरम्भ किये गये। जापान में हर दूसरे व्यक्ति का अपना ब्लॉग है। तमाम देशों के प्रमुख ब्लॉगिंग के माध्यम से लोगों से रूबरू होते रहते हैं। इनमें फ्रांस के राष्ट्रपति सरकोजी और उनकी पत्नी कार्ला ब्रूनी से लेकर ईरान के राष्ट्रपति अहमदीनेजाद तक शामिल हैं। भारत के राजनेताओं में लालू प्रसाद यादव, लालकृष्ण आडवाणी, मुरली मनोहर जोशी, नरेन्द्र मोदी, नीतीश कुमार, शिवराज चौहान, फारूख अब्दुल्ला, अमर सिंह, उमर अब्दुल्ला तो फिल्म इण्डस्ट्री में अमिताभ बच्चन, शाहरुख खान, आमिर खान, मनोज वाजपेयी, प्रकाश झा, शिल्पा शेट्टी, सेलिना जेटली, विक्रम भट्ट, शेखर कपूर, अक्षय कुमार, अरबाज खान, नन्दिता दास इत्यादि के ब्लॉग मशहूर हैं। चर्चित सोशलाइट लेखिका शोभा डे से लेकर प्रथम आई.पी.एस. अधिकारी किरण बेदी तक ब्लॉगिंग से जुड़ी हैं। सेलिब्रेटी के लिए ब्लॉग तो बड़ी काम की चीज है। फिल्मी हस्तियाँ अपनी फिल्मों के प्रचार और फैन क्लब में इजाफा हेतु ब्लॉगिंग का बखूबी इस्तेमाल कर रही हैं। फिल्में रिलीज बाद में होती हैं, उन पर प्रतिक्रियाएँ पहले आने लगती हैं। पर अधिकतर फिल्मी हस्तियों के ब्लॉग अंग्रेजी में ही लिखे जा रहे हैं। अभिनेता मनोज वाजपेयी बाकायदा हिन्दी में ही ब्लॉगिंग करते हैं और गम्भीर लेखन करते हैं। अमिताभ बच्चन ने भी हिन्दी में ब्लॉगिंग की इच्छा जाहिर की है। एक तरफ ये हस्तियाँ अपनी जीवन की छोटी-मोटी बातें लोगों से शेयर कर रही हैं, वहीं अपने ब्लॉग के जरिये तमाम गम्भीर एवं सामाजिक मुद्दों पर अपनी राय व्यक्त कर रही हैं। परम्परागत मीडिया उनकी बातों को नमक-मिर्च लगाकर पेश करता रहा है, पर ब्लॉगिंग के माध्यम से वे अपनी वस्तुस्थिति से लोगों को अवगत करा सकते हैं।

ब्लॉगिंग में भाषा की वर्जनाएँ टूट रही हैं, तभी तो हिन्दी देश-विदेश एवं उत्तर-दक्षिण की सीमाओं से परे सरपट दौड़ रही है। इण्टरनेट पर हिन्दी का विकास तेजी से हो रहा है। गूगल से हिन्दी में जानकारियाँ धड़ल्ले से खोजी जा रही हैं। पहले जहाँ तमाम फॉण्ट के चलते हिन्दी का स्वरूप एक जैसा नहीं दिखता था, वहीं यूनिकोड के माध्यम से हिन्दी को अपने विस्तार में काफी सुलभता हासिल हुई है। इसने जहाँ वर्णमाला के जटिल शब्दों को अपने में समेट लिया है, वहीं भारत सरकार भी वेदों, उपनिषदों, पुराणों इत्यादि में प्रयुक्त होनेवाले शब्दों को इसमें जोड़ने की कोशिश कर रही है। राजभाषा से परे सम्पर्क भाषा के रूप में हिन्दी का विस्तार विदेशों में भी हुआ है। आज 150 से अधिक विश्वविद्यालयों में हिन्दी पढ़ाई जा रही है। यदि भारतीय फिल्में विदेशों में अच्छा व्यवसाय कर रही हैं। तो विदेशों में बसे भारतीयों का प्रमुख योगदान है। यह वर्ग ऐसा है जो रोजगार की खोज में विदेशों में भले ही जा बसा, पर मातृभूमि से लगाव जस-का-तस है। उनकी रोजी-रोटी की भाषा भले ही दूसरी हो, पर उनका मन हिन्दी में ही रमता है। भारत की संस्कृति, कला, साहित्य, इतिहास, रहन-सहन और यहाँ तक कि वेद-पुराणों से लेकर ज्योतिषी तक में उनकी रुचि है। ज्यों ही मौका मिलता है, वे अपनी जड़ों से जुड़ने की कोशिश करते हैं और ब्लॉगिंग

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जगत पूरी रचनात्मकता व ऊर्जा के साथ उनकी जरूरतों की पूर्ति करता है और इसके लिए महत्त्वपूर्ण स्पेस भी उपलब्ध करा रहा है। मॉरीशस, त्रिनिदाद-टोबैगो, सूरीनाम, गुयाना, फीजी, द.अफ्रिका जैसे देशों में जहाँ 'गिरमिटिया' के रूप में गये भारतीय अपनी संस्कृति एवं हिन्दी को सहेजना चाह रहे हैं, उनके लिए ब्लॉगिंग रास्ता खोल रही है। एक तरफ अपनी जड़ों की तरफ देखनेवाले लोग हैं, वहीं हिन्दी बेल्ट में फैलता बाजार भी लोगों को आकर्षित कर रहा है। अमरीका, ब्रिटेन, जर्मनी, रूस, सिंगापुर, कनाडा, जापान, स्वीडन, आस्ट्रेलिया, स्पेन, पोलैण्ड, संयुक्त अरब अमीरात, मलेशिया इत्यादि जैसे अन्यान्य देशों में रह रहे तमाम हिन्दी-भाषी अपनी जड़ों से जुड़ने के लिए हिन्दी-ब्लॉगिंग का सहारा ले रहे हैं। उन तक हिन्दी पत्र-पत्रिकाएँ भले ही न पहुँचें या हिन्दी समाचार वे भले ही न सुन सकें, पर ब्लॉगिंग के माध्यम से वे अपने देश-प्रदेश-जनपद-क्षेत्र में होनेवाली तमाम गतिविधियों से न सिर्फ रूबरू हो रहे हैं, बल्कि उन पर अपनी प्रतिक्रियाएँ देकर संवाद भी स्थापित कर रहे हैं। यह हिन्दी के विकास के लिए एक सशक्त कदम के रूप में देखा जाना चाहिए। साहित्य से परे सम्पर्क-भाषा के रूप में हिन्दी का विकास ऐसी ही कड़ियों से होकर गुजरता है। यह अनायास ही नहीं है कि 51 करोड़ लोगों तक पहुँच के साथ अंग्रेजी यदि दुनिया की सबसे बड़ी सम्पर्क-भाषा है तो 49 करोड़ के साथ हिन्दी दूसरी सम्पर्क-भाषा है। कभी ब्रिटेन ने हम पर राज किया था पर जब वहीं के एक प्रोफेसर रूपर्ट स्नेल हिन्दी के पक्ष में बोलते हैं, तो गर्व होना लाजिमी भी है—"हिन्दी जिन्दगी का हिस्सा है। हिन्दी जिन्दा है। हिन्दी किसी एक वर्ग या वर्ण या जाति या धर्म या मजहब या मार्ग या देश या संस्कृति की नहीं है। हिन्दी भारत की है, मॉरीशस की है, इग्लैंड की है, सारी दुनिया की है। हिन्दी आपकी है, हिन्दी मेरी है।"

21वीं सदी में इण्टरनेट एक ऐसे महत्त्वपूर्ण हथियार के रूप में उभरा, जहाँ अभिव्यक्ति के तौर-तरीके बदलते नजर आये। कभी ताम्रपत्रों और फिर कागजों (प्रिण्ट मिडिया) से लेकर इलेक्ट्रॉनिक माध्यमों तक पहुँच बनाते शब्द कब वर्चुअल हो गये, पता ही नहीं चला। इन आँकड़ों पर गौर करें तो टेक्नोलॉजी और विकास का अन्तःसम्बन्ध और जनजीवन में उसकी घुसपैठ का अन्दाजा लगा सकते हैं। भारत में आज सात करोड़ से ज्यादा नेट-प्रयोक्ता हैं। जून 2011 में आई.बी.एम. अपनी सौवीं वर्षगाँठ मनाकर इस क्षेत्र में मील का एक पत्थर खड़ा कर चुका है तो दुनिया-भर में विविध विषयों पर ज्ञान और सूचनाओं का वर्चुअल संग्रहण कर अपनी पहचान कायम करने वाले विकिपीडिया ने जनवरी 2011 में अपनी वर्षगाँठ पूरी कर ली। हाल के वर्षों में पूरी दुनिया में सोशल नेटवर्किंग का पर्याय बनकर उभरी ट्विटर मार्च 2010 में अपने पाँच साल पूरा कर चुकी है। 14 सितम्बर, 2011 को ट्विटर ने हिन्दी में भी सीधे लिखने की सुविधा प्रदान की है। ब्लॉगिंग वर्ष 2012 में 13 साल का सफर तय कर चुकी है। किसने सोचा था कि कभी निजी डायरी माना जानेवाला ब्लॉग

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

देखते-देखते राजनीतिक एवं समसामयिक विषयों, साहित्य, समाज के साथ-साथ फोटो ब्लॉग, म्यूजिक ब्लॉग, पोडकास्ट, वायस ब्लॉग, वीडियो ब्लॉग, सामुदायिक ब्लॉग, प्रोजेक्ट ब्लॉग, कारपोरेट ब्लॉग, वेब कास्टिंग इत्यादि के साथ जीवन की जरूरतों में शामिल हो जायेगा। आज हिन्दी ब्लॉगिंग भी इसका अपवाद नहीं रही, यहाँ भी यह सभी बखूबी चीजें दिखने लगी हैं। महत्त्वपूर्ण किताबों के ई-प्रकाशन के साथ-साथ इण्टरनेट के इस दौर में तमाम हिन्दी पत्र-पत्रिकाएँ भी अपना ई-संस्करण जारी कर रही हैं, जिससे हिन्दी भाषा एवं साहित्य को नये आयाम मिले हैं। इण्टरनेट पर उपलब्ध प्रमुख हिन्दी पत्रिकाएँ हैं–हिन्दी का पहला पोर्टल वेब दुनिया, अनुभूति, अभिव्यक्ति, सृजनगाथा, हिन्दयुग्म, रचनाकार, साहित्य कुंज, साहित्य शिल्पी, लघुकथा डॉट काम, स्वर्गविभा, हिन्दी नेस्ट, हिन्दी चेतना, हिन्दीलोक, कथाचक्र, काव्यालय, काव्यांजलि, कवि मंच, कृत्या, कलायन, आर्यावर्त, नारायण कुञ्ज, हंस, अक्षरपर्व, अन्यथा, आखर (अमर उजाला), उदन्ती, उदगम, कथाक्रम, कादम्बिनी, कथादेश, गर्भनाल, जागरण, तथा तद्भव, तहलका, ताप्तिलोक, दोआबा, नया ज्ञानोदय, नया पथ, परिकथा, पाखी, दि संडे पोस्ट, प्रतिलिपि, प्रेरणा, बहुवचन, भारत दर्शन, भारतीय पक्ष, मधुमती, रचना समय, लमही, लेखनी, लोकरंग, वागर्थ, शोध दिशा, संवेद, संस्कृति, समकालीन जनमत, समकालीन साहित्य, समयान्तर, प्रवक्ता, अगरता, तरकश, अनुरोध, एक कदम आगे, पुरवाई, प्रवासी टुडे, अन्यथा, भारत दर्शन, सरस्वती पत्र, पाण्डुलिपि, हिन्दी भाषी, हिन्दी संसार, हिन्दी समय, हिमाचल मित्र इत्यादि। इसी कड़ी में 'कविता कोश' और 'गद्य कोश' ने भी हिन्दी साहित्य के लिए मुक्ताकाश दिया है। यहाँ तमाम पुराने और प्रतिष्ठित साहित्यकारों की विभिन्न विधाओं में रचनाओं के संचयन के साथ-साथ नवोदित रचनाकारों की रचनाएँ भी पढ़ी जा सकती हैं।

ब्लॉगिंग का जूनून लोगों के सिर पर चढ़कर बोल रहा है। कोई यहाँ विकल्प ढूँढ़ रहा है तो कोई कायाकल्प करना चाहता है तो कोई हरदम कुछ नया, आकर्षक और उपयोगी करने को तत्पर है। आज हिन्दी ब्लॉगिंग में हर कुछ उपलब्ध है, जो आप देखना चाहते हैं। हर ब्लॉग का अपना अलग जायका है। राजनीति, धर्म, अर्थ, मीडिया, स्वास्थ्य, खान-पान, साहित्य, कला, शिक्षा, संस्कार, पर्यावरण, संस्कृति, विज्ञान-तकनीक, सेक्स, खेती-बाड़ी, ज्योतिषी, समाज सेवा, पर्यटन, वन्य जीवन, नियम-कानूनों की जानकारी सब कुछ अपने पन्नों पर समेटे हुए है। यहाँ खबरें हैं, सूचनाएँ हैं, विमर्श हैं, आरोप-प्रत्यारोप हैं और हर किसी का अपना सोचने का नजरिया है। तमाम तकनीकी ब्लॉग लोगों को इससे जोड़ने और नित्य नयी-नयी जानकारियों के संग्रहण और विजेट्स से रूबरू कराने में अग्रसर हैं। आज तमाम सामुदायिक ब्लॉग लोगों की बातों को समाज के समक्ष रखने के माध्यम बन चुके हैं। इन सामुदायिक ब्लॉगों पर जीवन के विविध रंग देखे जा सकते हैं। इनमें से कुछ विशिष्ट विषयों पर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

केन्द्रित हैं, रिश्तों पर केन्द्रित हैं, अनुभूतियों पर केन्द्रित हैं, साहित्य पर केन्द्रित हैं तो कुछ सर्वग्राही हैं। कुछ तो यह भी दावा करते हैं कि जो कहीं नहीं कहा जा सकता, उसे हमारे यहाँ उगल दो। इनमें से कुछ के नाम भी अजीबोगरीब लग सकते हैं। हर सामुदायिक ब्लॉग के अपने ब्लॉगर्स—लेखक हैं तो कुछ ब्लॉगर्स कई सामुदायिक ब्लॉगों से जुड़े हुए हैं। कुछ ब्लॉगर्स का अपना स्वतन्त्र ब्लॉग नहीं है, बल्कि वे इन सामुदायिक ब्लॉगों के माध्यम से ही ब्लॉगिंग से जुड़े हुए हैं। इन सामुदायिक ब्लॉगों पर गम्भीर वैचारिक बहसों से लेकर खरी-खोटी तक कही जाती है और कई बार ऐसी बातें/खबरें भी तो महत्त्वपूर्ण तो होती हैं, पर किन्हीं कारणवश पत्र-पत्रिकाओं या टी.वी. चैनल्स पर स्थान नहीं पातीं। इन ब्लॉगों पर स्थापित एवं उभर रहे रचनाकारों की विभिन्न विधाओं में रचनाएँ पढ़ी जा रही हैं। कुछ ब्लॉग तो नित्य-प्रतिदिन अपडेट होते हैं, जबकि कुछ निश्चित अन्तराल के पश्चात्। जाति-धर्म-क्षेत्र से ब्लॉग-जगत भी अछूता नहीं रहा। हर कोई तो अपनी जाति से जुड़े महापुरुषों को लेकर गौरवान्वित हो रहा है। नेता, अभिनेता, प्रशासक, सैनिक, किसान, खिलाड़ी, पत्रकार, बिजनेसमैन, डॉक्टर, इंजीनियर, पर्यावरणविद्, ज्योतिषी, शिक्षक, साहित्यकार, कलाकार, कार्टूनिस्ट, वन्यजीव प्रेमी, पर्यटक, वैज्ञानिक, विधार्थी से लेकर बच्चे, युवा, वृद्ध, नारी-पुरुष और किन्नर तक ब्लॉगिंग में हाथ आजमा रहे हैं। ब्लॉगिंग ने पूरे विश्व में नयी ऊर्जा का संचार किया है। देखते-ही-देखते हिन्दी को भी पंख लग गये और सम्पादकों की काट-छाँट एवं खेद सहित वापस, प्रकाशकों की मनमानी और आर्थिक शोषण से परे हिन्दी ब्लॉगों पर पसरने लगीं। हिन्दी साहित्य, लेखन एवं पत्रकारिता से जुड़े तमाम चर्चित नाम भी अपने ब्लॉग के माध्यम से पाठकों से नित्य रूबरू हो रहे हैं। विदेशों में रहकर भी हिन्दी ब्लॉगिंग को समृद्ध करनेवालों की एक लम्बी सूची है।

न्यू मीडिया के रूप मे उभरी ब्लॉगिंग ने नारी-मन की आकांक्षाओं को मानों मुक्ताकाश दे दिया हो। वर्ष 2003 में यूनीकोड हिन्दी में आया और तदनुसार तमाम महिलाओं ने हिन्दी ब्लॉगिंग में सहजता महसूस करते हुए उसे अपनाना आरम्भ किया। आज 50,000 से भी ज्यादा हिन्दी ब्लॉग हैं और इनमें लगभग एक-चौथाई ब्लॉग महिलाओं द्वारा संचालित हैं। ये महिलाएँ अपने अंदाज में न सिर्फ ब्लॉगों पर साहित्य-सृजन कर रही हैं बल्कि तमाम राजनीतिक-सामाजिक-आर्थिक मुद्दों से लेकर घरेलू समस्याओं, नारियों की प्रताड़ना से लेकर अपनी अलग पहचान बनाती नारियों को समेटते विमर्श, पितृसत्तात्मक दृष्टिकोण से लेकर पुरुष समाज की नारी के प्रति दृष्टि, जैसे तमाम विषय ब्लॉगों पर चर्चा का विषय बनते हैं। महिलाएँ हिन्दी ब्लॉगिंग को न सिर्फ अपना रही हैं, बल्कि न्यू मीडिया के इस अन्तर्राष्ट्रीय विकल्प के माध्यम से अपनी वैश्विक पहचान भी बनाने में सफल रही हैं। ब्लॉग बच्चों की रचनात्मकता को भी खूब स्पेस दे रहा है। यहाँ उमंग है, किलकारियाँ हैं, मासूमियत है, प्यारी शरारतें हैं, नटखट अदाएँ हैं। इस प्यारी दिलकश दुनिया के नन्हें-मुन्ने सितारों से मिलकर हर किसी का दिल खुश हो जाता है। यहाँ 'बेटियों का ब्लॉग' है तो 'बेटों का ब्लॉग' भी मौजूद है। आखिरकार

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इन ब्लॉग्स पर बच्चों के लिए प्यारी-प्यारी कविताएँ, बाल-गीत, प्रेरक कहानियाँ, प्रे प्रसंग, ड्राइंग, इत्यादि बहुत कुछ है। बच्चे स्वभाव जिज्ञासु होते हैं, अतः जरूरत उनकी जिज्ञासा को स्वस्थ रूप में हल किया जाय। जिस प्रकार कुम्हार मिट्टी के ले को खूबसूरत आकार देता है, उसी प्रकार बाल साहित्य बच्चों में स्वस्थ संस्कार रोपि करता है। बच्चों के लिए तमाम ब्लॉग सुन्दर रचनाएँ प्रस्तुत कर रहे हैं।

ब्लॉगिंग की दुनिया ने लोगों को एक ऐसा मंच मुहैया कराया है, जहाँ वे बि किसी खर्च और बन्दिश के अपनी बात कह सकते हैं। ब्लॉग के माध्यम से समाज सुख-दुःख भी बाँटा जा सकता है। कई बार प्राकृतिक आपदाओं इत्यादि के सम सहायता के लिए ब्लॉग का इस्तेमाल किया जाता है। आज ब्लॉग तो विद्यालय हो र हैं, जहाँ लिखने-पढ़ने के अलावा चर्चा-परिचर्चा, सेमिनार जैसे आयोजन भी करते सकते हैं। 50,000 से ज्यादा हिन्दी ब्लॉग मानों ज्ञान और सूचना का खजाना है ब्लॉगर्स की गतिविधियाँ सिर्फ वर्चुअल-स्पेस तक ही सीमित नहीं हैं, बल्कि उससे भी कभी ब्लॉगर संगोष्ठी तो कभी ब्लॉगर मिलन के माध्यम से ब्लॉगर्स की गहमागहमी बनी रहती है। इनके माध्यम से ब्लागिंग के सम्बन्ध में बहुत कुछ शेयर करने साथ-साथ व्यक्तिगत अनुभवों को भी साझा किया जा रहा है। निश्चिततः इन गतिविधियों से ब्लॉगिंग को न सिर्फ एक स्वतन्त्र विधा में स्थापित करने में मदद मिलेगी, बल्कि आनेवाले दिनों में तमाम लोग भी इससे जुड़ेंगे। तमाम विश्वविद्यालय कॉलेज-संस्थाओं के तत्त्वावधान में राष्ट्रीय ब्लॉगर संगोष्ठी के आयोजन जैसे कदम ब्लॉगिंग के बढ़ते प्रभाव का ही अहसास करा रहे हैं। ब्लॉगिंग पर कुछेक पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं—हिन्दी ब्लॉगिंग : अभिव्यक्ति की नयी क्रान्ति (सं. अविनाश वाचस्पति, रवीन्द्र प्रभात), हिन्दी ब्लॉगिंग का इतिहास (रवीन्द्र प्रभात)। ये पुस्तकें ब्लॉगिंग के परम्परागत स्वरूप से लेकर बदलते दौर में ब्लॉगिंग के आयामों परलिक्षित करती हैं, वहीं इसे शोध का विषय भी बनाती हैं। वैसे भी हिन्दी ब्लॉगिंग अब शोध का विषय बन चुकी है। केवल राम, चिराग जैन सुषमा सिंह जैसे ब्लॉगर बाकायदा इन पर विभिन्न विश्वविद्यालयों से शोध कर रहे हैं, जो कि हिन्दी ब्लॉगिंग के लिए एक अच्छा संकेत है।

ब्लॉग ज्ञान के नये आयाम खोल रहे हैं, मनोरंजन कर रहे हैं तो भड़ास निकालने का मौका भी दे रहे हैं। ऐसे ही तमाम भाव हैं, जो ब्लॉगिंग की दुनिया में देखे-सुने जा सकते हैं। तमाम ब्लॉगर्स ऐसे हैं, जो हर दिन कई ब्लॉगर्स को विजिट करते हैं और उन पर अपनी प्रतिक्रियाएँ देते हैं। पर यह एकतरफा प्रक्रिया नहीं है। यदि आप दूसरे के ब्लॉग पर प्रतिक्रिया देते हैं तो जवाब में अपने ब्लॉग पर प्रतिक्रिया भी पाते हैं। प्रतिक्रियाओं की इस दौड़ में कई बार किसी ब्लॉगर द्वारा की गयी पोस्ट अनछुई रह जाती है। बहुत सीधी-सी बात है, ब्लॉग संवाद को महत्त्व देता है न कि सिर्फ लेखन को। ब्लॉगर द्वारा की गयी पोस्ट, प्राप्त प्रतिक्रियाएँ और ब्लाग्स की विजिट जैसे तमाम पहलू ब्लॉग्स को एग्रीगेट्र्स में ऊँचाइयों पर ले जाते हैं, जहाँ से अन्य लोग ब्लॉग

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आते हैं। कई बार तो ये प्रतिक्रियाएँ स्वस्थ परिचर्चा को जन्म देती हैं, पर कई बार अनावश्यक वाद-विवाद और आरोप-प्रत्यारोप भी। अक्सर लोग ब्लॉग पर कुछ ऐसा लिख बैठते हैं कि उनकी बदनामी में भी उनका नाम हो जाता है। यही कारण है कि अभिव्यक्ति का यह सार्वजनिक तरीका काफी लोकप्रिय हो रहा है। छद्म नामों से बढ़ती प्रतिक्रियाओं और आरोप-प्रत्यारोपों के चलते ब्लॉग, कमेण्ट-मॉडरेशन की सुविधा भी उपलब्ध कराता है, जहाँ अनचाहे कमेण्ट को दरकिनार किया जा सकता है।

ब्लॉगिंग का एक अन्य महत्त्वपूर्ण पक्ष यह भी है कि किसी विषय पर एक ही साथ भिन्न-भिन्न पीढ़ियों के नजरिए स्पष्ट होते हैं। ब्लॉगिंग से कुछ भी अछूता नहीं है, फिर चाहे वह किसी महान व्यक्तित्व को याद करना हो या किसी विशेष दिवस को। एक विषय पर एक ही साथ कई पोस्ट प्रकाशित होती हैं, बस जरूरत है इन्हें हाथी के विभिन्न अंगों की तरह समेटकर आत्मसात् करने की। जैसे-जैसे ब्लॉगिंग का दायरा बढ़ता गया, इसमें ब्लॉगर्स एसोसिएशन से लेकर पुरस्कारों तक की परम्परा भी आरम्भ हो गयी है। कवि, लेखक, साहित्यकार इत्यादि उपाधियों से परे ब्लॉगर स्वयं में एक उपाधि बन चुका है। हिन्दी ब्लॉगिंग की सक्रियता का आलम ही है कि अब तो साहित्य अकादेमी की तरह ब्लॉगिंग अकादमी की भी आवाज उठने लगी है। कुछ लोगों का मानना है कि जिस तरह ग्रामीण एवं अहिन्दी भाषी क्षेत्रों से प्रकाशित होने वाले हिन्दी प्रकाशनों को विशेष मदद मिलती है उसी तर्ज पर दूरदराज तथा अहिन्दी भाषी क्षेत्रों के ब्लॉगर्स को भी विशेष सहायता मिलनी चाहिए। हिन्दी ब्लॉगिंग जगत में सब कुछ अच्छा-ही-अच्छा हो रहा. है, ऐसा नहीं कहा जा सकता। हर बात के सकारात्मक एवं नकारात्मक दो पहलू होते हैं, हिन्दी ब्लॉगिंग भी उसका अपवाद नहीं है। इसकी आड़ में तमाम नकारात्मक लोग भी ब्लॉगिंग से जुड़ रहे हैं। ऐसे में अपनी किसी निजी बात या निजी जानकारी मसलन ई-मेल, पता, फोन नम्बर को शेयर करना खतरनाक भी हो सकता है। ब्लॉग सिर्फ राजनीतिक-साहित्यिक-सांस्कृतिक-कला-सामाजिक गतिविधियों के लिए ही नहीं जाना जाता, बल्कि, तमाम कॉरपोरेट ग्रुप इसके माध्यम से अपने उत्पादों के सम्बन्ध में सर्वे और प्रचार भी करा रहे हैं। वास्तव में देखा जाय तो ब्लॉग एक प्रकार कीं समालोचना है, जहाँ पाठक गुण-दोष दोनों को अभिव्यक्त करते हैं। ब्लॉगिंग के माध्यम से वे पाठकों को समसामयिक एवं चर्चित विषयों पर जानकारी परोस रहे हैं।

आज ब्लॉग परम्परागत मीडिया का न सिर्फ एक विकल्प बन चुका है, बल्कि 'नागरिक पत्रकार' की भूमिका भी निभा रहा है। ब्लॉगिंग की दुनिया पूर्णतया स्वतन्त्र, आत्मनिर्भर और मनमाफिक तेवरों से भरी है। न समय का फेर और न दूरी का झंझट, बस एक क्लिक की जरूरत है। इसके प्रति बढ़ते रुझान के चलते तो अब अपने ब्लॉग पर विज्ञापन देकर पैसे भी कमाये जा सकते हैं। आज के दौर में ब्लॉगिंग सिर्फ टाइम-पास या रुचियों से ही नहीं जुड़ा है, बल्कि कई लोग तो वेबसाइट्स की तरह अपना ब्लॉग

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संचालित करने के लिए भी प्रोफेशनल्स की सेवाएँ ले रहे हैं। हिन्दी में तमाम ऐसे ब्लॉग मिलेंगे, जो प्रथम दृष्ट्या किसी व्यक्ति या संस्था द्वारा संचालित लगते हैं, पर वास्तव में इन्हें पेमेण्ट आधार पर टैक्नो-सेवी व्यक्तियों द्वारा दूसरों के लिए उनके नाम से संचालित किया जाता है और ये समय-समय पर उनकी कविताएँ, कहानी, लेख, पुस्तकों की जानकारी एवं अन्य गतिविधियों को ब्लॉग पर प्रकाशित करते रहते हैं।

ब्लॉग बनाने हेतु मात्र तीन कदम चलने की जरूरत है, फिर अपनी सुविधानुसार उसे रंग-रूप दे सकते हैं। यहाँ ब्लॉगर ही लेआउट और साज-सज्जा की जिम्मेदारी से लेकर सामग्री तक मुहैया कराता है अर्थात् सम्पादक और प्रकाशक से लेकर प्रिंटर और लेखक तक का कार्य करता है। किसी भी पोस्ट और कमेण्ट को कभी भी हटाने, कमेण्ट का मॉडरेट करने, पोस्ट को किसी आगामी तारीख हेतु शेड्यूल्ड करने, पसन्दीदा ब्लॉग को फॉलो करने, अपने ब्लॉग को सार्वजनिक या निर्दिष्ट लोगों तक सीमित रखने, अपने पर अन्य ब्लॉगर को लेखक के रूप में जोड़ने, अंग्रेजी में टाइप करते हुए देवनागरी लिपि में रूपान्तरण जैसी तमाम विशेषताएँ ब्लॉगिंग को आकर्षक और सशक्त बनाती है। ब्लॉगिंग आरम्भ करने हेतु ब्लॉगस्पाट (www.blogspot.com), ब्लॉगर (www.blogger.com), वर्डप्रेस(www.wordpress.com) तथा माईस्पेस (www.myspace.com) चर्चित नाम हैं। इनके अलावा ब्लॉग.कॉम, बिगअड्डा, वेब दुनिया, याहू (www.yahoo360), रेडिफ (आईलैण्ड), माइक्रोसाफ्ट (स्पेसेज), टाइपपैड, पिटास, रेडियो यूजरलैंड इत्यादि भी ब्लॉगिंग की सुविधा उपलब्ध कराते हैं। ब्लॉगिंग की बढ़ती महत्ता देखकर तमाम अखबार भी ब्लॉगिंग के क्षेत्र में कूद पड़े हैं—दैनिक जागरण, हिन्दुस्तान, नवभारत टाइम्स इत्यादि। आज ट्विटर द्वारा 140 शब्दों तक माइक्रो-ब्लॉगिंग भी की जा रही है। ऐसे में कोई भी नेट-यूजर आसानी से ब्लॉगिंग आरम्भ कर सकता है और अपनी अभिव्यक्तियों को सूचना-संजाल के इस दौर में हर किसी तक पहुँचा सकता है। निश्चिततः भूमण्डलीकरण के इस दौर में ब्लॉगिंग ने न सिर्फ भाषाओं और उनके साहित्य को समृद्ध किया है, बल्कि विश्व संवाद का एक सशक्त हथियार भी मुहैया कराया है और हिन्दी भी इसकी अपवाद नहीं है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गोपाल सिंह नेपाली
"देश तो बँट गया वेदना बटी नहीं"

गोविन्द गुंजन*

गोपाल सिंह नेपाली हिन्दी की छन्द परम्पराओं के अनूठे गीतकार थे, उनका जन्म 1911 में हुआ था। उन्होंने केवल 52 वर्ष की छोटी-सी ही आयु पायी थी, किन्तु उन्होंने हिन्दी की गीति परम्परा को अभूतपूर्व ऊँचाई प्रदान की। बलिया, जिला चम्पारण (बिहार) में जन्मे नेपाली ने हिन्दी की खड़ी बोली कविता को ब्रज की कोमल ललित पदावली से बाहर लाकर उसका नूतन शृंगार किया। हिन्दी कवि सम्मेलन की गरिमामय परम्परा के महत्त्वपूर्ण उन्नायक नेपाली का छन्दों पर असाधारण अधिकार था।

गोपाल सिंह नेपाली का प्रथम गीत-संग्रह 'उमंग' सन् 1933 में प्रकाशित हुआ था। इसके बाद प्रकाशित उनके महत्त्वपूर्ण गीत-संग्रह हैं—पंछी (1934), रागिनी (1935), नवीन (1944), नीलिमा (1945) और अन्तिम संग्रह 1963 में 'हिमालय ने पुकारा' शीर्षक से प्रकाशित हुआ एवं इसी वर्ष उनकी जीवन-यात्रा हमेशा के लिए थम गयी, किन्तु तब तक वह हिन्दी गीत परम्परा को अपना सर्वश्रेष्ठ अवदान दे चुके थे। उन्होंने अपना सम्पूर्ण जीवन छन्द साधना को समर्पित कर दिया था, इसमें उन्होंने कभी विराम नहीं लिया—

"तन का दिया, प्राण की बाती, दीपक जलता रहा रात भर"/अपनी अविराम यात्रा के बारे में उनका कहना था—"अगणित तारों के प्रकाश में, मैं अपने पथ पर चलता था/मैंने देखा गगन गली में, चाँद सितारों को छलता था/आँधी में तूफानों में भी, प्राण दीप मेरा जलता था, तन का दीया प्राण की बाती, दीपक जलता रहा रात भर।"

गोपाल सिंह नेपाली ने अपने आरम्भिक गीतों के संग्रह 'उमंग' की भूमिका में लिखा था—"बचपन की बात मैं नहीं करता, पर जब होश आया तो ब्रजभाषा की

*कवि, ललित निबन्धकार एवं समीक्षक, संयोजक, पाठकमंच म.प्र. साहित्य अकादमी, (खण्डवा ईकाई)–पता : 18, सौमित्र नगर, सुभाष स्कूल के पीछे, खण्डवा–450001(म.प्र.); मो. : 09425342665

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"कोमल कान्त पदावली" घूँघट काढ़े सामने खड़ी थी। एक-आध को मैंने पसन्द भी किया, गाया भी। पदावली अभी मेरे निश्चय की बाट जोह रही थी कि पीछे से समय ने सीटी दी। मैं मुड़ा, उसकी ओज पूर्ण बातें सुनी। न कोई मोह, न कुछ लालच कर्तव्य की ज्योति से उद्‌भासित प्रशस्त जीवन मार्ग। मैं बड़ा आकृष्ट हुआ। इस नवीन आलोक से मुझे बड़ी खुशी हुई।"

ब्रजभाषा के ललित सम्पन्न काव्य के अलावा उन दिनों उर्दू काव्य का प्रभाव भी कम व्यापक नहीं था। नेपाली जी ने लिखा कि "बगल से उर्दू के विषाद गीत सुनाई दिये। वे करुण थे, उनमें रस था। मुझे बड़े पसन्द आये। मैं भी बैठ के गाने लगा-

पहलू-ए-यार से उठने को उठे तो लेकिन,
दर्द की तरह उठे, गिर पड़े आँसू की तरह।

पर स्वर की असमानता ने पकड़ लिया। कितनी ही कोशिशें कीं, पर रुदन की दुरूह कला के सामने मैं हार मान गया। स्वभाव में भी विरोधाभास था। न मैं कभी दर्द की तरह उठा, न कभी आँसू की तरह गिरा। जब से क्षितिज रेखा मेरी आँखों में आलिंगन का लालच पैदा कर गयी, तब से खड़ा ही हूँ। कभी गिरा भी हूँ तो फिर पलक मारते उठ गया हूँ।

इस प्रकार नेपाली जी की गीत-यात्रा अविराम चल पड़ी। आरम्भिक गीतों पर भाषा-शैली और अभिव्यक्ति पर सुमित्रानन्दन पन्त की गहरी छाप परिलक्षित होती है। स्वाभाविक ही था, कि पन्त जी से प्रभावित कवि अपने गीतों पर आशीर्वचन के लिए पन्त जी की तरफ ही मुड़े। पन्तजी ने भी उन्हें निराश नहीं किया। पन्त जी ने नेपाली को लिखा—"आपकी भाषा इतनी मधुर, सरस, एवं प्रांजल है कि वह आपकी विशेषता बन गयी है। आपके प्रसार, बयार, सपना, छीलना छन्दों का उकसाना, फुनगी, नन्हीं-नन्हीं फुलचुग्गी, बोल बोल, डोल डोल, पनप उठी मेरे जीवन की मधुर आस में भी आशा मधुर ही हो गयी है। आपने निर्झर को झरना, सरोवर को झील, पक्षी को पंछी, रिक्त का रीता बनाकर खड़ी बोली की कविता को सहज सुषमा से पूर्ण कर दिया है।

"उमंग में सर्वत्र आपके नवयौवन की उमंग व्याप्त है। 'नरम हड्डियों का कड़ा होना', 'नाड़ियों में बिजली का झनझना उठना' 'किसी की याद में अँगड़ाई का आना' उसके चिह्न मात्र और मस्ती उसका खासा अच्छा प्रमाण है। एक प्रतिभा-सम्पन्न, उदीयमान नवयुवक कवि में भावों की जो मादकता, मोहकता, आशा और महत्त्वाकांक्षा की जो उत्तेजना एवं कल्पना की जो आकाशव्यापी उड़ान होना चाहिए, उससे आपकी रचनाएँ ओतप्रोत हैं।"

पन्तजी ने नेपाली की रचनाओं में जिन गुण-धर्मों की पहचान की थी वह महत्त्वपूर्ण है। सचमुच नेपाली में जो भावों की मादक और मोहक प्रतिभा के दर्शन होते हैं, और उनकी कल्पना की नभव्यापी उड़ान का जो वैभव उनके छन्दों में समाहित है,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वह उन्हें अपने समय के महत्त्वपूर्ण छन्द साधकों की श्रेणी में स्थापित करनेवाला है। बदलते हुए युग के साथ वह भी नवीन होना चाहते हैं। प्राचीन युग की वैभव और छवि धीरे-धीरे विलीन हो चुकी, और कवि को इस युग परिवर्तन की घड़ियों में यह प्रतिभिज्ञा होती है कि–

"तू खोज रहा वह तब का जग। जिसको मग ने कर दिया विलग।
अब तो रे जग छवि से जगमग। है अमर लोक सा ही लगभग।
हो जा नवीन या विलीन। यह तो रे युग जग का नवीन।"

अपने संसार को स्वर्ग की तरह ही महसूस करते हुए नेपाली कहते हैं कि यदि तू नवीन न होगा तो विलीन हो जायेगा। कवि जानता है कि संसार में दुःखों, कष्टों और विपदाओं की अटूट शृंखला है। निर्धनता, पराधीनता, दास्य की विवशता और क्लेशों का अन्त नहीं है। परन्तु इसके निवारण के लिए वह नवयुग की युवाशक्ति पर ही विश्वास रखता है। जो शक्तिहीन है उसका नष्ट हो जाना निश्चित है, अतः–

"इस जग में सबका हृदय करुण। सब में यौवन, है सभी तरुण।
सबके अधरों पर उषा अरुण। होता हो चाहे दुख दारुण।
उठ गये यहाँ से शक्तिहीन। यह तो रे युग जन का नवीन।"

कवि को परिश्रम पर गहरी आस्था है। घर बैठे यदि कुबेर का खजाना भी मिल जाये तो कवि को वह स्वीकार नहीं है। बिना परिश्रम, और बिना कष्ट के जो प्राप्त होता है, उसमें कोई उपलब्धि या कोई सार्थकता उसे महसूस नहीं होती। अपने एक आरम्भिक गीत में नेपाली लिखते हैं–

"छील छील थाली में रक्खा फल खाया, तो क्या खाया
घर के पैसे से खरीदकर, मधु लाया तो क्या लाया
हो आनन्द मगन, सुख में गाना गाया तो क्या गाया
घर बैठे-बैठे कुबेर का, धन पाया तो क्या पाया
छिदा-छिदा काँटों से फल, मधु लाओ तो जानूँ
दुख में गाओ, छान-छान बालू धन पाओ तो मानूँ।"

गोपाल सिंह नेपाली के आराध्य तो 'प्रेम भगवान' हैं। वह कहते है कि 'भले न समझूँ मैं मधुपों के मृदु मधु चखने का आशय, भले रहे मेरे जीवन के कानन का पथ कण्टक मय..., किन्तु उनका निश्चय है कि–

"चाहे करूँ न पुण्य जनम भर, मिले न यश जग में अक्षय।
चाहे कर पाऊँ न यहाँ से सोने चाँदी का संचय।
किन्तु जहाँ भगवान प्रेम की होती है पूजा सविनय।
करूँ तीर्थ यात्रा उस जग की, यह मेरे तन का निश्चय।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रकृति की सुषमा, पंछियों की बोली, निर्झर का झर झर जीवन, मधुर गुंज करते मधुकर नेपाली के काव्य की प्रेरणाएँ बनकर जब छन्दबद्ध होते तो सारा निख झूम उठता था। नेपाली के एक मधुर गीत 'मौलसिरी' का वैभव द्रष्टव्य है–

उस दिन के वे फल लाल। रहती थी जिनसे लदी डाल।
पकते रहते थे फल मंजुल। आया करते सुग्गे, बुलबुल।
सुख पाते थे पत्ते हिल डुल। करते हम भी क्रीड़ा मिल-जुल।
था जिससे यह जीवन निहाल। उस दिन के वे फल लाल-लाल।
जब मिलते थे न पके मृदु फल। खा जाता पहले ही खग दल।
तो तुझे न पड़ता था री कल। तू रहती थी दिनभर चंचल।
कहती चढ़ने को डाल-डाल। उस दिन के वे फल लाल-लाल।

नेपाली को प्रकृत धन प्रिय है। हीरे मोती जवाहर की उन्हें कोई चाह नहीं है उनकी प्रयसी जिन अनमोल दुर्लभ मोतियों को चाँदी के सिक्कों से खरीदकर लायी है उसे देखकर वे कहते हैं–

"बार बार कहती हो आली, जिस मोती को तुम अनमोल
जो ज्योतित है, जो सुन्दर है, जिसका मुखड़ा मंजुल गोल
पाते मुश्किल से जिनको, गोताखोर टटोल-टटोल
लायी हो उन मोती को अब, खुद चाँदी से लेकर मोल
ला दो मोल कहीं से फिर तुम, मुझको भी वैसे मोती
इन आँखों की गहराई में, रहते हैं जैसे ये मोती।"

नेपाली के गीतों में प्रेम, प्रकृति और राष्ट्र-प्रेम की पावन त्रिवेणी प्रवाहित है वह अपने पथ के अकेले राही थे। उनके मन में एक अचीन्ही पीड़ा की बदली घुमड़ थी–

"दुख की घनी घनी अँधियारी, सुख के टिम टिम दूर सितारे
उठती रही पीर की बदली, मन के पंछी उड़ उड़ हारे
कोई भी तो साथ नहीं था, साथी था आँखों का पानी
सूनी डगर सितारे टिम टिम, पन्थी चलता रहा रात-भर।
आँधी में तूफानों में भी, प्राण दीप मेरा जलता था
कोई छली खेल में मेरी दिशा बदलता रहा रात-भर।"

नेपाली संकल्प समर्पण और नवीनता के गायक थे। उनके स्वर में ओज और राष्ट्रीय स्वाभिमान की ज्योति दिप-दिप करती थी–

"शक्ति का दिया हुआ, शक्ति को दिया हुआ, शक्ति से दिया हुआ,
यह स्वतन्त्रता दिया, आज द्वार-द्वार पर यह दिया बुझे नहीं,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यह निशिथ का दिया ला रहा विहान है/घोर अन्धकार हो,
चल रही बयार हो, आज द्वार-द्वार पर यह दिया बुझे नहीं,
आज गंगधार पर यह दिया बुझे नहीं,
यह स्वदेश का दिया प्राण के समान है।"

नेपाली के हृदय में देश के विभाजन की गहरी पीड़ा थी, इसके साथ ही दो कौरों के लिए तरसती हुई देश की निर्धन जनता की रोटी की भी चिन्ता उन्हें चैन नहीं लेने देती थी–

"चूमकर जिन्हें सदा क्रान्तियाँ गुजर गयी,
गोद में लिये आँधियाँ बिखर गयीं।
पूछता गरीब वह रोटियाँ किधर गयी,
देश भी तो बँट गया, वेदना बँटी नहीं।"

(रोटियाँ गरीब की प्रार्थना बनी रही...)

नेपाली को अपनी स्वाधीन कलम पर गर्व था। उनका विश्वास था कि राजा सिंहासनों पर बैठते हैं, किन्तु यह स्वाधीन कलम तो सम्राटों के मुकुटों पर आसीन रहती है–

"रस गंगा लहरा देती है, मस्ती ध्वजा फहरा देती है
चालीस करोड़ की भोली किस्मत पर पहरा देती है
संग्राम क्रान्ति का बिगुल यही, यही प्यार की बीन कलम।
मेरा धन है स्वाधीन कलम।
राजा बैठे सिंहासन पर, यह ताजों पर आसीन कलम
मेरा धन है स्वाधीन कलम।"

स्वतन्त्रता के बाद देश का विभाजन एक गहरी त्रासदी थी। वह देश की जनता को यह चेतावनी देते हैं कि "तन की स्वतन्त्रता चरित्र का निखार है/मन की स्वतन्त्रता विचार की बहार है/घर की स्वतन्त्रता समाज का सिंगार है/पर देश की स्वतन्त्रता अमर पुकार है/टूटे कभी न तार यह अमर पुकार का/तुम साधना करो/तुम कल्पना करो...। वह अपने देश की जनता को चेतावनी देते हुए कहते हैं कि–

"हम थे अभी अभी गुलाम, यह न भूलना,
रोते फिरे उमर तमाम, यह न भूलना
था फूट का मिला इनाम, यह न भूलना
बीती गुलामियाँ न लौट आये फिर कभी
तुम भावना करो, स्वतन्त्र भावना करो। तुम कल्पना करो... ।"

(नवीन कल्पना करो)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गोपाल सिंह नेपाली एक चेतना-सम्पन्न, भावुक प्रेमी और सहृदय कवि थे। ओजस्विता उनका स्वभाव था। दैन्य और निराशा के अन्धकार को काटनेवाली आशा से दीप्त उनकी वाणी में अनोखा माधुर्य था। अब कवि सम्मेलनों की हिन्दी की महान परम्परा, जिसे हरिवंशराय बच्चन से लेकर शिवमंगल सिंह सुमन, नीरज आदि ने अपने उत्कर्ष और गौरवपूर्ण शिखर तक पहुँचाया था, उस परम्परा में गोपाल सिंह नेपाली भी एक महत्त्वपूर्ण कड़ी थे। उनके नाम को सुनकर रसिक श्रोता रात-रातभर जागने की तैयारी कर कविता पीयूष का पान किया करते थे, वह परम्परा अब ध्वस्त हो चुकी है, परन्तु उसकी स्मृतियाँ हमें आज भी रोमांचित करती है। अन्त में गोपाल सिंह नेपाली का एक यादगार और मधुर गीत–"देहरादून के बेर" जो उनके छन्दों और भावों की उत्कृष्ट कलाकृति के रूप में संग्रहणीय है, प्रस्तुत है–

देहरादून के मधुर बेर/जंगल में मिलते ढेर ढेर
सामने खड़ा ऊँचा पहाड़/है गर्मी में भी यहाँ जाड़
फैली जगत में घनी झाड़/है बेर नदी के आड़आड़
पड़ता लाने में बड़ा फेर। देहरादून के मधुर बेर॥
जब आता है शरदकाल। लदती बेरों से डाल डाल
लख पीले पीले लाल लाल। हो जाती मन्सूरी निहाल
थकते न नयन ये हेर हेर। देहरादून के मीठे बेर।
पैने काँटे नित बिछा जाल। रहते चौकस नोंके निकाल
फिर भी हाथों से झुका डाल। तोड़ते बेर भरते रूमाल
रह जाते काँटे घेर घेर। देहरादून के मीठे बेर।
है जंगल में इनका प्रवास। इसलिए नहीं इनमें सुवास
पर बिना किये कुछ भी प्रयास। पा जाते ये कैसे मिठास
करते पसन्द जो धन कुबेर। देहरादून के मीठे बेर।
यदि छोड़ सेव किसमिश अनार। इनको चखने का हो विचार
तो ला ला वन से बार बार। सुख से अपार यों ही उधार
दू मैं बिखरे रे कई सेर। देहरादून के मीठे बेर।

नेपाली के ये बेर अपनी मिठास से सारे बैर भाव को दूर करनेवाली शबरी के बेर हैं, जो शायद फिर से उगे तो आज भी हमारे मुर्छित काव्य-लेखन के लिए संजीवनी बन सकते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पाठकीय प्रतिक्रिया

क्षमा करेंगे देवनागरी के बदले रोमन में लिखने के लिए। इस बार सोचा कि मैं अपनी प्रतिक्रिया आप तक पहुँचाऊँ। आप के प्रयास का मैं प्रसंशक हूँ। परन्तु इस बार दो बातें खटकीं। पहली, आप के लेख और लेखक अच्छी बातें सूत्र में व्यक्त करते हैं, जो साधारण पाठक से परे होता है। उदाहरण के रूप में भगवान सिंह का लेख या कैलाशचन्द्र पन्तजी की कृति, दोनों काफी गम्भीर विषय हैं, पर वे सूत्रवत बातें करते हैं। अगर पत्रिका मात्र विशिष्ट बुद्धिजीवी वर्ग के लिए है, तब तो ठीक है। परन्तु, हमें बुद्धिजीवियों के साथ बाकी सामान्य पाठक के साथ चलना सम्भवतः स्वीकार होगा। विशेष आपका परामर्शदात्री मण्डल है। वे जैसा उचित समझें। अन्त में, एक भयानक गड़बड़ी। बाबूलाल शर्मा के साथ अनजाने में अन्याय हो गया है। उनका लेख पेज न. 96 से 100 तक ठीक चलकर अन्त में पेज 100 के आखिरी पैरा में हिन्दी कहानी की उद्भव गाथा में खो गया है। इस प्रकार, बाबूलाल जी के अलावा एक अवगत लेखक के अत्यन्त दिलचस्प लेख के साथ अन्याय हुआ है। कभी-कभी ऐसा होता है।

- प्रो. अवधेश सिन्हा, ई-मेल के द्वारा।

आशा है कि आप स्वस्थ एवं सानन्द होंगे। 'चिन्तन-सृजन' तो नियमित नहीं मिल पाता है, पर अंग्रेजी 'डायलॉग' अवश्य मिल जाता है। प्रायः सभी अंक विषय केन्द्रित होते हैं। पूर्वोत्तर की समस्याएँ सामने आँखें खोल देती हैं। आपका अध्ययन निरन्तरित होगा। 'कुशनशरीफ' पर इधर हम लोगों की वार्ता नहीं हो सकी है। कटिहार भी नहीं आ सका हूँ। चिन्तन-सृजन, जन.-मार्च 2014 का अंक। सर्वश्री रमेशचन्द्र शाह, भगवान सिंह, रिचर्ड लेनाय, कैलाशचन्द्र पन्त, प्रभाकर श्रोत्रिय, शंकर शरण और मृदुला सिन्हा के लेखों से समृद्ध है। भगवान सिंह ने इतिहास की उलझनों को सुलझाने का प्रयत्न किया है। रिचर्ड लेनाय ने मूर्तिकला तथा चित्रकला के माध्यम से भारतीय कला की पूर्णता के कुछ बिम्बों को स्पष्ट किया है। पन्तजी ने भारतीयता की पहचान सही ढंग से करा दी है। श्री श्रोत्रिय की महाभारत की नयी कहानी विचारणीय है। और धारा 370 पर बहस के लिए शंकर शरण जी प्रस्तुत हैं। मृदुला जी ने भारतीय अवधारणा के अनुसार नारी के सम्मान का समुचित प्रयत्न किया है।

- शत्रुघ्न प्रसाद, बी-3, त्रिभुवन विनायक रेजिडेंसी,
बुद्ध कॉलोनी, पटना-800001.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चिन्तन-सृजन, जन.-मार्च 2014 : प्रतिक्रिया। सम्पादकीय में बाजारबाद की गिरफ्त में जनता की दुर्गति पर सटीक टिप्पणी हुई है। निरंतर बढ़ती उपभोग की प्रवृत्ति ने संग्रह, भोग को प्रोत्साहित किया। फलतः प्रवृत्ति की अधिकता ने मनुष्यता का हरण किया। मनुष्य तुलने, बिकने लगा। राजनीति में भी मूल्यों का ध्यान नहीं रखा गया। आपका कहना वाजिब है—"भारत तथा तीसरी दुनिया के अन्य देशों में पश्चिमी जीवन-शैली अपनाने की होड़ का दुष्प्रभाव न केवल समाज पर बल्कि प्रवृत्ति पर भी पड़ा है।" रमेशचन्द्र शाह ने स्वामी विवेकानन्द के भारतीय व्याख्यान का अनुशीलन किया है। वे सच्चे कर्मयोगी हैं। इच्छाशक्ति को क्रिया शक्ति में परिणत करने की उनकी उत्कट लालसा आदर्श और अनुकरणीय है। उन्होंने आलस्य, तंद्रा, दीर्घसूत्रता से जनता को हमेशा उबारा। कर्म, सेवा का मन्त्र, फूँका। उन्होंने आत्मबल, अपने में अटूट विश्वास, आत्मनिर्भरता पर बल दिया। जार्ज आरबेल के एक उदाहरण से भगवान सिंह इतिहास की वर्तमानता पर चिंतन करते हैं। जो अतीत का नियंत्रण करता है, वही भविष्य का भी नियंत्रण करता है। जो वर्तमान का निसंवण करता है, वही अतीत का भी। काल प्रवाह अखण्ड निरवधि अनंत है। उसे क्यारियों में नहीं बोया जा सकता है। हाँ, प्रवृत्तियों और भावधाराओं के अनुसार अध्ययन किया जा सकता है। उनका मानना है कि इतिहास या अतीत की स्मृति और अस्मिता के बोध के अनंत रूप हैं और इसी रूप में इतिहास हमारी चेतना से अभिन्न रूप में और अनंत रूपों में जीवित रहता है। (पृ. 18) असंगत नाटक की प्रवृत्तियों, विशेषताओं पर डॉ. नाना साहब गोरे का लेख शोधोपजीव्य है। प्रत्येक लेख लेखक के अगाध ज्ञान और अनुभव के निदर्शन हैं।

- प्रो. मृत्युंजय उपाध्याय, धनबाद।

'चिन्तन-सृजन' त्रैमासिक आपके सौजन्य से नियमित ढंग से मिल रही है। आपके संपादन में बेहतरीन अंक निकल रहे हैं। भारतीय समाज इस पत्रिका को पढ़कर अपने अन्दर एक नयी दृष्टि पैदा का रहा है। कृपया मेरी बधाई स्वीकार करें। अक्टूबर में आचार्य नरेन्द्र देव की 125वीं जयन्ती है। 31 अक्टूबर 1889 को उनका जन्म और 14 नवम्बर को पं. जवाहर लाल नेहरू का जन्म हुआ था। आचार्य जी उनसे 15 दिन बड़े थे। अक्टूबर-नवम्बर-दिसम्बर वाला अंक यदि शिक्षा और संस्कृति को समर्पित किया जा सके तो इन दोनों महापुरुषों की सच्ची श्रद्धांजलि होगी। अक्टूबर माह में 11 तारीख को जयप्रकाश का जन्म और 12 को लोहिया का निधन हुआ था। समाजवादी आन्दोलन पर भी कुछ सामग्री जा सकती है।

- कैलाशचन्द्र मिश्र, सदस्य, उत्तर प्रदेश गाँधी स्मारक निधि,
गाँधी भवन, लखनऊ-226001 (उ.प्र.)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चिन्तन-सृजन

त्रैमासिक

वर्ष 12 अंक 2 अक्टूबर-दिसम्बर 2014

सम्पादकीय परामर्शदात्री समिति

लोकेश चन्द्र

यशदेव शल्य

जे.एन.राय

रमेशचन्द्र शाह

सम्पादक

बी. बी. कुमार

सलाहकार सम्पादक

कमलेश

आस्था भारती

दिल्ली

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वार्षिक मूल्य :

व्यक्तियों के लिए	60.00 रुपए
संस्थाओं और पुस्तकालयों के लिए	150.00 रुपए
विदेशों में	$ 15

एक प्रति का मूल्य

व्यक्तियों के लिए	20. 00 रुपए
संस्थाओं के लिए	40.00 रुपए
विदेशों में	$ 4

विज्ञापन दरें :

बाहरी कवर	10,000.00 रुपए
अन्दर कवर	7,500.00 रुपए
अन्दर पूरा पृष्ठ	5,000.00 रुपए
अन्दर का आधा पृष्ठ	3000.00 रुपए

प्रकाशन के लिए भारतीय सामाजिक विज्ञान अनुसंधान परिषद द्वारा आंशिक आर्थिक सहायता प्राप्त

आस्था भारती

रजिस्टर्ड कार्यालय :

27/201 ईस्ट एंड अपार्टमेण्ट
मयूर विहार फेस-1 विस्तार
दिल्ली-110 096

कार्य-संचालन कार्यालय :

23/203 ईस्ट एंड अपार्टमेण्ट
मयूर विहार फेस-1 विस्तार
दिल्ली-110 096

से आस्था भारती के लिए डॉ. लता सिंह, सचिव द्वारा प्रकाशित तथा विकास कम्प्यूटर एण्ड प्रिण्टर्स, 1/10753, सुभाष पार्क, नवीन शाहदरा, दिल्ली-32 द्वारा मुद्रित।

फोन : 011-22712454

ई.मेल : asthabharati1@gmail.com
वेब साइट : asthabharati.org

चिन्तन-सृजन में प्रकाशित सामग्री में दृष्टि, विचार और अभिमत लेखकों के हैं। सम्पादक की सहमति अनिवार्य नहीं है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सम्पादकीय परिप्रेक्ष्य

ज्ञान गंगा की सफाई का अभियान कौन चलायेगा?

भारत के प्रधानमंत्री ने देश में स्वच्छ्ता का अभियान चला रखा है। दूरदर्शन पर हमने उन्हें झाड़ लगाते, कुदाल चलाकर सफाई करते देखा है। उसका प्रभाव भी पड़ा है। स्वच्छता के प्रति जागरूकता बढ़ी है, सक्रियता भी। हमें विश्वास है कि देश तथा गंगा दोनों को साफ होना ही है। लेकिन समस्या इतने तक ही सीमित नहीं है। सफाई तो हमें ज्ञान-गंगा, सरकारी-तंत्र, राजनीति, आदि सबकी करनी होगी। मुझे लगता है कि इनमें सबसे आवश्यक काम ज्ञान-गंगा की सफाई का ही है। प्रश्न है कि क्या सचमुच हमारे ज्ञान की गंगा प्रदूषित हो गयी है? फिर इसकी सफाई का अभियान कौन चलाएगा? ऐसे अभियान की जरूरत भी है क्या? पड़ताल इसकी भी आवश्यक है कि हमारे व्यावहारिक विशृंखलता, हमारे आचरणगत स्खलन, चरित्रगत विचलन एवं बढ़ते अराजक प्रतिकार के तार कहीं शिक्षा व्यवस्था की जड़ में बैठी मैल, उस व्यवस्था में पैठ जमाए प्रदूषण से तो नहीं जुड़े हैं?

अभी अभी बिहार के मुख्यमंत्री, जीतनराम माँझी का वक्तव्य आया था, जिसमें उन्होंने आदिवासियों के अतिरिक्त अन्य लोगों को विदेशी कहा था। क्या इस वक्तव्य के लिए श्री माँझी को दोषी ठहराया जा सकता है? हमें लगता है कि नहीं। माँझी एक सीधे-सादे व्यक्ति हैं; उन्होंने राजनीति प्रेरित वक्तव्य नहीं दिया था। उन्होंने वही कहा था जो उन्हें स्कूलों में पढ़ाया गया था और जो आजतक पढ़ाया जाता रहा है। धुर्ये इस देश के महानतम समाज वैज्ञानिकों में रहे हैं; उन्हें भारत के समाज वैज्ञानिकों का 'गुरुनां गुरु' कहा जाता है। अपनी पुस्तक *'शिडुल्ड ट्राइब्स : द अबोरिजिनल्स सो काल्ड'* में उन्होंने इस आदिवासी अवधारणा को तोड़ा है। मैंने भी अपनी दो पुस्तकों – *इण्डिया : कास्ट, कल्चर एण्ड ट्रेडिशन्स* तथा *ए मैक्रो परसेप्सन आफ द सिडुल्ड ट्राइब्स* में इस मिथक पर प्रकाश डाला है। फिर भारत पर आर्य-अभियान का मिथक पूरी तरह टूट चुका है। लेकिन हमारे बच्चों की तो अभी भी, आजादी के 67 साल बाद भी, वही पढ़ाया जा रहा है, जो हमें अंग्रेज पढ़ाते रहे। फिर हम जीतनराम माँझी को दोष क्यों दें?

इस तथ्य को अस्वीकार नहीं किया जा सकता कि आज की हमारी शिक्षा व्यवस्था में कई दोष हैं। यह शिक्षाहमें अपने जड़ों से काटती है; संस्कृति एवं परम्परा निरक्षर वनाती है; यह हमें अभी भी अपने पैरों पर खड़ा होना नहीं सिखाती। पूर्वोत्तर भारत के लोग पूछते हैं कि हम भारत के इतिहास में कहाँ हैं? ऐसे अनेक प्रश्न लगातार उठते रहते हैं। लेकिन उनका उत्तर हमारे पास नहीं है। वस्तुतः हमारा विद्वत समाज लकवाग्रस्त हो गया है; काहिल, आयातित विचारों का उपभोक्ता मात्र। वह सार्थक बदलाव की

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पहल का विरोध करता है, या फिर उसे आधे मन से स्वीकार करता है। वस्तुतः बदलाव की किसी भी पहल को गहन विमर्श के बाद ही स्वीकार या अस्वीकार किया जाना चाहिए; लेकिन ऐसा होता नहीं, जैसा कि हमने दिल्ली विश्वविद्यालय की चार वर्षीय स्नातक व्यवस्था के नाटकीय विरोध के समय देखा।

आधे मन से की गयी पहल असफल हो जाती है, इसका मेरा निजी अनुभव है। पूर्वोत्तर पार्वत्य विश्वविद्यालय, शायद एकमात्र भारतीय विश्वविद्यालय था, जहाँ प्राक् स्नातक कक्षा में वानिकी, मत्स्य-विज्ञान, इलेक्ट्रोनिक्स आदि 'रोजगार-परक' विषयों की पढ़ाई का प्रावधान किया गया था, जिसके अनुसार केवल एक महाविद्यालय ने शिक्षण की व्यवस्थां की थी। मैंने 1978-81 के दौरान जब मैं उस विश्वविद्यालय की विद्वत-परिषद् का सदस्य था, विश्वविद्यालय के तत्कालीन कुलपति डॉ. अनुज कुमार धान से तथा बाद के कुलपति डा. बी.डी. शर्मा एवं 1990-92 के दौरान जब मैं विश्वविद्यालय शासी परिषद एवं विश्वविद्यालय कोर्ट का सदस्य था, तब प्रो. इक्बाल नारायण तथा प्रो. पाकेम से आग्रह किया था कि उन विषयों में स्नातक स्तर तक की पढ़ाई का प्रावधान किया जाय। इससे उन विषयों के अध्ययन के प्रति छात्रों का उत्साह बढ़ता। लकिन मैं अपने प्रयत्न में असफल रहा। बाद में उस एकमात्र कालेज ने भी इस व्यवस्था से नाता तोड़ लिया। यह असफलता आधे मन से किए गये 'एलिटिस्ट' पहल की असफलता थी।

आज देश एवं समाज में दिन-दिन बढ़ती कुव्यवस्था हमें दुखी करती है। समाचार माध्यमों में अधिकतर भ्रष्टाचार, हत्या, शीलहरण आदि के समाचार छाए रहते हैं। लोगों की अपेक्षा रहती है कि सरकार कानून बनाए, व्यवस्था लाए, यह जानते हुए भी कि सरकार के लिए ऐसा करना पूरी तरह संभव नहीं, कानून द्वारा इन विकृतियों पर पूरी तरह नियंत्रण संभव नहीं। हमें सरकार एवं कानून के नियंत्रण के साथ समाज नियंत्रण एवं आत्म-नियंत्रण की प्रक्रिया को, पहले की ही तरह, फिर से लागू करना होगा, जो शिक्षा में बदलाव द्वारा ही संभव है। हम भूल जाते हैं कि हमारे अंदर का पशु एक सीमा के बाद कानून और प्रशासन से नहीं डरता। उस पर एकमात्र आत्म-नियंत्रण एवं समाज नियत्रंण की प्रक्रिया द्वारा ही काबू पाया जा सकता है। विडम्बना तो यह है कि हमने शिक्षा में सार्थक बदलाव तो दूर रहा अपनी पाठ्य पुस्तक निर्माण का काम भी नासमझ सक्रियतावादियों, एक्टिविस्टों को सौंप दिया है।

हमारी शिक्षा व्यवस्था की गड़बड़ियों की पड़ताल के लिए यह जानना आवश्यक है कि हम अपने बच्चों को पढ़ा क्या रहे हैं। इसके लिए स्कूल स्तर की किसी भी कक्षा की समाज विज्ञान की किताब का अवलोकन काफी होगा। उदाहरण स्वरूप इस विषय की पहली ही पुस्तक "सामाजिक एवं राजनीतिक जीवन-1" को देखें। यह राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद् – जो देश के पैसे से चलनेवाला सरकारी संस्थान है – द्वारा प्रकाशित कक्षा 6 की पाठ्य पुस्तक है। इसमें कुछ ऐसी भी गलतियाँ हैं जो अपराध की श्रेणी में आती हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राष्ट्रीय पाठ्य चर्या 2005 की रूपरेखा तैयार करनेवाली समिति ने *नागरिक शास्त्र* को एक खास औपनिवेशक अतीत से पनपा विषय मानकर एक नये विषय *सामाजिक एवं राजनीतिक जीवन* की परिकल्पना की, जिसमें आलोचनात्मक दृष्टिकोण समाहित हो। उसके तहत राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान एवं प्रशिक्षण परिषद् द्वारा तैयार करायी गयी यह पहली पुस्तक है। जैसा कि पुस्तक के प्रारंभ में ही लिखा गया है, इस किताब में एक अलग तरह की सोच अपनाई गयी है, जिसमें तीन तत्त्वों का सम्मिश्रण है। पहला कि बच्चे ठोस अनुभव के माध्यम से अच्छी तरह सीखते हैं, अतः 'संस्थाओं एवं प्रक्रिया की चर्चा 'काल्पनिक वृतांतों' अथवा केस स्टडी या बच्चों के अनुभवों से अभ्यासों के आधार पर की जाय। दूसरा है: "अवधारणाओं का बच्चों से इस रूप में परिचय करवाना ताकि उनकी समझ बने न कि वे तथ्यों एवं सूचनाओं तक सीमित रह जाएँ। इसके लिए जो तरीके अपनाए गए हैं, वे हैं सूचनाओं की कटौती। पाठ और अभ्यास में बच्चों को ऐसे प्रश्न दिए गए हैं जो उन्हें सोचने के लिए प्रेरित करें और परिभाषाएँ कम से कम रखी गई हैं।" अन्तिम तत्त्व है: बच्चे को सामाजिक और पारिवारिक संरचानाओं से गहरे रूप से जुड़े हुए मानकर विभिन्न विषयों पर चर्चा करते हुए आदर्श एवं यथार्थ में संतुलन" बनाए रखना।

पुस्तक के अवलोकन से लगता है कि उसमें उल्लिखित बातों, विशेषतः नई सोच का पालन किया गया है। जैसा कि हम देखेंगे एक खास तरह की अस्वस्थ नकारात्मक सक्रियतावादी सोच की तहत सूचनाओं का चुनाव किया गया है। राष्ट्र और समाज के विषय में जानकारी की अत्यधिक कमी या गलत जानकारी देना, यथार्थ का तोड़ मरोड़कर प्रस्तुतिकरण, आदर्श का नदारद होना, बारबार खटकता है। यह किताब न जानकारी देती है और न जानकारी प्राप्त करने को प्रेरित करती है। पुस्तक में एकमात्र परिभाषा 'दलित' की दी गयी है; यह शब्द हमारे संविधान में नहीं है।

पुस्तक के प्रारंभिक दो पाठों में विविधता, भेदभाव, गैर-बराबरी; खान-पान, पहनाना, धर्म, भाषा आदि की भिन्नताएँ; पूर्वाग्रह एवं रुढ़िबद्धता की चर्चा है। प्रश्न है कि क्या एकरूपता, समानता, बराबरी का बर्ताव, आपसी प्रेम, सद्भाव, सामंजस्य, एकता, शील, आदि बच्चों के अनुभव क्षेत्र, या समाज या राष्ट्र के व्यवहार क्षेत्र से बाहर की चीजें हैं? यदि नहीं तो भोले-भाले बच्चों को ऐसी एक पक्षीय सामग्री परोसे जाने का आधार क्या है? पुस्तक में छुआछूत, मंदिर प्रवेश-निषेध तथा जाति सम्बन्धी कई धारणाओं की चर्चा है। महात्मा गांधी के नेतृत्व में राष्ट्र द्वारा अस्पृश्यता-निवारण अभियान, मंदिर प्रवेश, पिछड़ी जातियों, हरिजनों के उत्थान के लिए आन्दोलन तथा सवैधानिक प्रावधान तथा उनके विकास के लिए उठाए गये कदमों की विस्तृत चर्चा का अभाव खटकता है। पुस्तक में बिखरी कुछ बातों पर नजर डालें; जैसे ग्रामीण लोग अपने स्वास्थ्य को लेकर सतर्क नहीं होते, वे बहुत अंधविश्वासी, बहुत पिछड़े हुए और आलसी होते हैं; वे काम करना पंसद नहीं करते, गंदे होते हैं; वे साफ नहीं रहते। शहरी लोग बिगड़े

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हुए और आलसी होते हैं; केवल पैसे की चिंता करते हैं, लोगों की नहीं; उन पर भरोसा नहीं किया जा सकता; वे चालाक और भ्रष्ट होते हैं। फिर गरीब सहपाठी को चिढ़ाना; किसी खास धार्मिक समुदाय पर पूर्वाग्रहग्रस्त टिप्पणी करना, किसी को गंदा बताकर उसके साथ खाना खाने से इनकार करना; किसी समुदाय के खास उच्चारण का मज़ाक उड़ाते हुए उस पर चुटकुला सुनाना; लड़कियों पर टिप्पणी करना कि उनकी तरह नहीं खेल सकतीं, इत्यादि, बच्चों के विमर्श का विषय बनें यह कैसी शिक्षा है?

पुस्तक की पाठ्य सामग्री की पड़ताल के पहले हम बता दें कि पुस्तक में दिए भारत के मानचित्र (पृष्ठ 34) में कश्नीर को भारत के शेष राज्यों से अलग बांगलादेश, नेपाल एवं भूटान की तरह दिखाया गया है, जबकि कश्मीर अलग देश नहीं है। फिर दूसरे मानचित्र (पृष्ट 33) में सिक्किम, उत्तर बंगाल तथा पूर्वोत्तर भारत को अलग देश की तरह दिखाया गया है। पृष्ट अप पर दी गयी संविधान की उद्देशिका में इसका उल्लेख होना चाहिए था कि ''समाजवादी'' एवं ''पंथ निरपेक्ष जैसे शब्द संविधान (संशोधन द्वारा जोड़े गये हैं पुनर्मुद्रण, 2012 जून) पुस्तक के पहले ही अध्याय में विविधता की चर्चा इस रूप में हुई है मानों भारत घुमन्तुओं का देश हो। समस्त देश की चर्चा मात्र दो पृष्टों में लद्दाख एवं केरल की चर्चा करके समाप्त कर दी गयी है। वहाँ भी मात्र चीन एवं अरब प्रभाव की चर्चा है। समूचे देश की चर्चा नदारद है। लेकिन अभ्यास में लद्दाख एवं केरल की तरह भारत का कोई अन्य क्षेत्र चुनकर उसका अध्ययन करने और यह बतलाने को कहा गया है कि उस क्षेत्र की विविधता को ऐतिहासिक और भौगोलिक कारकों ने प्रभावित किया है क्या? और क्या ये कारक आपस में जुड़े हुए हैं? पाठ में केरल की चर्चा इस रूप में हुई है, मानो वहाँ कोई भारतीय नहीं रहता था। पुस्तक में तथ्यों के पूर्ण अभाव के बावजूद छात्रों से किसी भी विषय पर विचार व्यक्त करने की बात बार-बार आती है, जो नहीं होना चाहिए।

इस पाठ्य पुस्तक में अर्द्ध-राजनीतिक संघटनों, जैसे भारतीय जन नाट्य संघ (इप्टा, भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी से जुड़ा संगठन), सक्रियतावादी संघटनों, आदि का बार बार उल्लेख खटकता है, ऐसे संगठन जिनसे लेखन में सहायता की गयी है, जो प्रायः पाठ्य-पुस्तकों में नहीं होता। उनके 'एजेण्डा' के तहत लिखी जाने के चलते ही यह शिक्षा की न होकर 'इनडोक्ट्रिनेशन' की पुस्तक बनकर रह गयी है। यदि जाति-प्रथा रूढ़ हो गयी थी, जातियों को पेशा बदलने की छूट नहीं थी, घनघोर छुआछूत थी तो मनु ने ब्राहमण को शिल्पी के घर जाकर शिल्प का ज्ञान प्राप्त करने को क्यों कहा था? पुस्तक के एक चित्र में किसी कक्षा के छ बच्चे उजले वस्त्र में तथा उनके पीछे दो बच्चे काले वस्त्र में उनसे अलग बैठे हैं। नीचे लिखा है: ''जाति के आधार पर कक्षा में किसी बच्चे को दूसरे बच्चों से अलग बैठाना भेदभाव का एक रूप है।'' क्या ऐसा आज भी चल रहा है? फिर ऐसा चित्र क्यों? फिर दलित शब्द की परिभाषा दी गयी है: ''दलित वह शब्द है जो नीची कही जाने वाली जाति के लोग

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अपनी पहचान के रूप में इस्तेमाल करते हैं। वे इस शब्द को 'अछूत' से ज्यादा पसंद करते हैं। दलित का मतलब है जिन्हें 'दबाया गया', 'कुचला गया'। दलितों के अनुसार यह शब्द दर्शाता है कि कैसे समाजिक पूर्वाग्रहों और भेदभाव ने दलित लोगों को 'दबाकर रखा है'। सरकार ऐसे लोगों को 'अनुसूचित जाति' के वर्ग में रखती है।'' प्रश्न है कि छोटे बच्चों के दिमाग में जहर भरनवाले गैर जानकार किताब लिखने वालों को कमसे कम अल-बेरूनी एवं धर्मपाल को नहीं पढ़ लेना चाहिए था?

लम्बी गुलामी के चलते हमारे समाज में कई बुराइयाँ आ गयी थी। ऐसे में महात्मा गाँधी आदि के सार्थक प्रयास एवं संवैधानिक प्रावधानों की चर्चा न कर मात्र उन बुराइयों की बढ़ा चढ़ा कर चर्चा, वह भी 12-13 वर्ष की उम्र के बच्चों की पाठ्य-पुस्तक में, एक घातक प्रवृत्ति है। आखिर हम उपनिवेशवादी अंग्रेजों द्वारा फैलाए मिथकों को बच्चों को परोसे जाने के पहले धर्मपाल जैसे मनीषियोंके कार्यों, विशेषकर उनके ब्यूटिफुल ट्री में दिए गये तथ्यों, की जानकारी अपनी पाठ्य पुस्तकों में क्यों नहीं देते? सरसरी निगाह से देखने पर यह पुस्तक किसी मनोरोगी, अपराधी विचारधारा के सक्रियतावादी द्वारा लिखी पुस्तक जान पड़ती है। पाठ्य में मारपीट, लड़ाई झगड़ा, हिन्दू-मुस्लिम दंगा, धरना, जुलूस, हड़ताल, हस्ताक्षर अभियान, थाना, न्यायालय सब कुछ है। झण्डा उठाए नारा लगाती स्त्रियों के पोस्टर; एक अन्य चित्र में अपने अधिकारों की माँग करती औरतें; इण्डियन एक्सप्रेस की 1 मई 2004 की छपी ऊँची जाति एवं दलितों के बीच टैंकर पानी लेने के लिए मारपीट की खबर यह सब है। छठे अध्याय की शुरुआत गाँव के झगड़े से, ग्राम सभा की बैठक इस खुसर-पुसर से कि किस किस धनी व्यक्ति का नाम गरीबी रेखा के नीचे के व्यक्ति के रूप में दर्ज है। हो रहे विकास की जानकारी पुस्तक के तीसरे अध्याय के प्रारंभ में दिये गये एक चित्र के माध्यम से दी गयी है। एक गाँव के पास घड़ों, बाल्टियों की कतार लगी है। एक व्यक्ति कहता है: ''हाल बुरा नहीं है। जरूर पास के गाँव में नल से पानी आ रहा है। क्या सचमुच यही हमारे आजतक के विकास का चित्र है?

यह पाठ्य पुस्तक अंग्रेजी से अनुदित है; पुस्तक की भाषा अनुवाद की भाषा है; अस्वाभाविक है; संदर्भ पुस्तकें –द लाइट्स चेंज्ड; व्हाई आर यू अफ्रेड टू होल्ड माई हैंड; डा. बी.आर अंबेडकर, राइटिंग एण्ड स्पीचेज, खण्ड 12; द मैन गोज टू द विलेज, द वेस्ट ऑफ लक्ष्मण; द कॉमन मैन कास्ट हिज वोट; रिलेक्शन्स ऑन माई फैमिली; वकिंग इन दि मिल नो मोर – सभी अंगेजी की हैं। अंगेजी के शब्द मीट, रिकार्ड, चीज, स्टाप, वस, स्टैंड, फीस, हैण्ड-पम्प, चेक डैम, टिफिन, फैक्ट्री, लेबर चौक, कार्टून, कार्टूनिस्ट, आदि – प्रयुक्त हुए हैं, जिनके लिए हिन्दी के अपने शब्द क्रमसः माँस, अभिलेख/विवरण, पनीर, षड़ान, बस पड़ाव, शुक्ल, चाँपा कल, छोटा बाँध, नाश्ता/जलपान, कारखाना, मजदूर चौक, व्यंग्य-चित्र, व्यंग्य-चित्रकार उपलब्ध हैं।

पाठों की अस्वाभाविकता केवल अनुवाद की भाषा के चलते ही नहीं बल्कि पाठ की विशृंखला एवं शैलीगत कारणों से भी हैं। पाठ्य पुस्तक की शुरूआत ही एक उलजलूल

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कहानी से होती है। एक सायकिल चालक फटे-पुराने कपड़े पहने अखबार बेचनवाले लड़के से हिन्दी अखबार माँगता है; लड़का चौंक कर पूछता है कि आप हिन्दी जानते हैं क्या? जनपथ के भीड़भाड़ वाले चौराहे पर की लाल बती के पीली होने तक की दो मिनटों की क्षणिक मुलाकात; अंग्रेजी पढ़े हिन्दू सायकिल चालक समीर एक तथा अखबार बेचनेवाला मुस्लिम समीर दो का दोस्त बन जाना; समीर एक एवं समीर दो जैसे नकली नामकरण; फिर मेरठ दंगे की बात सुनाकर समीर का कथा से बाहर हो जाना; प्रश्न है कि दिल्ली की भीड़भाड़ में अखबार बेचनेवाले बच्चे की नजर क्या सचमुच धोखा खा सकती है कि उसे एक साधारण सायकिल चालक में अंग्रेज दिखे भारतीय नहीं? फिर क्या यह बनावटी दोस्ती मेरठ दंगे को संदर्भित करने के लिए करायी गयी थी?

पुस्तक में भाषायी सक्रियतावादिता भी दिखती है। लेखकीय कथन है :

"यहाँ हमने सोच समझकर विशेषण और क्रिया के स्त्रीलिंग रूप का प्रयोग किया है, जो पूरे पाठ में चलता है। शिक्षा में लड़कियों को समान स्थान और अवसर मिलें - इसके लिए कई स्तर पर प्रयास किए जा रहे हैं। एक तरीका यह भी है कि हम लिखते समय लड़कियों को सीधे संबोधित करें। यदि हम अभी तक की पाठ्यपुस्तकों को देखें तो उनमें पढ़ने वाले को हमेशा एक लड़का मानकर पुलिंग रूपों का ही प्रयोग किया जाता है। यह मान लिया जाता है कि स्त्रीलिंग रूप उसी में शामिल है। यहाँ हमने भाषा की इस परिपाटी को बदला है। इस पाठ के अलावा हमने कुछ पाठों में भी स्त्रीलिंग रूप का प्रयोग किया है। हो सकता है कि शुरू-शुरू में आपको कुछ अटपटा लगे। मगर यह कोशिश लड़कों को दरकिनार करने की नहीं है। हमारी कोशिश है कि उन तमाम लड़कियों को पाठ्य पुस्तक में जगह मिले जिसके साथ अलग-अलग तरीकों से गैर-बराबरी का व्यवहार किया जाता है।"

प्रश्न है कि क्या मनोवृत्ति, भाषायी छेड़छाड़ से या भाषायी अराजकता पैदा करके बदली जा सकती है? फिर जैसा कि लिखा है, ऐसा प्रयोग केवल कुछ ही पाठों में क्यों? सबमें क्यों नहीं?

इस पुस्तक को पढ़कर लिखनेवालों की सोच एवं एजेण्डा पर तरस आती है। वे बच्चों को जानकारी से बंचित रखकर उन्हें अवधारणा का ज्ञान कराना चाहते हैं। वे यह तो बताते हैं कि गाड़ीवान आम्बेडकर को उनके घर तक नहीं पहुँचाते, लेकिन यह बतलाना नहीं चाहते कि उन्हीं आम्बेडकर को इस देश ने अपना संविधान निर्माता बनाकर आदर दिया। प्रश्न लौटकर हमारी ऐसी पाठ्य-पुस्तकों पर आ जाता है। आखिर ऐसी पुस्तकों से हम पाना क्या चाहते हैं जो बच्चों के दिमाग में अविश्वास, घृणा, अज्ञान फैलाकर समाज को तोड़ने का कारक बनें। आखिर इन्हें पाठ्य क्रमों से हटाने की पहल कब होगी?

— **ब्रज बिहारी कुमार**

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शिलङ् एक यात्रानुभव

रमेशचन्द्र शाह*

नाम और नामी एक-से-एक बढ़कर सुन्दर निकलें, ऐसा कम ही देखने में आता है। परन्तु शिलङ् का जादू अक्षरशः आपके सिर-पर चढ़कर बोलता है। कम ही जगहें ऐसी होती हैं जो उनके बारे में आपकी कल्पना के समकक्ष साबित होती हैं। किन्तु शिलङ् का साक्षात् दरस-परस आपकी कल्पना को भी पीछे, बहुत पीछे छोड़ देता है। हम कितना ही उसे निहारें, आँखें कभी नहीं अघायेंगी : 'जनम अवधि हम रूप निहारल नयन न तिरपित भेल'... कुछ ऐसी मोहनी माया है इस नगर की। बहुत सम्भव है, यह मेरी पहाड़ी भावुकता का अनर्गल विस्फोट हो, जो मुझसे ऐसा कहलवा रहा हो। मगर यदि ऐसा भी हो, तो भी मुझे इसके लिए कोई पछतावा न होगा—क्योंकि मेरे अल्मोड़ा से होड़ ले सके, ऐसा चाक्षुष चमत्कार मेरे जीवन में यहीं पहली बार घटित हुआ। अब आप ही बतायें इससे बड़ी कसौटी और किसी के भी लिए क्या होगी?

ठीक साढ़े पाँच बजे हमारे टैक्सी ड्राइवर मोइनुल अली तशरीफ ले आये और पहले मुझे 'डेस्टिनी' नहीं, 'डाइनेस्टी' से और तदुपरान्त कहानीकार उर्मिला शिरीष को कण्टूर होटल से लिवाकर शिलङ् के लिए रवाना हो गये। हमारे बायीं ओर असम और दायीं तरफ मेघालय। ... तभी अचानक एक नदी प्रगट हुई... और मोइनुल बोले—"बर्निहट नदी के उस पार मेघालय शुरू हुआ समझिये।" रास्ते में सुपारी के वृक्षों की बहुतायत थी। हमने कुछ खाया-पिया न होगा—यह भाँपकर मोइनुल ने स्वतःप्रेरणा से एक दूकान पर गाड़ी रोकी और अनन्नास कटवाकर तीन पैकेट भर लाये। इससे बढ़िया नाश्ता भला और क्या हो सकता था! साथ में एक-एक 'कोल'—यानी केला। दस रुपये का एक केला। हमें अचरज में पड़ा देखकर मोइनुल ने आश्वस्त किया—"मेघालय में सब कुछ महँगा होता है।"

अनन्नास के साथ मोइनुल पान का पत्तल भी लेते आये। दस रुपये का बड़ा-सा पत्ता, जिसमें पाँच पान के टुकड़े—हर टुकड़े के भीतर मक्खन से भी मुलायम चूना,

*सम्पर्क : एम 4, निराला नगर, भदभदा रोड, भोपाल 462003

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और अधकटी सुपारी के बड़े-बड़े चार-चार खण्ड। यहाँ सब कुछ ताम्बूल है। तो एक ताम्बूल आधी सुपारी के साथ जमा लिया—गले की खराश बढ़ने की भरपूर आशंका के बावजूद। चबाते ही मजा आ गया, मगर कुछ ही मिनटों में सुरती की 'हेवी डोज़' जैसा नशा छाने लगा। तब मेरी दशा पर आनन्दित चतुर सुजान मोइनुल ने राज खोला कि "हाँ, अइसा ही होता है ताम्बूल। अजी साब, कत्थे का यहाँ क्या काम! जब बिना उसके ही मुँह लाल हो जाय! जैसे असम में सुपारी को 'गुवा' कहा जाता है, वैसे ही यहाँ उसका नाम 'क्वा' या कुवा हो जाता है।"

रास्ते में थोड़ी-थोड़ी दूर पर—जहाँ भी थोड़ी ढलवाँ जमीन मिली, चाय के बागान दिखायी देते रहे। एक का बाकायदा मुआयना भी करवाया मोइनुल ने गाड़ी रोककर। समूची सड़क पर जगह-जगह लोहे की जाली में लिपटे बड़े-बड़े प्रस्तर खण्ड। सड़क चौड़ी की जा रही है... भारी बारिश में वैसे भी—इधर के पहाड़ खिसकते रहते हैं। "लाइफलाइन है यह, गुवाहाटी को शिलांग से ही नहीं, आगे बहुत आगे सिलचर, अगरतला और इम्फाल तक से जोड़ने वाली।"

रास्ते में कई जगह सलीब पर टँगे ईसामसीह के बड़े-बड़े चित्र पोस्टरों की तरह गड़े देखकर हम हैरान थे कि आखिर यह क्या चक्कर है? ऐसा तो मैंने समूचे देश में कहीं नहीं देखा। तभी मोइनुल ने इस पहेली का हल प्रस्तुत कर दिया। "इधर ट्राइबल में क्रिस्तान बहुत हैं। सो उन्हीं की चलती है।"

जैसे-जैसे शिलङ् पास आता जा रहा था, वैसे-वैसे चीड़ के दरख्त, जो अभी तक इक्के-दुक्के ही दिखायी दे रहे थे—अब अचानक बढ़ते जा रहे थे : तादाद में ही नहीं, अपनी कदोकामत में भी,...। यह शिलङ् आ रहा है कि अल्मोड़ा या कि रानीखेत? "यह देखिये पावरहाउस"—मोइनुल ने दायीं तरफ इशारा किया—"आधी बिजली, मेघालय की यहीं बनती है।" थोड़ा आगे बढ़ते ही 'बड़ा पानी' नामक विशाल जलराशि वाली झील कुहरे के आवरण को जगह-जगह चीरती हुई प्रगट हुई। अद्‌भुत था वह दृश्य। अवर्णनीय। गाड़ी से उतर के उसका जीभर आनन्द लिया। तभी एक दूसरी गाड़ी भी वहीं आकर रुकी, देखा उसमें साहित्य अकादेमी के कई सारे कर्मचारी ठुँसे हैं। शिलांग की सैर का मौका नहीं गँवाना चाहते होंगे। यूँ उन्हें आज ही शाम वापस दिल्ली को प्रस्थान करना है।

बड़ा पानी से शिलङ् केवल 19 किलोमीटर दूर है। कुहरा अभी भी घना था। किन्तु लगातार झीना और महीन होकर उड़ रहा था और बीच-बीच में फटा भी पड़ रहा था। एक मोड़ पर डिफेन्स सेण्टर की बड़ी इमारत दिखी और वहीं से जंगल का आवरण खिसकता शिलङ् की घनी बस्ती के चिह्नों को उभारने लगा। मोड़ और घुमाव भी बढ़ते गये। कैंटोनमेंट एरिया, फिर 'बर्बरीक इन' नामक आलीशान होटल। उतार की बजाय अब चढ़ाई-ही-चढ़ाई, और हर मोड़ पर बदलता भू-दृश्य। अचानक एक सुर्ख लाल रंग के फूलों से लदा पेड़ दिखा और फिर तो एक पूरी कतार ही। नाम पूछा तो अली ने कहा 'मदर पेड़'। "क्या?" जी हाँ 'मदर पेड़'। किसी काम का नहीं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है, ये पेड़। बस नाम का पेड़ है। न फल, न कुछ। अरे! तो फिर 'मदर पेड़' नाम क्यों? अली ने इस पर 'क्या पता' की तरह कन्धे उचका दिये।

अचानक नाशपाती के ढेर-के-ढेर प्रगट हुए। "कम फलता है, मगर इतनी मीठी और रसीली नाशपाती आपको कहीं नहीं मिलेगी।" मोइनुल ने बताया। ... सड़क की बायीं तरफ खासे कद्दावर चीड़-ही-चीड़। और दायीं तरफ एक अलग ही किस्म के वृक्षों की कतार ... जो मुझे बाद में समझ आया —वही था जिसे हमारे यहाँ 'मोरपँखी' कहते हैं। वह भी हुआ तो आखिर 'पाइन' ही।

थोड़ा और कर्री चढ़ाई चढ़कर अब हम अकस्मात् एक ऐसी जगह आ पहुँचे जहाँ घनघोर जल-निनाद कानों में भर गया। वह 'एलिफेण्ट फॉल' था—हाथी प्रपात। यथा नाम तथा गुण। तभी वर्षा आरम्भ हो गयी और हमें उस रोमांचकारी दृश्य से जबरन बिछुड़ना पड़ा। मुझे हक्का-बक्का देख अली ने आश्वासन दिया। कहा—"इससे भी जोरदार जगह ले चलता हूँ आगे। मायूस न हों"। सचमुच वह बेहद शानदार स्पॉट था। 'शिलाँग पीक'—अर्थात 'शिलङ् शिखर'। जहाँ से समूचा शहर खिलौने-सा जगमगा रहा था। इस कदर भव्य और इस कदर खुशनुमा—जैसे अपनी कोई खोयी हुई निधि अकस्मात मिल गयी हो, जिसके मिलने की कहीं कोई आशा नहीं थी। ऐसी ही—मगर इससे भी ऊँची और जबरदस्त कैफियत हम पर तब तारी हुई जब अली हमें 'पौटेटो रिसर्च सेण्टर' और सब्जियों के भरे-पूरे बाग दिखलाते हुए एअरफोर्स स्टेशन हाँक ले गया। उस अन्यथा वर्जित क्षेत्र में प्रवेश करने पर 'लैटकोरा पीक' पहुँच गये जहाँ से शिलङ् का समूचा चतुर्दिक जगमगाता हुआ दृश्य हमारी ही प्रतीक्षा कर रहा था। देर हो रही थी—हमें 'नेहू' यानी, 'नार्थ ईस्ट हिल यूनिवर्सिटी' के गेस्ट हाउस पहुँचना था। हिन्दी विभाग वालों के फोन-पर-फोन उर्मिला के पास आ रहे थे। उनके मेरे बीच सेतु-धर्म निबाहती उर्मिला ने मुझे बताया था मुझे कविता-पाठ करना है। गेस्ट हाउस में हम लोगों के ठहरने का इन्तजाम भी हो चुका था। तो हमने सन्देशा भिजवाया कि "ये मेघ साहसिक सैलानी' जो अभी आपके सर्वोच्च शिखर पर मँडराने में ही मशगूल हैं, बस आधा घण्टा की मोहलत भर उन्हें आपके 'नेहू परिसर में लैण्ड करने के लिए और बख्श दीजिये। अपने छात्र-छात्राओं से कहिये—थोड़ा सब्र रखें। सब्र का फल मीठा होता है।"

लैटकोरा पीक से उतरते हुए 'मेजर दानसिंह थापा मार्ग' पड़ा जो निश्चय ही हमारे कुमाऊँ रेजिमेण्ट के ही किसी योद्धा की वीरगाथा से जुड़ा होना चाहिए। थोड़ा ही और आगे चलने पर 'नेहू' का गेस्ट हाउस आ गया। जल्दी-जल्दी नहा-धोकर हिन्दी विभाग पहुँचे, जहाँ अध्यक्ष प्रो. दिनेश कुमार चौबे, भरत प्रसाद, जितेन्द्र और मेरे पूर्व परिचित प्रो. माधवेन्द्र मिश्र मिले। अध्यक्ष महोदय लगभग क्षमायाची मुद्रा में दिखायी दिये—छात्रों को नित्य की अपेक्षा कुछ अधिक देर तक अटकाये रहने के कारण। हालाँकि स्वयं छात्र-छात्राओं की मुखमुद्रा में मुझे उस तरह की अधीरता या झुँझलाहट के कतई कोई लक्षण नहीं दिखायी पड़े। जब उन्होंने सहसा मुझसे 'आशीर्वाद' की माँग

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की, तो मेरी समझ में आ गया कि मेरे 'काव्यपाठ' वाली बात लहनासिंह वाली 'मेम की जरसी' की तरह काल्पनिक कथा मात्र थी। एक क्षण तो मैं असमंजस में रहा कि हमें 'गेस्ट हाउस' की सुविधा सुलभ कराने की एवज में 'आशीर्वाद' के नाम पर हमसे किस तरह के प्रतिदान की अपेक्षा होगी? किन्तु दूसरे ही क्षण मुझे मेरा आपातकालीन कर्तव्य सूझ गया। अहिन्दीभाषी छात्रों के साथ के अपने मधुर अनुभवों का बखान करते हुए और हिन्दी को न केवल समग्र भारतीय अस्मिता की संवाहक निरूपित करते हुए, बल्कि उसे समस्त भारतीय भाषाओं और बोलियों का लघुतम समापवर्त्य और महत्तम समापर्तक भी बताते हुए मैंने निहायत कौतुकी अन्दाज में छात्रों-छात्राओं के समक्ष एक पढ़ाकू प्रश्न उछाल दिया : "बताइये, ऐसा कौन आधुनिक लेखक हिन्दी का है जिसकी रचनाओं में आपको इस अपनी आंचलिक पृष्ठभूमि का योगदान दिखायी देता है?" ...मुझे सुखद आश्चर्य में डालते हुए अगली कतार से तीन-तीन हाथ उठ गये? "अज्ञेयःस.ही.वात्स्यायन।" "नाम बता सकते हैं कुछ रचनाओं के?" ...मैंने अगला प्रश्न उछाला। इस पर उन हाथों में थोड़ी हिचकिचाहट उभरी। मगर एक ने तुरन्त मेरे प्रश्न का सत्कार करते हुए कहा—'हीलीलोन की बत्तखें', और 'पावस प्रातः शिलङ्'। इस पर मैं कुछ ज्यादा ही रंग में आ गया। बोला—"सुना सकते हैं आप यह कविता हमको? कोई कविता हमें सचमुच मोहती है तो इसका पक्का सबूत यह होता है कि वह हमें कण्ठस्थ हो जाये।" इस पर वह छात्र (नाम भूल रहा हूँ इस वक्त—शायद मोइनुद्दीन, या ऐसा ही कुछ)। थोड़ा हिचकिचाया, तो बजाय इसके, कि मैं थोड़ा सब्र रखता, मैंने खुद ही वह कविता अपनी याददाश्त क़ी पिटारी से निकालकर पेश कर दी,

"धूप
माँ की हँसी के प्रतिबिम्ब सी शिशु-वदन पर
हुई भासित।
नये चीड़ों से कँटीली पार की गिरि-शृंखला पर
गीति :
मन पर, वेदना के बिना, तर्कातीत
बस स्वीकार से ही सिहर कर बोला—
'नहीं! फिर आना नहीं होगा।"

खैर गुजरी कि उस वक्त न तो उस छात्र को, न ही किसी अध्यापक बन्धु को मेरी याददाश्त का छिद्र नजर आया। लेकिन जब उर्मिला शिरीष भी बोल चुकीं और प्रोफेसर जितेन्द्र धन्यवाद-ज्ञापन करने उठे, तब अकस्मात् मुझे इलहाम-सा हुआ कि मैं उस कविता की बजाय कोई दूसरी ही कविता पढ़ गया हूँ। बेशक वह कविता जो मैंने पेश की, वह भी अज्ञेय की ही थी। किन्तु 'पावस प्रातः शिलङ्' तो वह नहीं ही थी। तत्काल मैंने जितेन्द्र जी को इशारा किया और कहा—मुझसे एक भूल हुई है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पहले मुझे उसका परिमार्जन कर लेने दीजिये। मैंने लक्ष्य किया—मेरी इस स्वीकारोक्ति पर उस छात्र के मुख पर एक हल्की-सी मुस्कराहट तैर आयी है। निश्चय ही उसे वह कविता याद थी। किन्तु या तो संकोचवश या अपनी सहज शालीनता और विनयवश वह चुप्पी साधे बैठा रहा था। "तुम जानते हो—जानते हो ना, कि मेरी भूल क्या थी? अब तुम्हीं उसे ठीक करो ना?" —मैंने उससे कहा। परन्तु उसने मुस्कुराते हुए सिर हिला दिया। तब मैंने ही वह कविता सुना दी :

'भोर बेला। सिंची छत से ओस की तिप्-तिप्—पहाड़ी काक
की विजन को चीरती सी क्लान्त बेसुर डाक
हाक्! हाक्! हाक्! ...
मत सँजो यह स्निग्ध सपनों का अलस सोना
रहेगी बस एक मुट्ठी खाक
थाक्! थाक्! थाक्!

देखिये, मैंने कहा, अ-हिन्दी शब्दों ध्वनियों का कितना सूक्ष्म और संवेदनशील उपयोग इस कविता में कवि ने किया है। 'डाक', 'हाक्', 'थाक्' ... इनमें से एक भी शब्द हिन्दी का नहीं। 'डाक' बँगला का शब्द है—सुनी ही होगी आपने टैगोर की यह प्रसिद्ध कविता ...'जदि तोर डाक शुने कोई ना आशे, तबे एकला चलोरे'। 'थाक्' यानी 'रहने दो' भी बाँग्ला शब्द है—जिसकी ध्वनि से थकान और निर्वेद की व्यंजना भी भरपूर उभर आती है। और 'हाक्'? वह आपको एक ओर अंग्रेजी के हार्क अर्थात (सुनो) का स्मरण कराता है, और दूसरी ओर हिन्दी की 'हाँक' का। मगर क्या कविता पढ़ते या सुनते हुए उसमें कहीं भी परायापन या बिदेसीपन महसूस होता है? कदापि नहीं। तो यह होती है कविता की अपनी, खासुलखास अपनी फितरत और तासीर। इसे गुनिये और गाँठ बाँध लीजिये मन में—कि कविता क्या होती है, कैसे होती है, क्यों होती है और आपकी जिन्दगी में उसकी क्या अहमियत है।

मेरा बहुत मन था—छात्रों और अध्यापक बन्धुओं से बात करने का—थोड़ी देर उनके साथ बैठने का। मगर मेरे आतिथेय इस कदर हड़बड़ी में थे, कि मैं अपने उत्साह और स्फूर्ति के बावजूद लगातार एक अटपटापन महसूस करता रहा। इसलिए भी, कि मैं जब बोल रहा था, विभागाध्यक्ष चौबे जी एक तरफ तो छात्रों को "तुम लोग जो भी जाना चाहो, जा सकते हो चुपचाप" इस आशय का संकेत लगातार कर रहे थे और साथ में मुझसे यह भी कहते जाते थे कि "आप तो बोलते रहिये। जिन्हें घर जाने में विलम्ब हो रहा है, उन्हें जाने को कह रहा हूँ"...। अब, कौन ऐसा वक्ता होगा जो ऐसी अस्थिरता के बीचोबीच भी स्थिर रहेगा? वह तो मेरी ही मजबूरी या निर्लज्ज काठी कहिये, जो इस अनावश्यक विघ्न-विक्षेप के बावजूद अपनी वाग्धारा से विरत नहीं हो सकी। पर ... बाद में जरूर मुझे लगा कि हमारे हिन्दी विभागों के साथ जरूर कहीं कोई गड़बड़ है जो उन्हें स्वयं हिन्दी की गरिमा के प्रति सचेत नहीं रहने देती।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बहरहाल, व्याख्यानोपरान्त हमने कैण्टीन में जाकर अपराह्न भोजन की औपचारिकता भर निभायी और तुरन्त नगर-परिक्रमा के लिए निकल पड़े। ऊँचे शिखर से नगर जितना सुन्दर और मनोहारी लग रहा था, भीतर पैठने का अनुभव उतना स्फूर्तिप्रद प्रतीत नहीं हुआ। जल्द ही हम शिलङ् के प्रसिद्ध म्यूजियम 'डॉन बॉस्को' का अवलोकन करने पहुँच गये।

डॉन बास्को—जैसा कि नाम ही जतला देता है, —आदिवासियों के अध्ययन और उत्थान के लिए समर्पित एक कैथोलिक मिशनरी आन्दोलन के अग्रणी नेता के रूप में इस संग्रहालय के प्रेरणा-पुरुष की तरह प्रतिष्ठित हैं। इस आन्दोलन के महानायक के रूप में उनके व्यक्तित्व और कृतित्व की छाप यहाँ हर जगह अंकित और चित्रित की गई है। उन्नीसवीं सदी की शुरूआत में ही यहाँ कैथोलिक मिशनरी हर तरह का जोखिम उठाते हुए बड़े जीवट के साथ सक्रिय हो गये थे। उनके जीवट और कर्मकौशल का लोहा बेशक उन्हें भी मानना पड़ेगा जो धर्मान्तरणवादी कर्मठता या 'सेवा' को इसलिए मूलतः संदिग्ध मानते हैं कि यह अनासक्ति से प्रेरित नहीं हैं जो कि तात्विक धर्म-चेतना की पहली शर्त है। यों इस म्यूजियम में क्या नहीं है? सारे उत्तर-पूर्वी भारत के 'ट्राइबल कल्चर्स' की विशिष्ट खूबियों की यहाँ ब्यौरेवार और चित्रसंजीव-रंगारंग नुमाईश लगी हुई है—और साथ ही विश्वस्तर पर भी तमाम आदिवासी संस्कृतियों का लेखा-जोखा भी यहाँ आगे मिल जायेगा। खासा मनोरंजन ही नहीं, प्रशिक्षण भी हो जायेगा आपका। एक कक्ष में आपको समस्त विश्व-धर्मों के मूल विश्वासों-निष्कर्षों का चार्ट लगा मिलेगा। उसका मुआयना करें, तो आपको यही निष्कर्ष हाथ लगेगा कि हिन्दू, बौद्ध आदि धर्म सब दो मुख्य बातों पर आधारित हैं—एक तो तर्क (रीजन) और दूसरा विश्वास यानी 'फेथ'। किन्तु क्रिश्चियनिटी यानी ईसाइयत, 'रीजन' और 'फेथ' के अलावा और ऊपर जिस एक अद्वितीय और विलक्षण विशिष्टता के कारण अपनी पृथक पहचान स्थापित करती है, वह है—'रेवेलेशन'। इसमें स्पष्ट अथवा प्रच्छन्न संकेत यही, कि इसी कारण वह सर्वश्रेष्ठ, सर्वोच्च और एकमात्र प्रामाणिक 'विश्वधर्म' कहलाने का पात्र है। अब आपके जैसा कोई दर्शक, जो आदिवासियों के बीच घुल-मिल चुके, उन्हीं की वेशभूषा में उन्हें धर्मोपदेश करते डॉन बॉस्को या किसी दूसरे धर्मगुरु की ज्योतिर्मय छवियों से (गजब की फोटोग्राफी और गजब की चित्र-सज्जा से समृद्ध है यह म्यूजियम। करोड़ों क्या अरबों खर्च हुए होंगे इस पर) खासा प्रभावित हो चुका है, इस निष्कर्ष के सम्मुख हक्का-बक्का रह जाता है तो यह आपकी ही जहालत, आपका अज्ञान ही है, जो 'रेवेलेशन' और 'श्रुति' के बीच भी भेद करना नहीं जानता और जो न तो ध्यानयोग-लभ्य अपरोक्षानुभूति को तथाकथित 'रेवेलेशन' से किसी भी तरह कम प्रामाणिक मानने को प्रस्तुत हो पाता है, न ज्ञान-भक्ति या कर्मयोग के जीवन्त प्रत्यक्षपाठ सरीखी विभूतियों के सर्वथा समसामयिक और अद्यतन (न, कि ऐतिहासिक) उदाहरणों को कैसी भी मसीहाई अथवा सन्तई से विस्थापनीय मानने को। संग्रहालय में दिग्विजयी ईसाइयत के सबसे बड़े महानायक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सेण्ट पॉल के जीवन और कार्य का चित्रण जितने प्रभावशाली ढंग से किया गया है, अर्वाचीन 'सेलेसियस' सम्प्रदाय की साध्वियों के बारे में भी उतनी ही रोचक जानकारियाँ उतने ही सजीव और चमत्कारिक कौशल के साथ प्रदर्शित की गयी है। नृतत्त्व विज्ञान की भी तो अन्ततः पश्चिम के ही ज्ञानात्मक ऐडवेंचर का अधुतातन शास्त्र है। इससे क्या फर्क पड़ता है कि समूची पृथ्वी के आदिवासी और पैगन समाजों के उन्मूलन का श्रेय भी पश्चिम की ही इसी साम्राज्यवादी सभ्यता को ही जाता है। इससे भी क्या फर्क पड़ता है कि मजहबी धर्मोन्माद भी एक तरह का साम्राज्यवाद ही है—धार्मिक साम्राज्यवाद—जिसका आरम्भ ही पृथ्वी की समस्त मनुष्यता को 'फेथफुल' और 'इनफिडेल' के दो धड़ों में बाँटके चलने की घोर अनर्थकारी पूर्वप्रतिज्ञा में निहित है।

बहरहाल, 'डॉन बॉस्को म्यूजियम' इतना रोचक, बहुविध और विशाल है कि उसे देखने में ही दो घण्टे लग गये। सर्वाधिक आनन्द उसकी छत पर पहुँचकर उपलब्ध हुआ जहाँ बने गोल चक्कर से शिलङ् शिखर सरीखा रोमांचकारी नजारा समूचे नगर के लैण्ड स्केप का मिलता है। आपको अपनी सुध-बुध ही बिसर जाय, ऐसी मोहनी माया है उस दृश्यावली की।

मारे थकान के हमारा बुरा हाल था। जल्दी उठना था इसलिए गेस्ट हाउस का निहायत ही बेस्वाद खाना किसी तरह निगल के तुरन्त नींद में जा लुढ़के। ठीक पाँच बजे अली की टैक्सी हमें लेकर वापसी यात्रा पर रवाना हुई। उतनी सुबह भी रास्ते पर ट्रकों की कतार लग गयी थी। दस बजे से पहले ही गुवाहाटी एयरपोर्ट पहुँच गये। दो बजे दिल्ली और कोई नौ बजे भोपाल। अभी तक जिस मर्ज ने देह में प्रविष्ट होकर भी कुछ खलबली नहीं मचायी थी—मुझ पर तरस खाकर—या मेरे दुस्साहस को किसी तरह बख्श देने की रियायत बरतते हुए—वह अगली सुबह उठते ही अपने पूरे प्रकोप के साथ मुझ पर टूट पड़ा है। उसके सब्र का बाँध टूटकर मेरे गले की श्वास-नलियों को ही नहीं, आँखों को भी अपने लपेट में ले चुका है। बहरहाल, शुक्रिया इन अदृश्य संक्रामकों का। और अपने इस सर्वथा वेध्य और वध्य शरीर का भी... ।

इस यात्रान्त पर, मन तो कहना चाहता है— अपने प्रिय कवि के सुर में सुर मिलाकर, कि "दिया मन को दिलासा—पुनः आऊँगा

भले ही बरस दिन, अनगिन युगों के बाद"

......

अरे, यायावर, रहेगा याद।

किन्तु यह तो हुई मन की बात। तन तो कुछ और ही कह रहा है। और वह कहने के लिए भी उसी अपने प्रिय कवि की ही एक उतनी ही मार्मिक और उतनी ही सत्य काव्योक्ति का ही सहारा ले रहा है :

'मन पर वेदना के बिना तर्कातीत
बस, स्वीकार से ही सिहर कर बोला
नहीं! फिर आना नहीं होगा' ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषा, संस्कृति और समाज : भूमण्डलीकरण के सन्दर्भों में

सुधीर कुमार*

'आपको समझना चाहिए कि अंग्रेजी शिक्षा लेकर हमने अपने राष्ट्र को गुलाम बनाया है। अंग्रेजी शिक्षा से दम्भ, राग, जुल्म वगैरह बढ़े हैं।

1. अंग्रेजी शिक्षा पाये हुए लोगों ने प्रजा को ठगने, उसे परेशान करने में कुछ भी उठा नहीं रखा है। अब अगर हम अंग्रेजी शिक्षा पाये हुए लोग उसके लिए कुछ करते हैं, तो उसका हम पर जो कर्ज चढ़ा हुआ है, उसका कुछ हिस्सा ही हम अदा करते हैं।" (गाँधी, *हिन्द स्वराज,* पृ. 73)

2. "हिन्दुस्तान को गुलाम बनाने वाले तो हम अंग्रेजी जानने वाले लोग ही हैं। राष्ट्र की हाय अंग्रेजों पर नहीं पड़ेगी, बल्कि हम पर पड़ेगी।" (गाँधी, *हिन्द स्वराज,* पृ. 73)

3. "करोड़ों लोगों को अंग्रेजी की शिक्षा देना उन्हें गुलामी में डालने जैसा है। मैकॉले ने शिक्षा की जो बुनियाद डाली, वह सचमुच गुलामी की बुनियाद थी। उसने इसी इरादे से अपनी योजना बनायी थी, ऐसा मैं नहीं सुझाना चाहता। लेकिन उसके काम का नतीजा यही निकला है। यह कितने दुःख की बात है, कि हम स्वराज्य की बात भी परायी भाषा में करते हैं? (गाँधी, *हिन्द स्वराज,* पृ. 72)

भाषा की स्थिति एवं परिस्थिति–भूमण्डलीकरण की सांस्कृतिक, आर्थिक शक्तियों से परिचालित होने वाली सत्ता-संरचनाओं द्वारा किस सीमा तक प्रभावित तथा निर्धारित हो रही है– यह स्वातन्त्र्योत्तर भारत में 'भाषा के प्रश्न' का अध्ययन करने पर आसानी से ज्ञात हो सकता है। इन्हीं सन्दर्भों में, *हिन्द स्वराज्य* (1909) से गाँधी जी के तीन वक्तव्य उद्धृत किये गये हैं। भारत की भाषा (तथा भारत की भाषाओं) का भारतीय संस्कृति तथा समाज पर क्या और कितना गहरा सम्बन्ध

---

*प्रोफेसर(अंग्रेजी) पंजाब विश्वविद्यालय, एफ–27, से. 25, चण्डीगढ़–160014;
e-mail: kumarsudhir_pu@rediffmail.com, मो. : 09876675149

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है–यह गाँधी जी को पता था, तभी तो उन्होंने–साम्राज्यवाद की वाहक 'अंग्रेजी भाषा' तथा राष्ट्रवाद, आधुनिकता तथा उत्तर-उपनिवेशवाद की वाहक 'अंग्रेजी भाषा' तथा उसके समर्थक–राष्ट्रवादी, उपनिवेशवादी राजनीतिज्ञों तथा विश्वविद्यालयों में स्थित बौद्धिक वर्ग, पश्चिमोन्मुखी लेखक/चिन्तक वर्ग–सभी को *हिन्द स्वराज* में प्रताड़ित किया था। आज के समाज में अपनी मातृभाषाओं (जो कि भारत की राष्ट्रीय भाषायें भी हैं) के प्रति युवावर्ग में जो एक आक्रामक पूर्वाग्रह, आक्रोश तथा उत्साह परिलक्षित हो रहा है–(जैसा कि संघ लोक सेवा आयोग की सिविल सेवा परीक्षा के 'सी-सैट' प्रश्न-पत्र के विरोध में चल रहे आज के आन्दोलन में द्रष्टव्य भी है) क्या उसे गाँधी, टैगोर, लोहिया और प्रेमचन्द के भाषाई सत्याग्रह के सन्दर्भों में नहीं देखा जाना चाहिए?

यह तो सत्य ही है लगभग 200 वर्षों तक भारत के जन-मन-गण पर अमानवीय तथा अनैतिक रूप से अनवरत रूप से आरोपित की जाने वाली अंग्रेजी भाषा का सामाजिक तथा सांस्कृतिक आधार कितना दरिद्र तथा दयनीय है। समकालीन भारत में 5 प्रतिशत लोग भी अंग्रेजी भाषा को 'स्वभाषा' के रूप में बोलने वाले नहीं हैं–और सामाजिक न्याय/मानवीय अधिकारों के सभी तर्कों तथा मूल्यों का अतिक्रमण करते हुए–उपनिवेशवादी, उत्तर-उपनिवेशवादी तथा उपभोक्तावादी ताकतों ने, जिन्होंने सत्ता-संरचनाओं पर कब्जा कर रखा है–उसी-अबोली, किन्तु भद्र-लोकसत्ता वर्ग की भाषा–'अंग्रेजी' को भारत की न्यायपालिका, शिक्षातन्त्र, मीडिया, कार्यपालिका तथा अर्थव्यवस्था के केन्द्र में स्थापित कर रखा है। इसीलिए गाँधी जी ने *हिन्द स्वराज* में वर्चस्व की भाषा/प्रभुत्व की भाषा/गुलामी की भाषा के रूप में 'अंग्रेजी भाषा' की व्याख्या की है। *मात्र अंग्रेजी भाषा में अदक्षता/अक्षमता के कारण-स्वतन्त्र कहे जाने वाले आज के भारत में करोड़ों युवाओं की वाणी (जिह्वा) को 'मूक' कर दिया गया है–क्या यह प्रज्ञापराध–आचार्य द्रोणाचार्य के द्वारा एकलव्य के प्रति हुए अपराध से सहस्र गुणा अधिक निन्दनीय तथा घातक नहीं है??* एक 'एकलव्य' तथा एक 'शम्बूक' के प्रति हुए गम्भीर सामाजिक/सांस्कृतिक अन्याय के कथानकों को हुलार्थी रूपक की तरह आज के सन्दर्भों में समझने की आवश्यकता है। प्रस्तुत आलेख में भाषा के वर्तमान स्वरूप का तत्कालीन समाज और संस्कृति पर पड़ने वाले प्रभावों के अध्ययन(संक्षिप्त रूप से) का भी प्रयास किया गया है।

II

क्या इसे विडम्बना नहीं कहा जायेगा कि जो भाषा, अपनी सामाजिक तथा सांस्कृतिक आधारहीनता के कारण, संविधान की आठवीं अनुसूची में सम्मिलित ही नहीं की गयी–उसी 'अंग्रेजी' भाषा में ही भारत के संविधान की 'मूल' प्रति लिखी गयी–हिन्दी भाषा में उपलब्ध संविधान का पाठ अंग्रेजी से अनूदित है!! द्वितीय, इसी 'अनुवादिक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राजनीति' के चलते संविधान के भाग एक में (अंग्रेजी की मूल संविधान की प्रति में)—"इण्डिया, दैट इज भारत" लिखा गया—मूल प्रति में "भारत दैट इज़ इण्डिया" (पृ.2) आसानी से लिखा जा सकता था, किन्तु ऐसा, लगता है कि पश्चिमोन्मुखी, अंग्रेजी दाँ बौद्धिकों के पूर्वाग्रह के कारण नहीं हो सका। अतः संविधान के हिन्दी संस्करण (अनूदित) में भाग एक के इसी वाक्य खण्ड को 'भारत अर्थात् इण्डिया', कहा गया। राष्ट्रीय मानस/चेतना को ही—वर्चस्ववादी सांस्कृतिक राजनीति के कारण, 'अंग्रेजी/इण्डिया' में अनुवादित ही नहीं बल्कि उत्परिवर्तित करने का जो छल किया गया—जिसके बारे में गाँधी जी ने पहले ही *हिन्द स्वराज* (1909) में चेतावनी देते हुए हमें सावधान किया था,—वह सफल ही नहीं, पुष्टतर हो तो गया और इसी 'भाषाई-सांस्कृतिक छल' के दुष्परिणाम के रूप में हमारी वर्तमान युवा पीढ़ी को जातीय/सांस्कृतिक/राष्ट्रीय-'स्मृति भ्रंश' से ग्रसित होना पड़ा।

जहाँ एक ओर संविधान में 'हिन्दी' को 'संघ की राजभाषा' (लिपि देवनागरी पृ. 174) घोषित किया गया, वहीं 'अंग्रेजी' के प्रभुत्व को बरकरार रखने के लिए समय-समय, स्थान-स्थान पर अनुकूल संवैधानिक अनुच्छेद भी जोड़ दिये गये। हालाँकि इस तथ्य को भी अनदेखा नहीं किया जा सकता है कि संविधान-निर्माताओं को यह पता था कि स्वतन्त्र भारत में प्रजा को 'हिन्दी' ही राष्ट्र-भाषा के रूप में—(उसके सामाजिक, सांस्कृतिक लोक स्वीकृत-आधार के कारण)—स्वीकार करेगी—अतः संविधान के अध्याय चार के अनुच्छेद(351) में यह महत्त्वपूर्ण निर्देश संघीय-सरकार के लिए दिया :—

'हिन्दी भाषा के विकास के लिए निर्देश :— संघ का यह कर्तव्य होगा कि वह हिन्दी भाषा का प्रसार बढ़ाये उसका विकास करे, जिससे *वह भारत की सामासिक संस्कृति के सभी तत्त्वों की अभिव्यक्ति का माध्यम बन सके और उसकी प्रकृति में हस्तक्षेप किये बिना हिन्दुस्तानी में और आठवीं अनुसूची में विनिर्दिष्ट भारत की अन्य भाषाओं में प्रयुक्त रूप, शैली और पदों को आत्मसात करते हुए* और जहाँ आवश्यक और वांछनीय हो वहाँ उसके शब्द-भण्डार के लिए मुख्यतः संस्कृत से और गौणतः अन्य भाषाओं से शब्द ग्रहण करते हुए उसकी समृद्धि सुनिश्चित करे।" (पृ. 178)

दुर्भाग्य यह है कि हिन्दी भाषा की वर्तमान स्थिति में मीडिया(प्रचार-प्रसार तन्त्र, सोशल-मीडिया सहित), समाचार-पत्र, इण्टरनेट/वाट्सऐप/ब्लॉग, टी.वी., फिल्म तथा विज्ञापनों में प्रयुक्त होने वाली अपसंस्कृत/अपभ्रंशित हिन्दी ने हिन्दी के 'संस्कृत/शिष्ट/साहित्यिक' रूप को लोक-विमुख सिद्ध करते हुए उसे सांस्कृतिक क्षेत्र में अपंग-सा कर दिया गया है। पॉपुलर कल्चर या लोक-संस्कृति के नाम पर अन्धाधुन्ध भाषाई प्रदूषण कहीं साहित्यिक-सृजन की स्रोत्ररूपा सरस्वती 'हिन्दी' को कहीं अदृश्य ही न कर दे—यह तर्क निराधार नहीं है। दूसरी ओर भाषाई संकरता (हाइब्रिडिटि) के अबाधित आवेग से उत्पन्न भाषा के संकट को 'भाषागत-उत्परिवर्तन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

या 'क्रियोल' की संज्ञा देने वाले सांस्कृतिक चिन्तकों/आलोचकों की भी कमी नहीं है। अपसांस्कृतिक-अपसामाजिक विद्रूपताओं से प्रभावित हुई हिन्दी भाषा को 'क्रियोल'/'पिजिन' कहने वाले बुद्धिजीवी यह भूल जाते हैं कि 'क्रियोल' या 'पिजिन' का उद्भव तथा विकास, उसकी स्थिति और परिस्थिति—गुलामी, उपनिवेशवाद तथा साम्राज्यवाद के ऐतिहासिक आख्यानों/कारणों की परिणति हैं—और उन संस्कृतियों तथा समाजों/समुदायों की पहचान बनी (जैसे, अफ्रीकी तथा कैरेबियन द्वीपों में रहने वाले लोगों की कबाइली बोलियों वाल—लिपि तथा व्याकरण रहित—जनसमुदाओं में गुलामी तथा औपनिवेशक वर्चस्व स्थापित करने वाली योरोपीय ताकतों की सक्रिय उपस्थिति के कारण हुआ।) जिन्होंने भाषाई शून्यता की स्थिति में साम्राज्यवादी विमर्श की भाषा (अंग्रेजी, फ्रेंच, स्पेनिश, पोर्तुगीज इत्यादि) का मिश्रण अपनी बोलियों में किया—फलस्वरूप 'क्रियोल' अस्तित्व में आयी (कृपया देखें ए 2 क्रॉफ्ट आदि पृ. 57-59)। हिन्दी को लोक-संस्कृति (जिसे आज टी.वी. इण्टरनेट, सोशल मीडिया, समाचार-पत्र, फिल्म ही समझा जाता है) के क्षेत्र में 'क्रियोल' के रूप में स्वीकार करने से जिस भाषाई प्रदूषण और सांस्कृतिक पतन का समर्थन हो रहा है—वह चौंकाने वाला है और इसके भविष्य में आने वाले दुष्परिणामों का अभी सही-सही आकलन/मूल्यांकन करना सम्भव नहीं है। जहाँ एक ओर हमारे भारत का संविधान हिन्दी भाषा को उत्तरोत्तर, भारत की अन्य भाषाओं से अधिकांश प्रयुक्त होने वाले शब्दों को हिन्दी में समावेशित करते हुए तथा संस्कृत को उसका आधार मानते हुए—सम्पूर्ण भारत राष्ट्र व समाज की सम्पर्क/राज भाषा के रूप में समृद्ध करना, भारत की संघीय सरकार का कर्तव्य मानता है; वहीं दूसरी ओर वर्तमान भाषाई प्रदूषण तथा अपसंस्करण को बौद्धिक विमर्श में मान्यता देने वाले तथाकथित विद्वानों की भी कमी नहीं है। यह ध्यान देने की बात है कि विश्व-इतिहास की शक्तियाँ कहे जाने वाले राष्ट्रों ने (स्पेन, इंग्लैण्ड, फ्रांस, जर्मनी, पुर्तगाल इत्यादि) अपने यहाँ—साम्राज्यीकरण तथा उपनिवेशवादी आवश्यकताओं के कारण दूसरी भाषाओं के कुछ शब्द समावेशित करने के बाद भी—राष्ट्रभाषाओं के एक मानक स्वरूप को लोक में प्रचारित व प्रसारित करने हेतु संस्थाएँ बनायीं। ब्रिटिश काउन्सिल तथा आल्यांस फ्रांसेज के माध्यम से भाषाई साम्राज्यीकरण (जो कि सांस्कृतिक साम्राज्यीकरण का प्रारम्भिक किन्तु महत्त्वपूर्ण चरण है) की प्रक्रिया विकासशील देशों में सम्पादित की जा रही है। यहाँ यह नहीं भूलना चाहिए कि— हिन्दी की बोलियों को, या उसके क्षेत्रीय स्वरूपों को (जैसा कि भोजपुरी, अवधी, ब्रज, मैथिली इत्यादि) 'क्रियोल' नहीं कहा जा सकता— क्योंकि इन भाषाओं/बोलियों में सामूहिक/सामुदायिक स्मृतियों, रिवाजों, प्रथाओं, मिथकों स्वप्नों व इतिहासों के साहित्यिक आख्यान सैकड़ों वर्षों से हैं। उपनिवेशवादी भाषा (अंग्रेजी) के विरुद्ध उनके असंख्य लोक-गीतों/स्थानीय आख्यानों में निरन्तर संघर्ष उपस्थित रहा है। नागार्जुन की कविता, *परती परिकथा* में रेणु की स्थानीय भाषा, *राग-दरबारी* में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गँजहों की बोली, हीरा-डोम की कविता, कबीर-सूर-तुलसी को काव्य-भाषा में 'बोलियों' की पूरी स्थानीयता होते हुए भी उनकी एक निश्चित काव्यशास्त्रीय महत्ता भी है। अपने समय की सत्ताओं द्वारा किये जा रहे अन्याय के प्रति भी सजग रूप से इन हिन्दी की प्राकृत-स्वरूप भाषाओं में संवेदना व उसकी अभिव्यक्ति हुई है—इसमें सन्देह नहीं। लेकिन हिन्दी के शिष्ट, लोक-प्रचलित साहित्यिक रूप में अंग्रेजी, तथा अन्य बोलियों के शब्दों को अतार्किक तथा, असंवेदित तरीके से प्रविष्ट करा दिया जाये—तो परिणामस्वरूप एक प्रकार की भाषिक अराजकता/विद्रूपता उत्पन्न हो सकती है—जो हमारी सांस्कृतिक विरासत व परम्परा के प्रतिकूल हो। यही कारण है, कि आधुनिक भारतीय बौद्धिक यह भूल जाते हैं कि विश्व में चौथी सर्वाधिक बोली जाने वाली भाषा होते हुए भी भारत में आने वाले किसी भी विदेशी नागरिक के लिए (जो शिक्षा अथवा रोजगार के या प्रशासनिक कार्य हेतु आ रहा हो) आइ-इ-एल-टी-एस तथा टॉफेल जैसे हिन्दी भाषा में प्रवीणता को प्रमाणित करने वाली परीक्षा में उत्तीर्ण होने की शर्त का सामना नहीं करना पड़ता है। वहीं दूसरी ओर हमारे हिन्दी समाज की हिन्दी के भ्रष्ट स्वरूप के प्रति घनघोर उदासीनता भी चिन्ता का विषय है। हिन्दी-प्रदेशों में ही बाजार की-वैश्विक व स्थानीय दोनों ही शक्तियों ने—हिन्दी भाषा को उसके अपसंस्कृत रूप से तथा अंग्रेजी से (दोनों ही उपकरणों से) विस्थापित कर दिया है। ग्रेशम का अर्थशास्त्र का नियम भाषा के समाजशास्त्र पर भी लागू होता है—इसमें सन्देह नहीं। नकली—(या भ्रष्ट) मुद्रा के स्थान पर यदि भ्रष्ट भाषा को रख दिया जाये, तो नियम की सार्थकता को भाषा के क्षेत्र में भी पूरी मान्यता मिल सकती है। नकली सांस्कृतिक चेतना से तो एक नकलची समाज का ही निर्माण होगा—इसमें सन्देह नहीं।

उपसंहार

अन्त में, जैसा कि प्रारम्भ में भी गाँधी जी को उद्धृत किया गया, भारत में भाषा की स्थिति/प्रश्न के सम्बन्ध में गाँधी के कुछ विचार द्रष्टव्य हैं:—

(अ) "उच्च-से-उच्च शिक्षा तक के लिए स्वभाषा ही शिक्षा का वाहन या माध्यम होना चाहिए।"

(ब) "अंग्रेजी जैसी विजातीय भाषा को शिक्षा का वाहन बना देने से शिक्षा के लिए किया गया और किया जाने वाला बहुतेरा श्रम व्यर्थ गया और जा रहा है।"

(स) "शिक्षा घर और गाँवों तक नहीं पहुँच सकी, इसका एक कारण यह भी है कि वह स्वभाषा के द्वारा नहीं मिलती।" (*गाँधी विचार-दोहन,* पृ. 158-159)

(द) "विदेशी भाषा के माध्यम से दी जाने वाली शिक्षा ने हमारे छात्रों को उनके ही देश में विदेशी बना दिया है। विदेशी भाषा के प्रभुत्व ने हमारी भारतीय भाषाओं के विकास को अवरुद्ध किया है।" (*सिलेक्शन्स फ्रॉम गाँधी,* पृ. 285)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्वतन्त्रता-प्राप्ति के पश्चात् सिवाय राष्ट्रीय साहित्य अकादेमी स्थापित करने के अतिरिक्त संघीय सरकारों द्वारा क्या कोई अन्य भारतीय साहित्य/भाषाओं को समृद्ध करने का कार्यक्रम या कदम लिया गया है? जब तक हमारा शिक्षा-तन्त्र अभी तक अंग्रेजी के उत्तरोत्तर बढ़ते हुए प्रभुत्व की गिरफ्त में है—हम सांस्कृतिक रूप से स्वतन्त्र नहीं कहे जा सकते हैं। सांस्कृतिक विस्मृति के गहरे गर्त में डूबे हुए हमारे आज के भारतीय समाज को क्या अब कोई प्रेमचन्द के उपन्यास *सेवासदन (1918)* की इन पंक्तियों को स्मरण करायेगा :—

"आपकी अंग्रेजी शिक्षा ने आपको ऐसा पददलित किया है कि जब तक यूरोप का कोई विद्वान किसी विषय के गुण-दोष प्रकट न करे, तब तक आप उस विषय की ओर से उदासीन रहते हैं। आप उपनिषदों को अंग्रेजी में पढ़ते हैं, *गीता* को जर्मन में। अर्जुन को अर्जुना, कृष्ण को कृश्ना कहकर अपने स्वभाषा ज्ञान का परिचय देते हैं। आपने इसी मानसिक दासत्व के कारण उस क्षेत्र में अपनी पराजय स्वीकार कर ली, जहाँ हम अपने पूर्वजों की प्रतिभा और प्रचण्डता से चिरकाल तक अपनी विजय पताका फहरा सकते थे।"

सन्दर्भः—

महात्मा गाँधी—*हिन्द स्वराज* (अनु. अमृतलाल ठाकोरदास नाणावती), अहमदाबाद, नवजीवन, 2008

—*गाँधी विचार-दोहन* (सं. किशोरदास मशरुवाला), नयी दिल्ली, सस्ता साहित्य मण्डल प्रकाशन, 1991

—*सिलेक्शन्स फ्रॉम गाँधी* (सं. निर्मल कुमार बोस), अहमदाबाद, नवजीवन, 2008

भारत का संविधान, नयी दिल्ली, भारत सरकार, विधि और न्याय मन्त्रालय, 2011

बिल एरक्रॉफ्ट, हेलेन टिफिन, गेरेथ ग्रिफिथ—*की कन्सेप्ट्स इन पोस्ट—कोलोनियल स्टडीज*, लन्दन व न्यूयार्क, राउटलज, 1999।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नाद-ब्रह्म का भाषिक आधार-दर्शन

डॉ. नन्दलाल मेहता 'वागीश'*

सर्वांग, सटीक और सम्पूर्ण उच्चारण की दृष्टि से देवनागरी लिपि के वर्णाक्षर विश्व वाक्सत्ता में एक मात्र वैज्ञानिक प्रक्रिया के वर्णाक्षर हैं। देवनागरी लिपि को छोड़कर विश्व की किसी भी लिपि में वाक् और वर्ण-ध्वनि की अद्वैतता नहीं है। देवनागरी लिपि में वाक् और वर्णध्वनि का यह एकत्व प्राणिक स्तर तक व्याप्त है। महादेव शिव के डमरू-वादन से संध्वनित चौदह प्रत्याहारों (ध्वनि-समूहों) में पहला अक्षर वर्णाक्षर 'अ' और अन्तिम वर्णाक्षर 'ह' है। यद्यपि पूरा सूत्र 'हल्' है। वस्तुतः 'हल' सूत्र में 'ल' की स्थिति 'ह' वर्ण के विराम-आसन सरीखी है। कारण, एक स्वतन्त्र वर्णाक्षर के रूप में 'ल्' की गणना छठे प्रत्याहार 'लण्' में पहले से प्रतिष्ठित है। इस सूत्र में 'ण्' त वर्ण का विराम-आसन है। प्रत्याहारों के ध्वनि-अंकन की यह व्याकरणिक पद्धति है।

संस्कृत-व्याकरण में 'अच्' शब्द स्वरों का और 'हल्' शब्द व्यंजनों का वाचक है। इन्हीं से बने अजन्त(अच्+अन्त) रूप क्रमशः स्वरों और व्यंजनों के लिए प्रयुक्त होते हैं। देवनागरी लिपि में अधिष्ठित संस्कृत भाषा में सोलह स्वर और तैंतीस व्यंजन हैं। इस प्रकार कुल वर्णाक्षर उनचास हैं। स्वरों में पन्द्रहवाँ स्थान 'अं' वर्ण का है। इसे अनुस्वार कहा जाता है। यह स्वर दीर्घमात्रिक है। सोलहवें स्वर के रूप में 'अः' है। इसे विसर्ग कहा जाता है। अनुस्वार के समान विसर्ग भी दीर्घमात्रिक है। ध्यातव्य यह है कि विसर्ग (अः) में प्राण वायु का स्वाभाविक ध्वनन है। इसी प्रकार व्यंजनों के अन्तिम वर्ण 'ह' में भी प्राणवायु का स्वाभाविक ध्वनन स्वयमेव घटित होता है 'अः' (विसर्ग) और 'ह' (व्यंजन) दोनों के उच्चारण में मुख खुला रह जाता है। दोनों कण्ठ-वर्ण हैं। एक तथ्य तो स्पष्ट है कि विसर्ग कहे जाने वाले स्वर 'अः' में स्वरों का

*डॉ. नन्दलाल मेहता वागीश, पी-एच.डी., डी.लिट्. *(लेखक–समीक्षक–भाषाचिन्तक) पूर्व सीनियर फैलो (Senior Fellow) संस्कृति मन्त्रालय, भारत सरकार।* प्रान्तीय अध्यक्ष – अखिल भारतीय साहित्य परिषद्, हरियाणा। पता : शब्दालोक-1218 सेक्टर–4, अर्बन एस्टेट, गुड़गाँव (हरियाणा) दूरभाष–0124-4077218, सचलवाक–09910431699

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और 'ह' में व्यंजनों का विसर्जन स्वतः चरितार्थ होता है। कण्ठ तो वैखरी उच्चारण का मूलाधार और मूल प्रस्थानक-बिन्दु है।

अजन्त अर्थात् स्वरों के अनुस्वार 'अं' एक प्रकार से स्वरों का अनुनासिक है। व्यंजनों में पाँच वर्गों के अपने-अपने अनुनासिक हैं। ये पाँच हैं—ङ्, ञ्, ण्, न् और म्। अनुनासिक को नासिक्य भी कहा जाता है। अभिप्राय यह है कि अनुनासिक्य वर्णाक्षर वे हैं, जो अपने उच्चारण-स्थान और नाक से संयुक्ततः उच्चरित होते हैं। इस प्रकार उच्चारण की दृष्टि से अनुनासिक अपने वर्णों के नासिक्य ध्वनन के परिणाम हैं। एक अनुस्वार व व्यंजनगत पाँच अनुनासिकों के अतिरिक्त हिन्दी वर्णमाला में एक सातवाँ अनुनासिक है—चन्द्रबिन्दु (ँ)। इस प्रकार हिन्दी भाषा में सात अनुनासिक ध्वनियाँ प्रयुक्त होती हैं।

भाषा-विज्ञान की पुस्तकों में यह त्रुटिपूर्ण धारणा अंकित है कि हिन्दी भाषा में 'चन्द्रबिन्दु' के आगमन का स्रोत अपभ्रंश भाषाएँ हैं। यह अर्धसत्य है। संस्कृत भाषा के स्वतन्त्र शब्दों में 'चन्द्रबिन्दु' का स्थान भले ही नहीं है, किन्तु अनुनासिकता संस्कृत भाषिक ध्वनन का सहज संस्कार नहीं है; ऐसा भी नहीं है। वस्तुतः संस्कृत भाषा में सन्धि अथवा अन्य स्थलों पर नियमानुसार घटित परिवर्तन के बीच नासिक्य अनुगूँज के रक्षण के लिए चन्द्रबिन्दु और यहाँ तक कि हलन्त चन्द्रबिन्दु (ँ्) का प्रयोग मिलता है। ऐसे उद्धरण वैदिक और उत्तर संस्कृत भाषा से लिये जा सकते हैं। यथा—

(क) एष देवासुरगणाँल्लोकान् पाति गभस्तिभिः।

यह श्लोक वाल्मीकि रामायण-अन्तर्गत 'आदित्यहृदय स्तोत्र' के 7वें श्लोक का अंश है। गणान्+लोकान् शब्दों के सन्धियोग-नियमाधीन लोकान् पूर्व न् को ल् हो गया किन्तु 'न्' की अनुनासिक अनुगूँज के लिए उस स्थान पर ँ प्रयुक्त हुआ है।

(ख) एतदालम्बनँ् श्रेष्ठमेतदालम्बनं परम् ॥

(ग) आत्मानँ् रथिनं विद्धि शरीरँ् रथमेव तु ॥

उक्त दोनों उद्धरण कठोपनिषद् से हैं। वैदिक संस्कृत नियमानुसार पदान्त 'म्' से परे अन्तस्थ अथवा ऊष्म व्यंजनों के होने से अनुगूँज रूप में ँ् का प्रयोग हुआ है। इसी नियमानुसार वेदमन्त्रों के बीच-बीच में प्रयुक्त ॐ ध्वनि भी मूलतः सानुनासिक्य प्रयोग के विशिष्ट विधान को व्यक्त करती है। ॐ उच्चारण में अनुनासिकों की समस्त सानुनासिकता समंजित रूप से ध्वनित होती है। इस में कण्ठादि स्थानों की अपेक्षा नासिक्य ध्वनन सघन होता है। नासिक्य के औच्चारिणक संघनन का उदात्त स्वरण ही नाद में परिणत हो जाता है।

मात्रा की दृष्टि से वर्गगत पाँचों हलन्त अनुनासिक अर्धमात्रिक है। हलन्त ङ्, ञ्, ण्, न् और म् वर्णों के लिए हिन्दी-व्याकरण में अक्षरों के ऊपर खड़ी पाई पर बिन्दु (ं) लगाने की पद्धति प्रतिष्ठित हो गयी है। यद्यपि इन्हें अपने-अपने अनुनासिक के साथ भी लिखा जा सकता है। जैसे—संकट, चंचल, कंठ, दंत और पंप शब्दों को

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वर्गगत अनुनासिक के साथ सङ्कट, चञ्चल, कण्ठ, दन्त और पम्प के रूप में भी लिखा जा सकता है। यह व्याकरण-सम्मत है किन्तु मुद्रण की दृष्टि से इनके स्थान पर बिन्दी (ं) लगाना अधिक व्यावहारिक है। यहाँ यह ध्यान देने योग्य है कि वर्गगत अनुनासिक-प्रयोग अपने वर्ग के व्यंजन से पूर्व होता है, जैसे उक्तलिखित शब्दों के हलन्त अनुनासिक वर्ण परवर्ती क, च, ट, त और प वर्ग के अुनरूप प्रयुक्त हुए हैं। अर्थात् वर्गगत अनुनासिकता अपने-अपने वर्ग के वर्णाक्षर से पूर्व प्रयोज्य है। इस प्रकार उच्चारण-दृष्टि से वर्गगत अनुसासिक के पृथक्-पृथक् प्रयोग आधार पर यह कहा जा सकता है कि 'क' वर्ग का 'ङ्' कण्ठनासिक्य वर्ण है। इसी क्रम में चवर्ग का 'ञ्' तालुनासिक्य, टवर्ग का 'ण्' मूर्धानासिक्य, तवर्ग का 'न्' दन्तनासिक्य और पवर्ग का 'म्' ओष्ठ-नासिक्य व्यंजन हैं।

उक्त विवेचन से यह स्पष्ट है कि जहाँ अनुनासिक व्यंजन अपने परवर्ती व्यंजन-वर्ग का अनुसरण करता है वहाँ अनुस्वार सदैव पूर्ववर्ती स्वर के संग होता है। जहाँ हलन्त अनुनासिक व्यंजन की अर्धमात्रा होती है वहाँ अनुस्वारयुक्त वर्ण दीर्घमात्रिक हो जाता है। मात्रा की दृष्टि से छन्द में चंद्रबिन्दु गणनीय नहीं है, यद्यपि चन्द्रबिन्दु युक्त वर्ण भी अनुनासिक वर्ण कहलाते हैं। जहाँ पाँचों अनुनासिक अर्धमात्रा वर्ण हैं, वहाँ चन्द्रबिन्दु चतुर्थांश या उनसे भी आगे मात्र अनुगूँज के लिए प्रयुक्त होता है। इसलिए जहाँ छन्दगत अनुनासिक वर्ण अर्धमात्रिक गणना के रूप में अपने पूर्ववर्ती वर्ण को दीर्घ कर देता है, वहाँ चन्द्रबिन्दु प्रयोग की गणना किसी भी मात्रागत योग के रूप में नहीं होती।

वर्णमाला के प्राथमिक क्रम स्थान की दृष्टि से अनुस्वारयुक्त शब्द भाषा-कोष में पहले अंकित होना चाहिए। संस्कृत के प्रामाणिक कोष-ग्रन्थों में इस नियम का पालन हुआ है किन्तु हिन्दी के महत्त्वपूर्ण कोष-ग्रन्थों में भी इस नियम के वैशिष्ट्य को उपेक्षित किया गया है। देवनागरी लिपि में व्याकरण के वर्णाक्षरगत क्रमानुसार 'अंशराज' शब्द पहले आना चाहिए और 'अंगराज' शब्द बाद में। इसी आधार पर कोष में 'अंश' शब्द, 'अंक' शब्द से पहले अंकित होना चाहिए। हिन्दी के कोषग्रन्थों में इस का व्यतिक्रम मिलता है। अनुस्वार और वर्गित अनुनासिक वर्णों के क्रम एवं विशिष्ट औच्चारणिक ध्वनन से अनवगत, हिन्दी भाषा के अनेक कथित प्रबुद्ध विशेषज्ञ इस विविक्त अनुशासन का उल्लंघन किये जा रहे हैं।

अवधेय है कि देवनागरी लिपि में लिपित हिन्दी भाषा में सात अनुनासिक प्रयुक्त होते हैं। हिन्दी लिपि में इस प्रकार की अनुनासिकता अपूर्व और अनुपम है। यदि संस्कृत भाषा की सन्धि परम्परा की चन्द्रबैन्दव अनुगूँज को सम्मिलित कर लिया जाय तो हिन्दी वर्णाक्षिरों का संसार एक आधिदैविक नाद से झंकृत हो उठेगा।

हिन्दी भाषा को अनुनासिकता की यह ध्वनन पूँजी देवनागरी लिपि की संस्कृत भाषिक परम्परा से प्रसादवत् प्राप्त हुई। विश्व की किसी भी समृद्ध भाषा में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अनुनासिकता का ऐसा ध्वनन-सौन्दर्य नहीं है। समस्त भाषिक श्रेयता को अपने पक्ष में बँटोरने वाली अंग्रेजी भाषा के पास मात्र दो अनुनासिक हैं —M और N अर्थात् 'म', 'न', तिस पर अंग्रेजी भाषा में आक्षरिक ध्वनि कुछ और है और वर्णगत प्रयोग की ध्वनि कुछ और। वस्तुतः अंग्रेजी भाषा सहित संसार की अनेक भाषाओं में वाक् और वर्णाक्षर की अद्वैतता का सौन्दर्य है ही नहीं। वे गढ़ी हुई भाषाएँ हैं। उनकी लिपियों में ध्वनि का आधिदैविक अवतरण ही नहीं। यही कारण है कि अंग्रेजी भाषा में संस्कृत और हिन्दी भाषा का सटीक लैपिक रूपान्तरण सम्भव ही नहीं है। कहाँ देवनागरी लिपि की सात-सात अनुनासिक अनुगूँजों से सम्पन्न हिन्दी और संस्कृत भाषा के 49 वर्ण और कहाँ रोमनलिपि की मात्र 26 वर्णो में अवरुद्ध अंग्रेजी भाषा। यद्यपि उद्धृत घटना का घटित होना प्रमाणित नहीं है और यह भी हो सकता है कि घटना कल्पित हो, तो भी इस कथा-रूप से रोमन में लिखित अंग्रेजी भाषा की दीनता और विवशता का पता चलता है। कथा-रूप यह है कि अंग्रेजी शासन काल में किसी भारतीय साधु पर विद्रोह का कानूनी आरोप लगाकर उसे एक अंग्रेज जज के सामने पेश किया गया। जब उस भारतीय साधु से उसका नाम पूछा गया तो उसने बताया कि उसका नाम है—स्वामी ञमङण्णनानन्द। लाख कोशिश करने पर भी अंग्रेजी भाषा में M और N के सहारे से ञमङण्णनानन्द उच्चारण को लिपित नहीं किया जा सका। फलतः न्यायालय को उसे मुक्त करना पड़ा। चाहे यह कथारूपक कोरा कल्पित हो किन्तु यह देवनागरी लिपि में लिपित संस्कृत और हिन्दी की भाषिक शक्ति की सर्वोपरिता को प्रमाणित करता है। हिन्दी भाषा में 49 वर्णाक्षर हैं और अन्तरिक्ष में 49 ही पवन हैं। भारतीय दर्शन का यह आनुभाविक बोध विज्ञान की दृष्टि से अनुसन्धेय है। वैज्ञानिक भाषा चिन्तन का यह मानना है कि 49 पवनों के आश्रय से उच्चरित ये 49 वर्णाक्षर ही विश्व-वाक् के अनाहत अक्षर हैं। हजारों वर्षों की समाधि के बाद भारतीय ऋषियों के मस्तिष्क में ये आधिदैविक ध्वनियाँ अनुगूंजित हुई थीं। विश्वनाद के यही 49 वर्णाक्षर महादेव शिव के डमरू-वादन से ध्वनित हुए थे। अपनी सम्पूर्ण अनुनासिकता सहित ये 49 वर्ण ध्वनन-दृष्टि से और विखण्डित नहीं हो सकते। इसलिए ये अनाहत वर्णाक्षर हैं। ये इसलिए भी अनाहत हैं कि भारतीय ऋषियों के मस्तिष्क में स्वतः अनुगूंजित हुए थे। अपने मूल रूप से सभी नादमूलक थे। नाद से युक्त होकर ये विशिष्ट रूप में ध्वनित और फिर लिपित हुए। इनका स्रोताधिष्ठान तो नाद ही है। योगशास्त्र के अनुसार ये अक्षर शरीरस्थ षट्चक्रों पर नाद के रूप में गुंजरित हो रहे हैं। अध्यात्म भाषा में इन कमलचक्रों को योगनाड़ी भी कहा जाता है। अक्षर ही कमलदल हैं। नादित अक्षर ही बीजाक्षर हैं। शरीरस्थ योगनाड़ियों पर 49 बीजाक्षर नादरूपेण स्पन्दित हो रहे हैं। मूलाधार चक्र पर वं शं षं सं, स्नाधिष्ठान चक्र पर बं मं भं यं रं लं, तथा मणिपूर चक्र पर डं ढं णं तं थं दं धं नं पं फं — ये दस अक्षर स्फुरणशील हैं। हृदयस्थ अनाहत चक्र पर 12 दल के रूप में कं खं गं घं ङं चं छं जं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

झं ञं टं ठं स्पन्दमान हैं। सभी 16 स्वर कण्ठ-स्थित विशुद्ध चक्र पर स्फुरित हो रहे हैं। स्वर देव रूप में हैं, इसलिए वे निम्न चक्रों पर अधिष्ठित नहीं होते हैं। विशुद्ध चक्र के ऊपर भ्रूमध्य आज्ञाचक्र है, जहाँ हं क्षं अक्षर नादित हो रहे हैं। आज्ञाचक्र के ऊपर शीर्षमध्य आत्मज्योति रूप सहस्रार चक्र है। यहाँ शब्द की पहुँच नहीं है इस प्रकार क से ह तक 49 अक्षर हैं। क्षं संयुक्त अक्षर है, जिस में क्+ष अर्धनारीश्वर भाव से प्रतिष्ठित है। क् का अल्पप्राणत्व ष के महाप्राणत्व में लीन हो गया है। 'क्ष' अक्षरमाला में सुमेरु रूप से सूत्रमणि है। ध्यानावस्था में उनचास अक्षरों का सानुस्वरण, अन्तःश्रुतिलयता की एकस्वरता में गुंजित होता है। उच्च कोटि के योगसाधक साधना काल में इसे अनुभव कर सकते हैं।

विशेष लक्षणीय तथ्य यह है कि जब कोई मानव-शिशु माँ की गर्भ-कारा से बाहर आता है तो उसका कण्ठ-ध्वनि के आद्य स्वर अं-अंऽऽ का सानुनासिक रुदन-घोष क्या इस भारतीय चिन्तन का प्रमाणन नहीं है कि सृष्टि की उत्पत्ति का मूल है नाद और विश्व के मानवी वाक् का पहला प्रसाद है – आद्य स्वर 'अ'। अनुस्वार 'अं' स्वाभाविक रूप से 'अ' स्वर का नासिक्य वर्ण है जो ओष्ठगत ध्वनन की स्थिति को प्राप्त कर अक्षर रूप 'ओं' (ओंकार) में परिणत हो जाता है। यही अक्षर ओंकार सृष्टि की आद्य ध्वनि है, जिसे नाद-ब्रह्म की संज्ञा से अभिहित किया गया है। वस्तुतः संस्कृत-हिन्दी भाषिक सानुनासिकता के आधार-दर्शन को अधिगत करके ही नाद-ब्रह्म के साधनात्मक रहस्य को समझा जा सकता है। ओंकार रूप इसी नाद-ब्रह्म से सम्पूर्ण सृष्टि के प्रकटन का भारतीय दर्शन आधुनिक ब्रह्माण्डविद् वैज्ञानिकों के समक्ष आज अनुसन्धान का विषय बना हुआ है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मॉरिशस की पहली हस्तलिखित पत्रिका—'दुर्गा' : हिन्दू-हिन्दी और मॉरिशसीयता का शंखनाद

पुस्तकालय 132250 गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय

डॉ. कमलकिशोर गोयनका*

मेरे लिए यह सुखद आश्चर्य की बात है कि सन् 1935 से 1938 तक मॉरिशस में हिन्दू, हिन्दी एवं हिन्दुस्तानी मॉरिशस के प्रबल समर्थक सूरजप्रसाद मंगर (एस.एम.) भगत ने 'ज्वालामुखी' के नये नाम से एक हस्तलिखित पत्रिका 'दुर्गा' का सम्पादन किया और मॉरिशस के इतिहास में नयी क्रान्ति की। मॉरिशस के हिन्दी साहित्य पर काम करते समय मैं 'दुर्गा' और एस.एम. भगत के नामों से अवगत हो चुका था, परन्तु विस्तार से तथा गम्भीरता से 'दुर्गा' हस्तलिखित पत्रिका के योगदान पर बहुत ही कम सूचनाएँ उपलब्ध थीं। सोमदत्त बखोरी ने अपनी पुस्तक 'एक मॉरीशसवासी की हिन्दी यात्रा' पुस्तक में सूर्य प्रसाद मंगर भगत तथा 'दुर्गा' की चर्चा की है। बखोरी भगत के शिष्य थे और उन्होंने उनसे हिन्दी सीखी थी। भगत जी ने 'दुर्गा' हस्तलिखित पत्रिका निकाली तो बखोरी को भी लिखने के लिए प्रेरित किया।[1] डॉ. लक्ष्मण प्रसाद रामयाद ने भी अपने अंग्रेजी शोध-प्रबन्ध में 'दुर्गा' का उल्लेख 'हिन्दी प्रचारिणी सभा' की अनियमितकालीन हस्तलिखित पत्रिका के रूप में उल्लेख किया है।[2] डॉ. मुनीश्वर लाल चिन्तामणि ने 'मॉरिशसीय हिन्दी, साहित्य' (द्वितीय भाग) में 'दुर्गा' तथा सूर्य प्रसाद मंगर भगत का उल्लेख मात्र किया है,[3] लेकिन 'मॉरिशस में हिन्दी पत्रकारिता' शीर्षक अध्याय में 'दुर्गा' का उल्लेख भी नहीं है। इसी प्रकार डॉ. बीरसेन जागासिंह ने अपने एक लेख में 'दुर्गा' का उल्लेख किया है।[4] मॉरिशस के इतिहासकार प्रह्लाद रामशरण ने तो 'दुर्गा' के सम्बन्ध में सूचना देने में एक तो भूल की है तथा इसके सम्पादक सूर्य प्रसाद मंगर भगत (ज्वालामुखी) पर नौ पृष्ठों का लेख लिखने पर भी 'दुर्गा' की सामग्री तथा उसके योगदान में एक शब्द भी नहीं लिखा है। उन्होंने अपने लेख में एक ही वाक्य लिखा है, "सन चालीस में ही भगत जी ने 'दुर्गा' नाम की साहित्यिक हस्तलिखित पत्रिका शुरू की थी।"[5] प्रह्लाद रामशरण ने 1940 का वर्ष

* उपाध्यक्ष, केंद्रीय हिंदी संस्थान; सम्पर्क : ए-98, अशोक विहार, फेज़ प्रथम, दिल्ली-110052।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गलत दिया है। 'दुर्गा' का पहला अंक जनवरी, 1935 में निकला था और यह हस्तलिखित पत्रिका 1938 तक निकलती रही थी। स्पष्ट है, प्रह्लाद रामशरण ने 'दुर्गा' की फाइलें नहीं देखीं, जबकि वे मॉरिशस के खोजी इतिहासकार हैं। प्रह्लाद रामशरण की एक दूसरी पुस्तक 'मॉरिशस के मध्यकालीन काव्य-प्रसून' में, जिसमें सन् 1935 से 1960 तक की अज्ञात एवं असंकलित कविताएँ संकलित की गयी हैं, न तो 'दुर्गा' की चर्चा है और न इस हस्तलिखित पत्रिका में प्रकाशित कविताओं को ही संकलित किया गया है। मुझे उन जैसे खोजी इतिहासकार की इस उपेक्षा का कारण समझ में नहीं आया। इसी प्रकार, 'मॉरिशस में हिन्दी साहित्य का उद्भव और विकास' पर डी. लिट्. की उपाधि प्राप्त करने वाले डॉ. श्यामधर तिवारी अपने शोध-प्रबन्ध में बारह स्थानों पर 'दुर्गा' का उल्लेख करने पर भी वे इसकी सामग्री का विवेचन नहीं करते और इसका कारण यही है कि 'दुर्गा' के अंकों को देखे बिना कोई भी उसका विवेचन कैसे कर सकता था?

मॉरिशस की विनोदबाला अरुण ने अपनी पुस्तक 'मॉरिशस की हिन्दी कहानी-यात्रा' में अवश्य ही कुछ मूल्यांकनपरक टिप्पणियाँ की हैं तथा 'दुर्गा' में प्रकाशित प्रायः सभी कहानियों की समीक्षा की है। यह पहला प्रयास है जब 'दुर्गा' हस्तलिखित पत्रिका को इतना महत्त्व दिया गया और यह माना गया कि इसके द्वारा हिन्दी के लेखन को विकसित करने तथा भाषा से अपनी पहचान बनाने का स्तुत्य प्रयास किया गया। विनोदबाला अरुण ने लिखा है कि इन कहानियों के बिना मॉरिशस के कथा-साहित्य को नहीं समझा जा सकता और यह भी कि सूर्य प्रसाद मंगर भगत के वास्तविक योगदान का अभी मूल्यांकन होना अभी शेष है।[6]

मैं समझता हूँ इस लेख की यही पृष्ठभूमि है और यही इसकी प्रेरणा-भूमि है। 'दुर्गा' हस्तलिखित पत्रिका के उल्लेख के बावजूद, मॉरिशस के अधिकांश इतिहासकारों, शोधार्थियों तथा समीक्षकों ने इसके महत्त्व को क्यों नहीं समझा, मेरे सामने यह एक बड़ा प्रश्न है। सम्भवतः इसके हस्तलिखित होने के कारण। इसे इसके मूल्य को समझना चाहिए था। भारत में हजारों पाण्डुलिपियाँ भोजपत्रों में उपलब्ध होती हैं, क्योंकि उस समय मुद्रण की तकनीक नहीं थी और वे ही ज्ञान-विज्ञान को सुरक्षित रखने तथा अध्ययन-अध्यापन की साधन थीं। विश्व के प्रायः सभी धार्मिक ग्रन्थ तथा संस्कृत की अधिकांश प्राचीन पुस्तकें एवं कबीर, तुलसी, जायसी, सूरदास, विहारी आदि की रचनाएँ भी हस्तलिखित रूप में ही मिलती हैं और ये सभी भारतीय संस्कृति, धर्म, दर्शन, कला और साहित्य की आधारभूत सामग्री बनती हैं। अतः 'दुर्गा' के मुद्रित न होने के कारण यदि इसकी उपेक्षा की गयी तो यह खेद का विषय है। विनोदबाला अरुण के विवेचन से स्पष्ट है कि वे पहली समीक्षक हैं जिन्होंने 'दुर्गा' के सभी उपलब्ध अंकों को पहली बार विस्तार से देखा है और उनमें हस्तलिपि में लिखित सभी कहानियों का विवेचन किया है।

मेरी दृढ़ मान्यता है कि 'दुर्गा' के सभी अंक प्रकाशित होने चाहिए तथा उनमें संकलित सामग्री का मॉरिशस के हिन्दी साहित्य के इतिहास की दृष्टि से उसका

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विवेचन और मूल्यांकन होना चाहिए। 'दुर्गा' हस्तलिखित ऐसी पत्रिका है जिसके उद्देश्यों तथा रचनाओं की प्रकृति से इतिहास के कुछ ज्ञात तथ्यों की पुष्टि हो सकती है तथा अनेक अज्ञात एवं अकल्पनीय तथ्यों की स्थापना हो सकती है। 'दुर्गा' में प्रस्तुत साहित्यिक रचनाएँ मॉरिशस के इतिहास, हिन्दू धर्म एवं संस्कृति, हिन्दी भाषा तथा साहित्य, भारतवंशियों की मॉरिशसीयता, मॉरिशस-भारत के सम्बन्धों आदि अनेक दृष्टियों से महत्त्वपूर्ण है, इसलिए उसके सम्पूर्ण अंकों का विवेचन-मूल्यांकन होना चाहिए। मैं यहाँ 'दुर्गा' के पहले वर्ष सन् 1935 के उपलब्ध दस अंकों का संक्षिप्त अध्ययन एवं विवेचन प्रस्तुत कर रहा हूँ जिससे इसके सम्पूर्ण अध्ययन की महत्ता मॉरिशस के साहित्य-प्रेमियों को स्पष्ट हो सके। इस वर्ष के मार्च और दिसम्बर के अंक अब उपलब्ध नहीं हैं।

1. पत्रिका का आवरण

'दुर्गा' के फरवरी, 1935 के अंक में पाँच पृष्ठों के बाद लखनऊ (भारत) से प्रकाशित होने वाली हिन्दी मासिक पत्रिका 'माधुरी'[7] का आवरण काटकर चिपकाया हुआ है। इस रंगीन चित्र में भारतीय स्त्री के पाँच विभिन्न मुद्राओं के चित्र हैं और पृष्ठ के चारों ओर सम्पादक की चार टिप्पणियाँ हैं –

(1) 'यत्र नारियस्तु पुज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता'—हमारी मूर्खा कद्रासिम औरतों से तुलना कीजिये।

(2) ऊँची एंड़ी वाली जूती पहनकर पति की बाँह में बाँह मिलाकर गली में चलने से मॉरिशस हिन्दू स्त्रियाँ सुधर नहीं सकतीं।

(3) जब तक मॉरिशस का हिन्दू समाज अपनी माताओं की सेवा करना न सीखेगा—उद्धार असम्भव है।

(4) ऐसी ही अनिन्द्य सुन्दरियाँ वीर-प्रसूता होती हैं।

इन पर मेरा निष्कर्ष है कि मॉरिशस में सन् 1935 से पूर्व भारत से हिन्दी की प्रमुख पत्रिकाएँ आती थीं और वे मॉरिशस में हिन्दी भाषा और साहित्य के वातावरण को निर्मित करने में महत्त्वपूर्ण योगदान कर रही थीं। मॉरिशस के इतिहासकारों को खोजना चाहिए कि भारत से हिन्दी पत्र-पत्रिकाओं का आयात कब से शुरू हुआ तथा कौन-कौन-सी पत्रिकाएँ आती रहीं तथा हिन्दी भाषा एवं साहित्य के निर्माण तथा विकास में क्या योगदान किया। इस चित्र पर अंकित चार सम्पादकीय टिप्पणियाँ मॉरिशस की नयी सामाजिक एवं सांस्कृतिक जागृति की प्रतीक हैं। इनसे स्पष्ट है कि यह नव-जागरण भारत से प्रेरित है। प्रेमचन्द 'वरदान' में देश-प्रेमी पुत्र चाहते हैं और मॉरिशस के सूर्य प्रसाद मंगर भगत जी मॉरिशस में हिन्दू स्त्रियाँ चाहते हैं जो 'वीर-प्रसूता' हों। मेरे विचार में दोनों में समानता है। 'वीर प्रसूता' ही देश-प्रेमी पुत्र को जन्म दे सकती है, और 'देश-प्रेमी पुत्र' को जन्म देने वाली स्त्री 'वीर-प्रसूता' ही कहलायेगी। भारत और मॉरिशस दोनों ही गुलाम देश थे और उनकी स्वतन्त्रता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

देश-प्रेमी वीर पुत्रों से ही हो सकती थी। इन टिप्पणियों से सम्पादक की हिन्दू स्त्रियों पर अंग्रेज स्त्रियों के प्रभाव पर गहरी चिन्ता का भाव भी स्पष्ट है। सम्पादक हिन्दू स्त्रियों को मर्यादा, संयम एवं भारतीय जीवन-मूल्यों से युक्त देखना चाहता है।

2. पत्रिका के उद्देश्य

'दुर्गा' के पहले अंक (जनवरी, 1835) में सम्पादक ने पत्रिका के सात उद्देश्यों की घोषणा की है। ये उद्देश्य इस प्रकार से हैं–

1. हिन्दू नवयुवकों, हिन्दी विद्यार्थियों में लेख लिखने का माद्दा पैदा करना।
2. हिन्दी कैसी जानदार और शानदार भाषा है अंग्रेज-फ्रेंच पर लट्टू रहने वालों को दिखाना।
3. हमारी मुर्दा कौम में क्रान्ति की रूह फूँकना।
4. हिन्दू नवयुवकों को कर्म-पथ पर अग्रसर करना।
5. राजनीति किस चिड़िया का नाम है, उससे हिन्दूओं को परिचित कराना।
6. हिन्दू धर्म का रहस्योद्घाटन करना।
7. हिन्दी-हिन्दी-हिन्दी के नाद से दिग्दिगन्त को मुखरित करना।

मेरे विचार में ये उद्देश्य मॉरिशस में जन्म लेने वाली वैचारिक क्रान्ति के प्रमाण और प्रतीक हैं। इससे पूर्व के प्रमाण मेरे पास नहीं हैं कि मैं बता सकूँ कि 'दुर्गा' से पहले ऐसे उद्देश्यों की घोषणा किसने की थी, परन्तु यह निश्चित है कि यह एकाएक फटने वाला विस्फोट नहीं है। इससे पूर्व अवश्य ही भारतवंशी हिन्दू तथा हिन्दू संस्थाएँ इन लक्ष्यों के अनुरूप कार्य कर रही होंगी, परन्तु यह निर्विवाद हो सकता है कि मॉरिशस के साहित्य-समाज में यह पहला वैचारिक नवजागरण था, एक वैचारिक क्रान्ति थी। इन उद्देश्यों में हिन्दू, हिन्दी के साथ हिन्दू नवयुवकों को मॉरिशस के निर्माण में कर्म-पथ पर अग्रसर करना है। मॉरिशस के हिन्दू सोये हुए हैं, इसलिए राजनीतिक, धार्मिक, जातीय, भाषिक एवं सांस्कृतिक चेतना को उत्पन्न करके उसे मॉरिशस के दिग्दिगन्त तक मुखरित करना है। मुर्दा कौम और मुर्दा हिन्दू नवयुवकों को देश की रचना में प्रवृत्त करने के ये उद्देश्य भारत के आरम्भिक दशकों जैसे ही हैं। अतः 'दुर्गा' हिन्दू जाति, धर्म, संस्कृति, हिन्दी भाषा और मॉरिशसीय अस्मिता का शंखनाद करती है। 'दुर्गा' के ये उद्देश्य उसके बाद के अंकों में बार-बार लिखे जाते रहे हैं, जिससे उसके नये-नये रचनाकार पाठकों को उनकी जानकारी होती रहे और वे राष्ट्र-जागरण के मिशन में साथ हो लें।

3. लेख तथा लेखकों के नियम

'दुर्गा' के पहले अंक में और बाद में भी कभी-कभी, लेख एवं लेखकों के नियम स्पष्ट किये गये हैं। सम्पादक ने इस प्रकार लेखक एवं लेखों के चयन की नीति बनायी और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उसे पहले अंक में घोषित किया। 'दुर्गा' हस्तलिखित पत्रिका थी और उसके पाठक प्रायः उसके लेखक ही हो सकते थे, इसलिए इन नियमों में इन स्थितियों का उल्लेख मिलता है।

'दुर्गा के नियम लेख सम्बन्धी बातें' शीर्षक से ढाई पृष्ठों में लिखित ये नियम इस प्रकार से हैं :–

1. 'दुर्गा' हर एक अंग्रेजी मास के प्रथम सप्ताह में प्रकाशित हुआ करेगी।
2. 'दुर्गा' हर एक लेखक को बिना मूल्य सर्वप्रथम पढ़ने को मिलेगी। जो लेखक स्थानीय न होंगे वे डाक-खर्च भेजकर प्रकाशक से मँगा सकते हैं।
3. 'दुर्गा' को हर एक पाठक अपने पास दो दिन से अधिक नहीं रख सकता। अनस्थानीय लोगों पर यह नियम लागू न होगा।
4. लेखकों के अलावा अन्य शिक्षित पाठक भी पढ़ने के अधिकारी हैं, बशर्ते कि वे पत्रम्-पुष्पम् सहायता के रूप में देवें।
5. प्रकाशक की आज्ञा बिना किसी भी (कोई भी) पत्रकार 'दुर्गा' के लेख उद्धृत करने के अधिकारी नहीं हैं।
6. घासलेट लेख न लिखे जायेंगे। विशेषतः राजनैतिक, सामाजिक, साहित्यिक तथा धार्मिक लेख लिखे जायेंगे। धार्मिक लेखों में–विशेषतः विशुद्ध हिन्दू धर्म का पृष्ठ-पोषक लेख ही लिए जायेंगे। वीर रस सम्बन्धी लेख हमेशा स्वीकृत हैं।
7. लेख साफ और मोटे हरूफों में आने चाहिए। गाली-गलौज तथा व्यक्तिगत आक्षेपपूर्ण लेख हमेशा बहिष्कृत समझना चाहिए।
8. लेखक को कागज, कलम, दवात न दिये जायेंगे। चार (बाद में आठ हो गये) फुल कागज से अधिक लेख न होने चाहिए।
9. लेख हमेशा सुन्दर ग्लेज़ पेपर पर ही लिखकर भेजना चाहिए।
10. यदि लेखक अपना लेख सचित्र प्रकाशित करवाना चाहे, तो चित्रों का प्रबन्ध लेखक को ही करना चाहिए।
11. सम्पादक को लेखों का कतर-योंत करने का अधिकार है। सम्पादक के लिए पृष्ठ की दोनों ओर मार्जिन छोड़ने चाहिए।

इन नियमों में से एक पर यहाँ टिप्पणी करना चाहूँगा। क्रम संख्या 6 में 'घासलेट लेख' के न छापने का उल्लेख है, परन्तु मॉरिशस के हिन्दी पाठक शायद इस 'घासलेट' शब्द का सन्दर्भ न समझ पायें, क्योंकि यह शब्द भारत से गया है। 'विशाल भारत' के सम्पादक पं. बनारसीदास चतुर्वेदी ने हिन्दी के गन्दे और नग्न साहित्य को 'घासलेटी साहित्य' (कभी 'चाकलेटी' भी) घोषित कर 'विशाल भारत' में सन् 1929 में एक आन्दोलन चलाया और इसके दिसम्बर, 1929 के अंक में 'घासलेट-विरोधी आन्दोलन का उपसंहार' शीर्षक से अन्तिम लेख लिखा। इस लेख में प्रेमचन्द के विचारों को भी उद्धृत किया गया है। प्रेमचन्द ने लिखा कि 'नग्न कुवासनाओं का निदर्शन' करने वाला घासलेटी साहित्य बहुत ही हानिकारक है। उन्होंने आगे कहा कि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साहित्य का उद्देश्य ही चरित्र का निर्माण है, इसलिए साहित्य-रचना में अपने आदर्शों और उद्देश्यों को पवित्र रखना चाहिए।[8] इस प्रकार 'दुर्गा' में 'घासलेट' शब्द के प्रयोग से दो निष्कर्ष निकलते हैं–(1) 'दुर्गा' के आरम्भ होने से पूर्व 'विशाल भारत' हिन्दी मासिक पत्रिका भी मॉरिशस पहुँचती थी। 'विशाल भारत' सन् 1928 से कलकत्ता से आरम्भ हुई थी और पं. बनारसीदास चतुर्वेदी इसके सम्पादक थे। इस प्रकार मॉरिशस में हिन्दी की नयी-नयी साहित्यिक पत्रिकाएँ पहुँच रही थीं और मॉरिशस में हिन्दी एवं हिन्दी साहित्यकारों को प्रभावित कर रही थीं। (2) 'दुर्गा' सम्पादक घासलेटी लेख के बहिष्कार में एक प्रकार से प्रेमचन्द और बनारसीदास चतुर्वेदी की मान्यताओं का ही समर्थन कर रहे थे। उन्हें भी भारत के समान अपने देश में कामुकता और नग्नता के विरोध में ही देश का निर्माण दिखाई दे रहा था।

4. पत्रिका का नामकरण 'दुर्गा' क्यों?

'दुर्गा' के पहले अंक में इसके सम्पादक 'ज्वालामुखी' (सूर्य प्रसाद मंगर भगत) ने 'सिंहनाद' शीर्षक से सम्पादकीय लिखा है। इसमें चार टिप्पणियाँ हैं–'दुर्गा', 'दुर्गा नाम क्यों पड़ा, प्राइमरी स्कूलों में हिन्दी, तथा 'लेखकों को धन्यवाद'। ज्वालामुखी गरीब हैं, खेतों में काम करके दो रोटी कमाते हैं, लेकिन साधनहीन होने के कारण हाथ पर हाथ रखना कायरता समझते हैं। महात्मा गाँधी का उदाहरण उनके सामने है। वे 'दुर्गा' टिप्पणी में लिखते हैं, "महात्मा जी केवल मात्र लँगोटी धारण कर संसार की सबसे जबर्दस्त शक्ति को हिला सकते हैं तो हम गरीब होने पर, साधनहीन होने पर हिन्दुओं में क्रान्ति की लहर–एक हस्तलिखित पत्रिका ही द्वारा दौड़ा नहीं सकते?" इस संकल्प में एक अग्नि है, एक क्रान्ति है, नवजागरण की आँधी है।

ज्वालामुखी पत्रिका के नामकरण पर लिखते हैं, "हमारा मत तो इस पत्र का नाम 'क्रान्तिकारी' रखने का था, लेकिन मित्रमण्डली ने इसे जरा गर्म समझा और इस नाम से कोई पत्र निकालने की मनायी की। किसी ने कहा कि 'ज्वाला' नाम रखो, किसी ने कहा 'अन्धेर', किसी ने कहा, 'अभिमन्यु'। अनेक वाद-विवाद के बाद हमारे मित्र श्री केशवदेव जी, हिन्दी के ख्यात नाम। लेखक ने 'दुर्गा' नाम रखने का प्रस्ताव रखा। यह नाम सभी को ठीक जँचा। हमारा उद्देश्य हिन्दुओं में क्रान्ति करना है।"

सूर्य प्रसाद मंगर भगत में विवेकानन्द, स्वामी दयानन्द, महात्मा गाँधी, सुभाषचन्द्र बोस आदि का संश्लिष्ट भाव और बेचैनी है। वे 'दुर्गा' से हिन्दुओं में क्रान्ति उत्पन्न करना चाहते हैं, वैसे ही जैसे प्रेमचन्द-गाँधी के 'स्वाधीनता महासमर' में 'हंस' पत्रिका (सन् 1930) को आरम्भ करके राम के सेतु-बन्ध में गिलहरी जैसा योगदान करने का संकल्प लेते हैं। प्रेमचन्द इसे सन् 1930 में कर रहे थे और सूर्य प्रसाद मंगर भगत 'ज्वालामुखी' के नाम से जनवरी, 1935 में मॉरिशस में कर रहे थे। दोनों लेखक एक समान रूप में ही अपने-अपने देश में क्रान्तिकारी परिवर्तन का आह्वान कर रहे थे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

5. सम्पादकीय टिप्पणियों का स्वरूप

'दुर्गा' के सन् 1935 के उपलब्ध दस अंकों में सम्पादकीय टिप्पणियाँ दो प्रकार की हैं–

(1) 'सिंहनाद' शीर्षक से विभिन्न विषयों पर सम्पादकीय विचार
(2) पत्रिका के विभिन्न स्थानों पर छोटे-छोटे वाक्यों में पाठकों को सन्देश तथा चेतावनियाँ

पहले 'सिंहनाद' के सम्पादकीयों पर विचार करते हैं। 'दुर्गा' के जनवरी अंक में चार, फरवरी तीन, अप्रैल में चार, मई में पाँच, जून में सात, जुलाई में सात, अगस्त में छह, सितम्बर में पाँच, अक्टूबर में छह, तथा नवम्बर में सात सम्पादकीय टिप्पणियाँ हैं। इस प्रकार इस वर्ष के दस अंकों में कुल 54 टिप्पणियाँ हैं। ये सम्पादकीय टिप्पणियाँ प्रायः भारत की तत्कालीन हिन्दी पत्रिकाओं के सम्पादकीयों की पद्धति पर ही लिखी गयी है। इन हिन्दी पत्रिकाओं में 'माधुरी', 'मर्यादा', 'हंस', 'चाँद', 'विशाल भारत', 'विश्व-मित्र' आदि पत्रिकाओं को देखा जा सकता हैं। 'दुर्गा' के इन 54 सम्पादकीयों का विषय मॉरिशस, भारत और विश्व की घटनाएँ हैं। कुछ महत्त्वपूर्ण टिप्पणियों के शीर्षक उल्लेखनीय हैं–

1. प्राइमरी स्कूलों में हिन्दी–	जनवरी, 1935
2. प्राइवेट स्कूलों के हिन्दी अध्यापक–	फरवरी, 1935
3. मोरिशस के विद्वान–	" "
4. राष्ट्र संघ में फरियाद–	अप्रैल, 1935
5. सम्राट की रजत जयन्ती(जुबिली)–	मई, 1935
6. भारतीय व्यवस्थापिका सभा–	" "
7. पोर्टलुइस शहर निर्माण का द्वयाब्दि महोत्सव–	जून, 1935
8. कुली शताब्दी–	" "
9. भारत में फिर भूकम्प–	जुलाई, 1935
10. इटली + अवसीनिया–	" "
11. हमारी चीनी-मूल्य का ह्रास–	अगस्त, 1935
12. कुली शताब्दी–	" "
13. डॉक्टर रामगुलाम का स्वागत–	" "
14. प्रवासी शताब्दी–	सितम्बर, 1935
15. जातीय सभाएँ–	" "
16. हिन्दी साहित्य सम्मेलन की अवधारणा–	" "
17. विशेषांक के सम्बन्ध में–	नवम्बर, 1935
18. घृणा व्यंजक 'मालबार' शब्द–	" "
19. उद्योग-धन्धे और हम–	" "
20. स्वागत का रोग–	" "

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'दुर्गा' के सभी सम्पादकीयों को एक पुस्तक में संकलित करके प्रकाशित किया जाना चाहिए। इन सम्पादकीयों में उस काल-खण्ड का इतिहास है तथा हिन्दी पत्रकारिता का वह श्रेष्ठ रूप है जिस पर मॉरिशस को गर्व हो सकता है। 'दुर्गा' के इन सम्पादकीयों में सम्पादक की अपने देश, धर्म, संस्कृति, जाति, भाषा तथा मनुष्यता के प्रति जो दृष्टि है, वह उसे भारत के विख्यात सम्पादकों (महावीर प्रसाद द्विवेदी, प्रेमचन्द, दुलारेलाल भार्गव, आदि) की कोटि में रख देता है। 'दुर्गा' की सम्पादन-कला तथा सम्पादकीयों पर यदि कोई स्वतन्त्र शोध-कार्य हुआ तो मुझे विश्वास है कि वह मॉरिशस की हिन्दी पत्रकारिता के इतिहास में देदीप्यमान ज्योति-स्तम्भ की तरह चमकता हुआ दिखायी देगा। 'दुर्गा' हस्तलिखित हिन्दी पत्रिका होने पर भी वह हिन्दी पत्रकारिता का उस काल-खण्ड में मानक उपस्थित करने वाली पत्रिका है।

'दुर्गा' सम्पादक की कुछ टिप्पणियाँ पत्रिका में यत्र-तत्र मिलती हैं। ये टिप्पणियाँ खाली स्थानों को भरने के लिए हैं या कई बार बायें खाली पृष्ठ पर लिखी गयी हैं, पर ये किन्हीं उद्देश्यों के लिए हैं। कुछ उदाहरण प्रस्तुत करना समीचीन होगा–

1. ध्यान से पढ़िये–जो इस पत्रिका को हड़प जायेगा या हड़पने की नीयत रखेगा उसे एक हजार बाल-हत्या का पाप लगेगा। वह पाठक हिन्दी के, हिन्दू जाति के, हिन्दू धर्म के कट्टर शत्रु समझा जायेगा। (जनवरी, 1935)
2. शुद्ध हिन्दी प्रचार का शंखनाद टापू के कोने-कोने में कीजिये। (फरवरी, 1935)
3. हिन्दुओ! अपनी औरतों को इज्जत की दृष्टि से देखो। उन्हें माता के समान पूजा करो, बहन के समान प्रेम करो। बन पड़े तो इनके लिए अपने प्राण भी दे दो। (फरवरी, 1935)
4. आगामी 3 मार्च को शिवरात्रि महापर्व मनाइये। (फरवरी, 1935)
5. पाठकों से निवेदन–प्रिय पाठकगण, दुर्गा बिल्कुल राजनीतिक पत्रिका है। आप अनधिकारियों को पढ़ने को न दीजियेगा, क्योंकि हम दोनों की हानि है–और 'दुर्गा' सरकारी नियमानुसार रजिस्टर्ड नहीं है। (फरवरी, 1935)
6. संसार का सर्वश्रेष्ठ महापुरुष कौन है? महात्मा गाँधी। (फरवरी, 1935)
7. संघ शक्ति कलियुगे (Union is strength)। (फरवरी, 1935)
8. क्या आप अल्प समय में लेखक बनना चाहते हैं, तो 'दुर्गा' में लेख लिखिये। (अप्रैल, 1935)
9. मुसलमान सुनार से गहने बनवाना गोकि गौ के गले पर छूरी चलाने के समान है। चूड़ियाँ, पायजेब, पायल, चूर अँगूठी, फैन्सी चैन दशरथ राम स्वर्णकार से गढ़वाइये। (अप्रैल, 1935)
10. यदि आप हिन्दुस्तानी होने का दावा रखते हैं, तो इस स्वदेशी के जमाने में विदेशी वस्तु क्यों इस्तेमाल करते हैं। हमेशा हिन्दुस्तान का माल खरीदिये। (अप्रैल, 1935)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

11. 'दुर्गा' के पाठक बनने का प्रयत्न कीजिये। यही एक पत्रिका है जो हिन्दुओं की लाज रखती है। (मई, 1935)
12. लड़कियों को मूर्खा रखना गो-घात के समान है। (मई, 1935)
13. आपस में हिन्दी में ही वार्तालाप कीजिये। गोरे विदेशी भाषा में क्यों बोलते हैं, इसलिए कि उनमें राष्ट्रीयता है। (मई, 1935)
14. लेखकों के हित की बात—आप हमेशा मौलिकता की ओर ध्यान दीजिये। किसी का लेख चोरी न कीजिये। धार्मिक कट्टरता और अन्धविश्वास को दूर ही से नमस्कार कीजिये और साफ सुन्दर अक्षरों में लिखिये। (जून, 1935)
15. सभी नवयुवकों का एक ही उद्देश्य हो—हिन्दी का प्रचार करना। (जून, 1935)
16. शक्ति-संचय करके, अनाचारों के विरुद्ध जेहाद बोल दो। (जुलाई, 1935)
17. हाथ पर हाथ धरकर भगवान-भगवान कायर चिल्लाता है, वीर नहीं। (जुलाई, 1935)
18. कुली-शताब्दी—1835-1935—हम कुली सन्तानों के लिए आनन्द की बात है। हर एक कुली-सन्तान को गर्व करना चाहिए। (अगस्त, 1935)
19. दुर्गा में नियमित न लिखने वाले युवक लेखकों की सूची, यथाः— चिंगारी, बिगुल, बबुआ श्यामदत्त, प्रयाग, गुलाब, नन्दन, पं. दीपलाल शर्मा, शम्भु। इन्हें क्या कहा जाय भगेड़ू, आलसी या क्या? नवयुवकों—शिक्षित—के चरित्र और भविष्य निर्माण के लिए हम अपनी जिन्दगी का सबसे कीमती समय-अवस्था—होम कर रहे हैं और ऊपर लिखित नवयुवकों को अपने भविष्य की रंच मात्र भी चिन्ता नहीं है। ये आमोद-प्रमोद, लग्जरी के भयंकर विष-बेलि को चूमने में अति रंजना अनुभव कर रहे हैं। खेद है। (सितम्बर, 1935)
20. लेखकों से दो शब्द—लेखकगण! जब आप दो-तीन अंकों में ही लेख देकर कलम को विश्रान्ति दे देंगे तब हो चुका आपके मिशन की पूर्ति। क्या आप भूल गये कि हर एक जाति की आत्मा 'नवयुवक' ही होते हैं। तब 'दुर्गा' में लिखने से हाथ क्यों खींच लिए हैं। जब 'दुर्गा' चल निकली, पाठक संख्या 50 तक पहुँच चुकी, इसका स्टैण्डर्ड दिन-दिन ऊँचा होने लगा, तब आप में कायरता कहाँ से आ घुसी? यह आपकी प्रारम्भिक कायरता हमें नपुंसकत्व का आभास दे रही है। बैठे क्यों हो? उठो, कलम पकड़िये। टापू का एक दुर्निवार अभाव की पूर्ति करिये। बैठने के बजाय अपने ध्येय की पूर्ति निमित्त जूझे रहना श्रेयस्कर है।—ज्वालामुखी। (सितम्बर, 1935)
21. केवल धार्मिक ग्रन्थों के स्वाध्याय से काम न चलेगा। यह कर्मयुग है, धर्मभीरु युग नहीं। (अक्टूबर, 1935)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इन लघु एवं यत्र-तत्र बिखरी सम्पादकीय टिप्पणियों में भारतवंशी हिन्दू जाति का मॉरिशसीय राष्ट्र-दर्शन व्यंजित होता है। यदि 'दुर्गा' के 'सिंहनाद' स्तम्भ में प्रकाशित सम्पादकीयों को इन लघु टिप्पणियों के साथ रखकर देखा जाये तो मॉरिशस की हिन्दू जाति की राष्ट्र के निर्माता की एक समग्र संकल्पना स्पष्ट हो जाती है। इसका महत्त्वपूर्ण पक्ष यह भी है कि यह राष्ट्रीय संकल्पना हिन्दी के नवयुवक लेखकों की चिन्तन-प्रक्रिया से हो रहा था। इसकी संरचना में न राजनेता हैं, और न धार्मिक नेता और पुरोहित ही हैं। यह विशुद्ध साहित्यिक अवधारणा है, जिसमें राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक तथा सांस्कृतिक परिवर्तन एवं उन्नयन से मॉरिशस राष्ट्र को नया रूप देने का संकल्प है। मॉरिशस में मणिलाल डॉक्टर के प्रयासों के बाद यह नया जागरण है जो मॉरिशस में जन्मे भारतवंशी हिन्दू नवयुवकों की संगठित शक्ति से होता है। 'दुर्गा' हिन्दू जाति में नयी क्रान्ति उत्पन्न करती है।

6. साहित्यिक रचनाएँ

'दुर्गा' के उपलब्ध दस अंकों के लगभग 580 पृष्ठों में साहित्य की विभिन्न विधाओं की रचनाएँ हैं। जिनसे इस काल-खण्ड (वर्ष 1935) के हिन्दी-संसार का ज्ञान होता है। इन विधाओं में कविता, कहानी, निबन्ध आदि ऐसी विधाएँ हैं जो इस समय तक मॉरिशस के हिन्दी-संसार में प्रचलित हो चुकी थीं, परन्तु गद्य-गीत, पुस्तक-समीक्षा, प्रहसन, इण्टरव्यू आदि ऐसी विधाएँ हैं, जिनका उद्भव 'दुर्गा' की हस्तलिखित रचनाओं से होता है। यहाँ इस साहित्यिक सामग्री का विवेचन उपयुक्त होगा।

(क) कविता : 'दुर्गा' के उपलब्ध दस अंकों में 13 मौलिक, 10 भारतीय पत्रिकाओं से उद्धृत, 2 मूल संस्कृत में तथा एक कविता मूल संस्कृत से अनुवाद करके प्रस्तुत की गयी है। यदि 'दुर्गा' के सम्पूर्ण अंकों का सर्वेक्षण किया जाये तो यह स्थिति एकदम बदल जायेगी, परन्तु मेरा विश्वास है कि काव्यगत प्रवृत्तियों में अन्तर नहीं पड़ेगा। 'दुर्गा' में 'गीता' के श्लोक 'यदा यदा ही धर्मस्य...(अगस्त) तथा प्रसिद्ध संस्कृत के राष्ट्रीय गीत 'वन्दे मातरम्' (अगस्त) की उपस्थिति चाहे आश्यचर्यजनक न हो, परन्तु 'कुमुद' वटु द्वारा भार्गव भूषण की संस्कृत कविता का अनुवाद 'पंच-पल्लव' नाम से अगस्त-अंक में प्रकाशित कराना एक नये निष्कर्ष की ओर हमें ले जाता है। इससे स्पष्ट है कि सन् 1935 से पूर्व भारत से संस्कृत विद्वान मॉरिशस पहुँच गये थे और वे संस्कृत साहित्य से भारतीयों को परिचित ही नहीं करा रहे थे, अपितु संस्कृत भाषा की रचनाओं को हिन्दी में भी अनूदित कराकर हिन्दी साहित्य का हिस्सा बनवा रहे थे। मेरे विचार में यह भी खोज का एक महत्त्वपूर्ण विषय होगा कि सन् 1935 और उसके बाद भारत से कौन-कौन-सी संस्कृत पुस्तकें, संस्कृत के विद्वान मॉरिशस पहुँचे और उन्होंने किस प्रकार हिन्दी भाषा और साहित्य को प्रभावित किया।

'दुर्गा' में भारतीय हिन्दी कवियों एवं हिन्दी-पत्रिकाओं में उद्धृत दस कविताएँ मिलती हैं। ये जनवरी में एक, फरवरी में दो, अप्रैल में तीन, जून में एक, जुलाई में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एक, सितम्बर में एक तथा नवम्बर में एक हैं। कुछ कविताएँ नन्दन ने प्रेषित की हैं और कुछ में प्रेषक के रूप में किसी का नाम नहीं है। कुछ कविताओं में मूल-स्रोत के रूप में 'माधुरी', 'हिन्दू पंच', 'साकेत' तथा 'रागमंजरी' आदि पत्रिकाओं एवं पुस्तक का उल्लेख है। मैथिलीशरण गुप्त की दो अंकों में (फरवरी एवं सितम्बर) नामोल्लेख से कविताएँ उद्धृत की गयी हैं। मॉरिशस की हिन्दी पत्रिका की—चाहे मुद्रित हो या हस्तलिखित यह एक महत्त्वपूर्ण प्रवृत्ति रही है कि उनमें भारतीय कवियों की कविताएँ उद्धृत की जाती रही हैं। इससे भारत के राष्ट्रीय, मानवीय एवं सांस्कृतिक मूल्यों को मॉरिशस के भारतवंशियों में जीवित रखना सम्भव था, और साथ ही भारत की हिन्दी कविता के स्वरूप को बताना और उससे जोड़ना भी आसान था। मॉरिशस की हिन्दी काव्य-धारा के उद्भव और विकास में इन उद्धृत हिन्दी कविताओं के महत्त्व को अस्वीकार करना उचित न होगा। प्रह्लाद रामशरण ने सन् 1913 से 1960 तक मॉरिशस की पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित लगभग 300 अज्ञात एवं अनुपलब्ध कविताएँ खोजीं और उन्हें दो खण्डों में प्रकाशित भी किया, परन्तु उन्होंने भी इन उद्धृत हिन्दी कविताओं को कोई महत्त्व नहीं दिया, जो मेरे विचार में उचित नहीं था। ये उद्धृत कविताएँ भारत से मॉरिशस में हिन्दी काव्य-पुस्तकों के प्रवाह और उससे पड़ने वाले प्रभाव को सिद्ध कर सकती हैं। ये भारतीय कविताएँ किस प्रकार मॉरिशस के हिन्दी कवियों को प्रेरित कर रही थीं तथा उनकी मनोरचना और संवेदनाओं को कितना और किस रूप में प्रभावित कर रही थीं, इसके लिए सम्पूर्ण मॉरिशस वाङ्मय से ऐसी उद्धृत हिन्दी कविताओं का संकलन होना आवश्यक है। इस सम्बन्ध में अज्ञात इतिहास को उद्घाटित किया जाना जरूरी है।

'दुर्गा' में प्रकाशित मौलिक कविताओं में जनवरी में एक, फरवरी में एक, अप्रैल में तीन, मई में तीन, जून में एक, जुलाई में दो तथा अक्टूबर अंक में दो कविताएँ मिलती हैं। इनकी कुल संख्या इस प्रकार तेरह है। इनमें कुछ भक्तिपरक कविताएँ हैं, माँ और भारत-भूमि पर हैं, एक स्वामी दयानन्द पर है और 'शोभते पण्डा' जैसी लघु व्यंग्य कविता भी है। मई अंक में प्रस्तुत कविता—'नवल वधू सी इठलाती/ऊषा आती मुसकाती' एक सुन्दर कविता है, जिसमें छायावाद का स्पर्श है, परन्तु इसके रचयिता का नाम नहीं दिया गया है। ये कविताएँ प्रायः साधारण हैं, परन्तु उस युग की काव्य-मनोभूमि के ही अनुरूप हैं। अतः इन्हें भी प्रह्लाद रामशरण को 'मॉरिशस के मध्यकालीन काव्य-प्रसून' में संकलित करके इस उपेक्षित सामग्री को भी उचित सम्मान देना चाहिए था।

(ख) कहानी : 'दुर्गा' हस्तलिखित पत्रिका में प्रकाशित कहानियों की विस्तृत चर्चा पहली बार विनोदबाला अरुण ने अपनी पुस्तक 'मॉरिशस की हिन्दी कथा-यात्रा' में की है तथा कहानी-विधा को विकासशील बनाने तथा हिन्दी भाषा से अपनी पहचान बनाने के प्रयास की सराहना की है।[9] दुर्भाग्य यह है कि मॉरिशस के खोजी साहित्यकारों ने 'दुर्गा' में प्रकाशित सम्पूर्ण कहानियों को अभी तक संकलित करके

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पुस्तकाकार रूप में प्रकाशित नहीं कराया। इस काल-खण्ड (1935-38) में लगभग 20-25 कहानियाँ छपी होंगी। इसका अनुमान इसी से होता है कि आरम्भिक दस अंकों में ही 12 कहानियाँ छपी हैं। 'दुर्गा' के फरवरी, 1935 के अंक में 'गरीबी' (लेखक: कुमार और गुलाब), 'बाबाजी' (बबुआ श्यामदत्त), 'नास्तिक' (केशवदेव), 'निर्धन के कोउ नाहिं' (बासदेव संभु), जुलाई में 'आदर्श वीर महिला' (व्यास), अगस्त में 'एक लोभी ब्राह्मण की कहानी' (हरिलाल), सितम्बर में 'आदिम प्रेम' (दिनेशचन्द्र भगत), अक्टूबर में 'एक गरीब बच्चे का हृदय' (सुखदेव विष्णुदयाल—एक फ्रेंच कहानी के आधार पर), नवम्बर के प्रवासी-अंक में 'एक भारतीय की दुःखद कथा' (केशवदेव), 'मेरी दादी' (व्यास), 'भीमसिंह पियेर कारोजें क्यों हुआ' (कुमार) तथा 'आहुतियाँ' (चिनगारी) की कहानियाँ संकलित की गयी हैं। यह सूची अधूरी है, क्योंकि 'दुर्गा' के सम्पूर्ण अंक मेरे सम्मुख नहीं हैं। इनमें प्रायः लेखकों के छद्म नाम हैं। 'दुर्गा' के सम्पादक सूर्य प्रसाद मंगर भगत ही 'ज्वालामुखी', 'दिनेशचन्द्र भगत', 'इन्दुभूषण', 'चिनगारी', 'प्रबोध चन्द्र', 'दिवाकर', आदि नामों से लिखते थे और एस.एम. भगत भी उनका ही नाम था।[10] इसी प्रकार 'केशवदेव' का असली नाम 'नेमनारायण गुप्त' एवं 'कुमार' का 'ब्रजेन्द्र भगत मधुकर' था। ये कहानियाँ मॉरिशस के हिन्दू समाज की कुछ परिस्थितियों की सही पहचान कराती हैं तथा पाठक में आदर्शवादी चेतना उत्पन्न करना चाहती हैं। मॉरिशस के हिन्दी कहानी के उद्भव और विकास में 'दुर्गा' की कहानियों को समुचित स्थान मिलना चाहिए। यह तभी सम्भव होगा जब पूरी फाइल से कहानियों को संकलित करके प्रकाशित किया जायेगा।

(ग) निबन्ध : 'दुर्गा' के इन दस अंकों में निबन्धों की संख्या सबसे अधिक है, बल्कि कहना उचित होगा कि इस पत्रिका की मुख्य विधा ही निबन्ध है। 'दुर्गा' का आरम्भ ही वैचारिक क्रान्ति के लिए हुआ था, इसलिए वैचारिक उद्बोधन, वैचारिक उद्वेलन तथा वैचारिक क्रान्ति के लिए निबन्ध ही सबसे अधिक उपयोगी हो सकते थे। इन दस अंकों में पचास से ऊपर निबन्ध हैं। इनके विषय प्रमुख रूप से—भारत माता, हिन्दू धर्म एवं जाति, हिन्दी की दुर्दशा और चुनौतियाँ, समाज-सुधार, नारी-चेतना, राष्ट्र-चेतना, स्वास्थ्य, अस्मिता और उसका संघर्ष, घुड़-दौड़ आदि का उल्लेख किया जा सकता है। इन निबन्धों में मॉरिशस के हिन्दू समाज ने अपने अतीत, वर्तमान और भविष्य पर आलोचनात्मक दृष्टि डाली है तथा अपने निष्कर्षों से अपने समाज को दिशा देने का प्रयत्न किया है। इन निबन्धों में हिन्दू धर्म एवं जाति तथा हिन्दी भाषा पर सर्वाधिक निबन्ध हैं और मॉरिशस में हिन्दू, हिन्दी तथा हिन्दुस्तानी मॉरिशसीयता को सशक्त बनाने का संकल्प है। भारतेन्दु युग का भारतीय पुनर्जागरण 'हिन्दू पुनर्जागरण' ही था। डॉ. नामवर सिंह ने सन् 1987 में 'जनसत्ता' अखबार में लिखे लेख में भारतेन्दु को 'हिन्दू पुनरुत्थानवादी' कहा था। भारतेन्दु ने 1877 में बलिया में दिये भाषण में कहा था कि जो हिन्दुस्तान में रहे, वह हिन्दू हैं। भारतेन्दु के अनुयायी पं. प्रतापनारायण मिश्र ने 'ब्राह्मण' पत्रिका के 15 जुलाई, 1892 के अंक में 'हिन्दू

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जागरण' का यह प्रसिद्ध नारा दिया था, "चहहू जो साँचहु निज कल्यान, तौ सब मिली भारत-सन्तान। जपो निरन्तर एक जबान, हिन्दी, हिन्दू, हिन्दुस्तान।" भारत के इस हिन्दू जागरण के प्रभाव के रूप में 'दुर्गा' की इस हिन्दू जागृति को समझा जा सकता है। अनेक निबन्धों में हिन्दू जाति की पतनगाथा है, उनकी निर्जीवता और नपुंसकता है, लेकिन हिन्दू जाति को उठ खड़ा करने का सशक्त प्रयास भी है। इनमें से कुछ निबन्ध चाहे शुद्ध निबन्ध न हों, परन्तु लेखक अपनी बात दृढ़ता से रखता है और दुर्बलताओं पर गहरी चोट करता है। इन निबन्धों में वैचारिकता और बौद्धिक चिन्तन है और इसीलिए वे पाठक के चिन्तन को झकझोरते हैं और उसे मॉरिशस की नयी वैचारिक क्रान्ति में हिस्सेदारी के लिए आमन्त्रित करते हैं। मेरा विश्वास है कि 'दुर्गा' के निबन्धों ने अपने लेखक-पाठकों और उनके माध्यम से समाज पर अवश्य ही गहरा प्रभाव डाला होगा। 'दुर्गा' के काल-खण्ड में रखकर यदि इन निबन्धों को पढ़ा जाये तो यह स्वीकार करना पड़ेगा कि सूर्य प्रसाद मंगर भगत (ज्वालामुखी) तथा उनके साथी लेखकों ने इस पत्रिका के रूप में नये विचारों के ज्वालामुखी का ही विस्फोट किया था। 'दुर्गा' और 'ज्वालामुखी' (सम्पादक) इस नयी क्रान्ति के ही प्रतीक थे। इस क्रान्ति में आमूलचूल परिवर्तन तथा नवनिर्माण का स्वप्न था और यह हिन्दू जाति के कायाकल्प का निर्णायक संकल्प था। यहाँ कुछ उद्धरण देना उचित होगा जिससे इस क्रान्ति की ज्वाला को समझा जा सकेगा।

(अ) हिन्दू जाति की जागृति का शंखनाद

(1) "दुर्गे! प्रणत प्रणाम! मातः श्री तुम क्रान्ति की अधिष्ठात्री देवी हो, तो दूसरे की शरण में क्यों जाऊँ। मृतप्राय हिन्दू जाति को पुनः उन्नतावस्था में लाना है। उसके लुप्तप्राय गौरव को पुनः दिलाना है। इसे अन्य उन्नत जातियों के समक्ष छाती उतानकर खड़ा होना अभीष्ट है। इसे पशु से मुनष्य बनाना है, जो इनकी धमनियों में गरम-गरम रक्त प्रवाहित किये बिना अभीष्ट सिद्धि नहीं हो सकती। प्रद्धर्ष क्रान्ति की जरूरत है और क्रान्ति की अधिष्ठातृ देवी तुम हो तो मैं दूसरे की शरण में क्यों जाऊँ? ...हमें वह हुंकार—वह सिंहनाद करने की ताकत दी कि हमारे तुमुल निनाद से दिगूदिगन्त क्षुब्ध हो जायें, पृथ्वी हिल उठे, मुड़िया पहाड़ पाताल में समा जाय, द्यु जगत के सम्पूर्ण तारे आपस में टकराकर चूर-चूर हो जायें। हमें वह द्रुत गति दो कि दौड़ में वायु भी न अन्त कर सके। मारुत सूत भी एक बार चकरा जायें। क्या तुम इतना भी नहीं कर सकती? क्यों नहीं, बोल तथास्तु! तथास्तु।" ('दुर्गा' का पहला अंक, जनवरी, 1935 में 'ज्वालामुखी' सम्पादक के लेख 'प्रणत प्रणाम' से)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(2) "हिन्दू, हिन्दू ही से शत्रु के समान बर्तता है। हिन्दू विनाश के गहरे गर्त में क्यों न समा जाय।" (जनवरी, 1935, गुलाब के लेख 'हिन्दुओं की दुर्दशा कैसे हुई' से)

(3) "हिन्दुओं की हीनता का सबसे बड़ा कारण अविद्या है।" (जनवरी, 1935, 14 वर्षीय बालक के लेख से)

(4) "अब तो वही जाति (हिन्दू) सड़-गल गयी है, विनाश चारों ओर विनाश ही दिखता है।" (फरवरी, 1935, बाबा व्यास के लेख 'हम कैसे हैं' से)

(5) "माँ दुर्गे! मिटा दो हम हिजड़े हिन्दुओं को! या नहीं तो सम्मानपूर्वक जीने के लिए आत्म-शक्ति हमारी नसों में, शरीर के एक-एक रेशे में भर दो।" (फरवरी, 1935 में नन्दन के 'कठोर सत्य' लेख से)

(6) "हाय! मोरिशस में हिन्दुओं की दुर्दशा शोचनीय है। विचार करने वाला कोई नेता नहीं, राजनीति के मैदान में दिखाई नहीं देता, परमार्थ के मैदान में देखने के लिए हम लोग तरस रहे हैं। ...धन्य हैं भारतवासी जो जेल में जाने के लिए तरसते हैं और कहते हैं, मन्दिर है जेलखाना। वे ऋषि सन्तान कहलाने योग्य हैं, जाति-सेवा, देश-भक्ति रोम-रोम में व्याप्त है। क्रान्ति उनके हृदय में तूफान मचा रही है।" (फरवरी, 1935, चिंगारी के लेख', नेताओं से अपील' से)

7. "भारत के हिन्दुओं, अपने को परिवर्तित करो, अपनी गुलामी को निकाल बाहर करो। अपनी मूर्खता, जड़ता, अन्धविश्वास में परिवर्तन करो, सर्वत्र परिवर्तन! परिवर्तन–।" (फरवरी, 1935, दीपलाल के लेख 'परिवर्तन' से)

8. "हिन्दू नाम, हिन्दू धर्म तथा हिन्दू जाति पर मिटना प्रत्येक हिन्दू का सर्वप्रथम कर्तव्य है।" (फरवरी, 1935, ज्वालामुखी के लेख 'उपदेशामृत' से)

9. उन्हें (हिन्दू नवयुवकों को) भी महात्मा गाँधी, जवाहरलाल नेहरू, बल्लभ भाई पटेल और अनेक नेताओं जैसा करना चाहिए, तभी तो हम हिन्दू मॉरिशस में एक-न-एक दिन अपने शत्रुओं को परास्त कर सकते हैं। (अप्रैल, 1935, कुमार के लेख 'हिन्दुओं का घमण्ड' से)

10. "(हिन्दू जाति) उठ! जाग! आँखें खोल, कुछ तो होश में सँभल, नहीं तो ठिकाना न लगेगा।" (अप्रैल, 1935, प्रबोधचन्द्र के लेख 'भविष्य और वर्तमान की हालत' लेख से)

11. "मॉरिशस के हिन्दुओं के शत्रु हिन्दू ही हैं।" अप्रैल, 1935, ज्वालामुखी के लेख 'उपदेशामृत' से)

12. "भाइयो! राम! राम! नहीं कहो, राम जैसे दुष्ट-दल भंजक बनो, कृष्ण-कृष्ण मत गोहराओ, कृष्णा जैसे योगेश्वर महात्मा बनो, दयानन्द! दयानन्द मत

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चिल्लाओ, दयानन्द जी जैसे तपस्वी, सत्य-धर्म प्रचारक मत बनो, तभी तो हिन्दू जाति का कल्याण होगा।" (मई, 1935 में बी.एस. विद्यार्थी के लेख 'करके दिखाओ तो' से)

13. "हमारी हिन्दू कौम पर क्यों आज दिन-पर-दिन निर्बलता का तूफान बह रहा है? क्यों हिन्दू जाति में ऐसे निकम्मे आदमी उत्पन्न होने लगे हैं?" (अगस्त, 1935, सत्येन्द्र के लेख 'हम निर्बल क्यों हैं?' से)

14. "वर्तमान समय में मॉरिशस का हिन्दू समाज एक ऐसा घृणित एवं विषाक्त वायुमण्डल में पड़ा चक्कर खा रहा है कि कहना ही क्या, इस गोरखधन्धे से इसे निकलना या निकालना असम्भव नहीं तो कठिनतर अवश्य है। ...हम ऐसे थे, ऐसे हैं, ऐसा प्रलाप कायर किया करते हैं।" (अक्टूबर, 1935, ज्वालामुखी के लेख 'हमारा दिवालियापन' से)

'दुर्गा' के इन दस अंकों में सर्वत्र हिन्दू जाति का ऐसा कठोर आलोचनात्मक आत्म-मन्थन देखा जा सकता है। लेखकों ने तटस्थता के साथ हिन्दू जाति के पतन और दुर्बलताओं का मूल्यांकन किया है, लेकिन वे हिन्दू जाति की श्रेष्ठता का बखान करते हुए भारत में हिन्दुओं के संघर्ष की चर्चा भी करते हैं, परन्तु वे प्रमुख रूप से मॉरिशस के हिन्दू समाज को जाग्रत करना चाहते हैं। कई लेखकों ने मॉरिशस के मुसलमानों, ईसाइयों, चीनियों, क्रिओलों आदि से हिन्दू समाज की तुलना भी की है और हिन्दू जाति की भर्त्सना भी की है। यह आलोचनात्मक आत्म-मन्थन है, अमृत और विष को पहचानने की व्याकुलता है और मॉरिशस में हिन्दू समाज को सम्मानित स्थान दिलाने का ठोस आन्दोलन है। इस प्रकार 'दुर्गा' हस्तलिखित पत्रिका हिन्दू जागृति और हिन्दू क्रान्ति की पत्रिका है।

(आ) हिन्दी की प्रतिष्ठा के आन्दोलन को राष्ट्रव्यापी बनाना

'दुर्गा' के सन् 1935 के अंक हिन्दी भाषा के आन्दोलन को राष्ट्र-व्यापी बनाते हैं। मॉरिशस में भारतवंशी हिन्दू ही हिन्दी भाषा के प्रचार-प्रसार के लिए कटिबद्ध होते हैं, परन्तु 'दुर्गा' से लगता है कि हिन्दी भाषा का प्रश्न एक राष्ट्रीय प्रश्न बन गया था। 'दुर्गा' के उद्देश्यों में तीन उद्देश्य हिन्दी भाषा से ही सम्बन्धित थे, यथा—(1) हिन्दी विद्यार्थियों में लेख लिखने का माद्दा पैदा करना, (2) हिन्दी कैसी जानदार और शानदार भाषा है, अंग्रेजी-फ्रेंच पर लट्टू रहने वालों को दिखाना, तथा (3) हिन्दी, हिन्दी, हिन्दी के नाद से दिगदिगन्त को मुखरित करना। ये उद्देश्य एक प्रकार से हिन्दी भाषा की श्रेष्ठता और उसके द्वारा मॉरिशस राष्ट्र के निर्माता तथा अपनी अस्मिता एवं संस्कृति की रक्षा के लिए थे। उस समय हिन्दी भाषा ही भारतवंशियों के लिए भारतीय होने की सबसे बड़ी प्रमाण थी और स्वाभाविक था कि वे अपनी भारतीय पहचान बनाये रखने के लिए हिन्दी भाषा की रक्षा ही नहीं करें, उसका विस्तार करें और उससे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मॉरिशस के भविष्य का निर्माण करें। 'दुर्गा' के उपलब्ध अंकों से प्रमाण के लिए कुछ उद्धरण प्रस्तुत हैं—

(1) "मातृभाषा हिन्दी कई वर्षों से मॉरिशस (लघुभारत) में पुजारी बिना म्लान मुख हो रही है। मातृभाषा हिन्दी के करुण क्रन्दन बहरों के कानों के परदों को चीर अन्तस्तल में पहुँचकर उनके हृदय हिला दिये हैं, फिर भी वे मौन हैं। इसलिए कोई हिन्दी भाषा के ऊपर अभी तक ठोस कार्य नहीं किया। क्या हम हिन्दू हैं? तो हम हृदय पर हाथ रखकर अपनी अन्तरात्मा से पूछ सकते हैं कि, हिन्दी प्रचार के लिए कुछ ठोस कार्य किया है? उत्तर मिलेगा कड़े शब्दों में 'नहीं'। मॉरिशस प्रवासी हिन्दुओं की ओर से जो हिन्दी पत्र निकल रहे हैं वे भी अपने-अपने अलग-अलग राग अलाप कर हिन्दू जाति की बची-खुची इज्जत को खाक में मिला रहे हैं। शरम!!! यदि निकलने वाले हिन्दी पत्र जातीयता के नाते से समय-शक्ति को हिन्दी भाषा के लिए लगा दें तो, मातृभाषा हिन्दी की कालिमा जो, कई वर्षों से लगी है, उज्ज्वल हो जाये।" (जनवरी, 1935, 'केशवदेव' के छद्म नाम से/नेमनारायण गुप्त की पुस्तक-समीक्षा से)

(2) "मोरिशस टापू में हिन्दी की जो शोचनीय अवस्था है वह किसी से छिपी नहीं है। हिन्दी के लब्ध प्रसिद्ध लेखक ढूँढ़ने पर भी नहीं मिलते। इसका कारण यह है कि यहाँ हिन्दी की शिक्षा देने वाली कोई भी प्राइवेट या नॉन प्राइवेट शिक्षण संस्था नहीं है। एक आध हैं भी तो टुटरूटूँ चल रही हैं। जब हिन्दू कौम ही मुर्दा है तब भाषा की क्या पूछना? इधर कर्मवीर श्री देवी मास्टर के सतत उद्योग से प्राइमरी स्कूलों में 6 घण्टे साप्ताहिक हिन्दी की शिक्षा का प्रबन्ध सरकार ने कर दिया है। क्या इतना ही काफी है? जिस जाति की संख्या इस टापू में ढाई लाख है, उसकी भाषा की पढ़ाई केवल 6 घन्टे साप्ताहिक की जाय और जो न्यून हैं उनकी भाषा की पढ़ाई 25 घन्टे साप्ताहिक? हमारी बेबसी की नग्न तस्वीर। फिर हमें संतोष कर लेना है। यह तो केवल एक आदमी के उद्योग से इतना हुआ है। यदि हिन्दू जाति संगठित होकर करती तो सरकार हिन्दी कॉलेज खोल देती। लेकिन करे कौन? सभी अपने-अपने अभिमान में फूले हैं।" (जनवरी, 1935, ज्वालामुखी की सम्पादकीय टिप्पणी 'प्राइमरी स्कूलों में हिन्दी' से)

(3) "शुद्ध हिन्दी प्रचार का शंखनाद टापू के कोने-कोने से कीजिये।" (फरवरी, 1935, पृ. 6 के पीछे लिखित पंक्ति)

(4) "माता हिन्दी के पुजारी बनो, देवी हिन्दी के सेवक बनो।
भाषा हिन्दी को टापू के कोने-कोने में प्रचार करो, प्रसार करो।" (फरवरी, 1935, ज्वालामुखी के 'उपदेशामृत' से)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(5) आज हिन्दी शिक्षण का कार्य इस टापू में एक युग से हो रहा है, मगर आज तक एक सिद्धहस्त हिन्दी लेखक दृष्टिगोचर नहीं हुआ, न एक प्रतिभाशाली वक्ता ही। ये स्कूल बच्चों की जिन्दगी, रुपये, समय और परिश्रम को व्यर्थ में खर्च नहीं कर रहे हैं? जब तक मॉरिशस में हिन्दी प्रजा विद्वानों का आदर करना न सीखेगी तब तक कदापि हिन्दी साहित्य की अभिवृद्धि नहीं होगी।" (फरवरी, 1935, ज्वालामुखी के 'सिंहनाद' स्तम्भ से, पृ. 41)

6. इस भूतल पर जितनी जातियाँ हैं सब अपनी मातृ-भाषा से प्रेम करती हैं। मेरे देखने में स्वयं एक हिन्दू जाति ही ऐसी है कि, अपनी मातृ-भाषा 'हिन्दी' से प्रेम नहीं करती।" (अगस्त, 1935, बी.एस. विद्यार्थी के लेख 'हिन्दी-भाषा की अधोगति' लेख से, पृ. 32-33)।

7. "हिन्दुओ! यदि आप लोग अपनी सन्तानों को सुखी देखना चाहते हो, यदि आप हमेशा अपनी सन्तानों को विद्वान के रूप में देखना चाहते हैं, यदि आप लोगों में जातीय अभिमान, देशाभिमान और धर्माभिमान है तो अपनी सन्तानों को राज्य-भाषा इंग्लिश-फ्रेंच के साथ-साथ अपनी माननीया भाषा 'हिन्दी' की भी परिपूर्णतापूर्वक शिक्षा दिलाइये, नहीं तो यही समझो कि हम अपने ही हाथों से अपने दोनों पैरों पर कुल्हाड़ी मार कर नरक भोग रहे हैं—समझे न।" (अगस्त, 1935, बी.एस. विद्यार्थी के लेख 'हिन्दी भाषा की अधोगति' से, पृ. 34)

8. "बिगुल फूँको—हिन्दी की विगुल टापू के कोने-कोने में फूँको। जो हिन्दू हिन्दी नहीं जानता वह हिन्दू कहाने लायक नहीं।" (सितम्बर, 1935, पृ. 43 पर एक टिप्पणी)

ये कुछ उदाहरण हैं उस संकल्प के जो मॉरिशस को हिन्दीमय बनाना चाहता है। 'दुर्गा' के सम्पादक ज्वालामुखी (सूर्य प्रसाद मंगर भगत) तथा उनके लेखकों में हिन्दी और हिन्दू के लिए ज्वालामुखी जैसा उफान और ज्वारभाटे जैसी उद्दामता है और हर प्रकार के अवरोधों और बाधाओं के बीच मॉरिशस को लघु-भारत बनाने का स्वप्न है।

(घ) गद्य की नयी विधाओं का आरम्भ : 'दुर्गा' के इधर के अध्येताओं ने उसके अंकों को उसकी समग्रता में देखने की कोशिश नहीं की जिसका परिणाम यह हुआ कि 'दुर्गा' के गद्य की नयी-नयी विधाओं के श्रीगणेश करने का महत् योगदान सामने नहीं आ सका। श्रीमती विनोदबाला अरुण सम्भवतः पहली ऐसी शोधार्थिनी थीं जिन्होंने सन् 1980 में मॉरिशस की हिन्दी कहानी-यात्रा पर कार्य करते हुए 'दुर्गा' के सम्पूर्ण अंकों को देखा था और उसमें संकलित कहानियों का विवेचन किया था। इस प्रयास की आवृत्ति नहीं हुई, यहाँ तक कि साहित्य खोजी प्रह्लाद रामशरण भी 'दुर्गा' की हस्तलिखित कविताओं को महत्त्व नहीं दे पाये। मेरा मत है कि सूर्य प्रसाद मंगर भगत के सम्मुख 'दुर्गा' को आरम्भ करते समय भारत में प्रकाशित हिन्दी कविताएँ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रेरक एवं आदर्श रूप में थीं और वे 'दुर्गा' को हस्तलिपि में प्रकाशित करके उस आदर्श को प्रतिरूप देने के साथ हिन्दी पत्रकारिता में एक नयी क्रान्ति कर रहे थे। यह क्रान्ति 'दुर्गा' में गद्य की नयी-नयी विधाओं को आरम्भ करने में भी देखी जा सकती है। हस्तलिखित पत्रिका निकालने के कष्टों और बाधाओं को यदि विस्मृत कर दिया जावे, तब भी पत्रिका के लिए गद्य की नयी-नयी विधाओं में रचनाएँ लिखवाने की सम्पादकीय कल्पना पर आश्चर्य होता है। सूर्य प्रसाद मंगर भगत के सम्मुख मॉरिशस में हिन्दी की प्रतिष्ठा एवं उसका प्रचार-प्रसार के उद्देश्य के साथ हिन्दी में साहित्य का बहुविधाओं में विकास भी रहा है जो उस काल-खण्ड में हिन्दी के सम्पादक के रूप में उनकी महत् भूमिका को रेखांकित करता है। उन्होंने 'दुर्गा' के द्वारा गद्य की अनेक विधाओं का मॉरिशस में शुभारम्भ किया, जिसका उल्लेख इतिहास की पुस्तकों में न करके इतिहासकारों ने उनके साथ न्याय नहीं किया। यहाँ ऐसी ही कुछ गद्य-विधाओं के शुभारम्भ के प्रमाण उल्लेखनीय हैं :

(अ) पुस्तक-समीक्षा

'दुर्गा' के जनवरी, 1935 के अंक में पं. यदुनन्दन शर्मा 'सुधांशु' की सन् 1934 में प्रकाशित भक्ति एवं वन्दनापरक गीतों की पुस्तक 'कृष्ण की वंशी' की समीक्षा मिलती है। यह पुस्तक समीक्षा 'केशवदेव' के छद्म नाम से लिखने वाले हिन्दी-प्रेमी नेमनारायण गुप्त ने लिखी है। समीक्षक ने पुस्तक की प्रशंसा की है और अन्त में नारा लिखा है, "जय हिन्दी, हिन्दोस्तान, दुनियाँ रखे तेरी सान'। मेरे विचार में पुस्तक-समीक्षा विधा का यह आरम्भ है। पुस्तक-समीक्षाएँ फरवरी, जुलाई, अक्टूबर तथा नवम्बर के अंकों में भी मिलती हैं। जुलाई अंक में 'चन्द्रकान्ता', 'प्रेम-प्रसून' (प्रेमचन्द), 'बहता हुआ फूल' (रूपनारायण पाण्डेय) का परिचय मिलता है।

(आ) गद्य-गीत

'दुर्गा' के जून अंक में विद्यावती का गद्य-गीत 'अनन्त पथिक' एवं गोपाल देवी का 'भावना' तथा जुलाई में लेखक 'के' का 'हा हरि! तू किधर है' गद्य-गीत मिलता है। भारत की हिन्दी पत्रिकाओं में उस समय गद्य-गीत प्रायः प्रकाशित होते थे। यह उसी का प्रभाव है, परन्तु खेद है कि मॉरिशस के बाद के हिन्दी लेखकों ने इस विधा को आगे नहीं बढ़ाया और उसे मर जाने दिया।

(इ) संस्मरण

'दुर्गा' के अगस्त अंक में वासुदेव का संस्मरण 'श्रद्धानन्दाश्रम में दस मिनट' तथा दिसम्बर अंक में 'पोर्ट लुईश शहर की प्रदर्शनी' (अक्टूबर में भी शेषांश) प्राप्त होता है। ये एक प्रकार से संस्मरण ही हैं जो शायद पहली बार लिखे गये हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(ई) नाटक

'दुर्गा' में शुद्ध नाटक तो नहीं, लेकिन उसका आरम्भिक रूप देखा जा सकता है जुलाई, 1935 में केशवदेव की रचना 'प्राचीन मारीच द्वीप' संकलित है। इसमें नाटकीय रचना की प्रवृत्ति है।

(उ) अनुवाद

'दुर्गा' में फ्रेंच, संस्कृत, गुजराती आदि भाषाओं से अनुवाद मिलते हैं। फ्रेंच से अनुवाद हैं-(1) चुटकुले (जनवरी), (2) मॉरिशस के हिन्दुओं की स्थिति—फ्रेंच भाषण का भावानुवाद (जून, अनुवादक चिनगारी), (3) परिवर्तन—फ्रेंच भाषण का भावानुवाद (जुलाई, अनुवादक चिनगारी), (4) एक गरीब बच्चे का हृदय—फ्रेंच कहानी के आधार पर (अक्टूबर—सुखदेव विष्णुदयाल)।

संस्कृत भाषा से अनुवाद

भार्गव भूषण की संस्कृत कविता-संग्रह से क्रेवकेर, मोंताई लोंग के 'कुमुद' वटु का हिन्दी अनुवाद 'पद्म पल्लव' अगस्त, 1935 के अंक में प्राप्त होता है। यह एक नया तथ्य है और सम्भवतः एक नया आरम्भ भी। मॉरियस में हिन्दी भाषा के विकास में संस्कृत भाषा के योगदान की खोज की जानी चाहिए।

गुजराती भाषा से अनुवाद

(1) चोरी का फल, मृत्यु—दो लघुकथाएँ (मई, गुजराती 'इल्म' पत्रिका से), (2) अमूल्य उपदेश माला (जून, गुजराती 'इल्म' से), (3) विश्व विचित्र (जुलाई, 'गुजराती मित्र' से), (4) उपदेशमाला (जुलाई, 'इल्म' से)

अंग्रेजी भाषा से अनुवाद

(1) बदला (जनवरी, जॉन बुल), (2) जर्मनी में क्या हो रहा है (सितम्बर, हेराल्ड प्लास्किट)।

ये अनुवाद एक विपरीत पत्रकारिता के प्रमाण हैं। 'दुर्गा' का यह प्रयास सराहनीय है।

(ऊ) लघुकथा

'दुर्गा' में दो लघुकथाएँ मिलती हैं—(1) पागल प्रलाप (जुलाई) तथा (2) शरीफ आदमी और मँगते। आज मॉरिशस में अभिमन्यु अनत, रामदेव धुरन्धर, बीरसेन जागासिंह आदि ने लघुकथा का जो विकास किया है, उसका आदि रूप इन लघुकथाओं में देखा जा सकता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(ए) इण्टरव्यू

'दुर्गा' के अक्टूबर, 1935 के अंक में 'इण्टरव्यू (भेंट)' रचना से मॉरिशस के हिन्दी साहित्य में 'इण्टरव्यू' विधा का आरम्भ होता है। इसका शीर्षक है—'इन्दुभूषण' से इण्टरव्यू (भेंट)—हमारे विशेष प्रतिनिधि 'खनखन' द्वारा। इसकी विशेषता यह है कि सम्पादक ने 'इण्टरव्यू' के लिए हिन्दी शब्द 'भेंट' दिया है जो इधर कुछ वर्षों से भारत में इण्टरव्यूकार प्रयोग कर रहे हैं। सन् 1935 में भारत में 'इण्टरव्यू' के लिए 'भेंट' शब्द का प्रयोग होता हो तो मुझे इसकी जानकारी नहीं है। यह सम्पादक की भाषा-क्षमता का प्रमाण है कि उसने अंग्रेजी शब्द 'इण्टरव्यू' के लिए सटीक हिन्दी शब्द दिया गया है। 'दुर्गा' सम्पादक अपने मित्र खनखन को साहित्यकार इन्दुभूषण का इण्टरव्यू लेने भेजता है कि क्या वास्तव में उन्होंने साहित्य से संन्यास ले लिया है। इसमें इन्दुभूषण 'दुर्गा' सम्पादक सूर्य प्रसाद मंगर भगत का छद्म नाम है और खनखन भी वही हैं। इस प्रकार भगत स्वयं ही अपना इण्टरव्यू लेकर 'इण्टरव्यू' की एक नयी विधा का आरम्भ करते हैं। भगत की यह उपलब्धि मॉरिशस के हिन्दी साहित्य के इतिहास में यथास्थान रेखांकित होनी चाहिए।

(ऐ) व्याख्यान

मई अंक में चमूपति एम.ए. का 'श्रीमद्दयानन्द जन्मशताब्दी के अवसर पर पं. चमूपति एम.ए. का व्याख्यान' शीर्षक से एक व्याख्यान है। यह भी व्याख्यान देने की एक नयी परम्परा का आरम्भ है।

(ओ) पत्र

नवम्बर अंक में, 'पत्र' विधा में एक साहित्यिक रचना मिलती है। उसका शीर्षक है—'स्वर्ग की चिट्ठी' लेखक है स्वर्गीय शिशिरचन्द्र, पता है—स्वर्गधाम, आनन्द कानन से, तिथि है—20-10-35। चिट्ठी स्वर्ग से लिखी गयी है और इस पते पर आती है—श्रीज्वालामुखी, धारा नगरी। यह भी सम्पादक की रचना है जो मौलिकता और कल्पनाशीलता का प्रमाण है।

(औ) जीवन-चरित्र

नवम्बर अंक में ही एक प्रवासी भारतीय का जीवन-चरित्रात्मक लेख 'मॉरिशस के हीरे' दिया गया है। यह जीवन-चरित्र का आरम्भिक रूप है।

इनके अतिरिक्त 'विज्ञान-वार्ता' (जुलाई, अगस्त, सितम्बर), 'चिकित्सा विज्ञान' (अगस्त, अक्टूबर), 'नेताओं के विचार' (जून) आदि नये-नये स्तम्भ भी 'दुर्गा' में देखे जा सकते हैं। 'दुर्गा' को सम्पादक ने सचित्र मासिक बनाने का भी भरपूर प्रयत्न किया

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है। इसके दस अंकों में लगभग 60 चित्र हैं। इनमें रंगीन, श्वेत-श्याम, रेखा-चित्र, पेन्सिल से बनाये चित्र—सभी प्रकार चित्र हैं। रंगीन चित्र प्रायः भारत की हिन्दी पत्रिकाओं से काट कर चिपकाये हुए हैं। यह प्रयास निश्चय ही हस्तलिखित पत्रिका को नयी ऊँचाइयाँ देता है। इसी प्रकार इन अंकों में लगभग 20 कार्टून भी हैं जो लेखकों/पाठकों के द्वारा बनाये गये हैं। ये कार्टून हिन्दू जाति की दुर्दशा के साथ इस समाज की बुराइयों पर तीखा व्यंग्य करते हैं। ये सूर्य प्रसाद मंगर भगत की सम्पादन-कला की मौलिकता और श्रेष्ठता का प्रमाण हैं। ये पत्रिका को आधुनिक रूप देने की चेष्टा का भी प्रमाण हैं। 'दुर्गा' में लगभग 15 विज्ञापन भी मिलते हैं जो एक सर्वथा नयी बात है। हस्तलिखित पत्रिका में वस्तुओं के प्रचार के लिए विज्ञापन देने की, कोई कल्पना भी नहीं कर सकता, परन्तु सम्पादक ने यह चमत्कार भी कर दिखाया है। जनवरी अंक से विज्ञापन का एक उदाहरण प्रस्तुत है :—

मिठाई

पोर्ट लुईस निवासी श्री पं. अर्जुन मिश्र और द्वारका मिश्र जी की दूकान में खाने-पीने की हर तरह की सुभीता है—शहर जायें तो तशरीफ रखीयेगा, ननखताई और अमरतमयी चहा। मत भूलिये वर्ना पछिताओगे?

एजेन्ट ननखताई—बदामी हलवा
नं.1/1/2 सुतरफेन गली,
मुड़ीया पहाड़ केण्टीन

'दुर्गा' में 'प्राप्ति स्वीकार' (अप्रैल), 'मृत्यु सूचना' (जून, जुलाई), 'स्वागत+विवाह संस्कार' (जुलाई), 'स्थानीय समाचार' (जून), 'सम्मतियाँ' आदि स्तम्भों की भी यदाकदा स्थान दिया गया है। जुलाई अंक में पं. आत्माराम का 'दुर्गा' पर पत्र दिया गया है जो एक प्रकार से पाठक का अभिमत ही है। इसी अंक में लक्ष्मीनारायण चतुर्वेदी, 'रसपुंज' का भी चार पृष्ठों का पत्र 'आशीर्वाद' शीर्षक से मिलता है। यह भी 'पाठक का पत्र सम्पादक के नाम' जैसे स्तम्भ का प्रमाण बन सकता है।

अन्त में इस विस्तृत विवेचन से कुछ निष्कर्ष सामने आते हैं। 'दुर्गा' हस्तलिखित मासिक पत्रिका मॉरिशस में हिन्दी पत्रकारिता के क्षेत्र में 'युगान्तर' लाने वाली पत्रिका है। इसके मई अंक के आवरण पर सम्पादक ने ठीक ही लिखा है कि 'दुर्गा' युगान्तर उपस्थित करने वाली हस्तलिखित मासिक पत्रिका है। यह युगान्तर मॉरिशस के नवयुवक करते हैं और 'दुर्गा' के लगभग चालीस अंक निकालकर नये युग की रचना का जीवन्त प्रमाण देते हैं। मॉरिशस में यह क्रान्ति हिन्दी भाषा से होती है और ऐसे नवयुवकों के द्वारा जिन्होंने लम्बे समय तक हिन्दी का विधिवत् ज्ञान प्राप्त नहीं किया था। उनके हृदय में हिन्दू, हिन्दी तथा हिन्दुस्तानी होने का जो गर्वपूर्ण ताप और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्वाभिमान था तथा हिन्दू समाज में क्रान्तिकारी परिवर्तन की जो उन्मादकारी बेचैनी थी, उसने उन्हें अभावों और कष्टों के बावजूद इस राष्ट्रीय जागरण के ऐतिहासिक दायित्व को स्वेच्छा से स्वीकार करा दिया। सूर्य प्रसाद मंगर भगत इस नयी युवा-क्रान्ति के प्रतीक-पुरुष हैं। पं. आत्माराम ने अपने 4 जून, 1935 के पत्र में इसी सत्य का उद्घाटन करते हुए सूर्य प्रसाद मंगर भगत को लिखा था, "आप जैसे तरुणों के हृदय में जागृति के नव विचारों की जो लहरें उछल रही हैं उसका 'दुर्गा' एक प्रतिबिम्ब है। .. 'दुर्गा' का हस्तलिखित, कष्टसाध्य, देशभक्त आदियों के चित्र युक्त तथा गद्य'-पद्य में सम्पादन, एक आधुनिक तपस्या है।" पं. आत्माराम की यह बहुत ही सटीक एवं सार्थक टिप्पणी है। वे देख रहे थे कि सूर्य प्रसाद मंगर भगत मॉरिशस में एक नये युग का प्रवर्तन रहे थे। यह नया युग हिन्दू जागृति का युग था। इस हिन्दू जागृति में सम्पूर्ण जागृति की चेतना थी–हिन्दी भाषा, समाज-सुधार, सांस्कृतिक उत्थान, राजनीतिक एवं शैक्षणिक उन्नयन तथा आर्थिक उत्थान का सम्मिलित एवं संश्लिष्ट जागरण था। यह भारत के स्वदेशी, स्व-संस्कृति, स्व-भाषा, स्व-राज्य जैसा ही आन्दोलन था, एक अहिंसक आन्दोलन, जो शस्त्र से नहीं शब्द से हिन्दू जाति में क्रान्ति करना चाहता था और जो हिन्दू समाज में आधुनिक चेतना उत्पन्न करना चाहता था। सूर्य प्रसाद मंगर भगत का वैशिष्ट्य यह है उन्होंने कि अपने युग की आकांक्षा को ही वाणी दी, बल्कि उसमें ऐसी व्याकुलता, नया उन्मेष, नयी तीव्रता और नये सिरे से सम्पूर्ण क्रान्ति का शंखनाद किया। यह अपने युग में एक नये युग का प्रवर्तन था। सूर्य प्रसाद मंगर भगत इस प्रकार भारत के भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, पं. महावीर प्रसाद द्विवेदी, पं. गणेशशंकर विद्यार्थी, प्रेमचन्द आदि हिन्दी सम्पादकों की भूमिका एक साथ निभा रहे थे। यह आज हमें अकल्पनीय लग सकता है, परन्तु मॉरिशस के इतिहास का सच यही है।

अतः मॉरिशस के हिन्दी साहित्य के इन आरम्भिक दशकों के इतिहास को नये सिरे से देखना आवश्यक है। प्रह्लाद रामशरण ने आदि तथा मध्यकालीन हिन्दी की अज्ञात एवं अप्राप्य कविताओं को खोजकर इसी ओर संकेत किया है तथा 'वसन्त' पत्रिका में डॉ. वीरसेन जागासिंह ने भी 'अभिलेखागार से' स्तम्भ आरम्भ करके इतिहास में छिपी सामग्री को बाहर निकालने की महत्ता को रेखांकित किया है। मॉरिशस के हिन्दी लेखक और शोधार्थी इसके महत्त्व को जानते हैं। श्रीमती विनोदबाला अरुण की समीक्षात्मक पुस्तक भी इसी प्रवृत्ति की प्रमाण है। अब सामूहिक रूप में व्यवस्थित प्रयास की आवश्यकता है। मॉरिशस की पहली पत्रिका 'हिन्दुस्तानी' (1909-1914) से इस कार्य को आरम्भ किया जाना चाहिए और विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित हिन्दी साहित्य का विधानुसार संकलन होना चाहिए। इसके लिए एक खोजी सम्पादक-मण्डल हो जो कम-से-कम इन हिन्दी पत्रिकाओं में प्रकाशित रचनाओं की सूची ही तैयार कर दें। 'दुर्गा' के 1935 के अंकों के आधार पर मेरा यह मत है कि 'आरम्भिक पत्रिकाओं की साहित्यिक सामग्री का गम्भीरतापूर्वक अवलोकन किये

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बिना मॉरिशस के हिन्दी साहित्य का कोई प्रामाणिक इतिहास नहीं लिखा जा सकता। मैंने स्वयं इस लेख से पहले मॉरिशस के हिन्दी साहित्य पर जो टिप्पणियाँ की हैं, वे किसी भी नयी सामग्री के सन्दर्भ में परिवर्तन की माँग कर सकती हैं और ऐसा होता है तो मैं सबसे पहले नये निष्कर्षों का स्वागत करूँगा। यदि हमारी शोध-चेष्टा नयी सामग्री खोजकर नये निष्कर्ष लाती है तो ज्ञान के विकास के लिए उनका स्वागत होना ही चाहिए। मेरे विचार में सूर्य प्रसाद मंगर भगत के सम्पूर्ण व्यक्तित्व और कृतित्व का मूल्यांकन होना चाहिए। विनोद बाला अरुण ने अपनी पुस्तक में सही लिखा है कि मॉरिशस के हिन्दी साहित्य के निर्माण में श्री भगत ने नींव का काम किया। उनके वास्तविक योगदान का समुचित मूल्यांकन होना अभी शेष है। लक्ष्मीनारायण चतुर्वेदी 'रसपुंज' ने इस वास्तविकता को तभी समझ लिया था जब उन्होंने नेमनारायण गुप्त से 'दुर्गा' का जून, 1935 का अंक देखा था। उन्होंने अपने 'आशीर्वाद' (जुलाई अंक) शीर्षक लम्बे लेख में भविष्यवाणी की थी कि सूर्य प्रसाद मंगर जैसे नवयुवक 'प्रवासी हिन्दी साहित्य के इतिहास' के 'निर्माण-काल' में 'स्वर्णाक्षर' से सुशोभित होंगे। श्री भगत मॉरिशस में हिन्दू, हिन्दी एवं हिन्दुस्तानी मॉरिशसीयता की नयी चेतना के प्रतीक-पुरुष हैं। इनके द्वारा वे स्वतन्त्रता, आधुनिकता और मॉरिशस के लिए नयी महानता की तलाश करते हैं। ऐसे इतिहास-पुरुष को इतिहास में स्वर्णाक्षरों में श्रद्धांजलि देनी ही होगी।

सन्दर्भ

1. 'एक मॉरिशसवासी की हिन्दी यात्रा', पृ. 6-9।
2. 'The Establishment and Cultivation of Modern Standard Hindi in Mauritius', Page 85.
4. 'वसन्त'—77, मार्च, 1944, पृ. 14।
5. 'मॉरिशस : भारतीय संस्कृति का हरावल दस्ता' पुस्तक में संकलित लेख—'मॉरिशसीय हिन्द के सूर्यः सूर्य प्रसाद मंगर भगत' से, पृ. 64।
6. 'मॉरिशस की हिन्दी कथा-यात्रा' पृ. 49-54 एवं 174-75।
8. 'प्रेमचन्द का अप्राप्य साहित्य', खण्ड-2, पृ. 48।
9. 'मॉरिशस की हिन्दी कथा-यात्रा', पृ. 49।
10. विनोदबाला अरुण, 'मॉरिशस की हिन्दी कथा-यात्रा', पृ. 49।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

21वीं सदी का बहुउद्देशीयवाद

क्रिस्टीन लेगार्डे*

हिन्दी अनुवाद : रजनीकान्त शर्मा**

शुभ सन्ध्या। आपने मुझे डिम्ब्लेबाई व्याख्यान माला में व्याख्यान देने का अवसर देकर बहुत सम्मान दिया है। मैं बहुत गर्व महसूस कर रही हूँ। साथ ही मैं ब्रिटिश ब्रॉडकास्टिंग कॉरपोरेशन का भी धन्यवाद करना चाहती हूँ; तथा डिम्ब्ले परिवार का भी जिन्होंने मुझे आमन्त्रित करने की कृपा की और विशेष रूप से डेविड डिम्ब्लेबाई की जिन्होंने मेरे बारे में प्रशंसा की झड़ी लगा दी, जिसके मैं इतनी योग्य भी न थी।

इस शाम मैं, भविष्य के बारे में बात करना चाहूँगी। लेकिन इससे पूर्व कि हम भविष्य की ओर देखें, मैं चाहूँगी कि हम अतीत की ओर मुड़कर देखें। भविष्य निर्माण की कुंजी कभी-कभी अतीत से भी चलकर आती है।

मैं चाहूँगी कि आप और मैं अपना ध्यान 1914 के प्रारम्भिक महीनों की तरफ केन्द्रित करें। अर्थात सीधे एक सदी पूर्व। लगभग पूरी दुनिया ने यह समय शान्ति से गुजारा और वैज्ञानिक खोजों ने तथा तकनीकी विकास ने एक लम्बी छलाँग लगायी। हजारों तरह की नयी खोजों ने नये क्षितिज विकसित किये, जिससे रहन-सहन की तथा संवाद करने की नयी दुनिया ही आविष्कृत हो गयी। जहाँ पूर्व में व्यापार, यात्रा, तथा धन लगाने की योजनाओं के महज कुछ ही विकल्प थे। अब वहाँ नये अन्तरिक्ष निर्मित हो गये हैं।

जबकि, 1914 नरक का एक दरवाजा था जो तीस वर्षों तक जाता था—जिसमें विनाश-ही-विनाश था—जो दो विश्व युद्धों की देन था। यह यहीं खत्म नहीं होता था इसमें उस युग की भयानक त्रासदी भी छुपी थी। ऐसा समय जब हर चीज गलत सिद्ध हो जाती है। ऐसा क्या हुआ था?

---

* महाप्रबन्धक, अन्तर्राष्ट्रीय मुद्राकोष, पेरिस

**रजनीकान्त शर्मा, कहानीकार, विभिन्न पत्रिकाओं में प्रकाशित; पता : 26, बंजारा हिल्स, मीनाक्षी चौक, होशंगाबाद—461001 मो. : 09977196471 ई-मेल : rajnikantpwd@gmail.com

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जो हुआ, वह यह था कि इसी समय औद्योगिक क्रान्ति का जन्म हुआ जिसने रही-सही कसर भी पूरी कर दी। इसने सामाजिक असमानता को बढ़ावा दिया। दुनिया में, लोगों में और देशों के बीच भयानक तनाव था। दो देशों के बीच दुश्मनी—व्यापार व्यवसाय में, शक्ति सन्तुलन में, और उतार-चढ़ाव में क्या होना चाहिए और क्या नहीं—के बीच में भयानक खाई बन गयी थी। चाहे वह उपनिवेशवाद के रूप में हो या फिर अशिक्षित मजदूरों की घटती-बढ़ती संख्या के रूप में हो।

1914 में यह असमानता सीधे-सीधे युद्ध की सम्भावनाओं को बढ़ाती थी। आगे के सालों में राष्ट्रीयता और आदर्शवादी सोच एक गड्ढे में ढकेल दी गयी थीं। जहाँ सम्पूर्ण मानवीयता अपना सम्मान खो रही थी। तकनीकी विकास मनुष्य के विकास में साधक न होकर बाधक बन रहा था। इससे विकास विनाश में तब्दील हो रहा था। यह विध्वंस डर पैदा कर रहा था। वैश्विक सहयोग के प्रारम्भिक प्रयास जैसे—लीग ऑफ नेशन्स चारों खाने चित्त हो गया था। दूसरे युद्ध की समाप्ति तक दुनिया का बहुत बड़ा हिस्सा बर्बाद हो चुका था।

अब मैं ध्यान दूसरे परिदृश्य पर केन्द्रित करना चाहती हूँ—वोह है 1944। इस साल की गर्मियों में जाने-माने अर्थशास्त्री मेनियार्ड कीन्स और एक प्रतिनिधि मण्डल जिसमें ब्रिटिश अधिकारी शामिल थे, प्रशान्तमहासागर की यात्रा पर निकले। यह यात्रा दुर्गम थी और कठिनाइयों से भरी थी। क्योंकि अभी युद्ध समाप्त नहीं हुआ था और उनके जहाज को दुश्मन की नौकाएँ डुबो सकती थी। कीन्स का स्वयं का स्वास्थ्य ठीक नहीं था। लेकिन वे स्वयं के प्रति वचनबद्ध थे और सुनहरा भविष्य उनका इन्तजार कर रहा था। और वे किसी भी स्थिति में इस अवसर को खोना नहीं चाहते थे।

उनका लक्ष्य था, संयुक्त राष्ट्र अमेरिका का न्यू हेम्पशायर कस्बा जो उसके उत्तर-पूर्व में बसा था; वे और उनके ही जैसे साथियों से जो विभिन्न देशों से आये थे। उनका उद्देश्य और कुछ नहीं वरन् सम्पूर्ण विश्व के आर्थिक समीकरणों का पुनर्निर्माण करना था। ये सभी 44 देश ब्रेटन वुड्स में एक निश्चयात्मक दृढ़ता के साथ इकट्ठे हुए, जो परस्पर सहयोग और विश्वास पर आधारित था। उनका सहज विश्वास इस बात पर आधारित था कि शान्ति और सम्पन्नता एक ही शब्दावली से आते हैं और यह शब्दावली सहयोग के अक्षर से शुरू होती है और यह भी कि व्यक्तिगत स्वार्थ उसे हानि पहुँचा सकते हैं।

यह नैसर्गिक बहुउद्देशीयता का स्तर था—70 साल पहले। इसने 'यूनाइटेड नेशन्स', 'विश्व बैंक' और 'इण्टर नेशनल मानेटरी फण्ड' को जन्म दिया। वह संस्था जिसके साथ काम करके मैं गौरवान्वित अनुभव कर रही हूँ। जो दुनिया हमें विरासत में मिली वह इन दूरदर्शी महापुरुषों की देन थी—लार्ड कीन्स और उनकी पीढ़ी की। उन्होंने फोनिक्स पक्षी की तरह क्रोध, द्वेष तथा बदले की भावना से भरी जलती हुई

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दुनिया से ऊपर उठकर शान्ति और सम्पन्नता की बात की। हम उनके सदा ऋणी रहेंगे।

उनके इस महान कृत्य के कारण ही हम पिछले दशक से अतुलनीय आर्थिक और वित्तीय स्थिरता देख रहे हैं। हमने देखा कि बीमारियाँ दूर हुईं, विवादों का अन्त हुआ, बालमृत्यु दर घटी, औसत आयु में वृद्धि हुई, मनुष्य की जीने की ललक बढ़ी और लाखों-लाख लोगों की गरीबी दूर हुई।

आज हम किसी भी प्रकार से यह कहने की स्थिति में हैं कि हम दुर्दशा के उस भँवर से निकल आये। यानी भयानक आर्थिक तंगी से और अग्नि परीक्षा से। उसके बहुउद्देश्यीय महाकृत्य को धन्यवाद—अन्तराष्ट्रीय सहयोग को भी—जिससे हम दूसरी बार फिर इस तरह के गम्भीर आर्थिक संकट से नहीं जूझेंगे। ताकि पूरी दुनिया को फिर से इस तरह की विपत्ति का सामना न करना पड़े, जो हमेशा दुर्भाग्य लाती है। हम इस अग्नि-परीक्षा से अक्षत निकल आये हैं। हमने संरक्षणवाद को नकार दिया है और सहयोग की भावना को आत्मसात कर लिया है।

हाँ, अभी कई अग्नि परीक्षाएँ बाकी हैं। हम प्रतिक्षण इन अग्नि-परीक्षाओं का इन्तजार कर रहे हैं। जैसा कि हमारे पूर्वजों ने सदियों पूर्व किया था। एक बार फिर वैश्विक अर्थशास्त्र गड़बड़ा रहा है। और इसकी पहचान करना समझ से परे है। जैसे ही हम औद्योगिक युग से आज के इस 'हायपरकनेक्टेड डिजीटल युग' में प्रवेश करते हैं।

एक बार फिर हमसे यह माँग की जायेगी कि हम परिवर्तन का सामना और मूल्यांकन किस प्रकार करते हैं।

जैसे ही हम (इस सदी) अर्ध-शती की ओर देखते हैं। भविष्य की उस दुनिया की तरफ देखते हैं, जो दुनिया हम उन्हें सौंपेंगे—जिसमें हमारे बच्चे और पोते-पोतियाँ रहेंगे—तो क्या हमें यह नहीं सोचना चाहिए कि हम उन्हें कैसी दुनिया सौंपना चाहेंगे? और वह दुनिया किन आदर्शों को लेकर चलने वाली दुनिया होगी? उसका क्या स्वरूप होगा? और हम उसे कैसे प्राप्त करेंगे?

जैसा कि जूलियस सीजर में शेक्सपियर ने कहा है—"इस महासागर में जो लबालब भरा है, हमें, इसमें बहना है और इस प्रवाह को हमें ग्रहण करना है; अन्यथा हम इसे खो देंगे।"

इस शाम मैं दो महाधाराओं के बारे में बात करना चाहूँगी जो आने वाले दशकों में हमें विपरीत दिशा में बहाकर ले जा सकी हैं।—वो है—आपसी वैश्विक सम्बन्धों में तनाव और आर्थिक अस्थिरता।

मैं यहाँ एक प्रस्ताव देना चाहती हूँ, जिसने अतीत में भी महती भूमिका अदा की थी और जो वर्तमान में भी महत्त्वपूर्ण भूमिका निभा सकता है। एक मजबूत और सकारात्मक अन्तराष्ट्रीय सहयोग की भावना। संक्षेप में 21वीं सदी में एक बहुउद्देश्यवाद।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मैं पहले मुख्य प्रवाह की बात करूँगी—वैश्विक सम्बन्धों में आपसी तनाव—एक ऐसी दुनिया के देशों के सम्बन्धों में जो दिन-प्रतिदिन निकट भी आती जाती है और परस्पर दूर भी होती चली जाती है। जो भी हो, यह कोई अच्छा परिदृश्य नजर नहीं आता है। जब सम्बन्ध गहरे और सघन हों तो उनको तोड़ना कठिन हो जाता है। ऐसी दुनिया में जहाँ अन्तर्सूत्र इतने संश्लिष्ट हों वहाँ छोटी-छोटी-सी बातों का भी गम्भीर प्रभाव पड़ सकता है और वे पूरी दुनिया के वातावरण को प्रभावित कर सकती हैं। प्रायः एक क्षण में एक अणु पल में अननुभूत प्रभाव देखे-सुने जा सकते हैं। टी.वी. चैनल गजब ढा सकते हैं। हालाँकि वो अच्छी खबरें भी देते हैं और उनसे दुनिया आगे भी बढ़ती है। तो हमें यह नुकसानदेह ज्यादा हो सकता है।

इसके कारण वैश्विक अर्थतन्त्र गड़बड़ा सकता है। इसमें अधिक अस्थिरता आ सकती है। और यह अधिक घातक भी हो सकता है। उदाहरण के लिए, विचार कीजिये कि वर्तमान आर्थिक परिदृश्य के बिगड़ने की शुरुआत कहाँ से हुई? अमेरिका के उपनगरों के बाजारों को बन्धक रखने की पृथा से, इसके बाद यह पूरी दुनिया में फैल गयी।

सूचना क्रान्ति के कई अँधेरे पक्ष हैं। यह मानवीय सम्बन्धों के सूक्ष्म उष्मा तन्त्रों को क्षति पहुँचा सकती है। यह विष बेल बो सकती है। निरर्थक प्रचारवाद पैदा कर सकती है और संशय का माहौल पैदा कर सकती है। इसके बजाय कि हम संवेदनशील नैरन्तर्य पैदा करें, जो विचार और वैचारिक समझ पैदा कर सकें। हम एक वाचाल भीड़ या वैश्विक सभा स्थल पैदा न कर दें, जो अधैर्य और नफरत को जन्म देने लगे। हम एक मधुर राग के बजाय एक बेसुरा राग न अलापने लग जायें।

तो हमारे सामने चुनौती यह है कि हम अच्छे को चमकायें और बुरे को नष्ट कर दें।

एक साथ इकट्ठे होने को हमने सम्भव बना लिया है। और यह अनुभव हमारे लिए सुखद रहा है। लेकिन आगे चलकर यह प्रवाह कठिन भँवर सिद्ध हो सकता है। इसकी चर्चा आगे चलकर मैं करूँगी—वह है पूरी दुनिया से अपने को अलग कर लेने की प्रवृत्ति—जबकि फौरी तौर पर यह निकट आने की प्रक्रिया दिखाई देती है।

यह मृगमरीचिका है। मेरा आशय क्या है? पूरी दुनिया में शक्तियों का क्षरण। अपने भौगोलिक पर्यावास और सरहदों तक सिमट जाना, वैश्विक विकास को अपने तक सीमित कर लेने की ललक। एकता में असमानता, यह एक भिन्न अनुभव है, जिससे हमारे पूर्वजों को गुजरना ही नहीं पड़ा। यह हमारे यान्त्रिक और कृत्रिम सम्बन्धों की नखशिख व्याख्या है।

आज की मुख्य तात्कालिक अवधारणा यह है कि वैश्विक शक्तियाँ तत्क्षण यहाँ से वहाँ यानी पश्चिम से पूर्व और उत्तर से दक्षिण स्थानान्तरित हो जाती हैं।—एक पल में, एक क्लिक में या थोड़ा समय लेकर।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पचास साल पहले बाजारू शक्तियाँ विकासशील अर्थव्यवस्था एक-चौथाई दुनिया की पैदावार देखकर निर्णय लेती थीं। आज यह आधा है और तेजी से नीचे आ रहा है। —कोई आश्चर्य नहीं, यह अगले दशक तक इसका भी आधा हो जाये।

शक्तियों का सिमट जाना विभिन्न देशों के सम्बन्धों को भी प्रभावित कर रहा है। बावजूद इसके कि वैश्विक शक्तियों का नेटवर्क तथा कई संस्थाएँ इस सम्बन्ध में निरन्तर कार्य कर रहे हैं और एक वैश्विक ढाँचा बनाने में निमग्न हैं।

गैर-सरकारी संगठन की उभरती हुई संख्या के बारे में विचार कीजिये जो संवाद कायम करने तथा सामाजिक संगठन का संकल्प लेकर कार्य कर रहे हैं। और इस सम्बन्ध में अपनी आवाज ऊँची कर रहे हैं। केवल 20 वर्षों में उनकी संख्या 700 से 4000 हो गयी है।

बहुराष्ट्रीय निगमों के बारे में सोचिये, जो आज वैश्विक व्यापार का दो-तिहाई नियन्त्रित कर रहे हैं। कुछ शोधों के अनुसार 12 बहुराष्ट्रीय निगम आज 100 सर्वोच्च आर्थिक संस्थानों के भौतिक ढाँचे के समकक्ष उनकी बराबरी में बैठ रहे हैं। उन महानगरों के बारे में सोचिये, उनमें से 31 इन्हीं 100 संस्थानों की सूची में आते हैं। और वे लगातार बढ़ रहे हैं। 2030 तक दुनिया की जनसंख्या की 60% जनसंख्या इन्हीं शहरों में रहेगी।

उन उत्साही नागरिकों के बारे में सोचिये जिनमें यह भावना बढ़ रही है और जो इनमें सामंजस्य स्थापित नहीं करने के बावजूद इन 'ग्रामीण महानगरों' का हिस्सा बनने को पूर्ण रूप से समर्पित हैं। 2030 तक 'वैश्विक मध्यवर्ग' की संख्या 5 अरब तक हो सकती है जो आज 2 अरब है। ये लोग एक अच्छे जीवन-स्तर की माँग करेंगे तथा अधिक स्वतन्त्रता की माँग करेंगे। वे सम्मान और समान न्याय की भी माँग करेंगे। वे इससे कम पर क्यों राजी होंगे? यह ज्यादा बँटी हुई दुनिया होगी जिसकी माँग भी ज्यादा होगी और वह बराबरी का शक्ति विकेन्द्रीयकरण चाहेगी। ऐसी दुनिया में कुछ भी करना आसान नहीं होगा, कम-से-कम वैश्विक महत्त्व के विषयों पर।

यह एक ऐसी दुनिया होगी जो खतरनाक रूप से आत्मकेन्द्रित होगी—विशेष रूप से आर्थिक मामलों में, वित्तीय मामलों में तथा तकनीकी मामलों में। लेकिन जहाँ तक शक्ति, प्रभाव तथा निर्णय करने का प्रश्न होगा यह टुकड़ों में बँटी होगी। इससे अनिर्णय, अनीति और असुरक्षा का माहौल बनेगा। अधैर्य और लालच बढ़ेगा और निश्चय ही इसके हल ढूँढ़ने पड़ेंगे।

हमें यह दूसरे प्रवाह के लिए हल ढूँढ़ने पड़ेंगे जिसका प्रभाव आने वाले दशकों में पड़ेगा—आर्थिक स्थिरता के तनाव—यह दृढ़ता से खड़े रहने तथा समय आने पर नीचे झुककर सामंजस्य स्थापित करने के बीच होगा। वास्तव में तात्कालिक समस्या वित्तीय संकट से निजात पाने की है—जो लगभग पिछले 6 वर्ष पूर्व प्रारम्भ हुआ था

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और आज भी जस-का-तस है। जैसा कि आज के बाजार की स्थिति से हमें ज्ञात होता है। और जो हमें रोज ही इसकी याद दिलाता रहता है। आज आवश्यकता इस बात की है कि हम सहयोगात्मक रूप से प्रयत्न करते हुए इस समस्या का निपटान करें जो हमारे सामने खड़ी है। वह है उच्चदर के सरकारी तथा प्राइवेट क्षेत्र के कर्ज, कमजोर बैंकिंग सिस्टम, प्रतिस्पर्धा तथा अग्रणी बने रहने के ढाँचागत व्यवधान—जिन्होंने अन्ततः हमें एक स्वतः स्वीकृत अनियन्त्रित भीड़ के रूप में परिवर्तित कर दिया है।

मैं जानती हूँ, आप अन्तराष्ट्रीय मुद्रा कोष द्वारा हर रोज इस पर बात करते हुए देखते/सुनते होंगे। आज रात मैं, जैसे भी हो, इस विषय को लम्बे समय से चले आ रहे व्यवधान के सन्दर्भ में आपके सामने रखना चाहती हूँ। ये व्यवधान विशेष रूप से तीन प्रकार के हैं—सांख्यिकी आँकड़े, पर्यावरणीय क्षरण और आमदनी में असमानता। वैश्विक अन्तःसम्बन्धों के चलते इनमें से कुछ हमें प्राचीन समय से चली आ रही परम्पराओं की तरह पारिवारिक लग सकते हैं। —उदाहरण के लिए, निरन्तर बढ़ती असमानता, लेकिन दूसरी नयी और अद्भुत है—जैसे पर्यावरणीय दबाव।

यहाँ मैं साँख्यिकी आँकड़ों से बात शुरू करना चाहती हूँ। पिछले तीन दशकों से दुनिया की जनसंख्या बहुत बढ़ गयी है और बहुत बूढ़ी हो गयी है।

अगले तीस सालों में दुनिया की जनसंख्या में तीन अरब लोग इस ग्रह पर और बढ़ जायेंगे। जिनमें से लोग 65 की उम्र पार कर चुके होंगे। 2020 तक दुनिया के इतिहास में पहली बार धरती पर बूढ़े लोग ज्यादा होंगे जिनकी उम्र 65 से पार होगी और बच्चे 5 से कम उम्र के होंगे।

भौगोलिक वितरण भी बदल जायेगा—अफ्रीका और दक्षिण एशिया में युवाओं की संख्या में तेजी से बदलाव आयेगा। जबकि आने वाले दशकों में यूरोप, चीन और जापान में जनसंख्या कम हो जायेगी। जनसंख्या की दृष्टि से भारत चीन को और नाइजीरिया संयुक्त राज्य अमेरिका को मात दे देगा। भारत और चीन दोनों निकट भविष्य में उम्र की दृष्टि से बूढ़े हो जायेंगे।

ये परिवर्तन सांख्यिकीय दृष्टिकोण से दोनों ध्रुवों के लिए समस्या पैदा करेंगे—यानी युवा देशों के लिए भी और बुढ़ाते देशों के लिए भी।

इस समय जवान देशों के पास 'युवा शक्ति है', लगभग तीन अरब युवा—सम्पूर्ण विश्व की जनसंख्या का लगभग आधा—जो 25 के अन्दर है। यह अमृत भी सिद्ध हो सकती है, और जहर भी। दूसरे शब्दों में सम्पत्ति भी या दायित्व भी। एक आँकड़ागत लाभ या विनाश का टाइम बॉम।

किसी देश की युवा आबादी निश्चित रूप से एक उपजाऊ खेत हो सकता है, जिसमें विभिन्न फसलें तैयार की जा सकती हैं, विभिन्न क्षेत्रों का समुचित विकास किया जा सकता है और सकारात्मक कार्य कराये जा सकते हैं, यह इस बात पर निर्भर करता है कि उनकी भावनाओं को और इच्छाओं को उनकी योग्यता, दक्षता और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कार्यकुशलता के अनुसार व्यवसायों से जोड़ा जाये। हर एक को उसकी सन्तुष्टि के अनुसार कार्य मिले।

इसका आशय यह भी है कि सारा ध्यान शिक्षा पर केन्द्रित किया जाये—विशेष रूप से तकनीकी शिक्षा पर, जिससे आज की आवश्यकता के अनुसार उपयोगी और तथ्यपरक परिणाम हासिल किये जा सकें। जो युगीन आवश्यकता को पूरी कर सकें। यदि आगे बढ़कर देखने की कोशिश करें तो हम पायेंगे कि इण्टरनेट क्रान्ति छोटी मशीनों का निर्माण, सभी चीजों के हाइटेक उत्पादन ने पूरी दुनिया में एक नाटकीय परिवर्तन कर दिया है। इससे काम में और काम करने के हमारे ढंग में काफी परिवर्तन आया है। लेकिन सरकारें इस बारे में पर्याप्त और सही तरीकें से नहीं सोच रही हैं। सरकारों को इस बारे में योजनाबद्ध तरीके से विचार करना चाहिए।

वास्तव में बुढ़ाते देशों की समस्याएँ दूसरी होंगी। उनको जहाँ एक ओर उत्पादन में गिरावट का सामना करना पड़ेगा वहीं दूसरी ओर उन्हें बूढ़े लोगों की देखभाल की भी व्यवस्था करनी पड़ेगी। ऐसे लोग जिन्होंने अपना स्वर्णिम समय समाज को दिया है, वे लोग चाहेंगे कि सामाजिक अनुबन्धों के आधार पर इस धूमिल—सन्ध्या में उनकी समुचित देखभाल की जाय। इससे भी तनाव बढ़ेंगे।

युवा देशों में बुढ़ाते देशों की तरफ जाने से इस समस्या का थोड़ा हल खोजा जा सकता है। इससे दोनों पक्षों को लाभ हो सकता है। हालाँकि इससे भी तनाव बढ़ेंगे। यह प्रतिभा पलायन का मामला बन जायेगा। और वो देश जिनकी प्रतिभा बाहर जायेगी वे इसे व्यक्तिगत नुकसान की तरह देखेंगे। इससे उन देशों के लोगों में भी हताशा का माहौल बनेगा जिन देशों में ये प्रतिभाएँ कम करेंगी, क्योंकि उनके नागरिक अपमानित महसूस करेंगे। उनका मानव शक्ति सन्तुलन गड़बड़ायेगा। हाँ, प्रतिभा स्थानान्तरण से लाभ हो सकता है। लेकिन इसे योजनाबद्ध तरीके से करना होगा।

आँकडा़ कोई भी हो लम्बे समय तक मदद नहीं कर सकता है।

दूसरी बात है पर्यावरणीय गिरावट। यह हमारे समय की सबसे नयी और सबसे बड़ी चुनौती है। हम सभी जानते हैं कि हम किसकी बात कर रहे हैं और यह संकट किस प्रकार का है। ज्यादा लोग और ज्यादा सम्पन्नता ने हमें पर्यावरणीय विनाश के कगार पर खड़ा कर दिया है।

हम आशा कर रहे हैं कि जैसे-ज़ैसे सदी आगे बढ़ेगी, हम पानी, खाना और प्रकाश के अकाल का सामना करेंगे। 2030 तक दुनिया के लोग पानी के स्रोत या उनके भण्डारण के आस-पास रहने को विवश होंगे। कुल मिलाकर यह मौसम का निर्दय व्यवहार होगा। मानवीय क्रूरता के कारण प्राकृतिक पर्यावरण—जो हमें जीवित रखता रहा है—हमारे ही खिलाफ हो जायेगा। कोई भूल मत कीजिये, पर्यावरणीय बदलाव का खामियाजा सबसे ज्यादा गरीब और अभावग्रस्त ही भुगतेंगे। उदाहरण के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लिए, कुछ लोगों का अनुमान है कि सहारा रेगिस्तान से सटे अफ्रीका में रहने वाले लोग जो आज मक्का की खेती करते हैं। वे 2030 तक इससे वंचित हो जायेंगे। यह अफ्रीकी लोगों के लिए विनाशकारी सिद्ध होगा।

कुछ वर्ष पूर्व प्रिन्स चार्ल्स ने इसी व्याख्यान माला में व्याख्यान दिया था। उन्होंने भी अपने व्याख्यान में पर्यावरण को ही आधार बनाया था। उन्होंने कहा था, "यदि पृथ्वी पर जीवन असम्भव हो जाता है, तो यह मनुष्यता के हारने जैसा ही होगा"।

यह बुरी खबर है कि हम अनचाहे ही उस परिस्थिति के केन्द्र बिन्दु की तरफ बढ़ रहे हैं। अच्छी खबर यह है कि हम तूफान के हमारी तरफ आने के पूर्व ही सचेत हो गये हैं। पर्यावरणीय परिवर्तन एक भयानक राक्षस के हमारी तरफ बढ़ने जैसा है। जो शुम्भ-निशुम्भ राक्षस की तरह पृथ्वी के टुकड़े करने को आतुर प्रतीत होता है। मैं इसके छोटे-से अंश के बारे में ही चर्चा कर पाऊँगी, और वो यह है कि जिन्होंने ऐसी परिस्थितियाँ पैदा की हैं; उन्हीं को इसका मूल्य चुकाना चाहिए। आखिर यह पहलू इतना महत्त्वपूर्ण क्यों है कि हम इसका मूल्य चुकायें? वो तो तत्काल ही सब कुछ भोग लेना चाहते हैं। क्या यह इतना महत्त्वपूर्ण है? हाँ, यह इतना महत्त्वपूर्ण हो सकता है, क्योंकि आज यदि हम इस नुकसान को कम कर सकें और ऐसी तकनीक विकसित कर सकें जो भविष्य में कम कार्बन फैलाने में सफल हो सके तो यह मनुष्यता के विकास को बनाये रखने में अधिक सक्षम हो सकेगी।

सर्वप्रथम ऊर्जा का विभाजन तथा उसके मूल्य निश्चित तौर पर तय करने होंगे। इससे भी समस्या का कुछ समाधान हो सकता है। हमने ऊर्जा का मनमाने तरीके से इस्तेमाल करने का स्वभाव विकसित कर लिया है। जो हमारे ग्रह को नष्ट कर रहा है। वो भी एक अतिरेक के रूप में, अन्धाधुन्ध तरीके से। दोनों ही तरीके यानी सरकार द्वारा लोगों को अनुदान देकर और दूसरे बाजार दर पर सीधे और कम दरों के आधार पर जैविक ऊर्जा उपलब्ध कराने से वर्ष 2011 में ही 2 खरब डालर के राजस्व का नुकसान हुआ था। यह इतना था कि इटली या रूस की उस वर्ष की राष्ट्रीय आय के बराबर था। दूसरा दुखद पहलू इस समस्या का यह है कि इस अनुदान का लाभ केवल क्रीमी लेयर को ही मिलता है। गरीबों को कभी इसका लाभ नहीं मिलता है। सब्सिडी को कम करके और उचित टैक्स लगाकर लोगों को सम्पन्न भी बनाया जा सकता है और इस ग्रह को भी जीवनदान दिया जा सकता है।

साँख्यिकीय आँकड़े और पर्यावरणीय गिरावट दो प्रमुख कारण हैं जो लम्बे समय से परेशान कर रहे हैं। आय की असमानता तीसरा प्रमुख कारण है। यह लम्बे समय से एक बड़ी ताकत बनकर विश्व को परेशान कर रहा है। हम सभी अच्छी तरह से जानते हैं कि दुनिया के लगभग देशों में आय की असमानता है और यह बढ़ती जा रही है। 10 में से 7 देशों में आय की असमानता है और यह बढ़ती जा रही है। पिछले

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तीन दशकों में यह सीमातीत हो गयी है। 'ऑक्सफौम' के अनुसार यह चौंकाने वाली असमानता है। दुनिया के 85 सबसे अमीर लोग दुनिया की आबादी के आधे के बराबर सम्पत्ति रखते हैं।

संयुक्त राज्य अमेरिका में स्थिति पुनः वैसी ही हो गयी है जैसी कि 'ग्रेट डिप्रेशन' के समय थी। और सबसे अमीर 1% लोगों ने 95% आय को डकार लिया था। जबकि 90% लोग गरीब से गरीबतर होते चले गये। भारत के खरबपतियों की सम्पत्ति पिछले 15 वर्षों में 12 गुना बढ़ गयी है। अमीरों की आमदनी की यह बढ़ोतरी गरीबों की गरीबी और उनकी दुर्दशा का खाका प्रस्तुत करती है। यह इस गरीब देश की दो छवियाँ प्रस्तुत करती है। अर्थात् एक ही तस्वीर की दूसरी प्रति।

इन तथ्यों के परिप्रेक्ष्य में यह कतई आश्चर्यजनक नहीं है कि पूरी पृथ्वी के दृश्य पटल पर असमानता का मंजर नजर आता है। इस परिदृश्य के मद्देनजर ब्रिटिश उद्योग पर चर्चा करते हुए पोप फ्रांसिस ने इस विषय पर एक महत्त्वपूर्ण बात कही कि "ऐसी परिस्थितियों में मानवीय सम्बन्धों के तार-तार होने की सम्भावनाएँ बढ़ जाती हैं।" जो सामाजिक रिश्तों को सामान्य और स्थिर बनाये रखने में मदद करती हैं।

कृपया मुझे अपनी बात दृढ़तापूर्वक कहने की आज्ञा दें। पूर्व में अर्थशास्त्रियों ने असमानता का मूल्यांकन करने में भारी चूक कर दी है। उन्होंने अपना ध्यान आर्थिक उन्नति की ओर ही केन्द्रित किया न कि समान वितरण पर। हम सभी असमानता के प्रभावों से अपरिचित नहीं हैं। आय की असमानता का एक खाका मात्र खींचिये और आप पायेंगे कि आय की असमानता बाढ़ और विकास को कितना प्रभावित करती है और इसका प्रभाव कितना दूरगामी हो सकता है। यह पीछे ढकेलने वाली और सकारात्मकता को नष्ट करने वाली सिद्ध होती है।

समस्या को इंगित करना सरल है पर उसका हल ढूँढ़ना बहुत कठिन है।

अन्तरराष्ट्रीय मुद्राकोष में काम करते हुए, हमने यह अनुभव किया है कि वित्त व्यवस्था के द्वारा असमानता को कुछ कम किया जा सकता है। गोया कि हम अपनी नीतियों का नक्शा ठीक से बनायें और उसके अनुसार नीतियाँ निर्मित करें और उनका कठोरता से पालन करें। टैक्स व्यवस्था को प्रगतिशील बनाया जाना चाहिए। शिक्षा और स्वास्थ्य को उसमें प्रमुखता से सम्मिलित किया जाना चाहिए; और लक्ष्यबद्ध होकर उसको प्रभावशील बनाया जाना चाहिए। यह सही है कि इस तरह की नीतियाँ बनायी जानी कठिन है, क्योंकि वे विजेता और विजित बनाने लगती हैं। वे साहस, दृढ़ता और संकल्प की माँग करती हैं।

जो भी हो, हमें इसे पकड़ना पड़ेगा और हमारे संकल्पों में सम्मिलित करना पड़ेगा और उन नीतियों को बनाना होगा जो प्रगति के रास्तों को प्रशस्त करें। हाँ, हमें इन नीतियों को लागू करने की दृढ़ता दिखानी ही होगी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आर्थिक जीवन में लोगों की ज्यादा-से-ज्यादा भागीदारी से आपाधापी और भ्रष्टाचार में कमी आयेगी। यह आर्थिक एजेंडा प्रमुख और सर्वोपरि हो सकता है।

असमानता का एक और क्षेत्र है, जिसके बारे में यहाँ चर्चा करना चाहूँगी और वह यह है कि जब भी हम विकास की बात करते हैं तब हम महिलाओं को उसमें शामिल नहीं करते हैं। महिलाओं को शामिल नहीं करने का यह मुद्दा मेरे हृदय के सबसे करीब है। यदि हम आर्थिक विकास की बात करते हैं तो हमें लिंग की बात भी करना चाहिए।

हम सभी अच्छी तरह जानते हैं कि लड़कियों और औरतों को उनकी योग्यता तथा प्रतिभा का समुचित लाभ न तो उन्हीं को मिल पाता है न उनके देश को और यह सिर्फ विकासशील देशों में नहीं बल्कि विकसित देशों में भी है। अन्तरराष्ट्रीय श्रमिक संगठन के अनुसार 865 लाख औरतों को कोई भी काम करने या सामाजिक भागीदारी से रोका जा रहा है। उनको जन्म से लेकर पूरी जिन्दगी शर्मिन्दगी झेलनी पड़ती है। उनका जन्मना अच्छा नहीं माना जाता है। फिर उनसे स्कूल में भी भेद-भाव किया जाता है। वे आगे की बेंच पर नहीं बैठ सकतीं। इसके बाद होस्टल के कमरे में भी उनके साथ भेद-भाव होता है। वे बाजार में निगाहों के अपमान पीती हैं और अकारण मानसिक यातना झेलती हैं।

जहाँ तक आर्थिक पक्ष की बात है, तो वह तो, शीशे की तरह साफ है। महिलाओं की भागीदारी नहीं होने के कारण हम हर एक के लिए निम्नस्तर का जीवन जीने का चुनाव करते हैं। यदि महिलाएँ भी पुरुषों की तरह श्रम में भागीदारी करें; तो प्रति व्यक्ति आय कुछ इस प्रकार होगी—27% मध्य एशिया और उत्तरी अफ्रीका में, 23% दक्षिण एशिया में, 17% लातीनी अमेरिका में, 15% पूर्वी एशिया में, 14% यूरोप और मध्य एशिया में। हम इस उपलब्धि को महज 'महज कुछ नहीं' कहकर नहीं टाल सकते।

महिलाओं को वैश्विक आर्थिक बदलाव में पुरुषों के समान भागीदारी करने देने के अधिकार को मैं "भिन्नता को अभिन्नता" में बदलने का साहस करती हूँ। यदि यह किया जाता है तो सम्पूर्ण विश्व में आर्थिक क्रान्ति लायी जा सकती है। हमें महिलाओं को आगे लाना ही होगा। हमारे लिए, हमारी लड़कियों के भविष्य के लिए। हमारे लड़कों के भविष्य के लिए। यह उनकी दुनिया है, आइये हम उनकी दुनिया उन्हें लौटा दें।

आज रात मैंने उन चिह्नित बिन्दुओं पर चर्चा की जो भविष्य में हमारे लिए कठिनाई पैदा करेंगे। और वो हैं विभिन्न देशों के परस्पर निकट आने और छिटक दूर चले जाने के तनाव; और ताकतवर बने रहने और कमजोर होते चले जाने के तनाव। मैंने उन तनावों के बारे में बात की जो एक सदी पहले थे और हम उनके आदी हो गये थे और कुछ जो बिलकुल नये हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तो अब हम इन तनावों से कैसे निपटेंगे? और इनका हल क्या है?

यदि हम पहले बिन्दु से शुरू करें जो हमें पहले से ही मारे डाल रहा है, लेकिन सरल भी है कि क्या हम एक वैश्विक परिवार की तरह एक-दूसरे से व्यवहार कर रहे हैं? या हम दुश्मन की तरह एक-दूसरे के लिए गड्ढा खोद रहे हैं? हम दुश्मन हैं या दोस्त! दूसरे बिन्दु पर आते हैं। तो यह हमें सामान्य खतरों के बारे में सोचने को मजबूर करता है। हम एक-दूसरे से कतराते हैं? हम एक-दूसरे के लिए और बाधाएँ खड़ी करना चाहते हैं? जो वास्तविक न होकर महज एक धुँधलका है।

उपर्युक्त दोनों ही तनावों का एक ही उत्तर है कि हम अन्तरराष्ट्रीय सम्बन्धों का नवीनीकरण करें और संकल्पित होकर सहयोग करते रहने का निश्चय करें। यानी स्वयं के स्वार्थों से ऊपर उठकर बहुउद्देशीय विश्व के निर्माण का संकल्प लें।

जैसा मार्टिन लूथर किंग ने कहा था, "हम परस्पर निर्भरता की डोर से बँध गये हैं। हम एक ही मंगलसूत्र के दाने हैं। यदि एक भी दाना बिखरता है तो प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष सभी दानों पर असर पड़ेगा।"

वास्तव में यह विचार नयी बोतल में पुरानी शराब की तरह है। यानी सदियों से चली आ रही बात, लेकिन जो इस सदी में भी अपना महत्त्व रखती है। आज भी इस यादगार समय में और इस महत्त्वपूर्ण क्षण में हमें 1944 और 1914 के बीच चुनाव करना होगा। हमें आर्थिक विकास चाहिए या विनाश? हमें ब्रेटन वुड्स की तरह अपने सम्पूर्ण अन्तःकरण से काम करना होगा। जो उन्होंने उस दौर में कर दिखाया था। और वह भी इतने कारगर तरीके से।

इसका आशय यह कदापि नहीं है कि हम फिर क, ख, ग से शुरू करें।

इतिहास को धन्यवाद जिसने हमें इतना सिखाया है, कि हमारे पास सहयोग करके जीतने के कई विकल्प और मानदण्ड हैं। एक बार फिर संयुक्त राष्ट्रसंघ के बारे में सोचिए, विश्व बैंक, विश्व व्यापार संगठन और अन्तरराष्ट्रीय मुद्राकोष के बारे में भी। हम इन्हें दृढ़ या कठोर विश्व सरकार कह सकते हैं। हमारे पास कोमल हथियार भी हैं, जैसे एक सिरे पर जी—20 दूसरी तरफ अशासकीय संगठनों का विशाल तन्त्र इन संगठनों के पास अपना कोई औपचारिक जनादेश नहीं है, और न ही कोई कानूनी अधिकार प्राप्त है। लेकिन उनका महत्त्व है। वे तत्परता से कार्य कर सकते हैं। और संवाद के दरवाजे खोल सकते हैं। और जैसा कि विंस्टन चर्चिल की प्रसिद्ध उक्ति है—युद्ध-युद्ध कहने के बजाय बात करो, बात करो कहना ज्यादा अच्छा है।

हमने बहुउद्देशीयवाद की ताकत का अनुभव दोनों रूपों में किया है, उसके सख्त रुख का और नरम रुख का भी। उदाहरण के लिए, नरम रुख की बात करें तो कहीं दूर जाने की जरूरत नहीं है यहीं लन्दन में पाँच वर्ष पूर्व जी—20 के देशों ने सम्मेलन में निर्णय लिया था कि वे पुनः बर्बादी की राह नहीं चुनेंगे और 'ग्रेट डिप्रेशन' को पुनः आमन्त्रित नहीं करेंगे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आइये, मैं आपको अन्तराष्ट्रीय मुद्राकोष द्वारा किये गये कार्यों पर विचार करने को आमन्त्रित करती हूँ। जो इस संस्था ने इन वर्षों में किये और सम्पूर्ण विश्व को आर्थिक रूप से समृद्ध बनाने में मदद की। जैसे यूरोप को युद्धोपरान्त मुद्रास्फिति से उबरने में मदद, अफ्रीका के नव-स्वतन्त्र देशों की मदद, एशिया के उन देशों की मदद जो अभी-अभी स्वतन्त्र हुए थे और आर्थिक तंगी से गुजर रहे थे। पूर्वोत्तरीय देश जो लौह दीवार के जंग खाने के बाद धराशायी हो गया। लातिनी अमेरिका और एशिया के वे देश जो आर्थिक रूप से पंगु हो गये थे। वर्तमान आर्थिक मन्दी के दौर में हमने 154 नये संकल्प लिए और उन्हें पूरा करने का प्रण किया। और न केवल संकल्प वरन् उन्हें कार्य रूप में परिणत करने के लिए +182 खरब डालर उन देशों को दिये जो आर्थिक मन्दी के दौर से गुजर रहे थे। यही नहीं उन देशों में से 90% को—जो हमारे सदस्य राष्ट्र भी हैं—हमने तकनीकी मदद भी पहुँचायी। हमारे सदस्य राष्ट्रों की संख्या 188 है।

बहुउद्देशीयवाद की विशेषता यह है कि यह पुरानी नींव पर भी नवनिर्माण कर सकता है। सहयोग के वर्तमान औजारों ने पिछले कई दशकों में यह सिद्ध कर दिया है। और उन्हें ही संरक्षित और संवर्धित किया जाना चाहिए। इसका आशय यह है कि अन्तरराष्ट्रीय मुद्राकोष जैसी संस्थाओं को समस्त देशों द्वारा सम्पूर्ण सहयोग दिया जाना चाहिए। उसे विभिन्न संसाधनों से लैस किया जाना चाहिए। और वर्तमान वैश्विक आर्थिक परिदृश्य के मद्देनजर इसे (आइ.एम.एफ. को) सम्पूर्ण देशों का प्रतिनिधि बनाया जाना चाहिए। हम उस पर काम भी कर रहे हैं।

इससे भी आगे बढ़कर मैं तो यहाँ तक कहूँगी कि बहुउद्देशीयवाद को वर्तमान वैश्विक परिदृश्य के हर एक पहलू पर एकाग्र करने हेतु अधिकृत किया जाना चाहिए, ताकि वर्तमान आर्थिक परिदृश्य में शक्ति सन्तुलन तथा संसाधनों को—जो जटिल ताने-बाने में गुँथ गये हैं—सन्तुलित और विनयमित किया जा सके। इसको इतना शक्ति-सम्पन्न बनाया जाना चाहिए कि यह अनसुनी आवाजों को भी सुन सके।

बहुउद्देशीयवाद को एक निष्पक्ष न्यायाधीश की तरह काम करना होगा। जो कठोर और कोमल आवाजों को समान धैर्य के साथ सुन सके। और गलाकाट प्रतियोगिता को परस्पर सहयोगी और सहयोगात्मक बनाकर अपनी वैश्विक भूमिका को अधिक सार्थक और सकारात्मक बना सके। आज इसकी और अधिक आवश्यकता है कि हम अपने संकीर्ण दृष्टिकोण से ऊपर उठकर नये क्षितिज की ओर देखें और एक नये विश्व का निर्माण करें। ताकि आपसी शत्रुता और वैमनस्य को कम-से-कम किया जा सके। जो वर्तमान परिदृश्य में चारों ओर दिखाई दे रहा है। यह हमारा लालच ही है, जो मक्खियों की तरह हमारे चारों तरफ भिनभिना रहा है और शत्रु भावना को पोषित कर रहा है। हमें इस पर काबू पाना होगा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मूलतः आज आवश्यकता इस बात की है हम वर्तमान वैश्विक आर्थिक परिदृश्य को एक वैश्विक सामाजिक सन्दर्भ में देखें—हम लोग जो इस पृथ्वी के बाशिन्दे हैं और जो इसका आर्थिक विकास देखना चाहते हैं—हमें इसी तरह ही सोचना होगा। आज आवश्यकता इस बात की है कि हम एक वैश्विक सामाजिक बाजार का निर्माण करें। एक कम्युनिटी हाल का, जो यह पहले था।

इसका व्यावहारिक रूप कैसा हो? इसका सीधा मतलब है सभी चीजें एक जगह और सभी के लिए। साथ ही इनको एक जगह इकट्ठा करने वालों की जिम्मेदारी होगी कि वे इन सभी चीजों की सुरक्षा की जिम्मेदारी भी एक साथ उठायें। जो इस अणु क्षण में जुड़ती दुनिया के लिए जरूरी भी है और आवश्यक भी।

इसकी शुरुआत कैसे हो? तो इसे इस अर्थ में लिया जाना चाहिए कि हम हर तरह का खुलापन अपने लायें। व्यापार और निवेश के लिए परस्पर निर्भरता बनाये रखें।

इसके लिए यह भी आवश्यक होगा कि हम अन्तरराष्ट्रीय मुद्रा प्रचलन में भी पारस्परिक सहयोग पारस्परिक व्यवस्था बनायें जो पुराने 'ब्रेटन सिस्टम' से चली आ रही है। पारस्परिक जिम्मेदारी सभी मुद्रा कोषीय संस्थाओं को एक धागे पिरो देगी और सहयोग करते रहने को मजबूर करेगी। इसका असर लाभकारी योजनाएँ बनाने और दूसरी जनकल्याणकारी योजनाओं के क्रियान्वयन में सकारात्मक भूमिका निभाने में मदद करेगा। इससे दूसरे लोग भी लाभान्वित होंगे।

यानी, हमें 21वीं सदी के लिए एक वित्तीय प्रणाली की आवश्यकता होगी। इससे मेरा आशय क्या है?

इससे मेरा आशय यह है कि एक ऐसी वित्तीय प्रणाली जो केवल वित्तीय उत्पादकता को अपने लिए ही पोषित नहीं करे वरन् सर्वसुखाय, सर्वहिताय का क्षितिज निर्माण करे। जिसमें स्वयं का ही लाभ सोचने की योजना ही न हो और फलक पर एक स्थाई और सुदृढ़ ढाँचा खड़ा करे। जो सार्वजनिन हित में काम कर सके। और हरेक की पहुँच में हो। मेरा आशय वित्तीय प्रबन्धन की उन बातों से है जो असीमित को सीमित करे और अभाव को भरपूरता प्रदान करे। उसे दिया जाये जिसे जरूरत हो। एक वित्तीय ढाँचे से मेरा अर्थ यह है कि उद्योग भी अपनी सामाजिक जिम्मेदारी पूरी सहभागिता के साथ निभाये। जिससे एक सार्वभौम विकास और भागीदारी की भावना को जन्म दिया जा सके। जहाँ संस्कृति को भी सम्पत्ति की तरह गम्भीरता से लिया जाये। और आर्थिक नियमों की जगह वास्तविक आर्थिक विकास को महत्त्व दिया जाये।

इसकी अनुगूँज यहाँ लन्दन में सुनी जा सकती है। वैश्विक वित्तीय केन्द्र के साथ ही इसे एक वैश्विक जिम्मेदारी का केन्द्र बनाया जाना चाहिए। और सम्पूर्ण

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सम्मान और गौरवानुभूति के साथ एक कनाडाई नागरिक को 'बैंक आफ इंग्लैंड' का महाप्रबन्धक बनाया जाना चाहिए।

21वीं सदी में इस बहुउद्देशीयवाद को हमें इस तरह नियन्त्रित करना है कि हम असमानता और पर्यावरण पर अपनी पकड़ मजबूत बना सकें। इन मुद्दों पर कोई भी देश अकेले नहीं खड़ा हो सकता। पर्यावरण समस्या से निपटने के लिए कार्बन निर्सजित करने वाले देशों को सभी लोगों को लेकर काम करना होगा। जिनमें सरकारें, शहर, निगम, सामाजिक संगठन और आम नागरिक को भी समर्पित होकर अपना दायित्व निभाना होगा। सभी देशों को असमानता से निपटने के लिए ईमानदारी से अपनी भूमिका निभानी होगी। उदाहरण के लिए, यदि सभी देश प्रतिस्पर्धा के लिए अपनी कर प्रणाली को कारपोरेट क्षेत्र के हित के लिए नीची बनाये रखते हैं। तो इससे असमानता की स्थिति बद से बदतर हो जायेगी।

कुल मिलाकर, मैं सोचती हूँ 21वीं सदी का सहभागिता का सपना इतनी आसानी से साकार रूप नहीं लेने वाला। और समय के साथ यह और कठिन होता चला जायेगा। यदि हमें इन दुःख स्वप्नों से छुटकारा भी मिल जाये और हम इन जरूरतों पर काबू पा भी लें, तब दूसरी कई समस्याएँ हमारे सुखमय सपनों पर मँडराने लगेंगी। और नये विष वृक्ष बोये जाने लगेंगे।

यह भी तय है कि आने वाले दशकों में कई नयी समस्याएँ हमारे समय में आयेंगी। तो क्या हमारे पास कोई अन्य विकल्प हैं? क्योंकि बहुउद्देशीयवाद समझौतों की बैशाखी पर टिका नहीं रह सकता।

इस बिन्दु पर मुझे प्रारम्भ से समाप्त करने की इजाजत दीजिये यानी कीन्स और उनकी प्रसिद्ध सन्धि पर जो हमारा भी भविष्य है।

बहुउद्देशीयवाद के उन महान क्षणों में उन्होंने कहा था—"यदि हम इस सुहाने सपने को बनाये न रख सके, जिसमें हम और हमारे जैसे और भी कई लोग लम्बे समय तक रह चुके हैं तो हम समाप्त हो जायेंगे। भाईचारा केवल एक मुहावरा बनकर रह जायेगा।"

इतिहास ने यह सिद्ध किया है कि कीन्स सही थे। हमारे पूर्वजों ने उस राक्षस को जीत लिया। और हम एक विजयी दुनिया में जी चुके हैं। इस अर्थ में हमारी पीढ़ी भाग्यशाली रही है। हमने दुनिया के सारे सुख भोग लिए।

हम जहाँ भी हैं, हमारी पिछली पीढ़ी के अवदान के कारण हैं। हमारे सुनहरे भविष्य की नींव हमसे पहले की पीढ़ी ने रखी है।

अब यह हमारी बारी है, कि हम नयी पीढ़ी के लिए आगे जाने का सुदृढ़ मार्ग प्रशस्त करें। क्या हम इस चुनौती का सामना करने को तैयार हैं? हमारा भविष्य इसके उत्तर पर निर्भर करेगा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भारतीय आस्था का प्रतीक : मेरु-सुमेरु एवं सुमेर सभ्यता से उसके वासियों का सम्बन्ध

प्रो. राजीव रंजन उपाध्याय*

ईरान के अजरवाईजन प्रान्त की राजधानी तबरीज और उसी विश्वविद्यालय में दीर्घकालीन अध्यापन और शोध निर्देशन कई अर्थों में फलदायी रहा। उसी प्रवासकाल में, ज्ञात हुआ विश्व का सर्वप्रथम कागजी नोट (चाउ) 12 अप्रैल, 1294 ई. में हुलाकू खान द्वारा तबरीज में जारी किया गया था।[1] विजयी हलाकू ने पहले तबरीज के समीप के नगर मरागे को अपनी राजधानी बनाया, और वहीं की सरिता के तट के किनारे हलाकू खान के बलशाली घोड़े की प्रतिमा उसकी विजयों की याद दिलाती है।[2] कालान्तर में उसके लड़के ने तबरीज को राजधानी बनाया।

ईरान-तबरीज प्रवास की अवधि में, ईरान की संस्कृति, उसकी नवीन और प्राचीन भाषा, जनमानस में रची-बसी कथाओं-मिथकों को, फारसी भाषा से परिचिति के कारण, जानने का अवसर मिला। सर्वविदित तथ्य है, कि प्राचीन ईरानी भाषा और संस्कृत सगी बहनों की भाँति एक ही भाषा से उत्पन्न हुई हैं।[3]

भारतीय आर्यग्रन्थों यथा ऋग्वेदादि एवं प्राचीन ईरानी धर्म ग्रन्थ आवेस्ता के अनेक मन्त्रों की साम्यता, इसी तथ्य का उद्घोष करती है।[4-5] यदि आपको ईरान, कजाकिस्तान, उजबेकिस्तान, तुर्कमेनिस्तान आदि देशों में जाने का अवसर प्राप्त हो तो अजनबीपन की कोई अनुभूति नहीं होती—लोग जन सामान्य अपरिचित नहीं लगेंगे। अपने देश की आतिथ्य-सत्कार की भावना के अनुरूप ही इन देशों में अभ्यागत के स्वागत की भावना विद्यमान है।

कोई आश्चर्य नहीं कि आपको, इन देशों की प्राचीन कथाओं को पढ़ने-सुनने के मध्य सुवर्ण गिरि, कोहे-जर की चर्चा सुनने को मिल जाये। यह वही सुवर्ण

*पूर्व प्रोफेसर, कैंसर शोध, तबरीज विश्वविद्यालय, तबरीज, ईरान; 'विज्ञान', परिसर कोठी काके बाबू, देवकाली मार्ग, फैजावाद—224001, सचल भाष : 09838382420

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गिरि-सोने का पहाड़ है, जिसे मत्स्य पुराण में **"सौवर्णो मेरुश्चोल्बमयः स्मृतः"** कह कर स्मृत किया गया है।[6]

मेरु गिरि भारत के जनमानस में इस प्रकार बसा है कि जपमाल का मुख्य दाना मेरु कहा गया है बृक ग्रन्थि का नाम भी मेरु है, मेरु-ज्योति, ध्रुव क्षेत्र में इस गिरिराज की ध्रुव क्षेत्र की समीपता के कारण, दिखाई पड़ने वाले प्रकाश पुंज (अरोरा) का एक नाम है, चरखे का एक नाम मेरु यन्त्र है, तथा बुद्ध भी मेरु कल्प है। ग्यारहवें मनु का एक नाम ब्रह्म सावर्णि इसी से सम्बन्धित है और इसे गरिमा प्रदान की है मानव-मेरु-दण्ड ने।

एक सहज प्रश्न जो मानस को आन्दोलित करता है कि क्या कहीं वास्तव में मेरु-सुमेरु पर्वत है? अथवा यह मात्र भारतीय मानस की कल्पना है।

उच-सुमेरु की यात्रा

सोवियत लैण्ड नेहरू पुरस्कार विजेता श्री वीर राजेन्द्र ऋषि जो मास्को के भारतीय दूतावास में, 1952 में रूसी भाषा के अनुवादक थे तथा जिन्होंने रूसी राष्ट्रपति निकिता खुश्चेव, बुल्गानिन, कोसीजिन आदि के मध्य अनुवादक का कार्य किया था, एवं अपनी चर्चित पुस्तक 'इण्डिया एण्ड रशिया-लिंग्यूस्टिक एण्ड कल्चरल एफीनिटी' के कारण जाने जाते हैं,[7] ने उच-सुमेर नामक गिरिराज के दर्शन हेतु 1991 में यात्रा की थी।[8]

उन्हीं के शब्दों में "एयर फ्लोट (रूसी एयर लाइन) हेलीकाप्टर से हम अक-केम क्षेत्र जो दो हजार मीटर की ऊँचाई पर स्थित है के समीप बेलूखा एयर पोर्ट पर पहुँचे। वहीं से हमें गिरि बेलूखा के दर्शन हुए। श्वेत हिम मण्डित वह गिरि अतीव आकर्षक था। यह साईबेरिया के अल्टाई क्षेत्र का सबसे ऊँचा (4506 मीटर) पहाड़ है। अल्टाई भाषाभाषी इसे आज भी उच-सुमेर कहते हैं। रूसीकरण के कारण बेलीयी (Balyi) का अर्थ श्वेत होता है। यह पर्वत सदैव हिम मण्डित रहता है।"

"मंगोलियन भाषा में अल्टाई-आल्टिन का अर्थ सुर्वण होता है और इसके समीप की यूईमान घाटी (Uiman) को जोलोटाया-डोलीना (Zolotaya Dolina) सुवर्ण घाटी कहा जाता है। तथ्यतः इस घाटी में स्वर्ण, रजत-मणियाँ आज भी प्रचुर मात्रा में पायी जाती हैं।"

"मोनियर-विलियम के संस्कृत-अंग्रेजी कोष में मेरु एक विशिष्ट गिरि है जो जम्बू द्वीप के मध्य में स्थित है और नक्षत्र मण्डल के ग्रहादि इसकी परिक्रमा करते हैं... यह स्वर्ण मणि आदि से पूरित क्षेत्र है तथा इसी गिरि पर ब्रह्मा वास करते हैं।"[8]

इस क्षेत्र के प्राकृतिक सौन्दर्य और अध्यात्म पूरित वातावरण ने विख्यात महान रूसी चित्रकार निकोलस रोरिक को सर्वप्रथम आकृष्ट किया था।[8] वे कालान्तर में भारत के हिमाचल प्रदेश में आकर बस गये थे, और उस युग की सिनेतारिका देविका रानी इनकी धर्मपत्नी थीं। आज भी यहाँ के वासी अल्टाई जन, बौद्ध धर्म, ईसाई और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस्लाम की दीक्षित होने के उपरान्त भी वैदिक अध्यात्म प्रकृति उपासना करते हैं, अपने आगामी कार्यों की प्रेरणा प्रकृति से लेते हैं।[9]

इस क्षेत्र में प्राकृतिक तत्त्वों– अग्नि, वायु, पृथ्वी और जल के साथ प्राकृतिक वातावरण का तादात्म्य अद्भुत है। इस प्राचीन क्षेत्र के वासियों का प्राकृतिक धर्म-अग्नि को अग्नि कुण्डों में आहुति और बौद्ध मन्दिरों के घण्टा नाद कजाकिस्तान के स्टेपे क्षेत्र को प्रतिध्वनित करता है। इस क्षेत्र की झीलें, वनादि सम्पदा, जल प्रपात आदि इसे शान्त आध्यात्मिक क्षेत्र बना देते हैं। यह UNESCO द्वारा मान्य वैश्विक धरोहर क्षेत्र है।[10]

गिरिराज उच-सुमेरु-वेलूखा दो शिखर युक्त पर्वत है। यह गिरि, जिस बिन्दु पर रूस, कजाकिस्तान की सीमायें मंगोलिया और चीन की सीमाओं से मिलती हैं, उसी स्थल पर स्थित है। तथ्यतः भू-मानचित्र में देखने पर यह यूरेशिया के ठीक मध्य में स्थित दिखता है,[10] जम्बू-द्वीप के मध्य में दिखता है तथा इससे एटलाण्टिक, आर्कटिक, प्रशान्त और हिन्द महासागर बराबर की दूरी पर स्थित हैं।[10] बेलूखा पर्वत का पूर्वी शिखर 4506 मीटर (14, 984 फीट) तथा पश्चिमी शिखर 4440 मीटर (14,567 फीट) ऊँचा है। इस पर्वतीय क्षेत्र में अनेक ग्लेशियर हैं, हिमनद हैं और उन्हीं में से विख्यात बेलूखा हिमनद भी इन्हीं शिखरों के मध्य स्थित है। यह हिमनद इरटिश (Irtysh) और ओब (Ob) नामक नदियों का उद्गम स्थल है। सरिता कातुन (Katun) का उद्गम बेलूखा पर्वत स्थित ग्लेशियर गेबलेर है।[10]

साईबेरिया के दक्षिण में स्थित अल्टाई-पर्वत माला क्षेत्र उच-सुमेर अपने आध्यात्मिक महत्त्व एवं पुरातात्त्विक प्राप्ति के लिए जाना जाता है। यह अवशेष प्राचीन हैं तथा यह उजाला नामक स्थल से प्राप्त हुए हैं। अनेक पीलियोलिथिक अवशेष अल्टाई क्षेत्र के गोरनो आल्टिस्क से प्राप्त हुए हैं। इनमें पेट्रोग्राफ, शिलाचित्र, अनेक शवाधान आदि भी पुरातात्त्विक दृष्टि से महत्त्वपूर्ण हैं।[10]

अल्टाई जनों का उद्भव ईनीसिये (Yenisey) सरिता का क्षेत्र रहा है और इनके आधुनिक निकटतम सम्बन्धी मध्य एशिया के किरगिज (Kyrgyz) जन हैं। अल्टाई जनों की भाषा तुर्की-भाषा परिवार की है, जो क्षेत्रीय भाषा समूहों से भी सम्बद्ध है।

पजाइरिक (Pazyryk) क्षेत्र के पाँच विशालकाय टीलों का उत्खनन कार्य एकादमीशियन रुडेनको (Rudenko) द्वारा 1929 और पुनः 1949 में किया गया था। इस क्षेत्र के वासी शकगण 8वीं से तीसरी शती ईसा पूर्व में यहाँ से लेकर कैस्पियन क्षेत्र तक व्याप्त थे। सम्भवतः उनका विनाश हूँण जाति के पूर्वजों द्वारा कर दिया गया था।

उत्खनन से शक सैनिक—उसकी पत्नी जो सम्भवतः राजा-रानी थे, की लकड़ी के ताबूत में सुरक्षित ममियाँ, जिनके शरीर पर विश्व के प्रथम ज्ञात गुदने (Tatto) बने थे, सैनिक (राजा) का रंग साँवला तथा उसकी स्त्री गौरवर्णा थी, प्राप्त हुई थीं। सैनिक की छाती और कन्धों पर गुदने में एक गिद्ध और बाज जैसी आकृति के साथ बिल्ली

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की पूँछ से बनी थी जो शकों की मान्यताओं के अनुसार इनकी रक्षा पिशाचों से करते थे, इन्हीं के साथ घोड़ों और सामान्य सैनिक-दासों के शव, सुवर्ण, रजत आभूषण, कांस्य पात्र, आयुध कपड़े तथा विशाल लकड़ी के रथ प्राप्त हुए थे। इन्हीं वस्तुओं के साथ विश्व का प्रथम ज्ञात ऊनी कालीन-नमदा जिस पर समृद्धि की देवी का रंगीन चित्र बना था, आदि भी प्राप्त हुए थे। यह ई. पू. 5वीं शताब्दी के थे। रूस के सेंट पीटरवर्ग के राष्ट्रीय संग्रहालय में यह सभी वस्तुएँ दर्शकों के लिए सुलभ हैं।[11]

संक्षेप में इस प्रकार, अल्टाई क्षेत्र पुराकाल से ऐतिहासिक महत्त्व का क्षेत्र है तथा इस क्षेत्र के वासियों का मध्य एशिया के अनेक क्षेत्रों से घनिष्ठ सम्बन्ध रहा है। इस तथ्य के संकेत प्रचुरता से हमारे प्राचीन वाङ्मय में उपलब्ध हैं।

मेरु-उच-सुमेरय का पवित्र आध्यात्मिक क्षेत्र अनादि काल से मानव की प्रेरणा का क्षेत्र माना जाता है, इसी कारण इसका उल्लेख तैत्तरीय आरण्यक में महामेरु के रूप में किया गया है।[12]

श्रीमद्वाल्मीकि रामायण में आदिम आर्य सुग्रीव शतबलि नामक बानर राज को सीता अन्वेषण हेतु उत्तर दिशा में जाने का निर्देश देते हुए कहते हैं, "उत्तर कुरु स्थित शैलोदा नदी को पार करने के उपरान्त उत्तर दिग्वर्ती समुद्र मिलेगा। उसके मध्य भाग में सुवर्ण मय बहुत ऊँचा सोमगिरि है। उस क्षेत्र में सूर्य के दर्शन नहीं होते, वहाँ प्रकाश, सोम गिरि की आभा से उत्पन्न होता है। तुम लोग उत्तर कुरु मार्ग से सोमगिरि तक जाकर उससे आगे मत बढ़ना। उससे आगे तुम्हारी भाँति अन्य प्राणियों की गति नहीं हो सकती।"[13]

समतिक्रम्य तं देशमत्तुरः पयसां निधिः।
तत्र सोमगिरिर्निम मध्ये हेमयो महान् ॥53॥
* * *

एतावद वानरैः शक्यं गन्तुवानर पुंगवाः।
अभास्करम मर्याद न जानीमस्तः परम ॥59॥

स्पष्ट है कि यह वर्णन विशेष रूप से ध्रुवीय अल्टाई-क्षेत्र-साईबेरिया के सूर्य प्रकाश विहीनक्षेत्र का है, जो गिरिराज बेलूखा-उच-सुमेर का क्षेत्र है, और जिस पर सोम-गिरि का वर्णन महर्षि वाल्मीकि ने यहाँ किया है वह उच-सुमेरु की भाँति ही सुवर्णमय है।

बहुत सम्भव है कि 24वें परिवर्त के व्यास महर्षि ऋक्ष—वाल्मीकि के समय में मेरु का एक नाम सोमगिरि भी रहा हो, जो कालान्तर में प्रचलित न हो सका हो।[14]

महाभारत वर्णित अर्जुन की उदीच्य दिशा की दिग्विजय में उन्होंने किम्पुरुष वर्ष हाटक के नृपों को पराजित कर ऋषि कुल्याओं का दर्शन किया।[15]

तांस्तु सान्त्वने निंजित्य मानसं सर उत्तमम।
ऋषि कुल्यास्तथा सर्व ददर्श कुरुनन्दनः ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कुल्या को परिभाषित करते हुए शब्द कल्पद्रुम इन्हें "क्षुद्रां कृत्रिमा नदी' कहता है। इस प्रकार की कुल्यायें नहरें उज्बेकिस्तान के रक्त मरुभूमि क्षेत्र (किजिलकुम) में पुराकालीन कंग जनों की आजीविका का साधन थीं। यह नहरें सरिता वक्षु-आमूदरिया से निकाली गयी थीं। यह क्षेत्र कुल्यामय है। रूसी पुरातत्त्वविदों ने इस केल्तमीनार संस्कृति को 4-3 सहस्राब्दी ई. पूर्व माना है।[11] बहुत सम्भव है अर्जुन ने इस क्षेत्र का दर्शन किया हो तथा इस ख्वारेज्म क्षेत्र के वासियों से सम्पर्क किया हो। इन कुल्याओं को मरुभूमि में अतीव परिश्रम से निर्माण की गयीं, कुल्यायों को, तत्कालीन शब्दावली में ऋषि कुल्या कहा गया हो, क्योंकि प्राचीन रूसी भाषा में रूसिई (ऋसीयी) शब्द पिंगल श्वेत केशधारी व्यक्ति का सूचक है, इस प्रकार के लम्बे बालोंवाले ऋषियों-ऋसीकियों द्वारा निर्मित कुल्यायों को भी ऋषि कुल्या के नाम से सम्बोधित किया जा सकता है।

वे सेना सहित हेमकूट के पार कर हरिवर्ष में प्रवेश किये। निषध पर्वत को पार का अर्जुन इलावर्ष क्षेत्र में जा पहुँचे जो जम्बू द्वीप का मध्यवर्ती भू-भाग है। महाभारत के दाक्षिणात्य पाठ के शब्दों में–

अथ राजन्नयति क्रम्य निषधं शैलमायतम्।
विवेश मध्यमं वर्षं पार्थो दिव्यमिलावृतम ॥

उस क्षेत्र के नृपों से कर ले वहाँ से और उत्तर दिशा की ओर अग्रसर होने पर अर्जुन ने महामेरु के दर्शन किये–

सन्ददर्श महामेरुं शिखरणा प्रभुं महत।
तं काञ्चनमयं दिव्यं चतुवर्ण दुरासदम् ॥

पुनः केतुमाल वर्ष, भद्राश्ववर्ष को विजित करते हुए वे उत्तर कुरुवर्ष क्षेत्र में पहुँचे।[15] इस प्रकार अर्जुन ने उत्तर दिशा की विजय कर उत्तर कुरु के वासियों से क्षौम (रेशमी वस्त्र), अजिन (मृग-चर्म) आदि की भेंट लेते हुए स्वर्ग, मणि माणिक्य, अश्वों आदि सहित लौट आये।[15]

महाभारत के दाक्षिणात्य पाठ में मेरु को महामेरु कहकर सम्बोधित किया है। इलावृत्त के मध्य में स्थित गिरिराज (**मेरोरिला वृन्त वर्ष सर्वतः परिमण्डलम**)[15] भारत के उत्तर में स्थित है।

सम्भव है कि यह इलावृत्त आधुनिक इली नदी के उपत्यका तक व्यापक रहा होगा। यह क्षेत्र मानव की मूल मातृभूमि है तथा उसके आध्यात्मिक उद्भव का क्षेत्र भी है।[9]

डॉ. वासुदेवशरण अग्रवाल ने अपने विख्यात ग्रन्थ "पाणिनि कालीन भारतवर्ष" में लिखा है कि पाणिनीय धन्व का अर्थ मरुभूमियों है। धन्व शब्दो मरु देश वचनः– काशिका (4/2/21) पतंजलि ने धन्वयोपधात वुञ. (4/2/121) के प्रसंग में 'पारे धन्व' एवं 'अष्टक धन्व' नामक दो मरुभूमियों का नाम दिया है। यह भारत में हैं तथा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अष्टक धन्व अटक का पुराना नाम है। इसी प्रकार मरुस्थली के उस पार के देश को 'पारे धन्वक' कहते थे। जो प्राचीन सौवीर-आधुनिक सिन्ध का सम्बोधन है। काशिका वर्णित ऐरावत धन्व को प्रो. अग्रवाल ने गोबी की मरुभूमि माना है।[16]

महाभारत में लिखा है कि पाण्डवों ने हिमवन्त को पारकर बालुकार्णव-बालू के समुद्र के दर्शन किये (महाप्रस्थानिक पर्व 2/1,2) और उसके समीप महापर्वत मेरु को देखा। भीष्म पर्व के अनुसार यहीं ऐरावत वर्ष था (भीष्म पर्व, 6/7) यह भारतवर्ष सीमा के पार एशिया का गोबी रेगिस्तान जान पड़ता है।[16]

मेरु के उत्तर में ही उत्तर कुरु था **(मेरो : पार्श्वे तथोत्तरे उत्तर कुरवो राजन पुण्याः सिद्धनिषेवितः ॥ भीष्म पर्व 7/2)**।" मारकण्डेय पुराण मेरु को इलावृत्त के मध्य में स्थित मानता है।[17] इस पर्वत के दक्षिणी और उत्तरी भाग नीचे हैं तथा इसके उत्तर में नील, श्वेत और शृंगवान पर्वत हैं। दक्षिण में निषेध, हेम कूट (कैलास) और हिमवान वर्ष (हिमालय) पर्वत शृंखलाएँ हैं। वायु एवं मत्स्य पुराण के अनुसार—

सेतुमेरुः परिवृतो भुवर्नेम् भावने।
यस्य में चतुरो देशोः नानापर्श्वेषु संस्थिताः ॥
भद्राश्वं भारतंचैव केतुमालश्च च पश्चिमे।
उत्तराश्चैव कुरुवः कृतपुण्य प्रतिश्रयः ॥

विद्वानों ने मेरु के चारों ओर स्थित क्षेत्रों में उत्तर कुरु वर्ष को आधुनिक साईबेरिया—रूस का भूभाग, भद्राश्ववर्ष को मंगोलिया और चीन का भूभाग कश्यप सागरीय क्षेत्र-कैस्पेय सागरीय क्षेत्र का विस्तृत भूभाग केतुमाल वर्ष एवं भारतवर्ष तो आधुनिक भारतवर्ष(स-पाकिस्तान) माना जाता है।[18]

प्रो. जयचन्द्र विद्यालंकार के अनुसार उत्तर कुरु की स्थिति शकों (सैवांग) और हूणों (हियंगनु) के राज्यों की सीमा पर ध्यानायांग पर्वत के दक्षिण तथा ईसीकुल झील के पश्चिम इली नदी की घाटी में थी।[19]

बृहत संहिता में उत्तर कुरु का उल्लेख कैलास, हिमवान, वसुमान, क्रौंच तथा मेरु गिरि के साथ किया गया है।[18]

सूर्य सिद्धान्त के अनुसार— **"सुमेरु पृथ्वी मध्ये श्रुते दृष्टेनतु"** सुमेरु पृथ्वी के मध्य में स्थित है। इसके पूर्व में मन्दराचल, पश्चिम में सुपासवर्ण गिरि, उत्तर में कुमुद गिरि और दक्षिण में कैलास है।[20]

बौद्ध धर्म ग्रन्थों में भी मेरु, सुमेरु और सिनेरु (पाली भाषा में) की चर्चा है तथा यह विश्व-ब्रह्माण्ड के मध्य में स्थित माना गया है। इस गिरिवर की पवित्रता और इसके पूज्य होने की चर्चा जैन और बौद्ध ग्रन्थों में विद्यमान है।[21]

प्राचीन ईरानियों-पारसियों के धर्म ग्रन्थ जिन्द-आवेस्ता में हारा बेरेजाइती (Hara Berezaiti) की चर्चा है तथा यह भी कहा गया है कि इस पर्वत के चतुर्दिक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नक्षत्र मण्डल गतिमान रहते हैं। यह ध्रुवीय पर्वत है तथा इसी पर्वत के पीछे रात्रि में सूर्य छिप जाता है।[22]

इस प्रकार यह दूसरे शब्दों में मेरु का ही वर्णन है।

उच सुमेर से सुमेर-सभ्यता तक अल्टाई क्षेत्र में, प्रथम हिमयुग के पूर्व मानव का वास था। इन अल्टाई जनों की भाषा-ओरिओट जन समुदाय (Oriot) की भाषा तुर्की, मंगोलियन, तुंगुस, मनचूरियन, जापानी, कोरियन तथा सम्बन्धित भाषाओं की आदि जननी है। यह भारोपीय भाषा परिवार से भी सम्बद्ध है।

प्रो. बी.बी. लाल बौधायान श्रौत सूत्र में निम्न सन्दर्भ

प्रांआयु प्रवव्राज तस्यैते कुरुपांचालास्काशी विदहे इत्येनदायवम।
प्रत्यां अमावसु तस्यैते गान्धारस्य पर्शवो अरट्ट इत्येतद आमावसम्॥
बौ. श्रौ. सू. 18/44

को ग्रहण करते हुए अरट्ट शब्द के विषय में लिखते हैं कि "इस स्थान का उल्लेख (अरट्ट) न केवल उपर्युक्त वैदिक ग्रन्थ में किया गया है वरन् हजारों किलोमीटर दूर इराक के एक महाकाव्य में किया गया है।" इसी अरट्ट शब्द की चर्चा करते हुए प्रो. ठाकुर प्रसाद वर्मा लिखते हैं "यह माउण्ट अरारात-सुमेरी पुरा कथाओं के विवरण में सटीक नहीं बैठता। वहाँ न तो रत्नों की खानें हैं और न ही कोई प्राचीन सभ्यता के अवशेष, ऐसे में उचित होगा कि हम सुमेरी पुरा लोक कथा की संक्षिप्त चर्चा कर लें।[23]

वे पुनः लिखते हैं "इस प्रकार इन चारों पुराकथाओं को जोड़कर देखा जाये तो अरत्त को एक धनी और सैन्य शक्तिशाली देश बताया गया है। जिसके प्राचीन काल से ही सुमेर से सम्बन्ध थे। यह एक-दूसरे से काफी दूरी पर थे, फिर भी व्यापारिक सम्बन्ध बनाये रखते थे। अरत्त देश पर्वतमाला द्वारा सुरक्षित था। वहाँ पर ईमारती सामान, कीमती रत्न-धातुएँ तथा कारीगर बहुतायत से उपलब्ध थे।[23]

यहाँ पर उच-सुमेर के समीपस्थ अल्टाई सुवर्ण घाटी को मंगोलियन भाषा में जोलोटया दोलीना कहा जाता है और —यूईमान घाटी से सुवर्ण, रजत और मणियाँ आज भी पायी जाती है। यह तथ्य उच-सुमेरु घाटी को अरट्ट होने का संकेत ही नहीं देता, वरन् अल्टायी क्षेत्र के वासियों को ओरयिट कहा जाता है, जो अरट्ट-अरत्त के उच्चारण के समीप है।

प्राचीन सुमेर सभ्यता की कीलाक्षरी लिपि में अंकित की गयी पकी मिट्टी की पट्टिकाओं के अनेक शब्द अल्टाई जनों की भाषा तुर्की से सम्यता रखते हैं। कहीं-कहीं तो उत्कीर्ण पंक्तियाँ समान अर्थ रखती हैं। इस प्रकार भाषा शास्त्रियों ने चार सौ शब्दों को रेखांकित किया है जो ओरियट-अल्टाई जनों की भाषा में मिलते हैं। उन्हीं पट्टिकाओं पर अंकित सीडार (Cedar) देवदार वृक्षों अनेक घाटियों और सरिताओं के विवरण जो साईबेरिया क्षेत्र से सम्बन्धित हैं, जो इंगित करते हैं कि प्राचीन सुमेर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सभ्यता के संस्थापकों का आदि—स्थल सुमेरु क्षेत्र-अल्टाई क्षेत्र था, अरट्ट जिसको वे समय के प्रवाह में विस्मृत कर गये।[24]

उरसल नामक साईबेरिया स्थल जो काराकोल (Karakol) नामक ग्राम में स्थित है, के उत्खनन से प्राप्त शवाधानों के निर्माण में वही तकनीक अपनायी गयी है जो सुमेरु-सभ्यता, प्राचीन मिस्र आदि क्षेत्रों में प्रचलित थी। विद्वानों का मानना है कि (Oriot) ओरिओट जाति के जनों का प्रवाह समय के प्रभाव-स्वरूप मेसोपोटामिया (सुमेर) क्षेत्र के अपने सजातियों से टूट जाने के कारण इन जन जातियों के सम्बन्ध विस्मृत हो गये होंगे।[25]

इन अल्टाई-जनों को मंगोलिया, रूस, चीन, कज्जाक तथा अमेरिका के वासियों के पूर्वज होने का भी श्रेय प्राप्त है। उनकी जीन-संरचना में सभ्यता के आधार पर सुनिश्चित किया गया है। यह भी स्वीकार कर लिया गया है कि साईबेरिया-रूस को अमेरिका से जोड़ने वाले वियरिंग सागर क्षेत्र से यह जन पन्द्रह से बीस हजार वर्ष पूर्व उसको पार कर अमेरिकीय कनाडा में क्षेत्र में गये होंगे।[25]

पामीर क्षेत्र को मेरु मानने की अवधारणा, आधुनिक वैज्ञानिक संचार संसाधनों की अनुपलब्धता का परिणाम भी हो सकती है। इसी कारण सम्भवतः अपनी विख्यात कृति "पाणिनि कालीन भारतवर्ष" में प्रो. वासुदेवशरण अग्रवाल ने पामीर के पठार को मेरु माना लिया है।[26]

प्रो. ठाकुर प्रसाद वर्मा लिखते हैं, कि "मानव सभ्यता का आदि केन्द्र मेरु या पामीर का क्षेत्र था जिसे वेदों में इलास्पद-इलायास्पद, उत्तर वेदि, नाभा पृथिव्या, वर आ पृथ्वियाः आदि कहा गया है"।[26]

जरथुष्ट्र धर्म से सम्बद्ध अनेक स्थलों का उत्खनन तजाकिस्तान क्षेत्र में हुआ है-जो उस समस्त क्षेत्र में इस धर्म के प्रसार को दर्शाते हैं। वास्तव में फारसी भाषा में पामीर का अर्थ ही मिहर का पद-मित्र का पैर-पद होता है—पाये-मिहर का संक्षिप्त रूप पामीर है[27] जो पुराकाल का 'एरियांन वेजः' क्षेत्र रहा होगा।

पुराकाल में धरा के तापक्रम में 7 डिग्री से. की वृद्धि के कारण 14700 वर्ष पूर्व रूसी साईबेरिया क्षेत्र की भूमि, जो हिम मण्डित थी—शस्य श्यामला हो उठी। अनेक जीवों को स्वच्छन्द विचरण करने का अवसर मानवों की भाँति सुलभ हो गया। साईबेरिया की दिऊखताई गुफा से प्राप्त अवशेष, विशालकाय गजराजों, मृगों, भेंड़ों घोड़ों, गाय, बैल, कुत्तों की उपस्थिति अनेक प्रकार के पक्षी प्रजातियों की उपस्थिति को दर्शाते हैं कि उच-सुमेर का क्षेत्र रमणीय हो गया था। मानव के वास योग्य हो गया था। यही समय अल्टाई-साईबेरिया वासी जनों का अमेरिकादि देशों में प्रवजन करने का था।[28]

उसी युग में मानव ने गिरिराज बेलूखा के चतुर्दिक नभ-मण्डल में, इसके ऊपर नक्षत्रों को भ्रमण करते हुए प्रथम बार देखा होगा।[7, 22]

कालान्तर में पुनः एक लघु हिमयुग के आगमन के प्रभाव[28अ] के फलस्वरूप सुदूर उत्तरी साईबेरिया के भीषण शीतल क्षेत्र से त्राण पाने हेतु मानव को कम शीतल

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दक्षिणी क्षेत्र की ओर पलायन करना पड़ा होगा। यह समस्या यूराल पर्वत के दक्षिणी क्षेत्र में उतनी विकराल नहीं रही होगी।[28व]

उच-सुमेर-मेरु की भाँति पामीर का पठार न तो पृथ्वी के मध्य में स्थित है और न इससे चारों समुद्र यथा—अटलाण्टिक, आर्कटिक, प्रशान्त और हिन्द महासागर, बराबर दूरी पर हैं। इसी सुमेरु क्षेत्र का उत्तरी भाग चर्चित उत्तर कुरुक्षेत्र था, जहाँ पर हिमयुग के प्रभाव के कारण मानव का पुनः उस क्षेत्र में जा पाना सम्भव नहीं था।

पामीर क्षेत्र भारतीयों-बुद्ध के मतावलम्बियों, जैनियों तथा स्वतः अल्टाई जनों की श्रद्धा का केन्द्र नहीं रहा है, तथा यह आध्यात्मिक क्षेत्र भी नहीं था, जहाँ पर सुदूर देशों के अध्यात्म में रुचि रखने वाले व्यक्ति आते रहे हों। गिरिराज उच-सुमेर का क्षेत्र सुवर्ण, मणि माणिक्य युक्त होते हुए ध्रुव ज्योति का दर्शन-मेरु ज्योति (अरोरा प्रकाश) का दर्शन कराता, आध्यात्मिक सुख अनुभूति प्राप्ति का केन्द्र ही नहीं है, वरन यह पूज्य क्षेत्र भी है। इस प्रकार भारतीय जनमानस में बसा, आधुनिक रूसी नामकरण युक्त बेलूखा गिरि ही मेरु-सुमेर पर्वत है। जिसके आदिम ओरियोट समुदाय ने सुदूर मेसोपोटामिया में सुमेर सभ्यता को जन्म दिया था।

सन्दर्भ

1. राहुल सांकृत्यायन : मध्य एशिया का इतिहास, बिहार राष्ट्रभाषा परिषद, पटना भाग-2 पृ. 189, 1985
2. मैंने मरागे में हलाकू खान के घोड़े की प्रतिमा सरिता सूफी के तट पर देखी थी—लेखक
3. वर्मा टी.पी. : द इथनो-लिंग्यूस्टिक आईडेण्टिटी आफ केल्टस द वैदिक पीपुल, इतिहास दर्पण, 2011, 16(2) पृ. 163-178
4. जेम्स दारमेस्त्रतरः जिन्द आवेस्ता एवं एल.एच. मिल्स, सैक्रिड बुक्स आफ ईस्ट, अमेरिकन संस्करण 1898 सैक्रिड लिटुर्गी एण्ड गाथाज—हाइम्स आफ जरथ्रोस्ट-आवेस्ता-यासना
5. राजीव रंजन उपाध्याय : ऋग्वैदिक ग्रह-नक्षत्रों से सम्बद्ध कुछ तथ्य एवं मिथक इतिहास दर्पण 17 (1) 4-9, 2012
6. मत्स्य पुराण, भूगोल का विस्तृत वर्णन, मतस्य पुराणांक गीता प्रेस—गोरखपुर, संख्या 1, पृ. 378, वर्ष 58, 1984
7. ऋषि, वीर राजेन्द्र : इण्डिया एण्ड एशिया-लिंग्युस्टिक एण्ड कल्चरल एफीनिटी, रोमा पब्लिकेशन्स, 3290/15 डी, चण्डीगढ़—160015, 1982 पृ. 80-112
8. ऋषि, वीर राजेन्द्र, फ्रेण्डली पीपुल—आल, सोवियत लैण्ड, जुलाई 1991, नवम्बर 7, 11-12
9. फ्राउली डेविड : द ऋग्वेद एण्ड हिस्ट्री आफ इंडिया, आदित्य प्रकाशन 2/18 अन्सारी रोड, नयी दिल्ली—2, 2012, पृ. 163, 29

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

10. वेंचरिंग इनटू द सैक्रिड हाई ग्राउण्ड टूर्वडस शाममाला-द अल्टाई रीजन एण्ड माउण्ट बेलूखा तथा अल्टाई देखें अन्तरजाल।
11. राहुल सांस्कृत्यायन : मध्य एशिया का इतिहास बिहार राष्ट्र भाषा परिषद्, पटना, भाग-1, पृ. 75-78, तथा सैक्रिड लैण्ड फिल्म प्रोजेक्ट—अल्टाई—द गोल्डेन माउण्टेनस रिसोर्ट टूर-अन्तरजाल।
12. डॉ. अवस्थी, अवध बिहारी लाल : प्राचीन भारतीय भूगोल कैलाश प्रकाशन, 76 खुर्शीद बाग, लखनऊ, 1992, पृ. 20, 222
13. श्रीमद्वाल्मीकि रामायणे, किष्किन्धाकाण्डे, चित्वरिशः सर्ग, श्लोक 53, 55, 57 (गीता प्रेस-गोरखपुर, सं. 2024)
14. उपाध्याय राजीव रंजन : सेतु समुद्रम, इतिहास दर्पण 16 (1) 2011, पृ. 21-29 एवं पं. भगवददत्त : वैदिक वाङ्मय का इतिहास, प्रथम, भाग, गोविन्दराम हासानन्द-दिल्ली, संस्करण 2008, पृ. 103-104
15. महाभारत (प्रथम खण्ड) आदिपर्व एवं सभापर्व, गीता प्रेस गोरखपुर पन्द्रहवाँ संस्करण सं. 2069, पृ. 853-858
16. अग्रवाल, वासुदेव शरण : पाणिनि कालीन भारतवर्ष, चौखम्भा विद्या भवन, वाराणसी—1, 1969 पृ. 56
17. मारकण्डेय पुराण तथा ब्रह्मपुराण : गीता प्रेस गोरखपुर, पृ. 158
18. उपाध्याय राजीव रंजन : विश्वात्मा सर्वशैलोत्मोत्तम-मेरुः चिन्तन-सृजन, वर्ष 4, अंक 3, अप्रैल-जून 2009, पृ. 85-87 तथा सन्दर्भ 12, पृ. 135
19. विद्यालंकार प्रो. जय चन्द्र : भारत भूमि और उसके निवासी, पृ. 310
20. मित्तल जे.पी. : हिस्ट्री आफ एन्श्येण्ट इण्डिया फ्राम 7300 वी. सी टू 4250 बी. सी., एटलाण्टिक पब्लिशिंग कम्पनी हाउस, 2009, पृ. 3
21. माउण्ट मेरु एण्ड बुद्धिस्ट यूनीवर्स—अन्तर्जाल
22. हारा वेरेजाइती-विकीपीडिया-अन्तर्जाल, एवं सन्दर्भ 9, पृ. 73
23. वर्मा, ठाकुर प्रसाद : विश्व इतिहास में कुरुवंश, इतिहास-दर्पण 17(1), 2012, पृ. 10-23
24. इथिनिक हिस्ट्री आफ अल्टाई रिपब्लिक-अन्तर्जाल—आफीशियल अल्टाई पोर्टल-अन्तर्जाल
25. फेस म्यूजिक—हिस्ट्री आफ द टुर्किश पीपुल इन अल्टाई-अन्तर्जाल
26. वर्मा, ठाकुर प्रसाद, : वैदिक जनों का यूरोप एवं पश्चिम एशिया में विसंक्रमण, इतिहास दर्पण, 14 (2), 2009, पृ. 25-42
27. पामीर इन जरथ्रोष्टियन रिलजिन — पेज 3 तजाकिस्तान रीजन-पामीर, बदकशाँ और जरथ्रोस्ट्रिज्म-अन्तर्जाल
28. वलीकोवेस्की, ई. अर्थ इन अप हीवल 1955, पृ. 59
(अ) मालवोस्की, ई. एफ : द आइस ऐज http: www. biclio tecaple yades.net/ cincia/cincia-1ce age htm.
(व) उपाध्याय राजीव रंजन : वैदिक जनों के सम्भावित आदि, वास स्थल, इतिहास दर्पण, 17(2) 2012, पृ. 170-176

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उच्च शिक्षा की समस्यायें

कैलाश चन्द्र मिश्र*

शिक्षा मनुष्य का पुनर्जन्म है। शिक्षा के द्वारा वह संस्कारित होता है। शिक्षा के माध्यम से वांछनीय सामाजिक परिवर्तन का प्रयास समय-समय पर किया गया है। शिक्षा के द्वारा न केवल व्यक्ति वरन् समाज के जीवन में अपेक्षित परिवर्तन लाया गया है। जब-जब शिक्षा जीवन से दूर होती है, तब-तब प्रायः प्रत्येक देश को विचारकों ने प्रयास किया है कि शिक्षा से जुड़ जाय और इस प्रकार 'जीवन शिक्षा' का रूप ग्रहण कर ले। 'जीवन शिक्षा' एक ऐसी शिक्षा है जो जीवन के लिए और जीवन के द्वारा चलती रहती है।

शिक्षा का माध्यम हिन्दी या मातृभाषा होना चाहिए। पं. मदन मोहन मालवीय का यह निश्चित मत था कि मातृभाषा के माध्यम से शिक्षा होनी चाहिए। इन दिनों हमारे देश में माध्यम के प्रश्न पर जो विवाद हो रहा है उसके सन्दर्भ में मालवीय जी का यह कथन अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है, "भविष्य में हिन्दुस्तान की उन्नति हिन्दी को अपनाने से हो सकती है," 200 वर्ष की गुलामी का ही परिणाम था कि हमारे देश में शिक्षा का माध्यम विदेशी भाषा बनी। आज भी शहरों में अंग्रेजी माध्यम के स्कूलों की संख्या घटने के स्थान पर बढ़ रही है। विदेशी भाषा के माध्यम से जिसके जरिये आज भी भारत में उच्च शिक्षा दी जाती है, हमारे राष्ट्र को अपार बौद्धिक एवं नैतिक हानि पहुँचाई है। अभी हम अपने इस जमाने के इतने पास हैं कि इस नुकसान की भयंकरता का ठीक अन्दाज नहीं लगा सकते। इसके सिवाय ऐसी शिक्षा पाने वाले हम लोगों को इसको शिकार और न्यायाधीश दोनों बनना है, जो लगभग असम्भव काम है।

गाँधी जी के अनुसार शिक्षा बालक के सर्वाङ्गीण विकास का साधन है। 'एजूकेशन' शब्द का मूल अर्थ होता है, भीतर से बाहर की ओर बढ़ना। गाँधी जी इसके इसी अर्थ को स्वीकार करते हैं। वह लिखते हैं, "शिक्षा से मेरा अभिप्राय बालक और मनुष्य में शरीर, मन और आत्मा के विचार से सर्वोत्तम को चतुर्दिक बाहर प्रकट करना है।"

जब उनसे एक बार पूछा गया कि भारत स्वतन्त्र हो जायेगा तो आपकी शिक्षा का क्या लक्ष्य होगा? इसके उत्तर में गाँधी जी ने कहा कि 'चरित्र निर्माण'। गाँधी जी साक्षरता की अपेक्षा चरित्र निर्माण को अधिक आवश्यक समझते थे। उनका कथन था

संपर्क : 5/1082, विरामखण्ड, गोमती नगर, लखनऊ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कि समस्त ज्ञान का उद्देश्य चरित्र निर्माण होना चाहिए। जो शिक्षा चरित्र निर्माण में सहायक नहीं होती, वह व्यर्थ है। गाँधी जी शिक्षा का चरम या सर्वोत्तम उद्देश्य अन्तिम वास्तविकता का अनुभव एवं आत्मानुभूति का ज्ञान मानते थे। उनका मत था कि मनुष्य के जीवन का लक्ष्य सत्य की प्राप्ति है।

उच्च शिक्षा में अनुशासन का अत्यधिक महत्त्व है। आचार्य नरेन्द्रदेव लखनऊ विश्वविद्यालय और काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के कुलपति रहे। चूँकि वे स्वयं अनुशासित थे इसलिए उनका शिक्षा के क्षेत्र में अनुशासन को महत्त्व प्रदान करना स्वाभाविक था। आचार्य नरेन्द्र देव कहते थे कि विद्यार्थियों में अनुशासन स्थापित करने के लिए शिक्षक को स्वयं अनुशासित होना चाहिए। यदि अध्यापक अनुशासित नहीं होता तो वह विद्यार्थियों में अनुशासन की भावना नहीं उत्पन्न कर सकता। आचार्य जी दमनात्मक अनुशासन के विरोधी थे और विद्यार्थियों के दण्ड देने में उनका विश्वास नहीं था। वे अनुशासन के प्रभावात्मक तथा बुद्धिवादी सिद्धान्त के समर्थक थे। गाँधी जी भी इसी मत के थे। प्रसिद्ध विद्वान पोलक ने अपनी पुस्तक 'शिक्षा में गाँधी जी का प्रयोग' में लिखा है "मि. गाँधी के चरित्र पर विचार करते हुए यह बहुत स्वाभाविक है कि वह शारीरिक दण्ड में केवल अविश्वास ही नहीं करते थे, बल्कि विद्यार्थियों के साथ व्यवहार करने में उसे प्रयोग करने को मना भी किया है। उन्होंने स्वयं सुधारवादी दृष्टिकोण को सामने रखा है। वे आत्मानुशासन पर बल देते थे। साथ ही गाँधी जी विश्वविद्यालय का वातावरण इस प्रकार रखना चाहते थे कि बालकों में अनुशासनहीनता की भावना उत्पन्न ही न हो । गाँधी जी की समस्त शिक्षा प्रणाली सहयोग, मित्रता और सहकारिता पर आधारित थी। फलस्वरूप इस प्रणाली के अन्तर्गत शिक्षा दिये जाने में इतनी फुर्सत ही नहीं मिलती थी कि वह अनुशासनहीन हो सके।

शिक्षा मनुष्य के व्यक्तित्व के सर्वांगीण विकास का साधन है। वास्तविक शिक्षा वही है जो शारीरिक, मानसिक, नैतिक और आध्यात्मिक सभी प्रकार के विकास में सहायक होती है। शिक्षा के द्वारा विद्यार्थी में निहित समस्त गुणों का विकास होता है। शिक्षा उपयोगी नागरिकों के निर्माण में सहायक होती है।

शिक्षा में आत्मनिर्भरता की भावना उत्पन्न करने की क्षमता होनी चाहिए। विद्यार्थियों में सामाजिक वातावरण को समझने की क्षमता उत्पन्न करनी चाहिए। शिक्षा को सामाजिक वातावरण से घनिष्ठ रूप से सम्बन्धित होना चाहिए। शिक्षा इस प्रकार की होनी चाहिए कि बेरोजगारी का अन्त हो और सभी को काम का अवसर मिले।

लोकतन्त्र की नर्सरी कहे जाने वाले विश्वविद्यालयों में लिंगदोह कमेटी की संस्तुतियों के आधार पर छात्रसंघ का चुनाव किया जाना है। छात्र संघ चुनाव लड़ने के लिए उम्मीदवार की आयु सीमा, उसका शील एवं अनुशासनप्रिय व्यवहार निर्वाचन, निर्वाचन व्यय की सीमा एवं राजनीतिक दलों को छात्रसंघों से पृथक रहना तर्कसंगत है। छात्रसंघों की रचना का उद्देश्य है कि छात्र अपनी समस्याओं का प्रशासन से समाधान पाने के लिए संगठित होकर प्रशासन से वार्ता कर सकें। अकेला छात्र ऐसा करने में दुर्बल पड़ जाता है। विश्वविद्यालयों में छात्रों की समस्यायें होती हैं कि कक्षाओं और प्रयोगशालाओं में अध्ययन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के लिए अध्यापक नियमित रूप से आयें। पुस्तकालयों में पुस्तकें हों, पुस्तकें मिलने में सुविधा हो, वाचनालय में बैठकर पढ़ने की सुविधा हो, परीक्षायें समयानुसार हों, छात्रालयों में स्थान आवंटन न्यायोचित हों, वहाँ आवासीय प्रबन्ध निवास योग्य हों, कार्यालयों में उनका कार्य सुचारु रूप से हो। इन समस्याओं में देश की राजनैतिक दलों की रुचि की कोई सामग्री नहीं है। अतः वे छात्रसंघों की राजनीति को 'स्वायत्त' ही रहने दें।

अच्छा होता कि विश्वविद्यालय काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के छात्रसंघ का अनुसरण करते जिसका गठन महामना पं. मदनमोहन मालवीय ने किया था। काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में मालवीय जी ने छात्रसंघ के स्थान पर छात्र संसद का गठन किया था जिसके पदाधिकारियों को चुनाव लड़ने से पहले वाद-विवाद प्रतियोगिता में भाग लेना पड़ता था। विजयी तीन छात्र ही चुनाव लड़ सकते थे। सबसे अधिक मत पाने वाला बी.एच.यू. कण्ट्री का प्रधानमन्त्री होता था। उससे कम मत पाने वाला नेता विरोधी दल का होता था। छात्र संसद के संचालन के लिए प्रिवी कौंसिल थी। स्पीकर का नामांकन कुलपति करता था। प्रधानमन्त्री पद को अच्युत पटवर्धन, डॉ. राम मनोहर लोहिया, श्री जनजीवन राम, श्री लक्ष्मी कान्त झा, तथा सुचेता कृपलानी आदि राजनेता सुशोभित कर चुके हैं। 1952 में आचार्य जी के कुलपति पद पर बैठते ही छात्र संघ भी अस्तित्व में आया।

संविधान के अनुच्छेद 19 (1) (ग) में भारत के नागरिकों को संघ बनाने का अधिकार दिया गया है। यह एक मूल अधिकार है। कोई ऐसी विधि नहीं बनायी जा सकती जिससे भारत के नागरिकों को अपना संघ बनाने से अवरुद्ध किया जा सके। लेकिन उच्चतम न्यायालय ने टीकाराम जी बनाम उत्तर प्रदेश राज्य (ए.आई.आर. 1995 सु को 676) में यह भी अभिनिर्धारित किया है कि इसी अधिकार के अन्तर्गत प्रत्येक व्यक्ति को यह अधिकार भी प्राप्त है कि वह इस संघ का सदस्य न बने। इस पर किसी संघ को अनिवार्य सदस्यता लादी नहीं जा सकती। वस्तुतः छात्र संघ की अनिवार्य सदस्यता उन छात्रों की इस स्वतन्त्रता का उल्लंघन है, जो छात्र संघ के सदस्य नहीं बनाना चाहते।

विश्वविद्यालय के छात्र संघ विद्यार्थियों के विकास की सीढ़ी रहे हैं। आजादी के पहले छात्रसंघ के झण्डे के नीचे ही छात्रों ने विदेशी हुकूमत से संघर्ष किया। लखनऊ में अन्सार हरवानी, सैय्यद मोहम्मद जफर, माखनलाल मिश्र, शंकरदयाल शर्मा, इलाहाबाद में नारायणदत्त तिवारी, पंचानन मिश्र, आसिफ अन्सारी, बनारस में श्री राजनारायण सिंह प्रभुनारायण सिंह, डॉ. के.एन. गैरोला और डॉ. रामचन्द्र शुक्ल प्रमुख स्वतन्त्रता संग्राम सेनानी रहे हैं। आजादी के बाद जिन लोगों ने छात्र संघ के अस्तित्व और अस्मिता के लिए संघर्ष किया उनमें प्रमुख थे श्री चन्द्रपाल त्रिपाठी, रॉबिन मित्र, विनय चन्द्र मिश्र, श्री ओ.पी. मेहरोत्रा, बृजेश सिंह, के.पी. तिवारी, श्री रामायण राय, श्री सतीश कुमार, श्री आनन्देश्वर सिंह, आनन्द देव गिरि श्री के.सी. मिश्र, श्री कल्पनाथ राय, श्री राम प्रवेश शास्त्री, श्री श्याम मिश्र, श्याम कृष्ण पाण्डेय, श्री रजनी कान्त वर्मा और श्री धर्मवीर गोस्वामी। विश्वविद्यालय यूनियन का संगठन इस प्रकार का होना चाहिए कि विद्यार्थी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आत्मनिर्भर बन सकें। विश्वविद्यालय में किये गये उत्पादन द्वारा उनका खर्च निकाला जाना चाहिए। इस प्रकार गाँधी जी विश्वविद्यालय को एक कर्मशाला का रूप प्रदान करना चाहते थे। उनका विचार था कि विश्वविद्यालयों को ऐसे समुदायों में बदल दिया जाना चाहिए जहाँ विद्यार्थियों की वैयक्तिकता नष्ट न हो, परन्तु साथ ही उनमें सामाजिक सम्पर्कों एवं सेवा की भावना का विकास हो। विश्वविद्यालय को राज्य द्वारा सहायता प्रदान की जानी चाहिए, परन्तु मुख्य रूप से समाज की सहायता से ही निर्माण होना चाहिए। डॉ. राम मनोहर लोहिया ने लोक सभा में भाषण देते हुए कहा था, "युवजनों के साथ उनके नेताओं का जबर्दस्त अन्याय हुआ है। इस दोष में युवजन खुद भी भागीदार हैं। उन्होंने अपने नेताओं की आदतों, कार्य-प्रणालियों और सोच के ढाँचों की नकल सीखी है। ऐसे नहीं होना चाहिए। युवावस्था में राजनीति ज्यादा आदर्शी और कम यथार्थी होनी चाहिए। बूढ़ों और अधेड़ों की राजनीति में यथार्थ ज्यादा आ जाता है जिसका अर्थ है चाल, तिकड़म दाव, स्वार्थ, गुटबाजी, साजिश बगैर। युवजनों को ऐसे कामों को तो कौन कहे ऐसी बातों से भी दूर रहना चाहिए। यह बड़े दुःख की बात है कि बीस वर्ष वालों का पच्चीस-तीस वर्ष वाला नेतृत्व अब नहीं है इसलिए युवजनों को खुद खबरदार होना चाहिए। एक बीस-पच्चीस की उम्रवाले को सोचना चाहिए, कुर्सी की बात नहीं शक्ति की, समाज को बदलने की पदार्थनिष्ठ बात न कि वह व्यक्तिनिष्ठ तरकीबें जिनसे भला किया जा सके।"

हमारे देश में युवाओं की संख्या 54 करोड़ से अधिक है। युवा पीढ़ी देश का भविष्य होती है। पर इतनी युवा शक्ति होने के बावजूद आज भी हमारा देश विकाशशील राष्ट्र की पंक्ति में है। ग्रामीण एवं शहरी क्षेत्रों में बिखरी युवा शक्ति का अगर समुचित उपयोग किया जाय तो राष्ट्र की तकदीर बदल सकती है। परन्तु युवाओं के काम के समुचित अवसर नहीं मिलने से युवा धन किसी काम का नहीं रह गया है। आजादी प्राप्त होने के इतने साल बाद एक चिन्तक राष्ट्रपति एवं विश्लेषक प्रधानमन्त्री की तमन्ना पूरी हुई है। परन्तु क्या उनके द्वारा बनायी गयी योजनायें साकार रूप ले पायेंगी। भारत महाशक्ति ही नहीं विश्वशक्ति बनने की क्षमता रखता है। पर उसके लिए जरूरत है ऐसे नेतृत्व की जो राष्ट्र को नयी दिशा की ओर अग्रसर कर सके और देश की युवा शक्ति को एकजुट कर उसका समुचित उपयोग कर सकें। अतः सरकार को देश और प्रदेश में युवाओं की भागीदारी सुनिश्चित करनी चाहिए। तभी विकसित राष्ट्र का सपना साकार हो पायेगा।

अमेरिका की सर्वेक्षण कराने वाली गैलय कम्पनी ने एक ताजे शोध में बताया है कि दुनिया-भर में राजनेताओं पर भरोसा तेजी से घट चला है। गैलप रपट कोई चेतावनी दे रही है तो यह कि लोकतन्त्र की दिशा और दशा के रखवाले राजनेताओं से जनता का मोहभंग दुनिया को अन्ततः कहीं एक उद्याम और अनियन्त्रित कारपोरेट बाजारवाद के हवाले न कर दे। जो पूँजी की स्वतन्त्रता के पक्ष में है न कि मानवाधिकारों के। मानव गरिमा स्वतन्त्रता और उसे थामनेवाला एक मजबूत लोकतान्त्रिक ढाँचा आज यूरोप और अमेरिका में ही नहीं हमारी ग्लोबलाइज्ड परम्परावादी दुनिया जिसमें हम इस जद्दोजहद में सबसे आगे होना चाहिए क्या कर रही है?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हिन्दी पत्रकारिता की चुनौतियाँ : बीते कल और जी रहे आज के सन्दर्भ में

देवनारायण पासवान 'देव'*

उर्दू के अजीम शायर अकबर की ये काव्य-पंक्तियाँ आज भी हमारे जेहन में गूँज रही हैं :

'खींचो न कमानों को, न तलवार निकालो,
जब तोप मुकाबिल हो, तो अखबार निकालो।'

कहना नहीं होगा कि भारतीय स्वातन्त्र्य संग्राम की पृष्ठभूमि के निर्माण, विकास एवं प्रखरता में पत्रकारों एवं पत्र-पत्रिकाओं की अहम भूमिका रही है। स्वातन्त्र्य आन्दोलन और उसकी प्राप्ति में राजनीतिक नेताओं, क्रान्तिकारी युवाओं एवं संघर्षशील आमजनों की जो त्याग-तपस्या, बलिदान एवं योगदान है, उससे कम पत्रकारों एवं पत्र-पत्रिकाओं का नहीं है, क्योंकि प्रथम स्वातन्त्र्य संग्राम (1857) के पूर्व और पश्चात् भारतीय पत्र एवं पत्रकारों ने ब्रिटिश शासकों की नींद हराम कर दी थी। लेकिन उसके फलाफल के रूप में भारतीय पत्रकारों को भी गोरे फिरंगियों की बारूदी शक्ति और अनुदार प्रेस-एक्ट का शिकार होना पड़ा था। उन पर राजद्रोह के मुकदमे चलाए गये थे। उन्हें जेलों के सींखचों में बन्द होना पड़ा था। उनके प्रेस और पत्र जब्त कर लिए गये थे। उन्हें जुर्माने की मोटी रकम भरनी पड़ी थी। उनके मुचलके की रकम सरकारी खजाने में जबरन रख ली गयी थी। उन पर ढाये जुल्मोसितम का यह आलम था कि उनमें से बहुतों को सजाये मौत तक दी गयी थी। उदाहरणों की ढेर लगाकर हम आलेख को बहुत लम्बा खींचना नहीं चाहते, परन्तु इतना जरूर कहना चाहते हैं कि उन जुल्मोसितम का सामना करके भी तब के पत्रकारों ने अपना घर फूँक अँधेरे में मशाल जलाई थी और मौत के फरमान को गले लगाकर भी अपनी कलम के सहारे

*देव कुटीर, पो. बिहारीगंज, जिला–मधेपुरा, (बिहार) पिनकोड–852101

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आम आवाम का यह कहकर आह्वान किया था कि : 'जेल की लौह दीवार को तोड़ दो/स्वतन्त्रता देवी की पूजा के लिए उठ खड़े हो।'

तब भारत में पत्रकारिता का शुभारम्भ करने वाले जेम्स आगस्टिन हिक्की के 'हिक्कीज गजट' (सन् 1778) को ईस्ट इण्डिया कम्पनी का कोप भाजन बनना पड़ा था। चूँकि हिक्की अंगरेज ईसाई थे, इसलिए उन्हें हल्की दण्ड प्रक्रिया के तहत मात्र बंगाल से निष्कासित होने की सजा मिली थी। लेकिन 'सुबहे वतन' नामक भारतीय पत्र के पूरे सम्पादक मण्डल (नाथूराम हरी, लफाराम मुंशी, रामसेवक, नन्दलाल, रामचरन आदि) को आजीवन कारावास की कठोर सजा भोगनी पड़ी थी। जब ब्रिटिश हुकूमत को इतने से सन्तोष नहीं मिला, तो उसने आगे चलकर 'भविष्य' नामक पत्र के ग्यारह सम्पादकों को एक-एक कर फाँसी पर चढ़ा दिया। कदाचित् हिन्दी में 'पयामे आजादी' और उर्दू में 'परचमे आजादी' (1857) के सम्पादक अजीमुल्ला खाँ द्वारा प्रकाशित पत्रों की सारी प्रतियों और प्रेस तक को जब्त कर ब्रिटिश म्यूजियम में रख दिया गया था। बावजूद इन जुल्मोसितम के, पत्रकारों की कलमें निर्भीकतापूर्वक चलती रहीं, पत्र-पत्रिकाएँ निकलती रहीं और आजादी की जंग में उनकी सक्रिय भूमिकाएँ दर्ज होती रहीं। उसी 'पयामे आजादी'(दिल्ली, 8 फरवरी, 1857) में तब यह क्रान्तिकारी राष्ट्रीय गीत छपा था :

"हम हैं इसके मालिक, हिन्दुस्तान हमारा,
पाक वतन है कौम का, जन्नत से भी प्यारा।
ये है हमारी मिल्कियत, हिन्दुस्तान हमारा,
इसकी सहामियत से, रोशन है जग सारा।
कितना कदीम, कितना नईम, सब दुनिया से न्यारा,
करती हैं जरखेज इसे, गंगोजमन की धारा।
ऊपर बर्फीला पर्वत, पहरेदार हमारा,
नीचे साहिल पर बजता, सागर का नक्कारा।
इसकी खानें उगल रहीं, सोना, हीरा, पारा,
इसकी शानो-शौकत का, दुनिया में जयनारा।
आया फिरंगी दूर से, ऐसा मन्तर मारा,
लूटा दोनों हाथों से, प्यारा वतन हमारा।
आज शहीदों ने तुमको, अहलेवतन ललकारा,
तोड़ गुलामी की जंजीरें, बरसाओ अंगारा।
हिन्दू-मुस्लिम-सिक्ख हमारा, भाई-भाई प्यारा,
ये आजादी का झण्डा, इसे सलाम हमारा।"

इस पत्र और गीत के सम्बन्ध में डॉ. भारती कुमारी सिंह अपनी 'स्वतन्त्रता संग्राम में पत्र-पत्रिकाओं का योगदान' नामक पुस्तक में लिखती हैं कि "इसकी (पयामे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आजादी) की सारी प्रतियाँ ब्रिटिश सरकार द्वारा जब्त कर लिए जाने के बावजूद इसके ये जांनिसार बोल हर जुबाँ पर कौमी तराना बन गये।"

इस प्रकार भारत में पत्र-पत्रिकाओं के प्रारम्भिक काल (सन् 1778) से ही अंग्रेजों का दमन-चक्र चला, जो बढ़ता ही गया। लेकिन साथ ही भारतीय पत्रकारिता का स्वर भी मुखर, प्रखर और व्यापक होता गया। कहा जाता है कि सन् 1818 ई. से भारतीय भाषाओं के समाचार-पत्रों का प्रकाशन परवान चढ़ता है। और भारत की गूँगी जबान बोलने लगती है, सोयी जवानी अँगड़ाई ले उठ खड़ी होती है। तब बंगाल में बाँग्ला का 'साप्ताहिक दिग्दर्शन' प्रकाशित होना शुरू होता है, जो वर्षों बाद 'समाचार-दर्पण' में बदल जाता है। लेकिन सच्चाई यह है कि हिन्दी का पहला पत्र 'उदन्त मार्त्तण्ड' सन् 1926 के 30 मई से युगल किशोर शुक्ल के सम्पादन में शुरू होता है जो अंग्रेजों के सुख-चैन में आग लगा देता है। हम ऊपर ही 'पयामे आजादी'(1857) की बात कर आये हैं। अंग्रेजों द्वारा उसकी कुर्की-जब्ती के बाद सन् 1860 में हरीश मुखर्जी के सम्पादन में 'हिन्दू पेट्रियट' के प्रकाशन में जब सन् सत्तावन के प्रथम स्वातन्त्र्य युद्ध की जीवन्त आधिकारिक रपटें छपीं, तो ईस्ट इण्डिया कम्पनी से हस्तान्तरित हुई सत्ता विक्टोरिया हुकूमत के कान खड़े हो गये और उसे फिरंगी हुकूमत की टेढ़ी नजरों के कारण बन्द होना पड़ा।

यह सच है कि जंगे आजादी के प्रथम दौर में, भारतीय भाषाओं की पत्रकारिता के क्षेत्र में, स्वामी दयानन्द सरस्वती, बाल गंगाधर तिलक, राजाराममोहन राय, बहादुर शाह जफर के पुत्र बेदारबख्त शाह, अजीमुल्ला खाँ, अमृतलाल चक्रवर्ती, श्याम-सुन्दर सेन, बाबूराव विष्णु पराड़कर, माधवराव सप्रे, लक्ष्मीनारायण गर्दे, गोविन्द रघुनाथराव द्यत्ते जैसे अनगिनत अहिन्दी पत्रकार हिन्दी भाषा के पत्रकार और पत्रकारिता के प्रेरक एवं मार्गदर्शक बने। उनसे हिन्दी पत्रकारिता को निर्भीकता एवं राष्ट्रीयता का वरदान प्राप्त हुआ। यों सन् 1873 में कृष्णराव के सम्पादन में 'जबलपुर समाचार' तथा रामगुलाम अवस्थी के सम्पादन में 'शुभचिन्तक' एवं 1883 में कालाकाँकर के राजा रामपाल सिंह के मार्गदर्शन में हिन्दी 'हिन्दी दैनिक हिन्दुस्तान' के प्रकाशन के पूर्व ही भारतेन्दु हरिश्चन्द्र सन् 1867 में हिन्दी में 'हरिश्चन्द्र चन्द्रिका' तथा 1873 में 'हरिश्चन्द्र मैगजीन' एवं 'कविवचन सुधा' नामक पत्र निकालने लगते हैं। उन सभी पत्र-पत्रिकाओं के मूल में प्रायः 'स्वदेशी' एवं 'स्वतन्त्रता' का ही सन्देश गूँजता सुनाई पड़ता है। भारतेन्दु ने भारतवादियों को देश-दुर्दशा के विरुद्ध मिलकर रोने यानी आवाज बुलन्द करने का आह्वान किया और कहा :

'आबहु सब मिलि रोबहु भारत भाई।
हा, हा, भारत-दुर्दशा देखि न जाई ॥'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उन्होंने यह भी कहा, यह तो ठीक है कि :

'अंगरेज-राज सुख-साज सजै सब भारी।'

परन्तु, 'निज धन विदेस चलि जात, यहै अति ख्वारी।

ऊपर से टिक्कस की आफत आई ॥'—आदि-आदि।

कदाचित् उन्होंने पहली बार, देशहित में, गाँधी के पूर्व, देशवासियों के बीच स्वदेशी वस्तुओं के धारण एवं पारायण की वकालत यह कहकर की कि :

'घर की वस्तु घर हीं धरि लीजै...'

जाहिर है, स्वतन्त्रता संग्राम के दौरान देश में 'स्वदेशी भावना' और 'सुसुप्त सम्मान' को जगाने में भारतीय पत्र-पत्रिकाओं ने गति, मति एवं बुलन्दी प्रदान करने का काम किया। इस पुनीत कार्य में ऊपर लिखित पत्र-पत्रिकाओं के साथ ही 'केसरी', 'हिन्द केसरी', 'नृसिंह', 'स्वतन्त्र', 'संवाद-कौमुदी', 'स्वराज', 'अभ्युदय', 'कर्मयोगी', 'ब्राह्मण', 'हिन्दी प्रदीप' वगैरह का अभूतपूर्व योगदान है। मिसाल के तौर पर प्रतापनारायण मिश्र द्वारा सम्पादित पत्र 'ब्राह्मण'(कानपुर, 15 मार्च, 1883) ने प्रथम पृष्ठ पर ही यह काव्य-इबारत अंकित कर देश में तहलका मचा दिया कि :

'दरो-दीवार पर हसरत से नजर रखते हैं।
खुश रहो अहलेवतन, हम तो सफर करते हैं ॥

सचमुच, 'प्रताप', 'आज', 'सैनिक', 'कर्मवीर', 'सुधा', 'चाँद', 'माधुरी', 'सरस्वती', 'हंस', 'कल्पना', 'स्वदेश' आदि ने साहित्य और पत्रकारिता के संयुक्त धर्म का निर्वाह किया। कलकत्ता (कोलकाता) में पण्डित सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला का मतवाला मण्डल सक्रिय हुआ। काशी से साप्ताहिक 'जागरण' के प्रकाशन में क्रमशः प्रेमचन्द और जयशंकर प्रसाद सक्रिय हुए। इसी दौर में रामवृक्ष बेनीपुरी, माखनलाल चतुर्वेदी, पद्मकान्त मालवीय, बनारसीदास चतुर्वेदी, शिवपूजन सहाय वगैरह साहित्य एवं पत्रकारिता के क्षेत्र में समान रूप से चर्चित हुए। तदनन्तर आये 'उचित वक्ता', 'भारत मित्र', 'हिन्दी बंगवासी', 'युगान्तर, 'सन्ध्या', विश्वमित्र आदि पत्र। इन पत्र-पत्रिकाओं का ऐलान था—'हिंसा का उत्तर हिंसा है', और मूल सन्देश था—'स्वतन्त्रता हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है।'

उदाहरणार्थ, 'बंगलार कथा' ने यह कहकर क्रान्तिकारियों में जोशोजुनून भर दिया था कि :

'जेल की लौह दीवार को तोड़ दो।
स्वतन्त्रता देवी की पूजा को उठ खड़े हो ॥'

उसी प्रकार पाण्डेय बेचन शर्मा उग्र का 'स्वदेश'(1924) मुखपृष्ठ पर लिखता था :

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'जो भरा नहीं है भावों से, बहती जिसमें रसधार नहीं,
वह हृदय नहीं है, पत्थर है, जिसमें स्वदेश का प्यार नहीं।'

वहीं महात्मा गाँधी ने 'हरिजन' को प्रकाशित करते हुए ऐलान किया था कि यह पत्र राजनीतिक दृष्टि से नहीं, बल्कि सामाजिक चेतना की जागृति की दृष्टि से निकाला जा रहा है। तदन्तर उन्होंने अंग्रेजों तक तथा दुनिया के अन्य हिस्सों तक अपनी बातों और विचारों को पहुँचाने के लिए 'यंग इण्डिया' तथा 'इण्डियन ओपिनियन' का प्रकाशन किया-कराया। लेकिन यह भी सच है कि उन्होंने हिन्दी को सम्पर्क भाषा मानकर पूरे देश में अपनी 'हिन्दुस्तानी' को प्राथमिकता दी और 'बीबीसी' को दिये गये अपने साक्षात्कार में कहा कि 'पूरी दुनिया को बता दो कि गाँधी को अंग्रेजी नहीं आती।' उन्होंने ऐसा इसलिए कहा था कि वे यह समझते थे कि 'राष्ट्रभाषा के बिना राष्ट्र गूँगा है।' इस चीज को सभी तत्कालीन राष्ट्र नेता महसूसते थे। यही कारण था कि चाहे बंगाल से आने वाले अहिन्दी भाषी नेता सुभाषचन्द्र बोस हों या पंजाब से निकले लाला लाजपत राय अथवा गुजरात से उभरे सरदार वल्लभ भाई पटेल या कि कश्मीरी मूल के पण्डित जवाहरलाल नेहरू और तदन्तर इन्दिरा गाँधी तक, सभी-के-सभी हिन्दी-पक्षधर थे और गाँधी के सुर में सुर मिलाकर हिन्दी को देश की उपयोगी एवं सर्वोपरि भाषा मानते थे। वैसे भी वर्तमान समय-सन्दर्भ में पूर्व प्रधानमन्त्री अटलबिहारी वाजपेयी से लेकर वर्तमान प्रधानमन्त्री नरेन्द्र मोदी तक इस तथ्य से भलीभाँति परिचित हैं और इसीलिए वाजपेयी जी अपने मन्त्रित्व काल में जहाँ हिन्दी को संयुक्त राष्ट्र संघ की महासभा तक ले गये वहीं सम्प्रति मोदी जी ने इसे देश के कोने-कोने में अपनी चुनावी सभाओं के द्वारा पहुँचाने का प्रशंसनीय कार्य किया। अस्तु!

हमने स्वतन्त्रता-पूर्व भारतीय पत्र-पत्रिकाओं की इतनी लम्बी पड़ताल इसलिए की और हिन्दी के सन्दर्भ में इतनी अधिक कैफियत इसलिए दी कि इसके बिना आज के पत्र और पत्रकारिता की, विशेषकर हिन्दी पत्रकारिता की चुनौतियों को ठीक से देखा-परखा नहीं जा सकता है। जिस प्रकार उन्नीसवीं-बीसवीं शती का साहित्य और पत्रकारिता, दोनों संयुक्त रूप से दासता, अन्याय, शोषण एवं दमन के विरुद्ध संघर्षरत रहे तथा गृहयुद्ध, विश्वयुद्ध, शीतयुद्ध एवं अकाल, महामारी आदि के मध्य लोकतन्त्र एवं मानवाधिकारों के हित में आवाज बुलन्द करते रहे, उसी प्रकार आज इक्कीसवीं शती के प्रथम चरण में हमारे पत्रकारों एवं पत्र-पत्रिकाओं के लिए देशव्यापी व विश्वव्यापी अराजकता, आतंक, अपराध, हिंसा, युद्ध, बलात्कार, भूख, भय, भ्रष्टाचार तथा व्यक्तिवाद, वंशवाद, सम्प्रदायवाद, नवउपनिवेशवाद, साम्राज्यवाद सहित जातिभेद, रंगभेद, प्रान्तभेद के साथ भाषायी उन्माद के विरुद्ध आवाज बुलन्द करना उनके कर्तव्यों एवं दायित्वों में शुमार किया जा सकता है। चूँकि बर्नाड शॉ के कथनानुसार 'कुशल पत्रकार साहित्यकार से भिन्न नहीं है, अतः उसके लिए यह चिन्ता का विषय

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

होना चाहिए कि आज बहुत बड़ी संख्या में, खासकर हिन्दी में, दैनिकों, साप्ताहिकों, मासिकों, त्रैमासिकों एवं अर्द्धवार्षिकों के प्रकाशन और प्रसारण परवान पर होकर भी वे अल्पकालीन एवं अल्पजीवी क्यों साबित हो रहे हैं? एक अकेले कोसी अंचल में कितने लघु पत्र निकले, वे अकाल ही कालकवलित क्यों हो गये? क्योंकि इनको हिन्दी पाठकों की उपेक्षा, उदासीनता एवं अविश्वास का दंश झेलना पड़ा। पाठकीय उपेक्षा और उदासीनता की मार तो हमारे कोसी अंचल में ख्याति प्राप्त दैनिकों एवं साप्ताहिकों पर भी पड़ रही है। दैनिक जागरण, हिन्दुस्तान, प्रभात खबर, आज, जनसत्ता, सहारा आदि कोसी अंचल के सहारे नहीं चल रहे और न चल सकते हैं। वैसे ही हंस, कथादेश, कथाक्रम, वागर्थ, अपेक्षा, चिन्तन-सृजन, सरिता, युद्धरत आम आदमी, नया ज्ञानोदय, आलोचना, इण्डिया टुडे, प्रतियोगिता दर्पण, गृहशोभा आदि की पठनीयता हमारे जनपद में इस बात से भी आँकी जा सकती है कि हम माँगकर खाते नहीं, मुफ्त का पहनते नहीं, मगर माँगकर मुफ्त का पढ़ तो लेते ही हैं। हम चाहे ट्रेन में सफर कर रहे हों, चाहे बस में, अपने सहयात्रियों के दैनिकों और मासिकों आदि पर हमारी नजरें गड़ी रहती हैं कि कब उनका पढ़ना बन्द हो, कब हम पत्रों को उनके हाथों से लपक लें। यह स्थिति अंग्रेजी, बाँग्ला, मराठी, तमिल, तेलुगु आदि अहिन्दी पत्र-पत्रिकाओं के साथ देखी-सुनी नहीं जाती; क्योंकि इनके पाठकों के पास अपनी दैनिक जरूरतों की भाँति पत्र-पत्रिकाओं के लिए भी एक निर्धारित बजट होता है, जो हिन्दी पाठकों के पास नहीं है।

इसके कतिपय कारणों में पहला कारण तो हमारी प्रकृति और प्रवृत्ति है, जिन्हें हम अपने संस्कारों से जोड़कर देख सकते हैं। दूसरा कारण है कमरतोड़ महँगाई और बेहिसाब बेरोजगारी। फलस्वरूप आर्थिक अभावों से त्रस्त हम पहले आटा-दाल खरीदकर अपनी भूख मिटायें या अखबार खरीदकर जिज्ञासा शान्त करें? तीसरा कारण यह है कि अक्सर दैनिकों और साप्ताहिकों में समाचारों एवं ज्ञान-विज्ञान सम्बन्धी बातों की कमी, परन्तु विज्ञापन एवं फैशन व मनोरंजन की बातें भरी पड़ी रहती हैं। फिर बहुत से समाचार-पत्र सरकार के जनविरोधी कदमों और कार्यों की आलोचना से परहेज करते हैं तथा उसके प्रशस्ति-गान में ही अपने कर्तव्यों की इतिश्री समझ लेते हैं। अतः हम इनके पास जाने और खरीदकर पढ़ने से मुँह मोड़ लेते हैं।

कहा तो यह भी जाता है कि पत्रकारिता और जनसंचार माध्यम में अन्योन्याश्रय सम्बन्ध है। किसी स्वतन्त्र देश-प्रदेश की नीति और प्रगति, समृद्धि और समस्या और उपलब्धि और आदर्श का प्रचारित-प्रसारित एवं विज्ञापित-प्रकाशित करने के माध्यम अतः पत्रकारिता और जनसंचार के साधन हैं। लेकिन भारत में ये दोनों साधन अन्य क्षेत्रों में नगण्य प्रायः हैं। आज आकाशवाणी और दूरदर्शन तथा दैनिक अखबारों एवं मासिक पत्र-पत्रिकाओं के द्वारा भी ग्राम्य कृषि, बागवानी, लोक-कला एवं लोक-संस्कृति व समस्याओं का निदान प्रायः नहीं हो पाता। इण्टरनेट, ई-कॉमर्स,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ई-मेल, साइबर कैफे आदि मुख्य रूपेण शहरों-बाजारों एवं नगरों की प्रगति, समृद्धि तथा समस्या-निदान के साधन बने हुए हैं। आज भी सामाजिक-सांस्कृतिक तथा आर्थिक-राजनीतिक विकास में और आमजनों को सहभागी बनाने की भूमिका में इनका योगदान अत्यल्प है। वैसे भी इनकी एक मीडिया नीति तथा सूचना एवं समाचार-प्रेषण का मानदण्ड पूर्णरूपेण निर्धारित नहीं हो पाया है। इस चीज को भारतीय प्रेस परिषद के पूर्व अध्यक्ष न्यायमूर्ति ए.एन.सेन इन शब्दों को स्पष्ट करते हैं कि प्रत्येक संचार माध्यम को चाहे वह व्यावसायिक ही क्यों न हो, स्वयं को राष्ट्र की सेवा में एक आचार संहिता के अन्तर्गत समर्पित-समाहित करना चाहिए। पश्चिमी देशों में मीडिया तन्त्र की एक स्पष्ट नीति एवं मानदण्ड हैं तथा एक प्रतिबद्ध आचार संहिता है, जो भारत में देखने में नहीं आते।

हिन्दी पत्रकारिता की दूसरी बड़ी चुनौती यह है कि वह उपभोक्तावादी बाजारीकरण से ग्रस्त है। फलतः उसका व्यापारीकरण एवं राजनीतिकरण भी खूब हुआ है। एक वरिष्ठ पत्रकार विनीत नारायण ने अपने एक आलेख में कभी इस ओर इशारा किया था और कहा था कि कई बड़े पत्र और उनके पत्रकार पद, प्रतिष्ठा और आर्थिक लाभ के लिए समाज और देश के प्रति अपनी कर्तव्यविमुखता से यानी विश्वासघात करने से शर्माते नहीं। वे बड़े पत्रकार होने के अहं और आवरण में राजनेताओं तथा सत्ताधारी दलों के मानो जनसम्पर्क पदाधिकारी एवं विवेचनाधिकारी बन जाते हैं। वे अपने आकाओं के इशारे पर उनके धुर विरोधियों के विरुद्ध अनुचित शब्द-प्रहार करने से भी बाज नहीं आते। फलस्वरूप पत्रकारिता का आदर्श धूमिल और दूषित होता है।

वैसे भी आज भारत में राष्ट्रवादी, साम्यवादी, समाजवादी, सम्प्रदायवादी, जातिवादी एवं यथास्थितिवादी दल एवं विचार अस्तित्व में हैं और इनका राजनीतिकरण उस स्तर पर पहुँच गया है जहाँ दल आगे हैं, देश पीछे। हमारी भारतीय पत्रकारिता भी कहीं-न-कहीं इन्हीं विचार-दायरों में आबद्ध एवं प्रतिबद्ध-सी हो गयी है। फलतः इनका राजनीतिकरण एवं व्यावसायीकरण होना इनकी स्वाभाविक नीति एवं नियति बन गयी है। स्वभावतः हमारी हिन्दी पत्रकारिता भी इसी नीति और नियति के रोग से पीड़ित-प्रताडित हो गयी है। कहने का तात्पर्य यह कि हमारी हिन्दी पत्रकारिता मूलतः पाठकों और श्रोताओं के प्रति ईमानदार नहीं, वरन् अपने आकाओं के प्रति नतसिर-वन्दनामुखर बन गयी है।

दरअसल, पत्रकार और पत्रकारिता को लोकतन्त्र में राष्ट्र का चौथा स्तम्भ कहा गया है। लेकिन हमारा यह चौथा स्तम्भ सूचना, शिक्षा, जन-जागरण और मनोरंजन के पाये से फिसलकर मात्र मनोरंजन का साधन बनकर रह गया है। इसने फैशनपरस्ती, विज्ञापनपरस्ती, अर्थपरस्ती को मानो अपना धर्म मान लिया है। सूचना, शिक्षा और जन-जागरण इसके लिए जैसे दोयम दर्जे का काम रह गया है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यद्यपि पत्रकार होना साहित्यकार होने से कम गौरव की बात नहीं है, लेकिन पत्रकार होना तलवार की धार पर चलने जैसा कठिन और चुनौतीपूर्ण है। बहुत कम पत्रकार हैं जो जनता की आँख, कान, जबान और आत्मा बन सके; जो सबके लिए देख-सुन-बोल और महसूस कर सके। जो अपने लेखन और वाचन कर्म से देश-दुनिया को प्रतिबिम्बित और प्रतिध्वनित कर सके। आज के पत्रकार और पत्रकारिता को हम मुख्यतः दो श्रेणियों में विभक्त कर सकते हैं। एक तो प्रिण्ट-सेन्टर और नगर-संस्करण के लिए पदस्थापित पत्रकार और उनकी पत्रकारिता; दूसरे, जिलों में नियुक्त पत्रकार और उनके जिला संस्करण हैं। कहना नहीं होगा कि प्रथम कोटि के पत्रकार हर दृष्टि से साधन-सम्पन्न, अधिकार-सम्पन्न एवं सुविधाभोगी होते हैं। जिलों के पत्रकार अपेक्षाकृत साधनविहीन एवं विपन्न होते हैं। सुबह से शाम तक खबरें जुटाने और उन्हें प्रेषित करने के उपरान्त उन्हें यह पता नहीं होता कि उनकी प्रेषित खबरें अखबार के किस कोने में, कितनी जगह पायेगी अथवा पायेगी भी नहीं, क्योंकि उनकी रपट डाक एडीशन यानी दोयम दर्जे की मानी जाती है।

वैसे जिला स्तर के पत्रकारों को भी हम दो कोटियों में रख सकते हैं। एक वे जो शासन-प्रशासन के लिए तथा भ्रष्ट पदाधिकारियों और कालाबाजारियों के लिए मित्रवत होते हैं। वे वैसे तत्त्वों से खुद के लिए तो उगाही करते ही हैं, अपने पत्रों के लिए भी विज्ञापन जुटाकर आकाओं को प्रसन्न रखते हैं। दूसरे प्रकार के पत्रकार वे हैं जो समाज और देश-दुनिया की शक्ल बिगाड़ने वाले असामाजिक तत्त्वों, भ्रष्ट नौकरशाहों एवं काली कमाई करने वालों के विरुद्ध जनहित में मुहिम छेड़े होते हैं। ऐसे ईमानदार एवं कर्तव्यपरायण पत्रकार आर्थिक रूप से विपन्न और सुरक्षा की दृष्टि से मुसीबतों में घिरे रहते हैं। फिर भी वे अपने पत्र के प्रसार को बढ़ाने तथा अपने पत्र-रेवेन्यु को गिरने नहीं देने के प्रति सावधान रहते हैं।

यों सन् 1997 के बाद हिन्दी के प्रायः सभी प्रमुख दैनिकों ने अपने जिला-संस्करणों के लगभग 'प्रिण्टिंग-सेन्टर्स' में तब्दील कर दिया है। जिससे कर्तव्यनिष्ठ जिला पत्रकारों की स्थिति-परिस्थिति थोड़ी सुधरी है और अंग्रेजी आदि अहिन्दी पत्र-पत्रिकाओं की अपेक्षा हिन्दी पत्र-पत्रिकाओं की प्रसार-स्थिति एवं ख्याति-प्रतिष्ठा बढ़ी है, जो हिन्दी भाषा और पत्रकारिता के लिए शुभ संकेत-सूचक है।

आखिर में, हिन्दी पत्रकारिता के सामने आ खड़ी हुई एक महत्त्वपूर्ण नयी चुनौती का जिक्र करके हम आलेख में अन्तिम पूर्णविराम लगाना चाहते हैं। असल में कतिपय कॉरपोरेट घराने और नवउदारवादी पूँजीपति विदेशज शिक्षित तत्त्वों की उपस्थिति एवं दखलन्दाजी के कारण हिन्दी पत्रकारिता से समक्ष नयी भाषागत शब्दावली ने अपना पाँव पसारना प्रारम्भ कर दिया। अब हिन्दी पत्रकारिता का जमाना न तो 'उदन्त मार्त्तण्ड' (30 मई, 1826) का रहा है और न ही 'सरस्वती' (1920) का है। आज लगभग पौने दो सौ वर्षों के अन्तराल में विद्वान एवं तकनीक के भारी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बदलाव के परिणामस्वरूप हिन्दी पत्रकारिता का रूप नित्यप्रति छपने वाले दैनिकों, साप्ताहिकों, मासिकों आदि तक ही सीमित नहीं रह गया है। अब उसका स्वरूप अहर्निश चलने वाले दूरदर्शन चैनलों, एफ.एम. रेडियो, प्रसार भारती के प्रायः एक सौ आकाशवाणी केन्द्रों, इण्टरनेट एवं सोशल मीडिया के बहुरूपों में अनेकान्त हो गया है। अतः पत्रकारिता के इस बहुरूपिए दौर में हिन्दी पत्रकारिता का शब्द-रूप एवं वाक्य स्वरूप भी बदलता जा रहा है। आज के नवशिक्षित एवं नव विचार वाले लोग बाबूराव विष्णु पड़ारकर के इस विचार से तो सहमत हैं कि मीडिया की भाषा आमजन की भाषा होनी चाहिए, किन्तु वे पराड़कर के इस विचार को खारिज कर चुके हैं कि "भाषा के व्याकरणिक रूप भ्रष्ट नहीं होने चाहिए।" ऐसे लोगों का तर्क है कि "सन्देश प्रचारित-प्रसारित होने चाहिए, उनके लिए व्याकरण के नियम-अनुशासन जरूरी नहीं हैं।' फलस्वरूप आज की हिन्दी पत्रकारिता, खासकर एफ.एम. रेडियो और टीवी चैनलों की हिन्दी भाषा यानी उसकी शब्द एवं वाक्य-रचना का कोई मानक ही नहीं रह गया है। अब हिन्दी के नाम पर देशज-विदेशज से शब्दावलियाँ लेकर खिचड़ी भाषा परोसी जा रही है। यह न तो गाँधी की 'हिन्दुस्तानी' रह गयी है और न ही प्रेमचन्दी भाषा कही जा सकती है। आज की मीडिया खुद अपनी भाषा गढ़ रही है और खुद ही उसका प्रयोग कर रही है। वह किसी भाषा-शास्त्री को सुनने-समझने की जरूरत महसूस नहीं कर रही है। उसे हिन्दी की शब्द-रचना या वाक्य-गठन अथवा वर्तनी से कुछ लेना-देना नहीं रह गया है। यह दुःखद स्थिति है।

लेकिन इस दुःखद अवस्था के बावजूद हिन्दी के लिए एक अच्छी और गर्व करने योग्य बात जरूर हुई है कि आज अमेरिका के बराक ओबामा से लेकर चीन के जिनचियांगपिन तक और जापान के प्रधानमन्त्री से लेकर इंग्लैण्ड की संसद तक, सभी अपने-अपने देश के युवाओं और आर्थिक निवेशकों को हिन्दी सीखने की नसीहत खूब दे रहे हैं, जिससे भारत उपमहाद्वीप के साथ उनका व्यापार, बाजार, राजनीति, विज्ञान, कला, संस्कृति आदि के क्षेत्र में सुदृढ़ एवं सौहार्दपूर्ण सम्बन्ध व सरोकार स्थापित एवं विकसित हो सके। इत्यलम्।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विसंरचनावादी आलोचना और पाठ की साभिप्राय अर्थ-सर्जना*

समीक्षक : नन्द किशोर आचार्य**

हिन्दी आलोचना का एक विचित्र विरोधाभास यह रहा है कि एक ओर जहाँ उसमें आधुनिक एवं आधुनिकोत्तर साहित्य-सिद्धान्तों का बोलबाला दिखायी देता है, वहीं उनकी समझ को लेकर अधिकांशतः भ्रमपूर्ण स्थिति ही बनी रही है—क्रोचे के अभिव्यंजनावाद से लेकर आधुनिकोत्तर डीकंस्ट्राक्शन (जिसका अनुवाद विखण्डन, विरचना या विसंरचना किया गया है) तक यही हाल रहा है। ऐसे में डॉ. शीतांशु जैसे आलोचक की उपस्थिति विशेष ध्यान आकर्षित करती है, जिन्होंने न केवल इन सिद्धान्तों और उनकी प्रक्रिया को गहराई से समझा, बल्कि अपनी व्यावहारिक आलोचना में भी उनका सफलतापूर्वक सार्थक विनियोजन किया है। उनकी पुस्तक 'विसंरचनात्मक आलोचना : अर्थ की सर्जना' इस बात का उत्तम उदाहरण कही जा सकती है।

इस पुस्तक के प्रारम्भिक अंश 'विसंरचनात्मक आलोचना : पूर्व सर्जना' में ही डॉ. शीतांशु विसंरचनावाद को लेकर व्याप्त कई भ्रमों का निवारण करते हैं। कुछ आलोचकों का एक वर्ग उसे पाठक-केन्द्रित होने का कारण यादृच्छिक अर्थ बरामद करने का आग्रही मानते हैं, तो कुछ अन्य उसे अनिवार्यतः निषेधात्मक समझते हैं। यह स्थिति हिन्दी की नहीं, यूरोपीय आलोचकों की भी है। शीतांशु स्वयं देरिदा को ही प्रमाणस्वरूप प्रस्तुत करते हुए यह स्पष्ट कर देते हैं कि विसंरचना की पद्धति वस्तुतः किसी खण्डन-मण्डन की प्रक्रिया है और इस प्रक्रिया में जो अर्थ बरामद होता है, वह लेखक के मन्तव्य से भिन्न अर्थ कभी विरोधी भी हो सकता है; लेकिन यह अनिवार्य नहीं है कि वह विरोधी अर्थ निषेधात्मक हो ही।

विसंरचनात्मक निर्वचन या पढ़त इस बात को स्वीकारती है कि किसी कृति का कोई एक केन्द्रीय अर्थ नहीं होता। वस्तुतः यह एक अर्थ की निरंकुशता से मुक्ति है।

*पाण्डेय शशिभूषण 'शीतांशु', विसंरचनात्मक आलोचना : अर्थ की सर्जना (जयपुर : नेशनल पब्लिशिंग हाउस, 20). **(प्रतिष्ठित लेखक एवं आलोचक) : सुथारों की बड़ी गुवाड़, बीकानेर 334005 (राज.), चलभाष : 09413381045

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इसलिए हर पढ़त अर्थ की नयी सम्भावना तो प्रकट करती है, लेकिन उसे अन्तिम या निश्चित नहीं मान सकती है। वह 'अर्थ की मुक्ति क्रीड़ा' के लिए लगातार चलने वाली विकेन्द्रीयता को उत्पादित करती रहती है। वह देरिदा के इस मन्तव्य की भी स्पष्ट व्याख्या करते हैं कि यह अर्थ पाठ की सीमा में रहकर ही बरामद किया जा सकता है, इसलिए से यादृच्छिक नहीं कहा जा सकता। लेकिन, जब यह कहा जाता है कि विसंरचनात्मक पढ़त पाठ के स्पष्ट या पूर्वज्ञात अर्थ के बजाय 'अनुपस्थित अर्थ' की सर्जना की प्रक्रिया है तो पहला सवाल यह उपस्थित होता है कि किसी कृति या पाठ का प्रत्यक्ष या पूर्वज्ञात अर्थ क्या है और किसी पाठक या आलोचक पर वह कैसे खुलता है। यह पढ़त की किसी प्रचलित या पूर्वनिर्धारित या आदतन प्रक्रिया के कारण होता है या किसी लिखित का मन्तव्य ही उतना स्पष्ट या पूर्वनिर्धारित होता है। क्या लेखन की प्रक्रिया स्वयं में ही एक अन्वेषण-प्रक्रिया नहीं है, जो पूर्वज्ञात अन्वेषण से अलग होती है। पूर्व में भी किसी एक पाठ की अनेक व्याख्याएँ या कई अर्थ-सर्जनाएँ होती रही हैं—आधुनिक ही नहीं, क्लासिकी साहित्य की भी—और चाहे देरिदा द्वारा प्रस्तावित आलोचनात्मक पदावली का विनियोजन उन व्याख्याओं में न किया गया हो, पर आज उनके आधार पर उन आंलोचकों को समझा जा सकता है। यदि एक नयी पढ़त किसी पूर्व पढ़त से भिन्न अर्थ बरामद करती रही है, तो स्पष्ट है कि नयी पढ़त ने कुछ ऐसे अर्थ-चिह्न तलाशे हैं या उनसे एक नया अर्थ बरामद किया है। सवाल यह भी उठता है कि यदि प्रत्येक कृति एक भाषिक अनुभूत्यात्मक अन्वेषण है—केवल पूर्वज्ञात की अभिव्यक्ति नहीं— तो लेखक या लेखन का कोई पूर्वनिर्धारित मन्तव्य हो ही कैसे सकता है और जो भी अर्थ-सर्जना कृति में हो रही होगी वह अपने में एक नया अन्वेषण ही होगी। विसंरचनात्मक पद्धति के अनुसार 'लिखत लिखती है, लेखक नहीं' की एक सम्भावित व्याख्या यह भी हो सकती है— चाहे इस प्रस्ताव का प्रयोजन कुछ भिन्न भी रहा हो। इसलिए यह तो स्वीकार्य हो सकता है कि विसंरचनात्मक पढ़त पाठ का नया निर्वचन और उससे नया अर्थ बरामद कर सकती है, जो कृति के अर्थ-चिह्नों में छिपा है, लेकिन उसकी सम्भावना तो कृति में ही माननी होगी। इस दृष्टि से यही मानना समीचीन लगता है कि प्रत्येक पढत अपना अर्थ बरामद करने में तो समर्थ हो सकती है, होती है, लेकिन उस अर्थ को हमेशा के लिए एकमात्र अर्थ की तरह स्वीकार नहीं किया जा सकता; न यही स्वीकार किया जा सकता है कि वह 'अनुपस्थित अर्थ' की तलाश है, क्योंकि अर्थ वहाँ उपस्थित तो है पर 'अन्तर्गर्भी' है, जिसकी तलाश की अपेक्षा किसी भी सुयोग्य पाठक से की जानी चाहिए— और अन्तर्गर्भी अर्थ अनेक भी हो सकते हैं, जिनकी तलाश और पढ़तें करती रह सकती हैं, इसलिए किसी अर्थ-चिह्न की भी अनेक पढ़तें सम्भव हैं।

यह तो स्वीकार करना ही होगा कि डॉ. शीतांशु ने अपनी विसंरचनात्मक पढ़त के लिए जिन कृतियों को चुना है, उनमें और उनसे नयी अर्थ-सर्जना करने में वह पूरी तरह कामयाब रहे हैं। उन्होंने पूर्व में की गयी कुछ पढ़तों का भी विसंरचनात्मक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

निर्वचन करते हुए उनमें हुई त्रुटियों या असावधानियों की ओर भी ध्यान आकर्षित कर अपनी नयी व्याख्या प्रस्तुत की है, जिसे उन्होंने 'प्रत्यालोचनात्मक सर्जना' कहा है।

डॉ. शीतांशु का 'गोदान' का निर्वचन उसकी बहुआयामी व बहुस्तरीय अर्थ-सर्जना करता है और बताता है कि कैसे ये अर्थ कृति के रेशे-रेशे में व्याप्त हैं। अपनी इस पढ़त में शीतांशु 'गोदान' की वर्ग-संघर्ष वाली इकहरी व्याख्या का अतिक्रमण करते हुए उससे 'अपरिग्रही मानवतावाद' का अर्थ बरामद करते हैं, जिसकी सम्भावना से इनकार नहीं किया जा सकता। प्रेमचन्द की ही कहानी 'मन्त्र-दो' की उनकी व्याख्या भी कई स्तरों पर सक्रिय साभिप्रायता को उद्घाटित करती हुई उनकी पढ़त उनमें 'परिपूरकता' का सम्बन्ध खोजने में पूरी सफल होती है। 'मैला आँचल' की सर्वांग अन्तर्व्याप्ति को उद्घाटित करते हुए शीतांशु उसका अर्थ सही जिजीविषा के सहारे मंगलमय भविष्य में आस्था के भाव को मानते हैं। इन कृतियों के जिस बहुत बारीक विश्लेषण के सहारे वह अपने अर्थ का अन्वेषण करते हैं, उसके विस्तार में जाने का अवकाश इस संक्षिप्त टिप्पणी में नहीं है। इन पढ़तों की बारीक प्रक्रिया और विसंरचनात्मक आलोचना की विविध अवधारणाओं—यथा अर्थ-चिह्न, प्रतीपता, डिफेरेन्स आदि—का सम्यक् समायोजन इस पद्धति के उनके गहन अध्ययन और व्यावहारिक समझ का पूर्ण परिचय देने में समर्थ है।

निराला की 'वह तोड़ती पत्थर' कविता की अपनी पढ़त-प्रक्रिया में शीतांशु उसकी प्रचलित व्याख्या से आगे बढ़कर आनृशंस्य और करुणा के भाव की झंकार सुन लेते हैं, और अपने इस सुनने को दृश्य, द्रष्टा और दृष्टि की तीन उपप्रोक्तियों के एक काव्य-प्रोक्ति में विन्यास द्वारा प्रमाणित करते हैं। निश्चय ही यह इस कविता को किसी विचाराधारात्मक संकीर्ण व्याख्या को अतिक्रमित कर मूल्य-चैतन्य के स्तर पर प्रतिष्ठित करता है। इस विवेचन में शीतांशु अपनी सूक्ष्म विश्लेषण-क्षमता के साथ-साथ काव्य-विवेक और काव्य-संवेदन को एकमेक कर देते हैं। केदारनाथ सिंह की कविता 'एक पारिवारिक प्रश्न' की अपनी पढ़त में वह अपने ही अनुज और प्रतिष्ठित आलोचक रविभूषण की पढ़त से असहमति तो जताते ही हैं, (जबकि यह पुस्तक रविभूषण ही को समर्पित है), लेकिन, साथ ही, यह भी प्रदर्शित करने में सफल होते हैं कि कविता में समाज और राजनीति किस स्तर पर और किस प्रकार व्यंजित होनी अपेक्षित है। उनकी इस पढ़त को पढ़ते हुए ऑक्तोवियो पॉज के कथन का स्मरण हो आता है कि प्रत्येक कविता अपने यानी कविता के लाभ के लिए कविता और इतिहास के सामंजस्य का प्रयास है और यह कहने की जरूरत नहीं होनी चाहिए कि कविता के इस लाभ के माध्यम से ही इतिहास का भी लाभ सम्भव हो पाता है। हाँ, 'और अन्त में प्रार्थना' (उदय प्रकाश) की उनकी व्याख्या से असहमति तो नहीं होती, लेकिन जो अर्थ वह बरामद करते हैं, वह शायद एक अच्छे सामान्य पाठक को बरामद होने वाले अर्थ से खास भिन्न नहीं लगता—चाहे उसकी बरामदगी की प्रक्रिया का विश्लेषण उस सामान्य पाठक को न आ सके।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'प्रत्यालोचनात्मक सर्जना' वाले खण्ड में डॉ. शीतांशु दिनकर, डॉ. रामविलास शर्मा, डॉ. नामवर सिंह और डॉ. मैनेजर पाण्डेय के आलोचनात्मक अन्तर्विरोधों और सीमाओं को उद्घाटित करने के लिए भी विसंरचनात्मक पद्धति का सहारा लेते हैं। यह नहीं कि उनकी इन पढ़तों के औचित्य का सवाल किया जा सके, लेकिन इस प्रक्रिया में कई जगहों पर वह विसंरचनात्मकता की इस मूल प्रतिज्ञा को कुछ भूलने से लगते हैं कि कृति से किसी केन्द्रीय अर्थ की बरामदगी सम्भव नहीं है। जब वह अपनी पढ़त से बरामद अर्थ को ही एकमात्र अर्थ मानने का आग्रह करते हुए अन्य अर्थों को खारिज करने लगते हैं तो अर्थ की अनन्त सम्भावनाओं या किसी की पढ़त के सदैव अपूर्ण रहने की अवधारणा का अस्वीकार होने लगता है। उदाहरण के लिए, 'पूस की रात' की उनकी व्याख्या को लिया जा सकता है। वह डॉ. नामवर सिंह की इस व्याख्या से असहमति प्रकट करते हैं कि पूस की रात की ठण्ड जमींदारी व्यवस्था की ठण्ड है, क्योंकि उनके अनुसार जमींदारी व्यवस्था जमींदार के लिए तो उष्मादायक होती है। शीतांशु हलकू का महसूस हो रही ठण्ड को अर्थाभाव की ठण्ड कहते हैं। लेकिन क्या प्रतीपता की अवधारणा के अनुसार जमींदारी व्यवस्था ही हलकू की अर्थाभाव की ठण्ड की उत्स नहीं है? दरअसल, ये दोनों ही व्याख्याएँ सम्भव हैं और विसंरचनात्मक पढ़त का सिद्धान्त इन दोनों को अस्वीकार नहीं कर सकता। एक ही पढ़त को एकमात्र वैध पढ़त मानना अर्थ की निरंकुशता को स्थापित करता है। इसी तरह, अज्ञेय की 'सोन-मछली' की डॉ. शीतांशु की व्याख्या में वह मछली की स्थिति को स्त्री की स्थिति के सन्दर्भ में देखते हैं और ऐसा भी देखा जा सकता है। लेकिन, जब अज्ञेय स्वयं उसकी व्याख्या इस तरह करते हैं, "जीवन को सीधे न देखकर हम एक काँच में से देखते हैं तो हम इन रूपों में ही अटक जाते हैं, जिनके द्वारा जीवन अभिव्यक्ति पाता है।" लेकिन, क्या इस व्याख्या से अलग एक यह व्याख्या सम्भव नहीं है कि कला या कविता में तटस्थ होकर देखना भी उस जिजीविषा की ही अभिव्यक्ति है, क्योंकि रूप-तृषा भी जिजीविषा की ही एक व्यंजना है। कला और जीवन का सम्बन्ध शायद यही है। दरअसल, यदि विसंरचना अर्थ की अनन्त सम्भावनाओं का स्वीकार है, तो किसी एक पढ़त को ही अन्तिम या पूर्ण निश्चित नहीं माना जा सकता। उसे एक वैध सम्भावना की तरह ही स्वीकार किया जा सकता है। कृति की श्रेष्ठता का तब एक प्रमाण यह भी हो सकता है कि वह कितनी पढ़तों को आकर्षित कर पाती है।

डॉ. मैनेजर पाण्डेय के आलोचना-कर्म के मूल्यांकन में डॉ. शीतांशु के कुछ अन्तर्विरोध भी स्पष्ट होने लगते हैं। निराला की कविताओं की रामविलासीय व्याख्याओं से सहमति जताते हुए डॉ. शीतांशु रामविलास जी में 'साहित्य पाठ की गूढ़ समझ की दृष्टि' की असफलता पाते हैं और यहाँ तक कह देते हैं कि "वस्तु-स्थिति यह है कि रामविलास जी को आधार-भाषा का ज्ञान है, पर काव्य-भाषा के मर्म की पहचान नहीं है और वह एक वही काम नहीं करते जिससे किसी कविता की पहचान सम्भव होती है।" लेकिन मैनेजर पाण्डेय वाले लेख में वह रामविलास जी को एक बड़े आलोचक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बड़ा आलोचक कहला सकता है? इसी प्रकार वह हजारी प्रसाद द्विवेदी के बारे में यह स्वीकार करते हैं कि उन्होंने 'प्रत्येक क्षेत्र में हरण-ही-हरण किया है' और उन्हें 'सिद्धहस्त नकलची' का विरुद देते हैं, लेकिन, मैनेजर पाण्डेय वाले निबन्ध में वह द्विवेदी जी को हिन्दी आलोचक के त्रिदेव तक में स्वीकार करते हैं। इसी प्रकार, सुधीश पचौरी के बारे में शीतांशु कहते हैं कि 'पचौरी अभी अधकचरे हैं। अपनी एक पुस्तक में उन्होंने नितान्त भ्रामक तथ्य को उपस्थिति किया है, भाषा-विज्ञान के एक पारिभाषिक-युग्म की अवधारणा को ही उल्टा पेश कर दिया है', जबकि उपर्युक्त लेख में वह इन्हीं पचौरी के बारे में लिखते हैं कि 'सुधीश पचौरी ने आज के पश्चिमी साहित्य-सिद्धान्तों को उनकी व्यापकता और गहनता में जाकर समझा है... उन्होंने उत्तर-संरचनावाद, उत्तर-आधुनिकता और विखण्डनवाद को अपनी पूरी इयत्ता में स्वरूपित-विवेचित किया है' आदि। स्वयं डॉ. नामवर सिंह के साहित्य-विवेक पर डॉ. शीतांशु को इसलिए तरह आता है कि वह 'तुच्छ और महत्त्वहीन चीजों को केन्द्र में रखकर... अपनी चिन्तन-रिक्तता की पोल खोलते नजर आते हैं। पर वे अपने तथाकथित प्रशंसकों के बीच उस राजा की तरह परम प्रफुल्ल और परितुष्ट दिखते हैं, जिसने अपनी निर्वस्त्रता में भी अपने को परिधानपूरित और सुसज्जित समझ रखा था।' लेकिन, उपर्युक्त लेख में वह नामवर जी को 'कविता और कहानी दोनों का पारखी आलोचक' कहते हुए उन्हें उसी तरह 'हिन्दी में समकालीन साहित्य का प्रथम भावक' कहना चाहते हैं, जैसे राष्ट्रपति भारत का प्रथम नागरिक होता है। मुझे लगता है कि शीतांशु के लेखन में कई बार उग्रता का जो आभास होने लगता है, यदि वह उससे अपने लेखन को उबार पाते तो उनके काम के गाम्भीर्य की ओर शायद ज्यादा ध्यान जाता। उनकी शिकायत गैरवाजिब नहीं है कि नामवर जी को उत्तर-आधुनिकता के सन्दर्भ में पचौरी जी के अलावा किसी नाम की याद नहीं आती। लेकिन, जब वह यह मानते हैं कि स्वयं नामवर जी की समझ भी उत्तर-आधुनिकता अथवा विसंरचनावाद के सन्दर्भ में प्रामाणिक नहीं है तो उनके द्वारा नामोल्लेख होना, न होने का अर्थ ही क्या रह जाता है?

डॉ. शीतांशु की पढ़तों से भिन्न पढ़तें भी हो सकती हैं और होंगी भी। लेकिन, इसमें कोई सन्देह नहीं कि इस पुस्तक में उन्होंने जिन कृतियों का विसंरचनात्मक विवेचन और प्रत्यालोचनात्मक सर्जना की है, वह गहरे विचार की हकदार है। उनके तलस्पर्शी विवेचन और आलोचनात्मक प्रदेय को अनदेखा किया जाना किसी भी तरह उचित नहीं माना जा सकता। सामान्यतः वह साहित्यिक राजनीति और खेमेबन्दी से दूर गम्भीर काम करते रहे हैं। यह हिन्दी आलोचना में व्याप्त विचारधारात्मक प्रदूषण का ही प्रभाव है कि हम वादमुक्त और स्वस्थ आलोचना-कर्म को पर्याप्त-ध्यान नहीं दे पाते।

डॉ. शीतांशु की यह पुस्तक अपनी कुछ छोटी खामियों, यथा—अनावश्यक व्यंग्योक्तियों, निजी प्रसंगों या कभी-कभी उग्र मुद्रा आदि के बावजूद हिन्दी की कुछ उल्लेखनीय कृतियों की विसंरचनात्मक पढ़त द्वारा उनसे कुछ नये अर्थ बरामद करने तथा इस पद्धति के सार्थक और स्वस्थ व्यवहार का निरूपण करने में पूर्णतया सफल कही जा सकती है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समीक्षा

प्रीतीश आचार्य की कहानियाँ

शंकर शरण*

प्रीतीश आचार्य को लिखते हुए चौंतीस वर्ष हो गये। किन्तु कितने साहित्य पाठक उन का नाम जानते हैं? इस दुर्भाग्यपूर्ण स्थिति को ठीक से समझने वाले भी देश में बहुत कम हैं। अंग्रेजी के साथ जुड़े हुए सत्ता के विशेषाधिकार ने कितनी ही सहज स्थितियों को विकृत और नष्ट कर दिया है, यह इसका भी उदाहरण है। किसी भी देश में साहित्य की पत्र-पत्रिकाएँ होती हैं, जिनसे वे लेखक-पाठक जुड़ते हैं, जो साहित्यिक रुचि रखते हैं। उस देश के राष्ट्रीय मीडिया में अच्छे लेखकों, रचनाओं की चर्चा भी होती है। लेकिन हमारे देश में अंग्रेजी के विशेषाधिकार के चलते यह पक्ष ही नष्टप्राय नहीं तो, लुप्तप्राय अवश्य हो चुका है। साहित्य की कोई अंग्रेजी पत्रिका कहने को भी नहीं है, जबकि बिजनेस, फैशन आदि की अनेक हैं। यह पहली दृष्टि में ही दर्शाता है कि हमारे जीवन के भावुक पक्ष के लिए कोई पौष्टिकता, बल्कि कोई स्थान तक नहीं रहने दिया गया है। दूसरी ओर, भारतीय भाषाओं में भी ऐसी राष्ट्रीय पहचान वाली कोई पत्रिका नहीं, जिसे सब जानते हों।

यह सांस्कृतिक भुखमरी है, लेकिन जिसे हमारा कोई 'बड़ा आदमी' नोट तक नहीं करता। इससे यही स्पष्ट होता है कि हमारी शिक्षा कितनी खोखली हो चुकी है। शिक्षित लोग, आम तौर पर, उन लोगों में बदल चुके हैं जिसे सोल्झेनित्सिन ने सोवियत रूस की स्थिति में 'एजुकेटेड रैबल' कहा था, वैसे औसत बुद्धि लोग जिन्हें घटिया शिक्षा दी गयी हो। उन्होंने कहा था कि यही रैबल, यानी निम्न कोटि की बेतरतीब भीड़ ने 'बुद्धिजीवी की पदवी हथिया ली है—यानी उनकी जो वस्तुतः रचनात्मक एलीट होते है, जो सदैव संख्या में बहुत कम होते हैं, और जो पूरी तरह स्वतन्त्र और आत्मनिष्ठ व्यक्ति हुआ करते हैं।" क्या हमारे देश के तथाकथित बुद्धिजीवियों पर भी यह सटीक नहीं बैठता? जिस तरह उनमें से अधिकांश ने विगत लोक सभा चुनाव से पहले वर्षों से नरेन्द्र मोदी का दानवीकरण करने का प्रयास किया, उसमें यही

* संपर्क : IV/44, एन.सी.ई.आर.टी. आवास, श्री अरविन्द मार्ग, नयी दिल्ली 110016.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'एजुकेटेड रैबल' वाली प्रवृत्ति थी। कोई रचनात्मकता, गम्भीरता और विशिष्टता नहीं, जो सच्चे इण्टेलिजेन्सिया (ज्ञानी-चिन्तक बुद्धिजीवी) की पहचान है।

इसीलिए, इस रैबल को स्वाभाविक रूप से इसकी समझ भी नहीं है कि हमारे देश की शिक्षा में सांस्कृतिक तत्त्व ही लुप्त हो गया है। इसकी सबसे प्राथमिक और अचूक पहचान है : भाषा के प्रति रुख। हमारे शिक्षित लोग, युवा लोग जो भाषा जानते हैं, जो भी भाषा जानते हैं, वह एकदम मरियल है। समय बर्बाद करने वाली टेलीविजन फूहड़ता द्वारा, सिनेमा के शोर-शराबे और क्रिकेट और राजनीतिक मतवादीकरण द्वारा उसकी भाषा ऐसी सूखी, दुर्बल हुई पड़ी है। यह हमारे युवाओं की, शिक्षित युवाओं की सम्पूर्ण चिन्तन-क्षमता और भावनाओं को मारे डालती है। इस प्रत्यक्ष किन्तु भयावह तथ्य की पहचान भी हमारे कितने 'बड़े लोगों' को है? निस्सन्देह, यह उस कथित बुद्धिजीवी वर्ग को भी नहीं है, जिसके अस्सी प्रतिशत लोग वस्तुतः सोल्झेनित्सिन के शब्दों में, 'एजुकेटेड रिफरैफ', शिक्षित निकृष्ट ही कहे जा सकते हैं।

सोल्झेनित्सिन ने कोई नयी बात नहीं कही थी। भारतीय मनीषा में बहुत पहले इस सत्य को बड़ी सुन्दरता से, और बिना किसी दुविधा के, बल्कि बल देकर कहा गया था: 'साहित्यसङ्गीतकलाविहीनः साक्षात पशुः पुच्छविषाणहीनः ...' तथा '... मनुष्यरूपेण मृगाश्चरन्ति'। उसी बात को सोल्झेनित्सिन ने अपनी तरह से कहते हुए एजुकेटेड रैबल की संज्ञा दी। हमारी शिक्षा की, और अनेक जाने-माने बुद्धिजीवियों की स्थिति भी सचमुच बड़ी दुःखद है।

सम्भवतः इसी पृष्ठभूमि में समझा जा सकता है कि हमारे देश में प्रीतीश आचार्य जैसे सुन्दर कलाकार को प्रायः कोई नहीं जानता, जो पच्चीस वर्ष से ओड़िया भाषा में साहित्य लेखन कर रहे हैं। चूँकि साहित्य लेखन, भाषा-सौन्दर्य, भाषा की क्षमता, रहस्य, इस पूरे महान विषय से ही हमारा शिक्षा परिदृश्य प्रायः अनजान है, इसलिए यह कतई कोई आश्चर्य की बात नहीं कि वह प्रीतीश आचार्य ही नहीं, साहित्य-कला की प्रायः किसी महान हस्ती से भी उसी तरह अपरिचित है। वह फकीरमोहन सेनापति या गोपीनाथ महांति को भी नहीं जानता, न निराला या अज्ञेय को। उन्हें पढ़ना, आनन्दित होना, सोच-विचार में डूबना, यह सब उसके हिस्से में नहीं आया। इसलिए उसका अधिकांश हिस्सा 'एजुकेटेड रैबल' ही रह जाता है। क्या यह कोई चिन्ता की बात है? यदि हमारे कर्णधारों की घोषणाओं, मीडिया चर्चाओं, कथित बुद्धिजीवियों, तथाकथित शिक्षा-शास्त्रियों को प्रमाण मानें, तो बिल्कुल नहीं। पैसा बनाना और राजनीतिक रूप से सुसंगत होना, इन दो के सिवाय हमारे देश की शिक्षा का कोई लक्ष्य नहीं है।

इसीलिए, हम प्रीतीश आचार्य को नहीं जानते...

लेकिन मेरे हाथ उनका यह संग्रह संयोग से लग गया है। बंगाल के एक कस्बे कांचरापाड़ा के अनाम से प्रकाशक रोशनाई प्रकाशन द्वारा हिन्दी में प्रस्तुत यह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कथा-संग्रह 'इति दुविधा कथा' ने सचमुच मुझे दुविधा में डाल दिया है। क्या वास्तव में देहाती इलाकों में सांस्कृतिक चेतना, रचनात्मकता, ज्ञान-भाव अब भी जीवित है, या कि यह वहाँ भी लुप्त होते संस्कृति की आखिरी किरणें हैं? 'गाँव मर रहा है' (अज्ञेय) या 'मार डाला गया है' (सोल्झेनित्सिन), यह तो सार्वभौमिक सत्य है। तब क्या प्रीतीश आशा जगाते हैं, या आह! यह दुविधा होती है।

यह आशा है कि हमारे देश में उत्कृष्ट साहित्य लेखन मर नहीं गया है। वह देश की भाषाओं में, देश के सुदूर, अनजान कोनों में प्रीतीश आचार्य जैसे कम जाने-माने लेखकों में जीवन्त है। फार्मूला लेखन से दूर, आलोचकों-पुरस्कारों को चौंकाने, आकर्षित करने, जैसी सायास कसरतों से दूर वह लेखक-कथाकार की स्वान्तः सुखाय रघुनाथ गाथा जैसी रचना कर रहा है। प्रीतीश की कहानियाँ निस्सन्देह इसी श्रेणी की हैं। यह साहित्य-कला की उन कसौटी पर खरी उतरती हैं, जिसे लेव टॉल्सटॉय ने रखा था। उनके शब्दों में, "कला का आरम्भ तब होता है जब एक मनुष्य अपनी किसी अनुभूति को दूसरों तक पहुँचाने के उद्देश्य से उस अनुभूति का अपने मन में पुनः ध्यान करता है और उसे किन्ही बाहरी संकेत-चिह्नों द्वारा व्यक्त करता है। पहले अनुभूत किसी अनुभूति का पुनः स्मरण करना, और स्मरण करके उसे किसी हरकत, रेखाओं, रंगों, ध्वनियों, शब्द-चित्रों आदि के माध्यम से दूसरों तक पहुँचाना, ताकि दूसरे भी उसकी अनुभूति कर सकें—इसी चीज में कला कर्म निहित है।"

इस प्रकार, किसी सहृदय मनुष्य द्वारा किसी अवलोकन से प्राप्त अनुभूति, उस अनुभूति से आलोड़ित होना, इस गहराई से कि उसे दूसरों तक पहुँचाने की प्रबल इच्छा हो, तदनुरूप उसका पुनः ध्यान करना, तब सटीक शब्दों में उसे पुनः प्रस्तुत करना—ऐसे कि पढ़ने वाले सहृदय के समक्ष वह घटना, अनुभूति, पुनः सजीव हो उठे—यही वास्तविक साहित्य लेखन है।

टॉल्सटॉय की दी हुई इस कसौटी पर प्रीतीश आचार्य की यह कहानियाँ उत्कृष्ट कला की श्रेणी में रखी जा सकती हैं। इसका इससे कोई सम्बन्ध नहीं कि यह कितनी चर्चित हुईं, कितनी सुन्दर, महँगी जिल्दों में इन्हें बाँधकर बडे-बड़े मंचों पर रखा गया, या कितने प्रोफेशनल समीक्षकों, 'प्रोमोटरों' ने इन्हें आसमान चढ़ाया। चालू वैश्विक परिदृश्य में इन गतिविधियों से जुड़ी रचनाओं को जोर-जबर्दस्ती सफलता और प्रसिद्धि दिलाने का चलन है। इसमें यह बात कहीं आती ही नहीं—जो वास्तविक कलाकृति की पहचान है—कि कितनी बड़ी संख्या में लोगों ने उसे समझा, सराहा। कृत्रिम प्रचार के बल पर बेची गयी कथा-पुस्तकें बेस्ट-सेलर तो कहला लेती हैं, किन्तु वह वस्तुतः बड़ी संख्या में लोगों छूती नहीं।

ठीक है कि सभी बेस्ट-सेलर कलाहीन रचनाएँ नहीं। पर यह भी सच है, जैसा उस महानतम रूसी लेखक ने कहा था, कि कई रचनाएँ ऐसी होती हैं "जिनमें कोई अर्थ नहीं होता, और फिर भी, बल्कि सम्भवतः इसीलिए उसे विशिष्ट संस्करणों में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जाता है, और उसे सर्वश्रेष्ठ रचनाओं का दर्जा दिया जाता है।" यह उन्होंने सवा सौ वर्ष पहले के यूरोपीय परिदृश्य पर कहा था, किन्तु यह आज मार्केटिंग, कैम्पेनिंग के युग में और भी सच है। इस स्थिति में सच्ची कला कहीं छिपी हुई, पाटपुर चौक के पास किसी गाँव-कस्बे के लेखक के माध्यम से किसी अनजान प्रकाशक के माध्यम से आयी हो, यह बिलकुल सम्भव है।

इस संग्रह की कई कहानियाँ, जैसे 'कुड़िम' 'ठण्डी बरफ', 'कलक्टर की ...ती', 'बेटी' आदि का कलात्मक प्रभाव मन को गहरे छूता है। इन्हें पढ़कर कोई भी ...्वी पाठक उद्वेलित हुए बिना नहीं रह सकता। लेखक ने इतनी सूक्ष्मता, और तटस्थ ...व से इन्हें प्रस्तुत किया है, मानो वह स्वयं किसी अन्तरिक्ष से धरती पर हो रही इन ...टनाओं को एकटक देख रहा हो। वस्तुतः ऐसा प्रभावकारी लेखन तभी होता है जब लेखक या कलाकार ने स्वयं उसका अनुभव किया हो और उसे अपने ही तरीके से सम्प्रेषित करने का यत्न किया हो। न कि किसी उधार की अनुभूति को सम्प्रेषित कर रहा हो, कि आजकल ऐसा या वैसा लिखने का चलन है।

आज हमारे बहुतेरे लेखक प्रसिद्धि की चाह में फैशनेबुल कथानक चुनते या ...ते हैं। जिस परिवेश में रहते हैं, उसमें अहर्निश घट रही घटनाएँ, दृश्य, चोट, हास्य, ...दना, उल्लास, आस्था, मान-सम्मान, निष्ठा, निर्ममता, आदि मानो उन्हें दिखती ही नहीं। इसके बदले वे किसी दूर काल्पनिक गाँव, किसी काल्पनिक फैक्टरी के मजदूर, या किसी काल्पनिक स्त्री का जीवन या संघर्ष चित्रित करने बैठ जाते हैं। ऐसे कृत्रिम, ...लेबल लेखन-परिदृश्य पर कवि अज्ञेय ने नोट किया था, मानो बटन दबाकर सारा ...जन किसी विशेष विषय या क्षेत्र की ओर मोड़ दिया जाता है। यह सब नकली कला है। लोग इससे प्रभावित नहीं हो सकते। क्योंकि इसमें कला की मूल आत्मा नहीं, एक ...नावटी प्रोफेशनलिज्म है, जो पाठकों के लिए नहीं, आलोचकों और पुरस्कार-समिति ...स्यों को लुभाने के लिए लिखा जाता है। मेहनत से लिखी हुई ऐसी कई रचनाएँ अधिक-से-अधिक जर्नलिज्म है, साहित्य-लेखन नहीं। जैसे कोई परिश्रमी संवाददाता किसी परिघटना को दर्ज करता है, उसी तरह हमारे कई प्रोफेशनल लेखक, लेखिकाएं ...नी कहानियाँ, उपन्यास लिख रहे हैं। यह जोर-जबर्दस्ती का, कृत्रिम लेखन है, वह ...ला नहीं जिसे साहित्य कह सकें।

उपर्युक्त बातें तुलनात्मक रूप से सहज ही मन में आती हैं, जब हम प्रीतीश के ...स संग्रह की कहानियाँ पढ़ते हैं। 'कुड़िम' को पढ़कर मैक्सिम गोर्की की कहानी 'चेल्काश' ...हज स्मरण हो आती है। दोनों को बिलकुल एक साथ पूरे गौरव से रखा जा सकता है। बिलकुल अलग दो देश, दो परिवेश, दो काल, मगर दोनों पात्र एक जैसी करुणा ...न में जगाते हैं। अविस्मरणीय पात्र बन जाते हैं। 'परोमा' भी एक अनूठा चित्र है, ...आधुनिक महानगरी, चमकदार जीवन के आकर्षण में मारे गये एक औसत मेधा, ...न्तु बड़ी महत्त्वाकांक्षा के युवक की विडम्बना दर्शाने में सफल होता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'ठण्डी बरफ' उस व्यतीत बचपन का चित्र है, जो सबके मन में किसी-न-किसी रूप से स्मृति में टँगा रहता है, किन्तु बिरले ही उसको जीवन्त रूप में पुनःप्रस्तुत कर पाते हैं। निर्मल वर्मा की कुछ कहानियों में बचपन के प्रसंगों में उस अनुभूति को पाया जा सकता है। कुछ वही अनुभूति 'ठण्डी बरफ' पढ़कर होती है। इसमें कोई कथा नहीं, केवल वह सशक्त अनुभूति है जो हमें तब हुई थीं, जब हम निष्पाप अवस्था में थे। वह काल हमें पुनः नहीं मिल सकता, वह सदा के लिए जा चुका। हम उसे केवल हसरत से याद कर सकते हैं, यह कहानी इसी की पुष्टि करती है। पुनः उस निष्पाप अवस्था में जा सकने की अटूट लालसा की थी।

इन कहानियों में कई तटस्थ व्यंग्य शैली में हैं। बिना किसी तेजी, तुर्शी, एकदम सरल प्रस्तुति में व्यंग्य पारदर्शी जल-सा झलक उठता है। बिना कहानी की धारा को कहीं भी रोके। यह स्वस्थ कोटि के व्यंग्य का लक्षण है।

'धूप तापना एक गैर-बुद्धिजीवी का काम है, सो आयोजक और इतिहासकार बौद्धिक चर्चा में व्यस्त थे। आयोजक मेरे मित्र के मित्र थे। वे अंग्रेजी और हिन्दी के वीच हिन्दी के, हिन्दी और क्षेत्रीय भाषाओं के बीच क्षेत्रीय भाषाओं के पक्षधर के रूप में जाने जाते थे। इस परिचय के नाते मैंने उनसे जाकर हिन्दी में पूछा, "सेमिनार कब तक शुरू होगा।" कलाई की घड़ी देखते हुए उन्होंने जवाब दिया, "जस्ट नाव, प्लीज गो इन।" (सेमिनार, 50)

सच तो यह है कि इस संग्रह की उन्नीस कहानियों में केवल सात उन्नीस हैं। कम-से-कम बारह कहानियाँ अपने कलात्मक सौष्ठव, भाव-भूमि की प्रस्तुति और मार्मिक सम्प्रेषण में बीस पड़ती हैं। धीरे-धीरे मिटते ग्रामीण-कस्बाई जीवन, उनकी सांस्कृतिक अवनति, इस गति में पुराने भारतीय मूल्यों के प्रति निष्ठा को सँभालने की इच्छा और जमाने की गति के सामने टिक न पाने की विवशता, चहुँओर भावानात्मक विघटन, के छोटे-छोटे चित्र इतने सशक्त रूप में मिलते हैं कि पढ़कर ढाढ़स भी होता है। यह ढाढ़स, कि देश के सुदूर, अनजान कोनों में अच्छे, सच्चे लेखक मौजूद हैं। वे अपने समाज के प्रति वास्तव में संवेदनशील हैं और उसकी सांस्कृतिक आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए परिश्रम कर रहे हैं। अच्छा हो, हमारे आलोचक, बुद्धिजीवी और शिक्षा-कर्मी ऐसे लेखन को प्रोत्साहित, प्रसारित करें। यह हमारे अपने सामाजिक हित में है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अहिंसा तीर्थ की आध्यात्मिक अनुभूति

डॉ. डी.एन. प्रसाद*

गी का अनुभव शब्द भारतीय चिन्तन परम्परा के अनुरूप है और उसी का एक नुन्नत एवं वृहत्तर दृष्टि भी है। वेदान्त दर्शन और उपनिषद् का गाँधी पर स्पष्ट भाव था। ज्ञान और अनुभव की वृद्धि के साथ-साथ अन्तिम दिनों में उन्हें *ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या* में विश्वास होने लगा था, परन्तु उनका सम्पूर्ण दर्शन संसार की सत्ता में विश्वास तथा अनेकता में अनुस्यूत एकता की अनुभूति पर आधारित है, इससे उनका र्शन विशिष्टताद्वैत के ज्यादा नजदीक मालूम पड़ता है। जैन सिद्धान्त 'अनेकान्तवाद' का गाँधी पर काफी प्रभाव है और वह सापेक्ष बहुलवाद को मानते हैं। गीता तो गाँधी विचार का सन्दर्भ ग्रन्थ है। पाश्चात्य दार्शनिक परम्परा में अनुभववादियों से तो उनका कोई साम्य नहीं मालूम पड़ता, क्योंकि वह आत्मा को अनन्त और शक्ति का भण्डार मानते हैं। जब वह यह कहते हैं कि हमारा सारा ज्ञान भीतर से प्रस्फुटित या प्रगट हुआ है तो उनका बुद्धिवादियों (Rationalists) से ज्यादा साम्यता मालूम पड़ती है। वे कहते भी हैं कि "बुद्धिवादी प्रशंसनीय जीव हैं।" उनका कथन है कि "मैं सत्य प्रतिदिन अधिक-से-अधिक स्पष्टतर रूप में देखता हूँ। मैंने यह कभी अनुभव नहीं किया है कि जो कुछ भी मैंने ज्ञान प्राप्त किया है, वह बाहर से थोपा गया है, बल्कि वह अन्दर से ही निकला है। यह अन्दर से उस सत्य का प्रगटीकरण या उसकी खोज है या दूसरे शब्दों में कहें तो सत्य के कुत्सित और कठोर आवरण को हटाना है।"[1]

बुद्धिवाद तथा अनुभववाद 'दोनों ही एकांगी विचार हैं और दोनों की अपनी-अपनी सीमाएँ हैं और ऊपर कहा गया है, गाँधी जी बुद्धिवादी की सीमाओं से अच्छी तरह परिचित थे। पाश्चात्य दर्शन में दोनों मतों का समन्वय काण्ट के आलोचनात्मक दर्शन में होता है। यदि हम काण्ट के बौद्धिक सत्य तथा उनके ज्ञान और श्रद्धा के निरा द्वैत से अलग होकर दोनों दार्शनिकों के नैतिक सत्य तथा उनके ज्ञान मीमांसीय दृष्टि से

---

*प्राध्यापक : महात्मा गाँधी अन्तराष्ट्रीय हिन्दी विश्वविद्यालय, गाँधी हिल्स, वर्धा–442005 (महाराष्ट्र); मो. 094200 63304; e-mail : dnpsayal@yahoo.co.in

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विचार करें तो गाँधी के व्यावहारिक आदर्शवाद (Practical Idealism) और काण्ट के नैतिक व्यावहारिक प्रज्ञा (Moral Practical Reason) के बीच काफी समानता है। दोनों के लिए नैतिक नियमों या मूल्यों का परम आधार प्रज्ञा में है और जो अनुभवातीत तथा प्रागानुभविक है। दोनों अन्तरात्मा की आवाज को नैतिक सत्य की कसौटी मानते हैं। दोनों के लिए नियम अनिवार्य आदेश या व्रत हैं, जिनके पालन में ही मानव जीवन की सार्थकता और पूर्णता निहित है। ये नियम प्रत्येक चेतनशील प्राणी के लिए सार्वभौम रूप से तथा अनिवार्यतः बन्धनकारी हैं। नैतिक नियमों की निरपेक्ष शुद्धता में दोनों का पूर्ण विश्वास है और दोनों मानते हैं कि इन्द्रिय प्रवृत्तियों से स्वतन्त्र या अनासक्त कर्म ही केवल पूर्ण नैतिक हो सकता है। काण्ट के लिए सदिच्छा (Goodwill) सर्वोच्च नैतिक मूल्य है जबकि गाँधी जी ने भी अहिंसा को सदिच्छा या शुभ-संकल्प के समतुल्य माना है।[2] अन्ततः दोनों शान्ति के पुजारी हैं और हिंसा या युद्ध को आपसी सम्बन्धों में वे चाहे व्यक्तिगत हों, या राजनैतिक, साध्य-साधन की शुद्धता के आधार पर पूर्णतः त्याज्य मानते हैं। काण्ट ने व्यावहारिक प्रज्ञा को मुख्यतः अहिंसामूलक माना है।[3]

उपर्युक्त समानताओं के बावजूद काण्ट और गाँधी के नैतिक दर्शन में कुछ मौलिक भिन्नता है। प्रथम, काण्ट नैतिक अनुभूति को केवल श्रद्धा का विषय मानते हैं, क्योंकि उनका सत्य ज्ञान केवल बौद्धिक ज्ञान तक ही सीमित है, जबकि एक तरफ वह बौद्धिक ज्ञान से नैतिक ज्ञान की श्रेष्ठता भी स्वीकार करते हैं। यहाँ यह मन्तव्य विचारणीय है कि काण्ट अपनी प्रारम्भिक मान्यता कि ज्ञान यथार्थ के साथ प्रत्यक्ष सम्पर्क से उत्पन्न होता है, के प्रति सच रहते हुए भी इस विचार को बनाये रख सकते थे कि मनुष्य वस्तुगत सत्य का प्रत्यक्ष दर्शन नैतिक अनुभूति में उत्कृष्ट रूप से प्राप्त करता है, जैसा कि गाँधी जी के सत्य-दर्शन में मिलता है और इसे भी किसी प्रकार के लौकिक ज्ञान के समान ज्ञान कहलाने का अधिकार है। दूसरा, काण्ट में नैतिक अनुभूति के ही समान एक विशिष्ट धार्मिक अनुभूति का अभाव है। मूल समस्या यह है कि काण्ट के धर्मदर्शन में केवल वैयक्तिक ईश्वर की कल्पना ही मुख्य है, जबकि गाँधी जी का ईश्वर सत्यधर्म या नीति का पर्याय है। फिर भी गाँधी जी की आध्यात्मिक अनुभूति में धार्मिक अनुभूति का सर्वोच्च स्थान है। सार रूप में, गाँधी की अनुभूति में मानव चेतना के विभिन्न रूपों—लौकिक तथा पारलौकिक, अध्यात्म और विज्ञान, श्रद्धा तथा बुद्धि, स्वधर्म और विश्वधर्म, प्रवृत्ति-निवृत्ति, देशहित और सर्वहित, आदर्श तथा व्यवहार का एक अद्भुत समन्वय है और इसी में निहित है मनुष्य का एक सन्तुलित एवं सुसंगत सम्पूर्ण जीवन-दर्शन!

गाँधी अध्यात्म पथ के एक निष्णात पथिक हैं। यह मार्ग संसार के विषय एवं व्यवहार जगत् में सत्य-अहिंसा दर्शन के सतत प्रयोग और क्रियान्वयन द्वारा सम्पूर्ण विश्व के साथ तादात्म्य स्थापित करते हुए मोक्षपद की उच्च भाव-भूमि तक जाता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यह मानव सेवा और कल्याण का मार्ग है, समस्त जीवों के प्रति करुणा और दया की भावना पैदा करने का और प्रेम-धर्म को सक्रिय एवं मूर्त रूप से स्थापित करने का यह एक महाप्रयास है। अहिंसा प्रेम का ही एक प्रकाश है। अहिंसा-ज्योति से सत्-पथ को आलोकित करते हुए वह अपने अन्तिम लक्ष्य की ओर एक-एक कदम आगे बढ़ते जाते हैं। गाँधी के शब्दों में "मेरे लिए मुक्ति का मार्ग अपने देश और मानवता की सेवा में अनवरत कठिन परिश्रम में है। मैं सभी जीवों के प्रति तादात्म्य स्थापित करना चाहता हूँ। इसीलिए मेरी देशभक्ति तो शाश्वत स्वतन्त्रता और शान्ति स्थल की अपनी यात्रा की एक पड़ाव या मंच है।"[4]

सत्य और ज्ञान की अनन्त विभूतियाँ हैं। नये अनुभव व ज्ञान से सेवा तथा कर्तव्य के नये-नये रूप प्रगट होते हैं और प्रतिदिन हम अपने आत्मशक्ति के भण्डार को परिपूरित करते रहते हैं।[5] गाँधी जी प्रतिदिन आध्यात्मिक लेखा-जोखा रखने की बात करते थे, 'कितना पाया, कितना खोया' यदि ठीक से हिसाब नहीं रखा तो दिवालिया हो जाने का भय है। यह कर्म तथा प्रवृत्ति का मार्ग है, परन्तु जब शरीर से कार्य करते हुए आत्मा निवृत्त रहती है, या जब सब कार्य परमार्थ के लिए अनासक्तिपूर्वक किये जाते हैं तो वह प्रवृत्ति ही निवृत्ति हो जाती है। सत्वानुष्ठान में दृढ़ता, अनासक्तिमूलक साधना, चित्त की एकाग्रता और सम्प्रजन्यता तथा निश्चयवृत्ति से आत्मा की गति वेगवती एवं बलवती होती है और उसमें तीव्रता आती है। *तीव्र संवेगानामासनः। योगसूत्र 1-21*

अध्यात्म मार्ग बड़ा ही कठिन और दुर्गम है। यह ऊर्ध्व गतिमान है। आत्मा हमेशा सरल तथा नीचे के मार्ग से जाना चाहती है। इस पर चलना खाँड़ की धार पर चलने के बराबर होता है जो थोड़ा भी बिछला तो नीचे गिरा। चूँकि मार्ग कठिन एवं लम्बा है अतः यदि गाँधी जी को आन्तरिक विश्राम एवं शान्ति की आवश्यकता पड़ती है तो वह हृदय के गहन कुंज में ही आराम कर लेते हैं।

गाँधी की तीर्थयात्रा एक आध्यात्मिक संग्राम है, जहाँ अच्छाई और बुराई, हिंसा और अहिंसा, शारीरिक और आध्यात्मिक शक्तियों के बीच सतत संघर्ष चल रहा है। उन्हें दो मोर्चों पर संघर्ष करना है। एक तरफ, अन्दर के विकार एवं बुराइयाँ हैं—काम, क्रोध, लोभ, अहंकार आदि जिनको वह अन्दर के विश्वासघाती दुश्मन कहते हैं और जिनको जीतना सबसे कठिन काम है। इनको जीत लेने पर बाह्य डर अपने-आप खत्म हो जाता है। दूसरा, मानव जगत् में व्याप्त बुराइयाँ—परतन्त्रता, हिंसा, अन्याय व अत्याचार एवं विषमता आदि से सतत संघर्ष करना। यह आत्मशुद्धि की प्रक्रिया है। आत्मशुद्धि में ही बाह्य शुद्धि मिली हुई है। आत्मशुद्धि अनिवार्यतः विश्व शुद्धि को प्रेरित करती है।

इस संघर्ष में अदम्य साहस और वीरता की आवश्यकता है। '*हरिनो मारग छे शूरानों नहिं कायरनू जोने*' यह प्रीतम का गीत गाँधी को बहुत प्रिय था। आत्मा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बलहीन को नहीं प्राप्त होती। *नायमात्मा बलहीनेन लभ्यो, न च प्रमादात्तपसो वाप्यलिंगात्। ये तैरुपायैर्यतते यस्तु विद्वांस्तस्यैव आत्मा विशते ब्रह्मधामः मुण्डक।* गाँधी जी जड़ता और कायरता को आध्यात्मिक मृत्यु की संज्ञा देते थे। आध्यात्मिक शक्ति ही सर्वशक्तिमान है। वह शारीरिक शक्ति से कई गुना अधिक है। सत्य और अहिंसा की शक्ति उनका कवच, ढाल तथा बख्तरबन्द है और है सत्याग्रह का ब्रह्मास्त्र, जिसके सामने बड़ी-से-बड़ी शक्ति भी किंकर्तव्यविमूढ़ और पराभूत हो जाती है। सत्याग्रह मार्ग केवल व्यक्ति का नहीं, प्रत्युत सामूहिक प्रयोग है। यहाँ अहिंसा एक सामूहिक शक्ति के रूप में प्रगट होती है। सत्याग्रह का मार्ग निम्नतर शक्तियाँ—चाहे आन्तरिक हों या बाह्य को पराभूत करने तथा उससे परे एक उच्चतर स्थिति की प्राप्ति के लिए सर्वोत्तम साधन हैं। एक पाश्चात्य दार्शनिक हेनरिच जिम्मर भारतीय दर्शनों के सम्बन्ध में चर्चा के दौरान सत्याग्रह के बारे में लिखते हैं— "गाँधी का सत्याग्रह का कार्यक्रम अर्थात् सत्य की दृढ़ निष्ठा या आग्रह जो भारत की योग-विद्या के प्रथम सिद्धान्त अहिंसा–न मारना या हिंसा न करना का कठोरता से पालन का है, निम्नतर शक्तियों के परे जाने तथा एक उच्चस्थिति में प्रवेश के प्राचीन हिन्दू शास्त्र में एक गम्भीर, बड़ा ही साहसिक तथा प्रच्छन्न रूप से अत्यधिक शक्तिशाली आधुनिक प्रयोग है।"[6] यह आत्मयन्त्रणा का मार्ग है। इसमें बुराई करने वाले को दुःख या कष्ट पहुँचाने के बजाय स्वयं कष्ट सहन और आत्म-नियन्त्रण रखना पड़ता है। स्वयं कष्ट सहन का गुण मानवजाति का पहचान चिह्न है। यह आत्मा का अत्यावश्यक गुण है। इस पीड़ा को पवित्र करने में मनुष्य की प्रगति की सार्थकता है। यह व्यक्तिगत पीड़ा जितनी पवित्र होगी, प्रगति उतनी ही महान होगी। यह अहिंसा की महान शक्ति को अपने अन्दर जागृत करने का मुख्य स्रोत है।

आध्यात्मिक मार्ग पर चलने के लिए सत्य और ईश्वर में अटूट श्रद्धा ही सबसे बड़ा सम्बल है। '*श्रद्धा चेतसः सम्प्रसादः सा हि जननीव कल्याणी योगिनं पाति।*' अभ्यास, वैराग्य, यम-नियमादि का पालन, व्रत, उपवास, प्रार्थना मौनादि ही इसके पोषक तत्त्व हैं। यह आत्मशुद्धि या चित्त-परिष्कार की प्रणाली है जिससे चित्त निर्मल होकर प्रसन्न होता है। आध्यात्मिक तथा नैतिक गुणों की साधना में एक अनिर्वचनीय आनन्द की प्राप्ति होती है। उपनिषदों में ऋषानन्द की बात आयी है। गाँधी जी इसका उल्लेख बराबर करते थे। यह चित्त की अभिरुचिमती वृत्ति है। गाँधी की मान्यता है कि जहाँ सत्य होगा वहाँ आनन्द अवश्य होगा। सत्य की साधना में जो अपरिमित आनन्द मिलता है वह उसकी सिद्धि में नहीं, वह एक साधक थे, सिद्ध नहीं। यहाँ उनके एक फारसी उपाख्यान का उद्धरण बहुत ही उपयुक्त मालूम पड़ता है। 'प्रेम पात्री सीरी सत्य की प्रतिनिधि है जो दुर्गम पर्वत के उस पार रहती है और उस तक पहुँचने के लिए उसके प्रेमी को एक पूरा पहाड़ काटने में लगना पड़ा, पर चूँकि प्रेमी का हथियार ज्यादा काम का नहीं था, अतः उसको इस काम में बरस के बाद बरस

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बिताने पड़े, परन्तु इसके लिए उसको कोई शिकायत नहीं थी। उसे अपने उसी अथक प्रयास में आनन्द मिलता था। वह जानता था कि अन्ततः वह सीरी तक पहुँचकर रहेगा।"[7] गाँधी के लिए अहिंसा ही प्रेम पात्री सीरी है।

सत्य की यात्रा अनन्त है गाँधी की मान्यता है कि सत्य और अहिंसा का पूर्ण साक्षात्कार मनुष्य के एक जन्म में सिद्ध होने वाला नहीं है। यह तो कई जन्मों के अथक प्रयास के बाद ही कहीं पूर्णतः फलीभूत हो सकता है। '*अनेक जन्म संसिद्धस्ततो याति परां गतिम्।*' इसके लिए आत्मा के अमरत्व तथा पुनर्जन्म में विश्वास आवश्यक है। मनुष्य एक मरणशील प्राणी है, परन्तु मनुष्यजाति और मानवता अमर है। आत्मा तो अमर है ही। संसार में व्याप्त असत्य और हिंसा के बीच गाँधी ने सत्य और अहिंसा का मार्ग प्रशस्त किया, सर्वसुलभ बनाया और समस्त मानवता को उस अमरत्व की ओर अग्रसर होने की महान् प्रेरणा दी। प्राचीन ऋषियों ने भी शस्त्र बल की निस्सारता को पहचाना था और परम अहिंसा धर्म की अनुभूति की थी।

सन्दर्भ

1. Ayer, R., The Moral and Political Philosophy of M.K. Gandhi (ed.) Vol. 2 Page 186.
2. *Ibid*, Page 417.
3. Kant's Political Writings (ed.) Hans Reiss, Trans. H.B. Nisbet, Page 104, 116, 174.
4. Young India, 3-4-1924.
5. *Ibid*, 8-4-1929.
6. Zimmer Heinrich, The Philosophies of India, Page 172.
7. रोमाँ रोलाँ, महात्मा गाँधी : जीवन और दर्शन, पृ. 172।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विज्ञान की पृष्ठभूमि से सजी-सँवरी आधुनिक हिन्दी कहानी

अपराजिता राय*

कहानी साहित्य की एक महत्त्वपूर्ण विधा है। कहानी कहने और सुनने की परम्परा हमारे समाज में प्राचीनतम है। यद्यपि प्राचीन युग में गद्य और किस्से संस्कारित होकर आधुनिक कहानी का रूप धारण करती है। जो तत्त्व और उद्देश्य की दृष्टि से प्रौढ़ और विकसित हुई। कहानी को परिभाषित करते हुए एडगर एलन पो ने कहा कि—"कहानी रसोद्रेक करने वाला ऐसा आख्यान है जो एक ही बैठक में पढ़ा जा सके।" कथा-साहित्य सम्राट प्रेमचन्द के अनुसार—"कहानी एक ऐसा उद्यान नहीं जिसमें भाँति-भाँति के फूल और बेलें सजी हुई हैं बल्कि एक ऐसा बगीचा है जिसमें एक ही गमले का माधुर्य अपने सम्मुनत रूप से दृष्टिगोचर होता है।"

कहानी में उपन्यास की भाँति उलझाव नहीं होता, निबन्ध की भाँति जटिलता नहीं होती, कविता की भाँति अभिव्यक्ति में लाक्षणिकता एवं व्यंजनात्मकता से पाठक का भटकाव नहीं होता। कहानीकार तो एक निश्चित लक्ष्य को लेकर कथावस्तु की सृष्टि करता है जो कहानी का आरोह होता है। चरम स्थिति अथवा लक्ष्य की पूर्ति के साथ कहानी का अवरोह होता है; जिसमें उद्देश्य का परिणाम निहित रहता है। इस दृष्टि से कहानी की मूलभूत विशेषताएँ प्रतिपादित की गयी हैं—सीमित कथानक गतिशील संवाद, सुहाना वातावरण, योजना, रोचकता और स्वाभाविकता।

अस्तु, यह सहजता हमें आज के विज्ञान कथाकारों के सृजन में मिलते हैं। यह विज्ञान-कथा आधुनिक कथा-साहित्य की एक बेजोड़ कड़ी है। चूँकि आज भी इन कहानियों का हिन्दी साहित्य के साथ वह गठजोड़ नहीं हो पाया है जो होना चाहिए। कारण यह है कि आज के साहित्यकार वैज्ञानिक वर्ग से जुड़ने से कतराते हैं।

सामान्यजन के मध्य ज्ञान प्रसार के लिए कहानी की परम्परा प्राचीन से ही अनवरत चली आ रही है। वेद, ब्राह्मण, उपनिषद्, पुराण, रामायण, महाभारत आदि

*पत्नी श्री पंकज कुमार राय, ग्राम पोस्ट—गोमाडीह, जनपद—आजमगढ़ (उ.प्र.); मो. : 09415602150

 CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अनेक कथाएँ भारतीय वाङ्मय में विद्यमान हैं। इन कथाओं का अनुशीलन अगर वैज्ञानिक चश्मे से करें तो अनेक विज्ञान की प्रच्छन्न धारणा युक्त कथाएँ हैं। इन कथाओं को पढ़ने और सुनने से हमें उस ज्ञान की प्राप्ति होती है जो ज्ञान की चरम अवस्था है। परन्तु उस चरम चिन्तन को व्यापक करना होता है। हमें सुन्दरम से हटकर सत्यम् और शिवम् की व्यापकता को समझना होता है। अस्तु, स्वस्थ सामाजिक दायित्वों से जुड़ते हुए आज कथा-साहित्य के लिए अति सत्य का उद्घाटन एक आवश्यक आयाम है। यह आयाम समकालीन कहानी के साथ जुड़ती है। जैसा कि साहित्य हमें आनन्द, विह्लता एवं अनुभूति के माध्यम से सत्य की ओर अपनी तर्जनी इंगित करता है। इस सत्य को उदघाटित करने हेतु साहित्य में वैज्ञानिक धरातल पर कहानीकारों का कथा-सृजन एक स्तुत्य प्रयास है।

हिन्दी विज्ञान कथा का प्रादुर्भाव आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी के सम्पादन में हिन्दी साहित्य की प्रतिष्ठित पत्रिका 'सरस्वती' (अंक 6,1900) में हुआ था। डॉ. राजीव रंजन उपाध्याय का मानना है कि इसके पूर्व 1880-86 के मध्य में साहित्याचार्य पं. अम्बिका दत्त व्यास की दीर्घ कलेवर की विज्ञान उपन्यासिका 'आश्चर्यजनक वृत्तान्त' उन्हीं के समाचार-पत्र 'पीयूष प्रवाह' में प्रकाशित हुई थी। हिन्दी साहित्य के इतिहास लेखकों की दृष्टि से इस पुस्तक का छूट जाना वास्तव में आश्चर्यजनक है, जो जीवन्तता, जिज्ञासा, रोचकता, हास्य-व्यंग की छटा, भाषा और वर्णन में एक साथ मौजूद है, वह अपने-आप में अनोखा प्रभाव छोड़ती है। यदि इस प्रकार के दीर्घ कलेवर के उपन्यास को भी कथा, कहानी, विज्ञान कथा का स्वरूप स्वीकारें तो यह रचना सरस्वती में प्रकाशित 'चन्द्रलोक की यात्रा' और 'आश्चर्यजनक घण्टी' से पूर्ववर्ती विज्ञान कथा के रूप में प्रतिष्ठित होने के योग्य है। (विज्ञान कथा, त्रैमासिक, मई 2004)

जब कल्पना सैद्धान्तिक एवं तकनीकी भाव-भूमि पर मनोरंजन का रंगीन लिबास धारण कर लेती है तो वहाँ विज्ञान कथा का जन्म होता है। यद्यपि विज्ञान-ज्ञान की चरम अवस्था की संज्ञा है अर्थात् ज्ञान शब्द सामान्य रूप से जानने के अर्थ में तथा विज्ञान शब्द निश्चित सिद्धान्त के प्रतिपादन के अर्थ में प्रयुक्त होता है। अतः ज्ञान और विज्ञान के समुन्नत योग हमें विज्ञान कथाओं में मिलता है।

विज्ञान-कथा के सार्थक सृजन के लिए 'भारतीय विज्ञान कथालेखक समिति' (1995) की स्थापना फैजाबाद में हो चुकी है। वैज्ञानिक तथ्यों को आधार बनाकर सृजित ये कहानियाँ पाठक को सैद्धान्तिक एवं तकनीकी जमीन से जोड़ते हुए साहित्य के मीठे रस का पान कराती हैं। इस रस-पान से ज्ञान के भूख की वह ज्वाला शान्त होती है जो आम जन के लिए मात्र रहस्य, भ्रान्ति एवं कल्पना से सनी भावना विज्ञान, प्रौद्योगिकी एवं चिकित्सा के प्रति तटस्थ बना देती है। आज के वैज्ञानिक कथाकार विज्ञान के गूढ़तम तथ्यों एवं सिद्धान्तों को साहित्य की सरस चासनी में पागकर जन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सामान्य तक पहुँचाकर मन की भ्रान्तियों एवं विज्ञान की अज्ञान रूपी अन्धकार में कथा प्लाट के माध्यम से ज्ञान के दीये जलाते हैं। विज्ञान, चिकित्सा एवं प्रौद्योगिकी की पृष्ठभूमि पर रचित कहानियों को पाठकों तक बोधगम्य भाव में सम्प्रेषित करते हैं। ये विज्ञान कथाएँ अनेक उलझे हुए, तथ्यों एवं भ्रान्तियों को सहज भाव से ही सुलझा देती हैं। इन कथाओं के ताना-बाना में कृष्ण की वाणी बार-बार गुंजित होती है–

'ज्ञान तेऽहं सविज्ञान मिदं वक्ष्याभ्यशेषतः,
य ज्यात्वानेह भूयोऽन्यजज्ञात व्यभवशिष्यते।'

उसके आगे कुछ भी जानने को बाकी नहीं रह जाता।

इन कहानियों की सृष्टि समाज से कटकर नहीं वरन समाज से जुड़कर की गयी है। इनमें अन्य साहित्यिक कहानियों की भाँति ही अत्यन्त संक्षेप में घटना, पात्रों से सम्बन्धित स्थान, काल एवं वातावरण का चित्रण बखूबी किया गया है। साथ ही वातावरण भौमिक एवं मानसिक दोनों प्रकार का है। अतः वातावरण का समग्र भाव दृष्टिगोचर होता है। अपने तथ्य और लक्ष्य को ध्यान में रखते हुए कथाकार ने पात्रों का चयन किया है। इन कथाओं में संवाद हेतु वातावरण के अनुकूल सरल, शिष्ट, लाक्षणिक एवं प्रभावपूर्ण भाषा का प्रयोग किया जाता है। जो कहानी-कला की कसौटी पर खरी उतरती है। हाँ, इतना अवश्य है कि इन कथाओं में तथ्य के अनुकूल वैज्ञानिक शब्दों का प्रयोग प्रचुरता से किया गया है। जो सामान्य-जन को समझने में थोड़ी जटीलता का अनुभव होता है। यह जटिलता स्वाभाविक है, क्योंकि सामान्य जन कई तकनीकी शब्दावलियों से वाकिफ नहीं होते। जब वे शब्द एकाएक सामने आते हैं तो उन्हें कठिनाई का अनुभव होता है, परन्तु कुछ ही समय में ये कठिनाई समाप्त हो जाती है। इस भाग-दौड़ की जिन्दगी में हम अल्प समय से ही अपने ज्ञान की भूख को मिटा देते हैं। इतना तो सत्य है कि हमें विज्ञान से सम्बन्धित किसी तथ्य, प्रकरण, विषय पर जानने के लिए किसी कक्षा अथवा प्रयोगशाला में जाने की जरूरत नहीं, न ही किसी विज्ञान की भारी-भरकम पुस्तक का अवलोकन करने की आवश्यकता होती बल्कि तथ्य से सम्बन्धित एक विज्ञान-कलाकार के सृजन को पढ़ जाने की। मन में अनेक भ्रान्तियों, गुत्थियों एवं अस्पष्ट होते सवालों के उत्तर हमें क्षण-भर में मिल जाते हैं। यह कोई सस्ता साहित्य नहीं है, जिसमें विज्ञान के माध्यम से केवल सामान्य-जन को भटकाया जाता है। यह स्तरीय साहित्य है जो कथाकारों द्वारा विज्ञान तथ्यों एवं संकल्पनाओं को अच्छी तरह से आत्मसात कर पाठक के सामने परोसा जाता है।

सन् 2008 के एक स्तरीय पत्रिका में एक समालोचक महोदय ने यह आरोप लगाया था कि 'विज्ञान कथा' विज्ञान विषयक विदेशी सामग्री का अनुकरण अथवा अधकचरा अनुवाद मात्र होता है– जो साहित्य में अपनी पैठ बनाने के लिए आतुर है।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इतना सत्य है कि हिन्दी कथा-साहित्य के प्रयोग काल में इस ढंग की कथाएँ, उपन्यास देखने को नहीं मिलते हैं। परन्तु आज के इन वैज्ञानिक साहित्यकारों के सृजन को शायद यह महोदय समझ नहीं पाये हैं, अथवा इन कथाओं के अनुशीलन के लिए इनके पास कभी फुर्सत ही नहीं है, जो इसकी विशेषता को समझ सकें।

कुछ विज्ञान-कथाएँ दूरदर्शी हैं जो भविष्य की घटनाओं की आशंका व्यक्त करती हैं, जैसा कि ह्यूगो गर्न्सबैक ने विज्ञान कथा को परिभाषित करते हुए कहा है– "ये ऐसी कथाएँ हैं जिसमें आकर्षक रोमांस के साथ वैज्ञानिक तथ्य तथा युग स्रष्टा की दूरदर्शिता का सम्मिश्रण हो।" कहना न होगा कि विज्ञान-कथा का यह तत्त्व एक ओर हमें विज्ञान के गुणों से अवगत कराते हैं तो दूसरी ओर विज्ञान टेक्नोलॉजी के गलत प्रयोग से मानव को सावधान भी करती है। इन कथाओं में कर्कशता नहीं वरन् आधुनिकता के साथ लोच का प्रणयन है। संवाद लघु एवं अभिनयात्मक है जो कहानी के वातावरण से पूर्णतया संयोग करती हुई लक्ष्य की पूर्ति में सहायक होती है।

इस तरह हिन्दी की प्रथम विज्ञान-कथा पत्रिका 'विज्ञान कथा' (त्रैमासिक, सम्पादक डॉ. राजीव रंजन उपाध्याय) इस कथा-साहित्य को सुदृढ़ बनाने में अपना सहयोग दे रही है। इस पत्रिका के कथाकारों–डॉ. राजीव रंजन उपाध्याय, श्री हरीश गोयल, श्री गोपाल काबरा, श्री शान हैदर जैदी, डॉ. अरविन्द मिश्र, कल्पना कुलश्रेष्ठ, अन्वेषा माइती आदि का सक्रिय योगदान उल्लेखनीय है।

अतः स्पष्ट है कि विषय-वस्तु का विकास समकालीन कहानी की उपलब्धि है। वस्तु स्थिति के प्रति कथाकार जागरूक रहे हैं परन्तु कथा-वस्तुओं को आन्दोलन का रूप देखकर सीमित दायरा बना दिया गया है तथा विखण्डित दृष्टि के द्वारा कथा में पैनापन आ गया। हिन्दी साहित्य की कहानी ने विकास के अनेक आयाम ग्रहण किये हैं। विज्ञान भूमि भी एक आयाम है। मैं इन कथाकारों के स्तुत्य प्रयास को आन्दोलन का नाम देकर पैनापन नहीं लाना चाहती बल्कि इन कथाओं को साहित्य समाज से जोड़कर हिन्दी कथा-साहित्य विधा को मजबूती देना चाहती हूँ। कहानी साहित्य के इस क्रमिक विकास विज्ञान कथा-लेखन की कड़ी का जुड़ाव कथा-साहित्य विधा के गगनचुम्बी इमारत का शिखर सिद्ध होगा। समय की भी यही माँग है। ये कथाएँ साहित्य समाज के लिए संग्रहणीय थाती है। ये आधुनिक कहानी वैज्ञानिक पृष्ठभूमि से सजी सँवरी लोक-मंगल की कामना करती हुई सत्य का उद्घाटन करती है। ट्राटस्की का कथन है–

"कवि या कलाकार किसी भी विषय पर लिखने के लिए स्वतन्त्र है, पर उसकी रचना समय की प्रगति और जीवन्त विचारों की वाहक होनी चाहिए।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विचारों के झरोखे से जीवन-बोध ('मेरी जीवन-यात्रा' के विशेष सन्दर्भ में)

अरुण प्रसाद रजक*

'मेरी जीवन-यात्रा' राहुल सांकृत्यायन की आत्मकथा है। यह आत्मकथा पाँच खण्डों में विभाजित है। राहुल जी ने आत्मकथा के बहाने निजी जीवन-सन्दर्भ में निहित विचारधाराओं की खोज की है। केदारनाथ पाण्डेय से राहुल सांकृत्यायन बनने की प्रक्रिया के पीछे सक्रिय विचारों को जानने का सलीका ही 'मेरी जीवन-यात्रा' है। राहुल जी वैचारिक ढंग से निजी जीवन के विवरण और ब्यौरे लिखते समय युग भी व्यक्त करते हैं। इसी क्रम में उन्होंने आत्मकथा के फार्म को भी एक सिरे से परिभाषित किया है।

राहुल जी ने अपनी आत्मकथा को 'मेरी जीवन-यात्रा' कहा है। वैसे तो प्रत्येक व्यक्ति जन्म से मृत्यु तक एक यात्रा करता है, वह एक बिन्दु से प्रस्थान कर दूसरे बिन्दु तक पहुँचता है। लेकिन राहुल जी का जीवन इस अर्थ में यात्रा है कि उनके जीवन का बहुत बड़ा अंश पर्यटन में बीता। उनका जीवन यात्राओं का ही एक सिलसिला बन गया।

अपनी आत्मकथा के आरम्भ में ही उन्होंने लिखा है—"बेड़े की तरह पार उतरने के लिए मैंने विचारों को स्वीकार किया, न कि सिर पर उठाये-उठाये फिरने के लिए।"[1] यह बुद्ध के इस कथन का हिन्दी रूपान्तरण है 'कुल्लुपम देसेस्यामि वो भिक्खवे धम्मं तरणत्याय नो गृहणव्याय'। विचार को आत्मसात करने का तरीका, यह अंगार, जो राहुल जी को बुद्ध से मिला था—वह उनके सम्पूर्ण जीवन-यात्रा का निष्कर्ष है। यात्री के रूप में वे केवल जमीन के टुकड़े पर ही नहीं दौड़ते रहे, बल्कि विचारों के क्षेत्र में भी वे आजीवन यात्री रहे। वे कभी एक स्थान, सिद्धान्त अथवा विचार पर स्थिर नहीं

*शोधार्थी, हिन्दी विभाग, कलकत्ता विश्वविद्यालय, अतिथि प्रवक्ता, विद्यासागर विश्वविद्यालय, मेदिनीपुर; सम्पर्क—20, पी.वी.एम.रोड, चाँपदानी, हुगली, पिन—712222; मो.—08100935197, ई-मेल : arunrajak30@gmail.com

 CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है। विशेष धर्म, पन्थ, ग्रन्थ के प्रति उनका आग्रह कभी नहीं रहा। यह उल्लेखनीय है कि एक पिछड़े हुए इलाके के पिछड़े ग्रामीण ब्राह्मण कुल में पैदा होकर उसकी सारी पुरानी परम्पराओं से घिरे रहने के कारण भी राहुल जी ने आखिरकार क्या जिज्ञासा थी, जो उनको सनातन धर्म से आर्य समाज की ओर ले गयी? उनकी जीवन-यात्रा उस द्वन्द्व और संघर्ष की कहानी है, जहाँ सनातनी संस्कारों से मुक्त होकर वे आर्य समाजी बन जाते हैं। फिर उसे छोड़ बौद्ध धर्म अपना लिया। बौद्ध धर्म भी जितनी दूर तक ठीक लगा उसे आत्मसात किया। बुद्ध से उन्होंने यह सीखा कि जो बेहतर हो उसे इस्तेमाल करो। वे फिर चीवर भी छोड़कर कम्युनिस्ट हो गये। अपनी जीवन-यात्राओं में उन्हें जो मूल्यवान मिला, उसे संचित किया। इसलिए उनका व्यक्तित्व एवं कृतित्व सदैव गत्यात्मक रहा है। राहुल जी के विचारों की यात्रा ही उनकी जीवन-यात्रा है, जीवन संघर्ष भी।

आत्मकथा में लेखक सभी स्मरण रहने वाले घटना प्रसंगों का बयान नहीं करता। वह केवल चुनिन्दा घटना-प्रसंगों को ही वर्णित करता है और इस चुनाव का मानदंड वर्तमान बोध होता है। वर्तमान बोध के आलोक में चुनी हुई अतीत की घटनाओं में अपने कलात्मक प्रतिभा के बल पर कार्य-कारण भाव स्थापित कर वह अपने व्यक्तित्व विकास की प्रक्रिया को दर्शाना चाहता है। राहुल जी अतीत में जब घटनाएँ जी रहे थे, तब वे सरयूपारीय ब्राह्मण कुल में जन्मे केदारनाथ पाण्डेय थे। लेकिन जब आत्मकथा लिख रहे हैं तो वे साम्यवादी राहुल हैं। साम्यवाद की रोशनी में ही वे अतीत के चीजों को खोलते हैं। लेखक दिखलाते हैं कि सामन्ती मूल्यों से लैस केदारनाथ पाण्डेय के व्यक्तित्व में कितनी खामियाँ थीं। उनके सामन्ती संस्कारों और सामन्ती मूल्यों में जकड़न था। 'प्रथम उड़ान' अध्याय में वे बतलाते हैं कि कैसे कलकाता में बिन्दा प्रसाद पाठक के प्रभाव के आकर एक सरयूपारीय ब्राह्मण के व्यक्तित्व में रूपान्तर होने लगा! पहले तो अपने मित्र (बस्तीवाले देवता) के हाथों से बनी पक्की रसोई थोड़े से मानसिक संकट के साथ ग्रहण करना शुरू किया। राहुल के शब्दों में 'एक अज्ञात ब्राह्मण के हाथ का भोजन स्वीकार किया।'[2] फिर बड़े चाव से पावरोटी खाना शुरू किये, जिसे वे 'क्रिस्तानी' खाना समझते थे। आश्चर्य तो तब हुआ जब 'पाठक जी ने हावड़ा पुल के पास ले जाकर पावरोटी की उन दुकानों को दिखलाया, जिनमें शंख से सफेद मोटे-मोटे जनेऊ पहिने बंगाली ब्राह्मण पावरोटी बेचा करते थे।'[3] पूँजीवादी विकास के साथ सामन्तवाद के ध्वस्त होने की प्रक्रिया से एक ब्राह्मण को भी गुजरना पड़ा, जिससे धीरे-धीरे ब्राह्मणवाद और सामन्तवाद के प्रति उनमें मोहभंग हुआ। इस मोहभंग के पीछे पुराने विचारों को त्यागने की ऊर्जा और नये विचारों को आत्मसात करने की ललक ही राहुल जी में प्रमुख है, जो कि 'विकास' का लक्षण है। उपर्युक्त सभी अतीत के घटनाओं का जिक्र व्यक्तित्व विकास की प्रक्रिया को दर्शाने के लिए किया गया है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अतीत के इन सभी ब्यौरों में लेखक के वर्तमान बोध का अस्तित्व लुप्त नहीं होता। विगत बोध के साथ वर्तमान बोध भी सजग रहता है। राहुल जी वेदान्ती से शिवभक्त बने और उनका झुकाव तन्त्र-मन्त्र की ओर होने लगा। उन्होंने तन्त्र साधना का प्रयास किया और उसमें असफल रहे। मन्त्र साधना की व्यर्थता को देख राहुल जी में परिवर्तन आया। तत्पश्चात वे वर्तमान के वैचारिक झरोखे से स्वयं पर सवालिया निशान लगाते हुए कहते हैं–"धार्मिक वायुमण्डल में उड़ने के साथ ठोस पृथ्वी पर भी पैर रखना चाहिए, इधर भी मेरा ख्याल गया।"[4] आत्मकथा में वर्तमान बोध हमेशा हावी रहता है। उनके वर्तमान का नजरिया उन पुनरुत्थानवादियों से अलग है, जो आज भी परिवर्तन के रूप में एक पुनरुत्थान पेश करते हैं, चाहे वह आर्य समाज के रूप में या रामराज्य के रूप में पेश करते हैं। राहुल जी समाज परिवर्तन के लिए ऐसी विचारधारा के कायल नहीं हैं, जो दो कदम आगे बढ़कर चार कदम पीछे ढकेल दे। इसके लिए मार्क्सवाद ही ऐसी विचारधारा है, जो सामाजिक विकास में सक्षम है। हालाँकि उन्होंने राजनीतिक जीवन की शुरुआत कांग्रेस कार्यकर्ता के रूप में किया। एकमा में 'चर्खा खद्दर-प्रसार' एवं 'मादक द्रव्य-निषेध' के आन्दोलन में भाग लिया। सितम्बर 1921 में वे कांग्रेस कार्यकर्ता के रूप में छपरा के बाढ़-पीड़ितों की सहायता करते हैं। इस दौरान गाँधीवादी उपचार की पहल की जाती है और पीड़ितों में चरखे-करघे बाँटने की योजना बनायी जाती है। लेकिन लेखक के साम्यवादी व्यक्तित्व का वर्तमान बोध यह जानता है कि पूँजीवादी समाज की सही समझ न होने के कारण गाँधीवादी विचारधारा बुनियादी समाज परिवर्तन नहीं कर सकता। इसलिए वे 'खद्दर अर्थशास्त्र' की सीमा बतला देते हैं।[5] यहाँ यह समझने की जरूरत है कि आत्मकथा में विगत-बोध तथा वर्तमान-बोध सृजन के क्षणों में जुदा-जुदा नहीं रहते, बल्कि एक दूसरे में संयुक्त हो जाते हैं। इस प्रक्रिया की अन्तिम परिणति वर्तमान-बोध को प्रभावशाली रूप में उभारने में सिद्ध होता है। राहुल जी वर्तमान के वैचारिक झरोखे से अपने अतीत में झाँकते हैं और खुद पर प्रश्न चिह्न लगाते हुए, आत्मालोचन करते हुए आगे बढ़ते हैं। इस तरह राहुल जी की आत्मकथा की प्रस्तुती में अतीत में 'एक परफेक्ट वर्तमान' भी नजर आता है।

कोई भी लेखक सबसे ज्यादा बेवाक तब होता है, जब सृजनात्मक लेखन कर रहा होता है और सबसे ज्यादा संशय तब, जब आत्मकथा में सायास 'सच' लिख रहा होता है। आत्मकथा सत्य की परीक्षा के लिए कसौटी होती है। इसलिए व्यक्तित्व अनुशीलन के लिए लेखक के साहित्यिक कृतियों के मुकाबले उनकी आत्मकथा महत्त्वपूर्ण होती है। लेकिन आत्मकथा में सत्य की खोज इतनी आसान नहीं होती कि उसे खींच-तानकर एक दायरे में फिट कर दिया जाये। गेटे ने लिख है–"आत्मकथा का जो सत्य है वह या तो तथ्य के साथ जुड़ा हुआ होता है या लेखक की अनुभूतियों से जुड़ा रहता है और अपने सही अर्थों में इन दो सम्बन्धों के समन्वय से विकसित

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

होता है।"[6] यही कारण है कि सच बहुआयामी ही नहीं, सतत गतिशील और परिवर्तनशील होता है और बराबर पुनर्विश्लेषण की माँग करता है। यह पुनर्विश्लेषण वस्तुगत तथ्य और लेखक की अनुभूति के द्वन्द्वात्मक बोध पर निर्भर करता है। राहुल की आत्मकथा में यह सबसे बड़ी खूबी है कि वह वस्तुगत तथ्य और लेखकीय अनुभूति के द्वन्द्वात्मक रिश्ते से जुड़ी है। राहुल के पास तथ्यों को परखने की विश्वदृष्टि है। उनका यह व्यापक भावबोध ऐतिहासिक स्मृतियों को, निजी जीवन की अनुभूतियों और अनुभवों पर परखकर धीरे-धीरे निर्मित होता है। इसलिए आत्मकथा में सत्य और अनुभव का एक साथ बोध होता है।

सन्दर्भ

1. सांकृत्यायन, राहुल, 'मेरी जीवन यात्रा', खण्ड-1, आधुनिक पुस्तक भवन, कलकत्ता, द्वितीय संस्करण, 2000, पृष्ठ-3
2. वही, पृष्ठ-51
3. वही, पृष्ठ-55
4. वही, पृष्ठ-257
5. वही, पृष्ठ-355
6. "Truth belongs to all written accounts of one's life, either in relation to matters of fact or in relation to the feelings of the autobiographer and God willing in relation to both." 'Design and Truth in Autobiography'— Roy Pascal, page 68.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भारतीय धर्मग्रन्थों में नारियों की स्थिति

अनसूया अग्रवाल*

विश्व की आधी आबादी की स्वतन्त्रता, शक्ति और अधिकारों को लेकर आज अचानक समूचा विश्व नित नूतन विचार, मन्थन और चिन्तन में जुटा हुआ है। महिला सशक्तिकरण को लेकर कभी विचारवर्धक लेख लिख रहे हैं, तो कभी राष्ट्रीय और अन्तराष्ट्रीय संगोष्ठियाँ आयोजित किये जा रहे हैं। कभी उनके लिए विशेष कक्षाएँ लगाई जा रही हैं तो कभी व्याख्यान आयोजित किये जा रहे हैं। उन्हें केन्द्र में रखकर फिल्में बनाई जा रही हैं तो कभी उन पर गीत, गजल, कविताएँ और कहानियाँ लिखी जा रही हैं। क्या ये सभी उपक्रम समाज में नारी की स्थिति को बदलने के लिए हैं? क्या शक्ति कही जाने वाली नारी अपनी शक्ति से अनजान और अनभिज्ञ है या विस्मृति की दशा में है; वो सब कुछ जानती है, पर सोयी हुई है, भूली हुई है और उसे जगाने की जरूरत है।

विचार करें तो ज्ञात होता है कि पुरुषों ने पूर्व में नारी को 'देवी' का सम्बोधन देकर उसे एक छवि विशेष के जटिल व्यूह में बाँध दिया फिर तो वो नारी 'बिचारी' बनकर एक 'अँधेरे कोने' में 'पियरी' ओढ़े चुपचाप बैठने को बाध्य हो गयी। वो भूल गयी कि वो शक्ति है, वो दुर्गा है, वो ज्ञान है, वो प्रकृति है; उसे मातृत्व का वरदान प्राप्त है। उसका अपना वजूद है, उसकी अपनी पहचान, अपनी मर्जी, अपना व्यक्तित्व है। वह भी समाज में पुरुषों के समान निर्णय लेने में समर्थ है। सब कुछ भूलकर उसे बस अपना 'देवी' रूप, पुरुष का 'स्वामी' रूप और घर का 'मन्दिर' रूप ही याद रहा। तभी तो अन्याय, जुर्म, अत्याचार और पति की ज्यादती सहने वाली दीन-हीन, बेजुबान, निरीह, सीधी-सादी नारी को 'सीता-सावित्री' या 'सती-सावित्री' कहा जाता है। जो पति के निर्णय को सिर झुकाकर मानती है। पर सोचिये जरा! जिस सीता का

*डॉ. अनसूया अग्रवाल, डी.लिट्., प्राध्यापक, हिन्दी, शा. म. व. स्नातकोत्तर महाविद्यालय, महासमुन्द (छ.ग.), मो. : 09425515019, पता : 'नेहदीप' क्लव वार्ड, पोस्ट एवं जिला–महासमुन्द (छ.ग.) पिन–493445

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उदाहरण विवश, असहाय, आज्ञाकारिणी, मूक स्त्री के रूप में दिया जाता है, एक कठपुतली के रूप में दिया जाता है, क्या वो वैसी ही हैं? कहीं ऐसा तो नहीं कि पुरुष वर्ग यह चाहता है कि नारी वैसी ही बनकर रहे इसलिए उसके बागी रूप को उसकी मूक आज्ञाकारिता से एकाकार कर उसे सबके सामने प्रस्तुत कर उसे अलग तरह से 'महान' रूप दिया गया है। या इन आधारों पर उसका कोई भिन्न चरित्र और व्यक्तित्व भी गढ़ा जा सकता है?

चलिये, फ्रेम में अब तक जो छवि जड़ी हुई है उससे एक भिन्न पहलू पर सोचा जाये। जिसका सच जो है, वो नहीं है और जो नहीं है; वो है। दरअसल सीता एक सुलझा हुआ चरित्र है। वो निर्भीक, विवेक-सम्पन्न नारी है। उसे समर्पण की प्रतिमूर्ति माना जाता है जो आँख मूँदकर आज्ञापालन करती है। पर वास्तव में वह स्वविवेकी और अपने निर्णय की मलिका है। शायद सीता अपने समय की वो पहली महिला है जिसने घर की चौखट से बाहर कदम रखा और अपनी आँखों से बाहर की सारी दुनिया देखी और दुनियादारी को जाना-सीखा। यह अलग बात है कि उनका पति उनके साथ था। दूसरी बात सभी समाज से उनका आत्मीय सरोकार था। जब सीता हर ली गयी तो राम वन प्रान्तर में उसे ढूँढ़ते हुए भौंरों और पक्षियों से यह कहकर कि 'हे खग-मृग, हे मधुकर श्रेणी, देखी तुम सीता मृगनैनी' उनका पता पूछते हैं। यानी पेड़-पौधे, पशु-पक्षी, कीट-पतंगे, ग्राम वधुएँ, केवट, निषाद, राक्षसी त्रिजटा, रीछ, भालू से लेकर वानर हनुमान तक सबने उनका स्नेह पाया। अनामिका लिखती हैं—"उनका व्यक्तित्व नियोजन (मैन मैनेजमेंट) कितना अच्छा था, इसका सबसे बड़ा प्रमाण यह है कि रावण जैसे जटिल व्यक्ति को भी एक दूरी से वे लगातार साधे रहीं। ठीक है कि रावण के अपने सिद्धान्त थे, पर बिना व्यावहारिक खपच्चियों के छूछे सिद्धान्त किस तरह भहरा कर गिरते हैं—यह कौन नहीं जानता।"[1] रावण के भिक्षा माँगने पर उन्होंने लक्ष्मण रेखा लाँघी; यानी विशेष परिस्थिति में उन्होंने अपने विवेक के अनुसार निर्णय लिया। अमिट नियम को तोड़ा। तो क्या कि यह निर्णय गलत साबित हुआ!!! जरूरी नहीं कि जीवन में लिये गये सभी निर्णय सही हों। वैसे सीता हर ली गयी, इसलिए ही बस निर्णय गलत साबित हो गया। अन्यथा भूखे को भोजन कराने का निर्णय या ब्राह्मण को भिक्षा देने का उनका निर्णय तो गलत नहीं था न। और फिर उनका लिया यह गलत निर्णय ही तो राष्ट्र-हित का निमित्त बना। रावण का वध उनके इस निर्णय के कारण ही तो हुआ न। सीता कठपुतली होती, तो लक्ष्मण रेखा नहीं लाँघती, भिक्षा देने के लिए पग नहीं बढ़ाती, हरी नहीं जाती तो रावण मारा भी कैसे जाता? जीवन में कभी-कभी गलत निर्णय भी लिए जाने चाहिए। क्योंकि कई बार तो वे भी किसी विशेष उद्देश्य के कारक बनते हैं।

राम-रावण युद्ध हुआ। रावण की सेना परास्त हुई और विभीषण का राज्याभिषेक हुआ। सीता बन्धनमुक्त हुई। विरहजनित पीड़ा का अन्त हुआ, अब राम-सीता का

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मिलन होना था। भावातिरेक में डूबी हुई है सीता। उनके श्रीराम पुरुषार्थ की सबसे बड़ी परीक्षा में सफल हुए हैं। आज का समय भिन्न है—'सीता राम के रूप को कंगन के नग की परछाई में निहारकर सुध-बुध नहीं बिसरा रही है' आज तो हर्षित होकर, पुलकित होकर, मुग्ध होकर चकोर की भाँति राम के चन्द्रमुख को देख रही है वो। पर स्वागत स्वरूप बुझे तीर की भाँति राम के मुख से निकले वचन ने उनके मर्म को विदग्ध कर दिया। यह क्या! विवेकशील राम अकारण आज अनाचरण को तत्पर हो गये। नीतिज्ञ राम अनीति को अपना रहे हैं। उचित-अनुचित का भेद भूल गये! अग्नि की भाँति पवित्र सीता के चरित्र पर लांछन लगा रहे हैं। वाल्मिकी रामायण में वह बोल पड़ी—"देव, क्या आप इतना भी नहीं जानते कि व्यक्ति उसी वस्तु के लिए उत्तरदायी हो सकता है, जिस पर उसका अधिकार हो। मैं अपने हृदय की स्वामिनी हूँ, वह तो सदा आपके चिन्तन में लीन रहा है। उचित की अवज्ञा करके आप अनुचित का सम्मान कर रहे हैं। मेरे निर्बल पक्ष को खींचकर सामने लाना और मेरे सबल पक्ष को पीछे ढकेल देना कहाँ का न्याय है? नारी का निर्बल पक्ष है उसका नारीत्व, उसका सबल पक्ष है उसका पत्नीत्व। नर शार्दूल! आप मनुष्यों में श्रेष्ठ मानव, पुरुषोत्तम कहलाते हैं, किन्तु आप इस समय साधारण मनुष्यों से भी गया-बीता व्यवहार कर रहे हैं। आपने मेरे नारीत्व को तो दोषारोपण के लिए सबके सामने प्रस्तुत किया है किन्तु मेरे पत्नीत्व की ओर आपकी दृष्टि नहीं गयी। आपने मेरा पाणिग्रहण किया है, मैं आपकी शास्त्रानुमोदिता पत्नी हूँ। इसे आप क्यों भूल रहे हैं?"[2] देखिये जरा—पत्नीत्व की कैसी प्रखर अभियक्ति है उसमें! क्या यहाँ नारी कमजोर लगती है? निःसन्देह उत्तर नहीं में होगा। वो सफल पुत्रवधू, निर्भीक और पति से एकनिष्ठ सच्चा प्रेम करने वाली सफल पत्नी ही नहीं एकल अभिभावक के रूप में अपने दायित्व का बखूबी निर्वहन करने वाली सफल माता भी है। उसने अकेले अपने दायित्व का निभाते हुए लव-कुश के रूप में जिन दो होनहार, वीर, प्रखर प्रतिभा-सम्पन्न बच्चे श्रीराम और इस संसार के सामने एक चुनौती के रूप में खड़े किये; उसे लोग देखते रह गये। वो कहीं भी दीन-हीन, लाचार, कमजोर नहीं। अन्याय के विरुद्ध प्रतिरोध के बहुत तरीके होते हैं। सीता धरती में समा गयीं, वह भी प्रायश्चित का किसी को मौका दिये बिना। यह भी तो एक मुखर, प्रबल प्रतिरोध (प्रोटेस्ट नोट) ही था। 'अब पछताते रहो हाथ मलके, और आगे सावधान रहो।" कुछ ऐसा ही संकेत शायद वो दे गयी।

अब बात करें सावित्री की। वह भी कम विलक्षण नहीं। उसे दीन-हीन-सा मान लेना नितान्त गलत होगा। क्योंकि उसमें अदम्य साहस और ऊर्जा है। 'नारी आने वाली मुसीबत से डरकर आगे बढ़ा चुके कदमों को पीछे नहीं खिंचती, विपरीत और कठिन परिस्थितियों के लिए वो हमेशा तैयार रहती है। आवश्यकता पड़ने पर वो प्रकृति के नियमों को भी ताक में रख सकती है' यह उसने साबित कर दिखाया। उसे पता था कि सत्यवान अल्पायु है, उसकी मृत्यु का दिन और समय भी उसे मालूम था

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

फिर भी वो भयभीत नहीं हुई। उस स्थिति का सामना करने के लिए वो तैयार रही। अन्तर्मुखी बन भीतर-ही-भीतर घुटती नहीं रही, आँसू नहीं बहाती रही वो! अपने दुःख के साथ जीती रही; पर साहसपूर्वक। जन्म और मृत्यु प्रकृति का नियम है यह जानते हुए भी वो यमराज के पीछे गयी, उसे बहस में हराया और अभीप्सित प्राप्त करके लौटी। उसने अपने प्रयासों से अपनी नियति को बदला। सास-ससुर की समृद्धि, साम्राज्य और सौ पुत्रों का बल लेकर लौटी। भला उसे अबला कैसे कहा जा सकता है। उस-सा बल तो शायद पुरुषों में भी नहीं।

और सती! वह भी तो अविस्मरणीय चरित्र है एक। उन्होंने पिता, पति और सम्भ्रान्तवादी व्यवस्था से भी बगावत किया था। सीता के धरती में समा जाने जैसा ही विरोध था उनका। जब 'आग में कूदकर' पहला विरोध उन्होंने पिता से किया था। जिन्होंने उनके पति को मान न देकर उनका अपमान किया था। पिता के असंगत व्यवहार के इस प्रतिकार में पति ही नहीं उनके सब गण-दूतों की अवज्ञा शामिल थी। उन्होंने साबित किया कि प्रतिपक्षी भी जड़ नहीं होता, उसके भीतर भी एक छोटा-सा दिल धड़कता है, जिसमें इच्छाएँ और आकांक्षाएँ अभी शेष हैं। औढर दानी शिव जो स्वयं ही सब लुटा देने को आतुर रहते हैं उनसे तक याचकों की याचना पूरी करने का आग्रह करती हर जगह दिख जाती है। कठिन तपस्या के बाद जिस शिव को उन्होंने पाया था, उनसे भी रुष्ट होकर एक दिन चली गयी, यह भिन्न बात है कि शिव उनको मनाने उनके पीछे नंगे पाँव दौड़ पड़े। मानना तो था ही शिव की अर्द्धांगिनी को। पर जब लगा तो स्वाभिमान की रक्षा के लिए प्रतिकार का इजहार तो कर ही दिया न उन्होंने! उसी पुनर्मिलन की स्मृति चिह्न के रूप में झेलम नदी की सृष्टि मानी जाती है। इस तरह कहीं भी मौनी बाबा-सा व्यक्तित्व नहीं दिखता उस नारी का। और न ही कहीं भी स्त्रियों को चुप्पी साधने का सन्देश देती हुई-सी दिखाई देती हैं। यानी वैदिक युग में स्त्रियों की स्थिति सर्वोत्तम थी। स्वयं ब्रह्मा ने भी स्वीकार किया है कि देवी इस ब्रह्माण्ड को धारण करती है।"[3]

महाभारत की कथा में अर्जुन मणिपुर में राजकुमारी चित्रांगदा का पत्नी के रूप में वरण करते हैं। कुछ समय साथ रहने के बाद अकेले ही इन्द्रप्रस्थ लौटने की तैयारी करने लगते हैं तो चित्रांगदा विद्रोह कर उठती है। यह विद्रोह एक पत्नी का है। एक अधिकार प्राप्त नारी का है। उसका संकल्प दृढ़ है, भाल उद्दीप्त है। महर्षि अरविन्द ने पत्नी की विदग्ध वाणी से जो कहलवाया वह देखिये—"श्रेयस्कर होता आर्य, कि आप आते ही नहीं। आज यह अग्नि-परीक्षा तो मेरे सामने नहीं आती। किन्तु नहीं, मुझे परीक्षा देनी होगी।" उसकी वाणी में बला की दृढ़ता है। पर अगले ही पल वो अर्जुन को आजाद भी कर देती है। अभंग साहचर्य ही तो प्रेम का एकमात्र सच नहीं है न। व्यक्तित्व की अनेक अन्तर्धाराएँ हो सकती हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

माधवी-शकुन्तला-दमयन्ती हो या राधा-रुक्मिणी-द्रौपदी इन सबका चरित्र भी अद्वितीय है तभी तो वे नायिकाएँ बनीं। इनमें भी पिटी-पिटाई लकीर लाँघने का तेज है। अपने-अपने सिद्धान्त पर अटल रहने की दृढ़ता है। पर इस दृढ़ता के साथ एक नारी का कोमल हृदय निरन्तर धड़कता रहा इनके भीतर। कहीं भी अनावश्यक कठोरता नहीं दिखाई देती इनमें।

कुल मिलाकर कहा जा सकता है कि धर्म ग्रन्थों की नारियाँ बला की शक्ति सम्पन्न थीं। पर बाद के समय में उनके तेज को पनपने का मौका देने से रोका जाने लगा। निःसन्देह पूरी प्रतिरोध शक्ति के साथ आज भी किसी जगह सीता, सावित्री, सती जैसी दो-चार स्त्रियाँ खड़ी जो जायें तो समाज का नक्शा ही बदल जायेगा।

सन्दर्भ ग्रन्थ

1. हंस—सं. राजेन्द्र यादव, अक्षर प्रकाशन, शाहदरा दिल्ली, जन. 1995, पृ. 28,
2. नारी अस्मिता— सं. डॉ. रचना निगम, प्रताप नगर, वड़ोदरा, सित. 2009-फरवरी 2010, पृ. 17
3. महिलाएँ कितनी आजाद—सं. डॉ. अनिल ठाकुर, मीनाक्षी प्रकाशन, दिल्ली, वर्ष 2009, पृ. 50।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तन का दिया नेह की बाती

प्रो. मृत्युंजय उपाध्याय*

गोपाल सिंह नेपाली (1902-17 अप्रैल, 1963) का जन्म हुआ बेतिया (चम्पारण) में। वह एक लड़ाकू सिपाही के बेटे थे। इसलिए उनमें अथक युद्धोत्साह, विपरीतता में जूझने-डटने की आनबान थी। उन्हें अपने जीवन की विशिष्ट प्रवृत्तियों के कारण भारत के सुदूर गाँवों में भ्रमण का प्रभूत अवसर मिला। इसी के कारण उनमें वन, पर्वत, नदी-नद, झरने, घाटी और बीहड़ स्थलों को देखने का विशिष्ट अनुभव हुआ। प्रकृति में रमने के कारण उनमें प्रकृति की विविधता और तज्जन्य प्रगाढ़ प्रेम और अनुराग के दर्शन होते हैं।

उन्होंने पत्रकारिता के क्षेत्र में अपना हाथ आजमाया। सुधा, योगी, रतलाम टाइम्स(मालवा), चित्रपट(दिल्ली) आदि में लगातार लिखते रहे। बम्बई में फिल्मों के लिए गीत-रचना करते रहे। वहाँ देश, समाज, जनपक्षधरता की चेतना प्रधान थी। उनके लिए पत्रकारिता एक मिशन था—समाज को जगाना, विकास की मुख्यधारा से उसको जोड़ना, राजनीतिक छल, छद्म, दुरभिसन्धि से जनता को आगाह करना, उन्हें समुचित दिशा देना।

जुलाई 1934 में उनकी प्रथम काव्यकृति प्रकाशित हुई 'उमंग', जिसमें तरंगित यौवन की उमंग हिलोरें मार रही थीं। प्रेम, आकर्षण, समर्पण, पारस्परिकता का राग उससे फूट रहा था। मुक्तिबोध ने लिखा है—

"मानव मस्तिष्क की गति प्रतिक्रियाशील है। छायावादी धूमिलता और जीवन की ओर कल्पना द्वारा पहुँच की प्रक्रिया भी शुरू है। फलस्वरूप नवीन, नेपाली, बच्चन, दिनकर, अज्ञेय इत्यादि कवि एक पंक्ति में खड़े हैं।"

(मुक्तिबोध रचनावली, खण्ड-स, पृ. 277—278)

एक सच्चे कवि की तरह अपने समय और मनुष्य के प्रति उत्तरदायी कवि (नेपाली) को यह अच्छी तरह पता था कि साहित्य या कला के संसार में राजनीति की

* प्रो. मृत्युंजय उपाध्याय, डी. लिट., पता : 9/21 वृन्दावन, मनोरम नगर, एल.सी. रोड, धनबाद–826001, झारखण्ड, मो. 09334088307

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तरह कोई चोर दरवाजा नहीं है। यहाँ तो कबीर की तरह "शीश उतारे भुई धरो, तब पैठो घर माँहि" है। अपना सब कुछ स्वाहा कर ही जनकल्याण का मार्ग प्रशस्त हो सकता है। साहित्य की सच्ची सेवा हो सकती है। अपनी मृत्यु के कुछ दिनों पूर्व उन्होंने ऐसे आलोचकों को आड़े हाथों लिया, जो जीवन में जहर घोल रहे थे। सत्ता की ठकुरसुहाती में साहित्य-साधना कर रहे थे। उनका कहना था :

मेरा धन है स्वाधीन कलम
ओ आलोचक विष घोल नहीं
रंगरूटों से कह दे कोई
मन्दिर में पीटे ढोल नहीं
तू दलबन्दी पर मरे यहाँ
लिखने में है तल्लीन कलम
मेरा धन है स्वाधीन कलम।

जिस प्रकार 'उमंग' की कविताओं में हरी घास, पीपल, पंछी, सरिता आदि, प्रमुख हैं, वे ही उनके मानस का प्रतिनिधित्व करती हैं, उसी प्रकार 'पंछी' संग्रह में कवि के प्रभातकाल की पन्द्रहमिनटी कविताएँ हैं। रागिनी (1935) इनका तीसरा संकलन है, जिसमें प्रेम के गम्भीर रहस्य का अनावरण है। 'नीलिमा' में कवि के मानस-क्षितिज और भाव-प्रवाह में किंचित् परिवर्तन दिखाई पड़ता है। 'पंचमी' (1942) में विशाल भारत के चित्र और राष्ट्रीय भावपरक रचनाएँ हैं, जो उनकी उच्च मानसिक भूमिका की परिचायिका हैं, जबकि 'सावन' 101 रूबाइयों का संकलन है। इसकी रचनाएँ पन्त के 'बादल' की तरह एक ही वस्तु के विविध-दर्शन एवं गहन निरीक्षण का प्रमाण प्रस्तुत करती हैं। 1934 में 'पंछी' की भूमिका में निराला ने लिखा है :

"इधर दो वर्षों से नवीन तारकों के सदृश जितने कवि हिन्दी काव्याकाश में दिखाई पड़े, सौन्दर्य के सुख-स्पर्श के जादू से जिन्होंने मन को वशीभूत कर लिया तथा प्रकाश की तृप्ति दी, श्री नेपाली उनमें एक हैं। मुझे उनके काव्य में शक्ति, प्रवाह, सौन्दर्य-बोध, चारुचित्रण एक विशेषता लिए दिखायी पड़े।"

उनकी कविताओं में छायावादी मानवतावाद स्वच्छन्दतावाद के दर्शन होते हैं। छायावादी कवियों की लगभग सभी प्रवृत्तियाँ विद्यमान हैं। इसीलिए श्रीपाल सिंह 'क्षेम' का मानना है :

"छायावाद के 'तृतीय उत्थान' के मानवतावादी स्वच्छन्दतावादी कवियों में नेपाली का प्रमुख स्थान है। नरेन्द्र शर्मा के मानवतावाद को कवियों में नेपाली ने प्रकृति की सहज सुषमा का मधुरालोक और प्रेम की तरल हार्दिकता प्रदान कर लोक-निकटतर बनाया है। प्रकृति के सहज अनगढ़ स्वरूप के प्रति जो तन्मयता नेपाली की रचनाओं में है, वह इस उत्थान के कवियों में ही नहीं प्रथम एवं द्वितीय

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उत्थान के कवियों में भी दुर्लभ है। कुछ ही सीधे-सादे और मधुर शब्दों की रेखाओं में सारे वातावरण के माधुर्य को बाँध लेने की इनमें अद्‌भुत क्षमता है।"

मस्ती, निर्भीकता, प्रेम-विरह की निश्छल तड़प के यहाँ सहज ही दर्शन होते हैं। पन्त की कविता 'बाँध दिये क्यों प्राण-प्राणों से/तुमने चिर अनजान प्राणों से' की विकलता की यहाँ जीवन्त अभिव्यक्ति है। यहाँ शरीर ही दिया बन जाता है और नेह की बाती रात-भर जलती रहती है :

तन का दिया नेह की बाती
दीप जलता रहा रात-भर।

जीवन के सहज प्रवाह में प्रेम के दो क्षण की मधुरिमा का चित्रण कितना सजीव बन पड़ा है :

दो मेघ मिले डोले-डोले
बरसाकर दो-दो बूँद चले।

छायावादी कवियों में अपनी आत्माभिव्यक्ति के लिए प्रकृति के मानवीकरण की जो प्रवृत्ति है, वह यहाँ स्पष्ट परिलक्षित है। वड्‌र्सवर्थ के लिए प्रकृति प्रारम्भ और अन्त दोनों है। वहीं से काव्य-यात्रा प्रारम्भ होती है और वहीं विराम पाती है—Nature is be and end both for William Wordsworth. इसी युग के कवि हैं शैली (द स्काई लार्क) जिससे नेपाली का प्रकृति-भाव-साम्य है।

बाँह उठाकर मिलो शाल ये
दूर देश से झोंके आये
रही झड़ी की बात कठिन यह,
कौन हठीली को समझाये।

'रागिनी' में कवि ने प्रकृति के प्रति अपनी अन्तरंग आत्मीयता प्रकट की है। 'हरी घास' कवि के लिए ईश्वर की महान अनुकम्पा है :

यह घास नहीं पनप उठी मेरे जीवन की मधुर आस
मैं तो रहता हूँ, महलों में प्राण यहीं करते निवास
बस गया यहाँ तो गलती से उस प्रभु की सुन्दर सुखद स्वर्ग
क्या समझ लगा दी थी उसने मेरे आँगन में हरी घास

(उमंग, पृष्ठ 61)

कवि में प्रेम की व्यापक और उदात्त अभिव्यक्ति मिलती है। जहाँ विनयपूर्वक प्रेम की पूजा होती हो, कवि उस स्थान की तीर्थयात्रा करना चाहता है :

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चाहे करूँ न पुण्य जनम भर मिले न यश जग में
चाहे कर पाऊँ न यहाँ मैं सोने-चाँदी का संचय अक्षय
किन्तु जहाँ भगवान प्रेम की होती है पूजा सविनय
करूँ तीर्थयात्रा उस जग की यह मेरे तन का निश्चय।

(उमंग, पृ. 29)

प्रेम की मसृण व्यंजना में नेपाली की श्रेष्ठता उनके समकालीन कवियों दिनकर, नरेन्द्र शर्मा, बच्चन आदि की तुलना में स्वयंसिद्ध है। उन्होंने प्रेम को हाड़मांस की अनुभूति के रूप में चित्रित किया है :

जैसे खोजे लहर-लहर को
प्रेमी मधुप कुसुम को
वैसे खोज रहा था मैं भी
घर-घर वन वन तुमको।

(नीलिमा, पृ. 43-44)

नेपाली की प्रगति चेतना

बर्ट्रोल्ट ब्रेख्त का मानना है कि लोग यह नहीं कहेंगे कि यह अन्धकार का युग है बल्कि पूछेंगे कवि खामोश क्यों हैं? यहाँ वे अपने उत्तरदायित्व के प्रति मौन क्यों हैं? नेपाली के लिए कविता सम्पूर्ण मानवीय अस्तित्व की रक्षा का प्रयास है। उसके लिए संघर्ष, जद्दोजहद झेलने की अभिव्यक्ति है। कविता लिखते-लिखते उनका दायित्वबोध इतना घनीभूत हो जाता है कि वह अन्य, असमानता, दैन्य के घोर तिमिर को नष्ट कर प्रभात के दर्शन के प्रबल आग्रही हो जाते हैं :

जीवन के पथ पर तारों से क्षण-भर उसका दिल बहला है,
उसकी दृष्टि विहग उड़-उड़कर आज तिमिर को चीर चला है।

वह आजीवन संघर्ष करते रहे। मनुष्य की मुक्ति, उसके शोषण, दासता, उत्पीड़न, विपन्नता के विरुद्ध। स्वाधीन भारत में उत्पीड़न और जनशोषण के खिलाफ सत्ताधीशों की तीव्रतम आलोचना करने वालों में यही एकमात्र कवि हैं। वह स्वयं सहज काव्य है :

अंग अंग है रंग है रोम रोम राग है
जीवन की कला इष्ट मृत्यु से विराग है
स्वप्न हूँ भविष्य का सत्य का श्रृंगार हूँ
पाँच तार का बना प्यार का सितार हूँ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वह जनता के कवि हैं। आम आदमी के लिए जीते-मरते हैं। कोई गुट नहीं बनाया इन्होंने। लिखने को एकमात्र कवि-कर्म माना और आजीवन जन-जन के लिए संघर्षरत रहे :

ईमान बेचता चलता तो
मैं भी महलों में रह लेता
न दलबन्दी पर मरे यहाँ
लिखने में है तल्लीन कलम
मेरा धन है स्वाधीन कलम।

(साप्ताहिक हिन्दुस्तान, 8-15 अप्रैल, 1963)

इनकी 'सत्याग्रह' कविता में राष्ट्रीयता, स्वाधीनता देश-प्रेम, जनप्रेम का अथाह सागर लहराता है। मनुष्य स्वाधीन नहीं हो पाया तो उसके दिली अरमानों और योजनाओं का क्या होगा! निम्नांकित पंक्तियाँ ध्यातव्य हैं इस सन्दर्भ में :

चिता-चिता पर कब्र-कब्र पर घर बसता दीवानों का
ऐसी वैसी यह नहीं लड़ाई महासमर मरदानों का
जिसमें अन्त नहीं आहुति का प्राणों के बलिदानों का।

(उमंग, पृ. 101-102)

'स्वागत' 'स्वतन्त्रता की ओर', 'प्रस्थान' आदि कविताएँ राष्ट्रीय चेतना की प्रबल अभिव्यक्ति हैं। एक भारतीय आत्मा की 'पुष्प की अभिलाषा' के स्वर में स्वर मिलाती कविता है 'उमंग' में :

दे दे सुमन मधुप को मधु तो मधु लुटा दे मधु जग को
यह व्यवहार रहे घर-घर में ऐसा ही व्यापार रहे
सेवा का व्रत लेकर विचरूँ जग के कोने-कोने में
मैं न रहूँ न सही पर मेरा भारत यह गुलजार रहे। *(उमंग, पृ. 116)*

'हिमालय ने पुकारा' राष्ट्र-प्रेम की व्यापक अभिव्यक्ति है। 'भाई-बहन' कविता का निहितार्थ है जन-जन को युद्ध में प्राणोत्सर्ग करने के लिए प्रेरित करना :

तू चिनगारी बनकर उड़ री जाग-जाग मैं ज्वाल बनूँ
तू बन जा लहराती गंगा मैं झेलम बेहाल बनूँ।

सर्वत्र क्रान्ति की ज्वाला भड़कानी है कि बच्चा जाग उठे। बलिदान के लिए तत्पर हो जाये। 'मैं हूँ एक सिपाही' (माखनलाल चतुर्वेदी) की तरह :

नित्य शीश का दान रक्ततर्पण भर का है ज्ञान,
एक लड़ने तक महमान पूँजी है तीर कमान।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समय इतना निर्णायक और उन्मत्त हो गया है कि उसे क्रान्ति, बलिदान से ही समझाया जा सकता है :

पागल घड़ी बहन-भाई है, यह आजाद तराना है
मुसीबतों से बलिदानों से, पत्थर को समझाना है।

रामवृक्ष बेनीपुरी ने 'नींव की ईंट' में स्पष्ट संकेत किया है कि आजादी के भव्य भवन की नींव में नवयुवक-रूपी लाल-लाल सुर्ख ईंटों को मूक शहादत का सेहरा लेना ही होगा।

'नवीन', 'स्वतन्त्रता का दीपक', 'मैं गायक हूँ', 'स्वच्छन्द हिमाचल का', 'भारतमाता' आदि कविताएँ राष्ट्रीय चेतना की प्राणवन्त अभिव्यक्ति हैं :

भक्ति से दिया हुआ यह स्वतन्त्रता का दिया
आज गंगधार पर यह दिया बुझे नहीं
यह स्वतन्त्रता का दिया प्राण के समान है। *(नवीन, पृ. 6-7)*

1962 में हुआ चीन का भारत पर आक्रमण। कवि की यहाँ संलग्नता, सजगता और प्रतिबद्धता देखते ही बनती है। ओजमयी वाणी में वह शंखनाद कर उठते हैं :

यह भगत सिंह की धरती है गद्दार यहाँ कोई न रहे,
गोविन्द, प्रताप, शिवाजी की तलवार यहाँ सोई न रहे।

बीस-बाईस फिल्में भी बनायी जो भारत के प्राचीन गौरव, देवतागण, पर्व-त्यौहार, ऐतिहासिक नायक-नायिकाओं आदि पर आधारित हैं। सामाजिक, सांस्कृतिक और भक्तिपरक।

उनके अवसान पर पूरा भारत 'शोकमग्न हो गया। उनकी श्रद्धांजलि का यह उद्गार उनकी ही काव्य कृति 'उमंग' में देखा जा सकता है :

वह गाता था सब गाते थे, उसमें अपनी छवि पाते थे
उसके गान हृदय को छूकर चिन्तनशील बन जाते थे
आज मौन उस गायक कवि का, जग का हाहाकार हो गया
भव्य भारती की वीणा का एक गूँजता तार सो गया।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पाठकीय प्रतिक्रिया

चिन्तन-स जन का अप्रैल 2014 का अंक प्राप्त हुआ। *आधुनिकता और परंपरा, अहिंसा और अर्थशास्त्र* तथा वेंडी दोनिजर पर शंकर शरण के आलेख रोचक लगे। डॉ. पुष्पपाल जी के हिंदी कहानी के लेख में विज्ञान कथा *आश्चर्य जनक घंटी* पर उनकी टिप्पणी से मैं सहमत नहीं हूँ। वास्तव में यह हिंदी की तीसरी विज्ञान कथा है, इसके पूर्व पंडित, अम्बिका दत्त व्यास की, जो प्रथम हिंदी विज्ञान कथा मानी जाती है-*आश्चर्य व तांत* है, यह उनके पत्र पियूष प्रवाह में 1884-88 के मध्य प्रकाशित हुई थी। बाबू केशव प्रसाद की *चन्द्र लोक की यात्रा,* जो सरस्वती नभग 1, संख्या 6 में 1900 में प्रकाशित हुई थी, हिन्दी की दूसरी विज्ञानकथा है। संभव है की अनुवाद पर आधारित सत्य देव जी की इस कथा का शिल्प वर्णनात्मक होने के कारण लेख का आभास देता हो, पर यह उस काल का कथा.ािल्प है।

- डॉ. राजीव रंजन उपाध्याय, अध्यक्ष, भारतीय विज्ञान कथा लेखक समिति, परिसर कोठी काके बू, देव काली मार्ग, फैजाबाद-224001.

'चिन्तन-स जन' का नया अंक मिला। आभारी हूँ। आपने सम्पादकीय में दिलीप पडगाँवकर का पत्र प्रकाािति करके पाठकों पर बड़ी उपकार किया है, क्योंकि अंग्रेजी मीडिया की सोच-समझ हिन्दी पाठकों तक नहीं पहुँचती। आपने सच ही लिखा है कि हमारे बौद्धिकों की मानसिक जकड़न, उन पर पड़ते रहे उपनेशवादी मार्क्सवादी मिथकों के प्रभाव को उद्घटित करती है, लेकिन जनता ने इन मिथकों को तोड़ा है और उनसे मुक्त हुई है।दो की जनता नेनरेन्द्र मोदी के प्रति विवास व्यक्त किया है, क्योंकि मोदी के स्वप्नों में नये भारत की स्पष्ट झलक दिखाई देती है। मोदी के अभियान ने भारत विरोधी प्रवृत्तियों तथा लोक विरोधी एवं विकास-विरोधी शक्तियों को एक साथ पराजित कर दिया है और विश्व को बता दिया है कि लोकतंत्र चाहे सामूहिक चेतना एवं संगठन का प्रतिफल है, वह एक व्यक्ति की राष्ट्र-चेतना से ही फलीभूत होता है। राजा ही काल को निर्धारित करता है, न कि काल राजा को। आपके साथ मेरा दृढ़ विश्वास है कि देश के अच्छे दिन अवश्य आयेंगे।

- डॉ. कमल किशोर गोयनका, ए-98, अशोक विहार, फेज प्रथम, दिल्ली-110052.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'चिन्तन-स जन' जैसी विचार की प्रतिष्ठित पत्रिका में 'भास के नाटकों में प्रयोग' लेख प्रकाशित करने के लिए मैं आपके प्रति और कमलेश जी के प्रति अपनी कृतज्ञता प्रकट करती हूँ।

समदोंग रींपोचे जी ने 'आधुनिकता और परम्परा' पर बीड में जब व्याख्यान दिया था मैं उस गोष्ठी में थी, और पवनजी से वह प्रकाशित होना चाहिए, ऐसी बात भी हुई थी। चिन्तन-स जन में यह लेख देखकर बहुत प्रसन्नता हुई।

- संगीता गुन्देचा, सहायक आचार्य, राष्ट्रीय संस्कृत संस्थान, भोपाल परिसर, भोपाल-462043 (म.प्र.)

आपकी चिन्तनशीलता का सृजन बहुत पहले देखा था, पुनः फरवरी 14 वसंत पंचमी को नागपुर में एक मित्र के पास देखा और पढ़ा भी। जैसा नाम वैसा काम वाली आपकी पत्रिका सृजन करने वालों को चिन्तन की चैतन्यता से चिन्मय करती हुई नजर आई। अक्टूबर-दिसम्बर 2013 का चिंतन पाश्चात्य सार्वभौमिकता को एक अद्यतन भारतीय चुनौती देता सर्जनात्मक साहित्य के आयाम और समय के प्रश्न को भारतीय दर्शन का व्यावहारिक स्वरूप दर्शाता इतिहास दृष्टि और सृजन-कर्म को स्पष्ट कर गया। इस चिन्मय-चैतन्य को सृजित करने में क्रमशः रमेश चन्द्र शाह, नन्दलाल मेहता वागीश, एस.पी. दूबे और कृष्णचन्द्र गोस्वामी की सहायता सृजन की सहकार बनी है।

स्थितिगत परिवर्तन की माँग करती शीतांशु की कविताएँ और कहानियों के समकाल में प्रेमचंद को देखते हुए समय के समकाल से संत का समाज-दर्शन हृदय एवं सहृदय की मानवीय गरिमा को प्रतिष्ठित करता है। बीजगणित की बीजाक्षर यात्रा का विवेचन भी दिलचस्प बन पड़ा है। अस्तु, ऐसे 'चिन्तन-सृजन' के साथ आस्था का हो जाना स्वाभाविक है।

- डॉ. डी. एन. प्रसाद, प्राध्यापक, महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, गांधी हिल्स, वर्धा-44200 (महाराष्ट्र)

मेरा पत्र भी सकारण है। मैंने चिन्तन-सृजन के कुछ अंक देखें हैं। अतः मैं एक अनुवाद - '21वीं सदी का बहुद्देशीयवाद' भेज रहा हूँ। यह लन्दन में हुई व्याख्यान माला 'लिम्बेबाई में अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोा की महाप्रबन्धक किस्टीन लेगार्डे ने दिया था। 21वीं सदी के सरोकार सर्वज्ञान है। और यह भी है कि दुनिया इस समस्या से कितनी अनजान बनने की कोशिश कर रही है। व्याख्यान के साथ लेगार्डे का संक्षिप्त परिचय भी संलग्न है। सम्भव है चिन्तन-सृजन के काम आ सके।

- रजनी कान्त शर्मा, 26, बंजारा हिल्स, होशंगाबाद-461001 (म.प्र.)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्राप्ति-स्वीकार

पिछले अंकों में सूचीबद्ध पुस्तकों/पत्रिकाओं के अतिरिक्त प्राप्त नयी पुस्तकें/पत्रिकाएँ

पुस्तकें:

इति **दुविधा कथा,** प्रीतीश आचार्य; प्रकाशकः रोशनाई प्रकाशन, 212 सी.एल./ए, अशोक मित्र रोड, काँचरापाड़ा, उत्तर 24 परगना, पश्चिम बंगाल-743145; प्रथम संस्करणः 2014; प.ठः 176; मूल्यः 100 रुपये।

नये क्षितिज की ओर, डॉ. देवेन्द्र आर्य; प्रकाशक : अविराम प्रकाशन, 29/62, पहली मंजिल, गली. न. 11, विश्वास नगर, दिल्ली-110032; पहला संस्करणः जुलाई 2011; पृष्ठः 96; मूल्यः 250 रुपये।

उपनिषदों के आलोक में, डॉ. नंदलाल मेहता 'वागीश', प्रकाशक : अयन प्रकाशन, 1/20, महरौली, नई दिल्ली-110030; प्रथम संस्करणः 2014; पृष्ठः110; मूल्यः 200 रुपये।

भाषा और संस्कृतिः प्राणिक अद्वैतता, डॉ. नंदलाल मेहता 'वागीश', प्रकाशक : अयन प्रकाशन, 1/20, महरौली, नई दिल्ली-110030; प्रथम संस्करणः 2008; पृष्ठः100; मूल्यः 120 रुपये।

पत्रिकाः

प्रथम इम्पैक्ट, राष्ट्रीय हिन्दी पाक्षिक, अक्टूबर 1-15 वर्ष-7, अंक-13; सम्पादकः मनोज जैन, प्रकाशकः एससीएफ-49, ऊपरी तल, सेक्टर-47 डी, चंडीगढ़ से प्रकाशित; पृष्ठः 50; मूल्यः 10 रुपये।

संक्षेप, साहित्य अकादमी की त्रैमासिक समाचार पत्रिका, जनवरी-मार्च 2014, सम्पादकः देवेन्द्र कुमार देवेश द्वारा संपादित तथा के. श्रीनिवासराव, सचिव द्वारा साहित्य अकादमी, रबींद्र भवन, फीरोजशाह मार्ग, नई दिल्ली-110001 के लिए प्रकाशित; प.ठः 60.

परिचय नयी रचनाशीलता का अर्धवार्षिक आयोजन, अंक : 15 जुलाई : 2014; सम्पादकः श्रीप्रकाश शुक्ल, 909, काशीपुरम कालोनी, सीरगोवर्धनपुर, वाराणसी-221011 से प्रकाशित; पृष्ठः 176; मूल्यः 50 रुपये।

स्थापत्यम् STH'PATYAM Journal of the Indian Science of Architecture & Allied Sciences, Issue: 3 Vol.:1 July 2014; Editor: Ramendra Pandey; Publisher & Printer Ramendra Pandey 116, First Floor, Vardhaman A.C. Market, Vigyan Vihar, Delhi-110 092; Pages: 296; Price Rs. 250/-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सेवा में,

आस्था भारती
27/201 ईस्ट एंड अपार्टमेन्ट,
मयूर विहार फेस-1 विस्तार, दिल्ली-110 096.

महोदय,

मैं त्रैमासिक पत्रिका चिन्तन-सृजन का ग्राहक बनना चाहता हूँ। इस हेतु............ रुपये चेक/बैंक ड्राफ्ट सलग्न है। यह शुल्क एक वर्ष/तीन वर्ष के लिए है (√ टिक करें)।

नाम : ....

पता
(शहर, पिन कोड
अवश्य लिखें) : ....
....
....

फोन न. : ....

ई-मेल : ....

भवदीय

(हस्ताक्षर)

नोटः 1. चेक/बैंक ड्राफ्ट "आस्था भारती" के नाम से होना चाहिए तथा नई दिल्ली/दिल्ली में देय होना चाहिए।
पत्रिका चेक के भुगतान के बाद साधारण डाक से भेजी जाएगी।
2. चिन्तन-सृजन की शुल्क निम्न है।

वार्षिक मूल्यः

व्यक्तियों के लिए 60.00 रुपए
संस्थाओं और पुस्तकालयों के लिए 150.00 रुपए

एक प्रति का मूल्य

व्यक्तियों के लिए 20.00 रुपए
संस्थाओं के लिए 40.00 रुपए

तीन वर्षः

व्यक्तियों के लिए 180.00 रुपए
संस्थाओं और पुस्तकालयों के लिए 400.00 रुपए

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चिन्तन-सृजन

त्रैमासिक

वर्ष 12 अंक 3 जनवरी-मार्च 2015

सम्पादकीय परामर्शदात्री समिति

लोकेश चन्द्र

यशदेव शल्य

जे.एन.राय

रमेशचन्द्र शाह

Central Library
Gurukul Kangri University
Hardwar-249404 (U.A.)

सम्पादक

बी. बी. कुमार

सलाहकार सम्पादक

कमलेश

आस्था भारती

दिल्ली

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वार्षिक मूल्य :

व्यक्तियों के लिए	60.00 रुपए
संस्थाओं और पुस्तकालयों के लिए	150.00 रुपए
विदेशों में	$ 15

एक प्रति का मूल्य

व्यक्तियों के लिए	20. 00 रुपए
संस्थाओं के लिए	40.00 रुपए
विदेशों में	$ 4

विज्ञापन दरें :

बाहरी कवर	10,000.00 रुपए
अन्दर कवर	7,500.00 रुपए
अन्दर पूरा पृष्ठ	5,000.00 रुपए
अन्दर का आधा पृष्ठ	3000.00 रुपए

प्रकाशन के लिए भारतीय सामाजिक विज्ञान अनुसंधान परिषद द्वारा आंशिक आर्थिक सहायता प्राप्त

आस्था भारती
रजिस्टर्ड कार्यालय :
27/201 ईस्ट एंड अपार्टमेण्ट
मयूर विहार फेस-1 विस्तार
दिल्ली-110 096

कार्य-संचालन कार्यालय :
23/203 ईस्ट एंड अपार्टमेण्ट
मयूर विहार फेस-1 विस्तार
दिल्ली-110 096
से आस्था भारती के लिए डॉ. लता सिंह, आई.ए.एस. (सेवा-निवृत्त), सचिव द्वारा प्रकाशित तथा विकास कम्प्यूटर एण्ड प्रिण्टर्स, 1/10753, सुभाष पार्क, नवीन शाहदरा, दिल्ली-32 द्वारा मुद्रित। फोन : 011-22712454

ई.मेल : asthabharati1@gmail.com
वेब साइट : asthabharati.org

चिन्तन-सृजन में प्रकाशित सामग्री में दृष्टि, विचार और अभिमत लेखकों के हैं। सम्पादक की सहमति अनिवार्य नहीं है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सम्पादकीय परिप्रेक्ष्य

राष्ट्रीय समस्याओं की समझ

मात्र 10 दिन पहले, पाँच मार्च 2015 को नागालैण्ड के व्यावसायिक शहर दीमापुर में बलात्कार के आरोपी व्यक्ति को हजारों की भीड़ दीमापुर के केन्द्रीय कारा से निकालकर मारते हुए सात कि.मी. दूर शहर के मुख्य चौक तक ले गयी और चौक स्थित क्लाक टावर से बाँधकर उसे मार डाला। लड़की सेमा नागा थी; आरोपी शरीफ खान (उम्र 35 वर्ष) असम के कछार जिले के करीमगंज का निवासी था। उसके दो भाई सेना में कार्यरत हैं; पिता भी सेना में ही था। बलात्कार की घटना 24 फरवरी 2015 की है। चार मार्च 2015 को जब स्थानीय समाचार पत्रों – *नागालैण्ड पोस्ट*, *ईस्टर्न मीरर* एवं *द-मॉर्निंग एक्सप्रेस* – में बलात्कार का समाचार छपा, तो जनाक्रोश बढ़ने लगा; एक समाचार पत्र, *नागालैण्ड पोस्ट* ने आरोपी को "अवैध बांग्लादेशी घुसपैठिया" माना था। समाचार का शीर्षक था, अवैध बांग्लादेशी द्वारा दीमापुर में बलात्कार (IBI rapes women in DMU; यहाँ IBI 'Illegal Bangladeshi Immigrant' का संक्षिप्त रूप हैं।) स्पष्टतः संदिग्ध बलात्कारी का अवैध बांग्लादेशी घुसपैठिया होने का समाचार आगमें घी डालने के समान था। पूर्वोत्तर भारत में घुसपैठ की समस्या लोगों के जीवन-मरण की, उनके अस्तित्व की समस्याबनकर उभरी है, जिससे असम ही नहीं, समस्त पूर्वोत्तर क्षेत्र त्रस्त है। बलात्कर की बात समाचार पत्रों में छपने के बाद *नागा काउन्सिल दीमापुर* तथा *वुमेन होहो दीमापुर* का संयुक्त वक्तव्य आया था, जिसमें कहा गया था कि "हम एक बार फिर एक सुमी नागा लड़की के संदिग्ध अवैध बांग्लादेशी घुसपैठिए द्वारा बलात्कार की घटना की निन्दा के लिए बाध्य हुए हैं। लड़की के साथ न केवल बार बार बलात्कार किया गया, उसे पीटा और डराया धमकाया भी गया–जब तक सभी नागा इस अबाधित अवैध बांग्लादेशी घुसपैठियों के खतरे से उबरने का प्रयत्न नहीं करेंगे–तबतक हमारी महिलाओं एवं बेटियों के प्रति इन लोगों का अपराध बढ़ता ही जाएगा।" यहाँ इस बात का उल्लेख आवश्यक है कि अवैध घुसपैठ की समस्या से छुटकारा पाने के लिए 5-6 महीना पहले बनी *सर्वाइवल नागालैण्ड* Survival Nagaland, नामक संगठन काफी लोकप्रिय हो चुका है। नागा स्टूडेण्ट्स फेडरेसन भी इस समस्या के प्रति लोगों को जागरुक कर रहा है।

1963 में जब नागालैण्ड राज्य बना तब दीमापुर छोटा सा शहर हुआ करता था; उसके चारो तरफ मीलों तक जंगल और पूर्वी छोर पर दिमासा कछारियों की बस्ती थी। पहले दीमापुर कछारी राजाओं की राजधानी हुआ करती थी जो बाद में उत्तरी कछार जिले (आज का 'दीमा हसाओ) के माइबांग में स्थानान्तरित हो गयी। नागालैण्ड की

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पहली विधान सभा के लिए निर्वाचित दीमापुर के दो विधायकों में देवलाल मेच दिमासा कछारी समुदाय के ही थे। दूसरे विधायक गोविन्द पैरा के पूर्वज उड़ीसा से थे। नागालैण्ड बनने के बाद बड़ी संख्या में नागा दीमापुर शहर तथा उसके इर्द-गिर्द के क्षेत्र में जंगल काटकर बसे, जिनमें सेमा नागाओं की संख्या सर्वाधिक थी। शहर में आओ, अंगामी तथा सेमा नागा सर्वाधिक बसे। शहरा में प्रायः सभी दुकानें नागाओं के नाम से हैं, लेकिन चलानेवाले गैर-नागा लोग ही है। खेत नागाओं के हैं, खेती करनेवाले अधिकांश बांग्लाभाषी मुसलमान हैं, जिनमें बांग्लादेशी भी हैं। इनमें से ऐसे लोगों की संख्या कम नहीं है जिन्होंने नागा महिलाओं से विवाह कर रखा है। नागालैण्ड में इनके बच्चों की अलग पहचान बनी है, जिसे 'नागामिया' 'सेमामिया' जैसे नामों से जाना जाता है। उल्लेखनीय है कि बलात्कार के आरोपी शरीफ खान ने भी, जो दीमापुर में व्यवसाय करता था, एक नागा महिला के साथ विवाह कर रखा था। बांग्लादेशियों के प्रति नागाओं का आक्रोश इसलिए था कि उन्होंने उनकी जमीन कब्जाया, उनका व्यवसाय छीना, उनकी स्त्रियों से विवाह किया, और अब, इस घटना के बाद उन्हें लगा होगा कि वे इतने ढीठ हो गये हैं कि उन्होंने उनकी स्त्रियों के साथ बलात्कार करना भी शुरू कर दिया। यहाँ इस बात का उल्लेख आवश्यक है कि पूर्वोत्तर भारत के कई क्षेत्रों में बांग्लाभाषी भारतीय मुस्लमानों एवं बांग्लादेशी मुसलमानों के बीच की विभाजक रेखा धूमिल पड़ गयी है जिसके लिए भारतीय मुसलमानों का एक वर्ग भी कम दोषी नहीं जो विदेशियों की पहचान में बाधक बनता रहा है। इसका दूसरा कारक व्होट बैंक की राजनीति रही है, जिसके तहत अवैध घुसपैठिए पूर्वोत्तर भारत में बसाए जाते रहे हैं। दीमापुर में कुछ नागाओं के क्षुद्र आर्थिक स्वार्थ के चलते भी ये बसते गये। क्षेत्र का जनसंख्यात्मक स्वरूप बदला। वैसे अन्यत्र भीयह सीमा-रेखा धूमिल हुई है या मिटी है। असम के बोड़ो प्रशासित क्षेत्र में जहाँ बोड़ों सशस्त्र संगटनों एवं बांग्ला भाषी मुसलमानों के बीच मारामारी चलती रहती है वहाँ सभी बांग्लाभाषी मुसलमान अवैध बांग्लादेशी घुसपैठिए नहीं हैं। स्पष्टतः अवैध घुसपैठ की समस्या के निदान में और विलम्ब नहीं होना चाहिए।

दीमापुर में जो कुछ हुआ उसका दूसरा पक्ष भीड़ द्वारा कानून अपने हाथ में लेने का है, जो देश में अन्यत्र भी होता रहा है। अभी अभी उत्तर प्रदेश में ऐसा ही हुआ है। बिहार में भीड़ द्वारा संदिग्ध अपराधी को मारे जाने का समाचार प्रायः ही आता रहा है। इस समस्या के निदान के लिए कानून व्यवस्था तंत्र में लोगों का विश्वास जगाना आवश्यक है; लोगों को लगना चाहिए कि अपराधी को दण्ड मिलेगा और वह भी समय से। आज हमारी बहुत सी राष्ट्रीय समस्याएँ समझ की कमी एवं सामयिक पहल के अभाव में होती हैं। उल्लिखित समस्या भी ऐसी ही है।

—ब्रज बिहारी कुमार

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पोद्दारजी के नाम महत् जनों के पत्र

सदानन्द प्रसाद गुप्त*

भाईजी उपनाम से प्रसिद्ध धार्मिक-आध्यात्मिक-सांस्कृतिक तथा नैतिक मूल्यों की मासिक पत्रिका 'कल्याण' के प्रथम सम्पादक श्री हनुमान प्रसाद पोद्दार विलक्षण प्रतिभा से सम्पन्न व्यक्ति थे। उन्होंने अपने व्यक्तित्व और कृतित्व से समाज में नैतिक एवं आध्यात्मिक चेतना जागृत की। इस कार्य के लिए उन्होंने अपने सम्पादन में प्रकाशित पत्र 'कल्याण' को माध्यम बनाया। 'कल्याण' का प्रकाशन 1926 में आरम्भ हुआ। प्रथम बार उसका प्रकाशन बम्बई के सत्संग भवन, नेमाणी बाड़ी से हुआ, मुद्रण कार्य वेंकटेश्वर प्रेस में सम्पन्न हुआ। 1927 में 'कल्याण' का प्रकाशन और मुद्रण कार्य गीता प्रेस गोरखपुर से होने लगा जो अद्यतन जारी है। पोद्दार जी ने चवालीस वर्षों तक 'कल्याण' का सम्पादन किया। मार्च 1971 में देहावसान के बाद 'कल्याण' से उनका भौतिक रूप से सम्बन्ध विच्छेद हो गया पर उस दीर्घ अवधि में कर्म-ज्ञान-भक्ति तथा नैतिक एवं सामाजिक मूल्यों से समन्वित लेखों तथा समसामयिक राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय समस्याओं पर केन्द्रित सम्पादकीय टिप्पणियों, उपनिषद्, गीता, रामायण, भागवत, महाभारत आदि प्राचीन ग्रन्थों के मर्म का उद्घाटन करनेवाले विशेषांकों द्वारा भारतीय जनता का महान उपकार किया, उन्हें अपने दुर्लभ रिक्थ से परिचित कराया। 'कल्याण' के विशेषांकों तथा साधारण अंकों द्वारा उन्होंने भारतीय साहित्य एवं संस्कृति की अमूल्य विरासत का पुनराख्यान और विकास किया। वे केवल भारत में ही नहीं, अपितु विश्व के विभिन्न भागों में भारत की सांस्कृतिक विचार परम्परा को पहुँचाने में सफल रहे। 'कल्याण' को स्तरीय पत्र बनाए रखने में पोद्दार जी को सम्पादकीय विभाग के अपने सहयोगियों का अद्भुत समर्थन मिला। 'कल्याण' के सम्पादकीय विभाग के आरम्भिक सहयोगियों में विभिन्न क्षेत्रों के अधीत विद्वान् थे। पं. चिम्मन लाल गोस्वामी, शान्तनु बिहारी द्विवेदी (बाद में स्वामी अखण्डानन्द के नाम से ख्यात), नन्ददुलारे वाजपेयी, राजबली पाण्डेय, चन्द्रदीप त्रिपाठी, चन्द्रशेखर पाण्डेय,

---

*प्रोफेसर सदानन्द प्रसाद गुप्त, पारिजात 65 आई, जुगल सालिकराम, गोरखपुर–273014

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शान्ति कुमार, बाबू राम व्यास, लक्ष्मणनारायण गर्दे, मुनिलाल गुप्त (बाद में स्वामी सनातन देव), सुदर्शन सिंह चक्र, भुवनेश्वर नाथ मिश्र 'माधव' जैसे समर्पित विद्वानों ने 'कल्याण' को अपनी सेवाएँ अर्पित कीं। इसके अतिरिक्त देश-भर के विभिन्न क्षेत्रों के निष्णात् पण्डितों ने पोद्दार जी को अयाचित सहयोग दिया। इसमें पोद्दार जी के सहज, सरल, निश्छल और निरभिमानी व्यक्तित्व ने बड़ी सहायता की। पोद्दार जी प्रत्येक वर्ष 'कल्याण' का एक विशेष तथा ग्यारह साधारण अंक प्रकाशित करते थे। विशेष अंक किसी विषय-विशेष पर केन्द्रित रहते थे। विद्वानों के सहयोग से पोद्दार जी विशेष अंकों की विस्तृत विषय सूची बनाते थे और देश-भर के लेखकों से लेख आमन्त्रित करते थे। इस सन्दर्भ में उन्हें विद्वानों, विषय-विशेषज्ञों कर पूरा सहयोग मिलता था। विद्वानों के महत्त्वपूर्ण सुझाव पत्र के माध्यम से प्राप्त होते थे। तदनुरूप अंक की रूपरेखा बनाई जाती थी और तत्पश्चात् लेखों का संकलन किया जाता था। लगभग 8-10 महीने तक यह प्रक्रिया चलती थी। अक्टूबर से मुद्रण कार्य आरम्भ होता था और दिसम्बर के मध्य या अन्त तक विशेषांक प्रकाशित हो जाता था। प्रकाशित अंकों की समीक्षाएँ पोद्दार जी को पत्र रूप में प्राप्त होती थीं। ऐसे पत्रों की बहुत बड़ी संख्या है। साधारण पाठकों की प्रतिक्रियाएँ और सुझाव आते थे और विद्वानों के भी। इसके अतिरिक्त विभिन्न विषयों पर सुझाव भी आते थे, सामाजिक, सांस्कृतिक, धार्मिक विषयों पर पोद्दार जी से निर्देश प्राप्त करने के लिए भी पत्र आते थे। पोद्दार जी ने 'कल्याण' के माध्यम से एक विस्तृत, व्यापक सम्बन्धों का दायरा बना लिया था, जो बहुत ही आत्मीय भी था। अतः व्यक्तिगत या सामाजिक जीवन से सम्बन्धित पत्र भी पोद्दार जी के पास पहुँचते थे। इन पत्रों को पढ़कर पोद्दार जी के व्यक्तित्व के विभिन्न पक्षों से परिचित हुआ जा सकता है। देश के जिन शीर्ष साहित्यकारों, विद्वानों, सामाजिक-राजनीतिक चिन्तकों, स्वतन्त्रता संघर्ष के सेनानियों से पोद्दार जी का पत्र-व्यवहार हुआ है, उनमें महात्मा गाँधी, देशबन्धु चितरंजन दास, लालबहादुर शास्त्री, डॉ. राजेन्द्र प्रसाद, सी. एफ. एण्ड्रयूज, सम्पूर्णानन्द, श्रीप्रकाश, हरिभाउ उपाध्याय, अक्षय कुमार बनर्जी, कन्हैयालाल मुंशी, कमलापति त्रिपाठी, सी. वी. रमण, रवीन्द्रनाथ ठाकुर, माधवराव सदाशिव राव गोलवलकर, डॉ. रघुवीर, राजबली पाण्डेय, राधाकुमुद मुखर्जी, अम्बिका प्रसाद वाजपेयी, वारान्निकोव, लिली एलेन, मीराबेन, एडविन ग्रीव्स, जार्ज अब्राहम ग्रियर्सन, महावीर प्रसाद द्विवेदी, मैथिलीशरण गुप्त, हजारीप्रसाद द्विवेदी, क्षितिमोहन सेन, कन्हैयालाल पोद्दार, प्रेमचन्द, महाकवि जयशंकर प्रसाद, सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला, सुमित्रानन्दन पन्त, गुलाब राय, केशवप्रसाद मिश्र, चन्द्रबली पाण्डेय, नन्ददुलारे वाजपेयी, परशुराम चतुर्वेदी, पीताम्बर दत्त बड़थ्वाल, बनारसीदास चतुर्वेदी, भगीरथ मिश्र, विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, भुवनेश्वर नाथ मिश्र, माधव, मोहनलाल महतो वियोगी, रामकुमार वर्मा, रामनरेश त्रिपाठी, रामनाथ सुमन, रायकृष्णदास, राहुल सांकृत्यायन, लक्ष्मणनारायण गर्दे, वासुदेव शरण अग्रवाल, वियोगी हरि, श्रीनारायण

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चतुर्वेदी, सुनीति कुमार चटर्जी, हरिवंशराय बच्चन एवं तेजी बच्चन प्रमुख हैं। ये पत्र विभिन्न तरह के हैं। इनमें व्यक्तिगत जीवन से लेकर सामाजिक-सांस्कृतिक एवं राजनीतिक-धार्मिक तथा आध्यात्मिक विषयों का समावेश है। बहुत से पत्र 'कल्याण' के विभिन्न अंकों की सम्मतियों के विषय में भी हैं। 'कल्याण' के लिए लेख न भेज पाने की असमर्थता भी कुछ पत्रों में व्यक्त की गई है। कुछ पत्र ऐसे भी हैं, जिनमें लेख के बदले पारिश्रमिक की माँग की गई है, पुस्तक प्रकाशन का आग्रह किया गया है। पोद्दार जी की विद्वानों से अपेक्षा रहती थी कि पत्र के स्तरोन्नयन के लिए सुझाव दें। अतः बहुत से पत्र ऐसे हैं जिनमें बहुमूल्य सुझाव भी दिए गए। इनमें से कुछ विद्वानों के पत्रों का उल्लेख समीचीन होगा। कन्हैयालाल पोद्दार भारतीय काव्यशास्त्र के पंडित थे। पोद्दार जी को लिखे गए उनके चार पत्र मुझे प्राप्त हुए हैं। उन्होंने 'कल्याण' के महत्त्व को रेखांकित करते हुए कुछ सुझाव दिए हैं तथा विशेषांक 'ईश्वरांक' के लिए लेख भेजने का आश्वासन दिया है। 'कल्याण' का एक विशेष अंक 'रामचरितमानसांक' निकला था। उस अंक पर बिड़लाजी की सम्मति प्रकाशित हुई थी। कन्हैयालाल पोद्दार ने इस पर यह कहते हुए आपत्ति प्रकट की, कि बिड़लाजी मानस मर्मज्ञ नहीं हैं, उनकी यह अनधिकार चेष्टा है। कन्हैयालाल पोद्दार ने अपने 1938 के पत्र में सम्पादक को यह सुझाव दिया है कि 'हिन्दुस्तानी' नाम से प्रचलित भाषा को प्रोत्साहित नहीं किया जाए। इस पत्र से स्वतन्त्रता पूर्व भाषा-विवाद की झलक मिलती है। उस समय हिन्दी-उर्दू-हिन्दुस्तानी का विवाद विद्वानों के बीच था—कुछ लोग तत्सम और तद्भव प्रधान हिन्दी भाषा का पक्ष ले रहे थे और कुछ विद्वान 'उर्दू' तथा कुछ लोग बीच का रास्ता निकालते हुए 'हिन्दुस्तानी' का समर्थन कर रहे थे। महात्मा गाँधी हिन्दुस्तानी का पक्ष ले रहे थे; उसे ही राष्ट्रभाषा के रूप में देखना चाहते थे। प्रेमचन्द ने भी अपने एक वक्तव्य में कहा था—"भारत की राष्ट्रीय भाषा न तो उर्दू ही है और न हिन्दी बल्कि हिन्दुस्तानी है जो सारे हिन्दुस्तान में समझी जाती है और उसके एक बड़े भाग में बोली जाती है। लेकिन फिर भी लिखी कहीं नहीं जाती है।" (साहित्य का उद्देश्य—उर्दू हिन्दी और हिन्दुस्तानी, पृ.155-56) रामचन्द्र शुक्ल, शिवपूजन सहाय, राहुल सांकृत्यायन प्रभृति विद्वानों ने हिन्दुस्तानी का विरोध किया और तत्सम, तद्भव तथा जनपदीय शब्दों की सहायता से निर्मित हिन्दी का समर्थन किया था। प्रसिद्ध वैयाकरण एवं भाषाविद् पं. किशोरी दास वाजपेयी 'कल्याण' में निरंतर लिखते थे। वे एक स्वाभिमानी व्यक्ति थे। जीविका के लिए लेखन ही उनका सहारा था। इसलिए उन्होंने आर्थिक कठिनाई के चलते बहुत ही संकोच के साथ पोद्दार जी से लेखकों को पारिश्रमिक देने का अनुरोध किया। वाजपेयी जी ने 'शक्ति अंक', 'साधनांक', 'नारदविष्णु पुराण अंक' पर अपनी समीक्षात्मक टिप्पणी दी है। साथ ही वेदान्त, गणेश, मारुति, सूर्य पर केन्द्रित अंक निकालने का सुझाव दिया। ध्यातव्य है कि पोद्दार जी ने वेदान्त पर केन्द्रित 'कल्याण' का विशेष अंक प्रकाशित किया था। पोद्दार जी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के निधन के बाद पं. चिम्मन लाल गोस्वामी के सम्पादन में 'कल्याण' का 'गणेश विशेषांक' प्रकाशित हुआ था।

क्षितिमोहन सेन शान्तिनिकेतन में अध्यापक थे। वे सन्त साहित्य के प्रखर अध्येता और अधीत विद्वान थे। पोद्दार जी द्वारा सम्पादित किए जानेवाले 'कल्याण' के 'सन्त अंक' की विषय सूची देखकर जो बहुमूल्य सुझाव सन्तों ने दिए हैं, उनसे यह प्रमाणित होता है कि उस समय के विद्वान कितने विद्यानुरागी, शोध अध्येता, अनुशीलन कर्त्ता तथा निःस्वार्थ भाव से साहित्य एवं संस्कृति की साधना में निरत रहने वाले थे। क्षितिमोहन सेन के पत्र से ज्ञात होता है कि वे सन्त साहित्य के विश्वकोश थे।

पोद्दार जी ने अपने समय के शीर्ष रचनाकारों से 'कल्याण' के लिए लिखने का अनुरोध किया था। इनमें कवि गुरु रवीन्द्रनाथ ठाकुर, महावीर प्रसाद द्विवेदी, मैथिलीशरण गुप्त, प्रेमचन्द, जयशंकर प्रसाद, निराला, सुमित्रानन्दन पन्त, रामकुमार वर्मा, राहुल सांकृत्यायन, वियोगी हरि, रामनरेश त्रिपाठी और हजारीप्रसाद द्विवेदी प्रमुख हैं। रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने अपने 15.2.1932 तथा 10.9.1935 के पत्रों में अत्यन्त व्यस्तता का सन्दर्भ दिया तथा 'ईश्वरांक' के लिए पूछे गए प्रश्नों के संक्षिप्त उत्तर देते हुए 'कल्याण' के लोकोपयोगी एवं मानवता के हितकारी उद्देश्यों की प्रशंसा की है। प्रसिद्ध छायावादी कवि जयशंकर प्रसाद ने अपने 24.2.1932 के पत्र में अस्वस्थता के कारण 'कल्याण' के लिए लिखने में असमर्थता व्यक्त की है, पर साथ ही 'ईश्वरांक' के लिए लिखने का आश्वासन दिया है। प्रेमचन्द ने 18.2.1931 तथा 3.3.1932 के पत्रों में 'कल्याण' के 'कृष्णांक' और 'ईश्वरांक' के लिए लेख देने की बात लिखी है। 'कृष्णांक' हेतु लेख का शीर्षक भी उन्होंने दिया है—'श्रीकृष्ण और भावी जगत्'। प्रेमचन्द का पत्र यहाँ उद्धृत किया जा रहा है, जो लखनऊ से 18.2.1931 को लिखा गया है—

"प्रिय हनुमान प्रसाद जी, आपका कृपापत्र मिला, आपका यह कथन सत्य है कि मैंने तीन वर्षों में 'कल्याण' के लिए कुछ नहीं लिखा। किन्तु इसके कारण हैं। यह एक धर्म विषयक पत्रिका है और मैं धार्मिक विषय में कोरा हूँ। मेरे लिए धार्मिक तत्वों पर कुछ लिखना अनधिकार है। आप अधिकारी होकर मुझे अनधिकार सिखाते हैं। अब मैं आपकी आज्ञा का पालन करूँगा। 'श्रीकृष्ण और भावी जगत्' यह प्रसंग मेरे अनुकूल है और मैं इसी पर कुछ लिखूँगा।" प्रेमचन्द के इस पत्र से उनकी विनयशीलता तो प्रकट होती ही है साथ ही विषय के साथ न्याय करने की प्रवृत्ति का भी पता चलता है।

वासुदेवशरण अग्रवाल भारतीय इतिहास एवं संस्कृति के गहन अध्येता थे। उन्होंने कल्याण के स्वरूप निर्धारण में बड़ी महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई है। उन्होंने अनेक विशेषांकों की विषय सूची बनाने तथा सामग्री चयन में पोद्दार जी की बड़ी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सहायता की। पोद्दार जी से उनके पत्र-व्यवहार निरन्तर होते थे। मुझे उनके लिखे 154 पत्र मिले हैं। इन पत्रों में 'हिन्दू संस्कृति अंक' के लिए परामर्श देने के क्रम में 16.6.1949 को जो पत्र अग्रवाल जी ने लिखा है, वह उनकी अध्ययनशीलता, भविष्य दृष्टि, भारतीय संस्कृति के अमूल्य धरोहर की महत्ता के प्रति उनका विश्वास तथा उनकी सतत साधना और कर्तव्यनिष्ठा का अप्रतिम उदाहरण है, "मैं कभी-कभी सोचता हूँ कि इस देश के तपस्वी ज्ञानियों ने जन्म-पर्यन्त की निष्ठा से कितना महान् उपकार किया, सत्य का दर्शन करके उसे शब्द रूप में निबद्ध करके मानव मात्र के लिए छोड़ गए। देश का सच्चा धन वही है। विचार के क्षेत्र में जो अतीत काल का सृजन है उसकी पुरोचना कितनी तेजस्वी है, इसे प्रकट करना अत्यन्त आवश्यक है। ...वेद, ब्राह्मण, उपनिषद्, महाभारत और पुराण का जो मथित सार है। जो उसका शाश्वत मूल्य वाला भाग है। उसे प्रस्तुत करना यही संस्कृति अंक का प्रयोजन होना चाहिए। आपने जैसा लिखा है, मौलिक लेखकों की कमी अवश्य है, पर जो साधन हैं उन्हीं से प्रगति करनी है।

महावीर प्रसाद द्विवेदी और मैथिलीशरण गुप्त के पत्र 'कल्याण' के विशेषांकों के बारे में संक्षिप्त टिप्पणियों से सम्बन्धित हैं। ये टिप्पणियाँ प्रशंसात्मक हैं। ऐसा ही एक पत्र महावीर प्रसाद द्विवेदी का 7.9.1932 का है, जो दौलतपुर (राय बरेली) से लिखा गया है। यह पत्र द्विवेदी जी के संवेदनशील और भावुक व्यक्तित्व की सूचना देता है– "भाई हनुमान प्रसाद, सांसारिक यातनाओं की ज्वाला से झुलसे हुए पर आपने घड़ों जल क्या पीयूष वर्षा कर दी। कल से 'कल्याण' के ईश्वरांक पाठ से आनन्द प्राप्ति कर रहा हूँ। आज 612 पृष्ठ पर आपका लेख पढ़ा। 614 के पहले कालम की पहली 5 सतरें पढ़कर यह कार्ड लिख रहा हूँ। मेरी आँखों में जो आँसू निकले हैं और अब तक निकल रहे हैं उनका कुछ अंश ऊपर कार्ड पर भी लग गया है। आप धन्य हैं– आपकी योजना धन्य है—भगवद् भक्ताय ते नमः। कृतार्थ—महावीर प्रसाद द्विवेदी।' मैथिलीशरण गुप्त का चिरगाँव से 27.8.1935 को लिखा पत्र 'कल्याण' के विशेषांक 'योगांक' से सम्बन्धित है—प्रिय पोद्दार जी जय जानकीजीवन! 'कल्याण' के विशेषांक क्या होते हैं, अपने प्रतिपाद्य विषयों के पूरे-पूरे साहित्य होते हैं। 'योगांक' भी ऐसा ही जान पड़ता है। उसके लिए बधाई क्या दूँ, आप सरीखे परम भागवत को सादर प्रणाम करता हूँ। विनीत—मैथिलीशरण' रामकुमार वर्मा के पत्र 'कल्याण' के विभिन्न विशेषांकों पर सम्मति तथा गीता प्रेस से महाभारत पर प्रशंसात्मक टिप्पणी से सम्बन्धित हैं। रामकुमार वर्मा के पत्र 11 जुलाई 1938, 7 अगस्त 1938, 24 अगस्त 1938, 17 मई 1950 एवं 20 फरवरी, 1964 के हैं।

पोद्दार जी स्वयं लेखकों से आलेख हेतु आग्रह करते ही थे, सम्पादकीय विभाग के अन्य सहयोगियों के माध्यम से लेखकों से सम्पर्क करते थे। इन सहयोगियों में एक थे मध्यकालीन हिन्दी साहित्य के प्रख्यात् विद्वान डॉ. भुवनेश्वरनाथ मिश्र माधव।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

माधवजी ने 'कल्याण' हेतु हजारीप्रसाद द्विवेदी से सम्पर्क किया था। अतः हजारीप्रसाद द्विवेदी के पत्र पोद्दार जी और माधव जी को सम्बोधित हैं। द्विवेदी जी के पत्र का अपना सौन्दर्य है। द्विवेदी जी जीव गोस्वामी के भागवत-सन्दर्भ के अन्तिम दो अध्याय—'भक्ति सन्दर्भ' और 'प्रीति सन्दर्भ' का अनुवाद अपनी स्वतन्त्र व्याख्या के साथ करते हुए इसका प्रकाशन गीताप्रेस से कराना चाहते थे। इस सम्बन्ध में उन्होंने शान्तिनिकेतन से 24.9.1934 को जो पत्र माधव जी को लिखा है, वह द्विवेदी जी की जीवन्तता, विनोदप्रियता तथा विदग्धता का प्रमाण है—"मैंने 'मसाला' तो बहुत संग्रह किया है, पर उसे सजाकर लिखने में जो परिश्रम होगा उसकी सार्थकता के सम्बन्ध में आगा-पीछा हो रहा है। उसमें तो सन्देह नहीं कि इस प्रकार का कार्य साहित्य और साधना दोनों के लिए अच्छा होगा पर मेरे जैसे सांसारिक आदमी 'सार्थकता के अर्थ' शब्द का अर्थ रुपया ही समझते हैं। मैं आपको यही कष्ट देना चाहता हूँ कि 'कल्याण' प्रेस के अध्यक्ष से पूछने की कृपा करें कि क्या वे इस प्रकार की पुस्तक छापेंगे, अगर छापेंगे तो लेखक को किस प्रकार का पारिश्रमिक देंगे?" द्विवेदी जी का एक और पत्र माधव जी को ही सम्बोधित है। यह पत्र अपनी विशिष्टता में अद्वितीय है। द्विवेदी जी का पत्र क्या है, मानो ललित निबंध है। इसमें द्विवेदी जी के रससिक्त भाव प्रवण और विदग्ध व्यक्तित्व की झलक मिलती है। यह पत्र भाव और भाषा-शिल्प का अप्रतिम उदाहरण है।

भुवनेश्वर नाथ मिश्र माधव की पोद्दार जी से गहरी आत्मीयता थी; वे पोद्दार जी को अभिभावक की श्रेणी में रखते थे। माधव जी कई वर्ष तक सम्पादकीय विभाग से सम्बद्ध रहे। माधव जी मध्यकालीन हिन्दी साहित्य के मर्मज्ञ थे। माधव जी के पत्र विविधवर्णी हैं; उनमें 'कल्याण' के विशेषांकों की समीक्षा है, लेख भेजने की सूचना है, रामचरितमानस की टीका की त्रुटियों की ओर संकेत है, भाईजी के स्नेही हरिवक्ष जोशी द्वारा 'मीरा की प्रेम साधना' पुस्तक से बिना किसी उल्लेख के 12-13 पृष्ठ की सामग्री को अपनी पुस्तक में उद्धृत किए जाने की शिकायत भी है, साथ ही व्यक्तिगत भावोद्गार भी हैं। माधव जी भाईजी के समक्ष अपना हृदय खोलकर रख देते है। उन्हें ऐसा लगता है कि एक स्थान ऐसा है, जहाँ निःसंकोच सब कुछ निवेदन किया जा सकता है। आखिर भाईजी जैसा वात्सल्य से भरा हृदय उन्हें कहाँ मिलता! माधव जी के पत्र अजस्र भावधारा की मानो तरंगें हैं; उन तरंगों के छींटे शीतल और सुखदायी हैं— 'तपन में शीतल मन्द बयार' जैसे।

पोद्दार जी को सम्बोधित कुछ पत्र ऐसे भी हैं, जिनमें 'कल्याण' के विभिन्न विशेष अंकों के बारे में सम्मतियाँ हैं। उन सम्मतियों से पोद्दार जी का 'कल्याण' के स्तरोन्नयन में पर्याप्त सहायता मिली। सम्मति एवं सुझाव देनेवाले अपने-अपने क्षेत्रों के विशिष्ट विद्वान् रहे हैं। सम्मति एवं सुझाव देने वालों में क्षितिमोहन सेन, किशोरीदास वाजपेयी, ताराचन्द्र पाण्ड्या, पीताम्बरदत्त बड़थ्वाल, बनारसीदास चतुर्वेदी, महावीर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रसाद द्विवेदी, मैथिलीशरण गुप्त, मोहनलाल माहतो वियोगी, प्रो. हाफिज सैय्यद, डॉ. रघुवीर, डॉ. राजबली पाण्डेय, राधाकुमुद मुखर्जी, रामकुमार वर्मा, डॉ. राजेन्द्र प्रसाद, सूर्यकांत त्रिपाठी निराला जैसे नाम प्रमुख हैं।

पीताम्बरदत्त बड़थ्वाल काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में प्राध्यापक थे। वे मध्यकालीन हिन्दी साहित्य के विशेषज्ञ विद्वान थे और हिन्दी के प्रथम डि.लिट्. उपाधि प्राप्त अध्येता भी। 'कल्याण' के सम्पादक से उनकी गहरी आत्मीयता थी। 'कल्याण' के वे नियमित लेखक थे। 'कल्याण' के विशेषांकों के सम्बन्ध में उनकी टिप्पणियाँ अपना महत्त्व रखती हैं। उनके अन्य सुझाव भी महत्त्वपूर्ण हैं। गीताप्रेस केवल धर्म और अध्यात्म का सन्देश ही नहीं प्रसारित करता था अपितु स्वयं में उसे चरितार्थ भी करता था। 'वेदान्तांक' 'कल्याण' का एक विशेषांक था; उसका सन्देश ही था—'सर्वं खल्विदं ब्रह्म', 'सर्वभूतहिते रताः।' बड़थ्वाल जी ने गीताप्रेस के निःस्वार्थ सेवा भाव में वेदांत के दर्शन किए। अपने 20.11.1936 के पत्र में उन्होंने पोद्दार जी को लिखा—"परन्तु इसमें बढ़कर वेदांत के दर्शन मुझे गीताप्रेस की उस निःस्वार्थ जनसेवा में हुए जिसने हजारों निस्सहायों के दुःख का बाढ़ के अवसर पर निवारण किया। गीताप्रेस के कार्यकर्ताओं के ठोस सेवा-कार्य ने अपने पत्र के लेखकों के शब्दों को भी वजन दे डाला है। नहीं तो दुनिया अब तक इस वेदान्त को जबानी जमा खर्च समझती आ रही थी। यहाँ यह ध्यातव्य है कि स्वामी विवेकानन्द ने भी अद्वैत वेदान्त को मानव मात्र की सेवा से जोड़ा था।

पं. बनारसीदास चतुर्वेदी 'विशाल भारत' के सम्पादन से सम्बद्ध थे। उन्होंने स्वयं तो 'कल्याण' में लेखकीय योगदान किया ही, अन्य लोगों से भी अनुरोध किया। सी. एफ. एण्ड्रयूज उन दिनों शान्तिनिकेतन में रहते थे। चतुर्वेदी जी ने पोद्दार जी को सुझाव दिया कि वे उनसे भी लेख के लिए आग्रह करें। पोद्दार जी ने उनके सुझाव का आदर करते हुए सी. एफ. एण्ड्रयूज से सम्पर्क किया। 'कल्याण' धर्मार्थ निकलने वाला पत्र था। इसलिए लगभग लागत मूल्य पर इसका वितरण होता था। अतः लेखकों को पारिश्रमिक देने का प्रश्न ही नहीं था। चतुर्वेदीजी ने पोद्दार जी को सदस्यता शुल्क में वृद्धि का सुझाव दिया जिससे लेखकों को पारिश्रमिक दिया जा सके—" 'कल्याण' के 16 हजार ग्राहक हैं। यदि आप उसके मूल्य में चार आने की भी वृद्धि कर दें और उस चार हजार रुपयों को हिन्दी के लेखकों से अच्छे लेख लिखाने तथा अनुवाद कराने में व्यय करें तो अनेक लेखकों का आप उद्धार कर सकते हैं। आपके पत्र का इससे स्टैण्डर्ड भी बढ़ेगा और पुण्य भी अधिक होगा।"(12.3.1932)

'कल्याण' के छठे वर्ष का विशेषांक 'श्रीकृष्णांक' के रूप में प्रकाशित हुआ था। इस अंक पर अनेक पाठकों की सम्मतियाँ प्राप्त हुई थीं। इनमें एक सम्मति छायावाद के प्रसिद्ध क्रान्तिकारी कवि सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला की थी। गढ़कोला (उन्नाव) से 17.10.1939 का लिखा यह पत्र अपने-आप में एक दुर्लभ थाती है। निराला की भाषा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विशेषतः गद्य की भाषा में जो जिन्दादिली और चुटीलापन है, व्यंग्य की जो तीव्र धार है, उसकी झलक उनके पत्र में मिलती है— "कल्याण' का 'श्रीकृष्णांक' लेखों, चित्रों तथा छपाई सफाई आदि अन्तरंग-बहिरंग—दोनों दृष्टियों से हिन्दी के पत्र-साहित्य में अद्वितीय चारुता तथा सत्साहित्य के निर्माण में आदर्श है। मैंने अपनी जानी हुई अपर भाषाओं में भी ऐसा अच्छा विशेषांक नहीं देखा। आपने अन्यान्य प्रान्तों से भी सहयोग प्राप्त किया है। इसीलिए आपका विशेषांक इतना अच्छा निकला। स्वामी अभेदानन्द जी, आचार्य ध्रुव, पण्डित पंचानन तर्करत्न महाशय आदि के लेख बहुत पसन्द आए। स्वामी अभेदानन्द जी ने पश्चिमी विद्वानों तथा उनकी पुस्तकों की श्रीकृष्ण पर की हुई आलोचना द्वारा श्रीकृष्ण की महत्ता साबित करते हुए बड़ी निपुणता से पादरियों का व्यापक जाल काटा है।'... जनाब, हिन्दी के धुरन्धर विद्वानों के लेख अपर प्रान्तीय लेखों के मुकाबले वैसे ही चमक रहे हैं जैसे ब्राह्मणों में चर्मकार।

पोद्दार जी ने 'कल्याण' के सम्पादन में व्यापक दृष्टि का परिचय देते हुए भारत की विभिन्न भाषाओं के विद्वानों के साथ ही उन विदेशी विद्वानों का भी सहयोग लिया, जो भारतीय वाङ्मय में गहरी रुचि रखते थे। एडविन ग्रीव्स की भारतीय साहित्य में गहरी रुचि थी, भक्ति-साहित्य उनके अध्ययन का क्षेत्र था। एडविन ग्रीव्स से पोद्दार जी ने 'कल्याण' के लिए लिखने का आग्रह किया था। एडविन ग्रीव्स के पत्रों से कई महत्त्वपूर्ण निष्कर्ष निकलते हैं। एडविन ग्रीव्स ने 'कल्याण' के रामायणांक और ईश्वरांक के लिए लेख भेजने की बात लिखी है। साथ ही कुछ सुझाव भी दिए हैं, जिनका महत्त्व आज भी है। एडविन ग्रीव्स ने अपने 4.9.1930 के पत्र में पोद्दार जी को सूचित किया कि वे हिन्दी की अपेक्षा अंग्रेजी में लिखने में सहज अनुभव करते हैं, क्योंकि अंग्रेजी उनकी मातृभाषा है। इससे एडविन ग्रीव्स की अपनी भाषा के प्रति प्रतिबद्धता भी प्रकट होती है। अपनी मातृभाषा को हेय दृष्टि से देखनेवाले परोपजीवी मानसिकता के शिकार, अंग्रेजी में संवाद कर अपने को गौरवान्वित अनुभव करनेवाले मैकाले के मानस पुत्रों को एडविन ग्रीव्स की प्रतिबद्धता से आज सीख लेने की आवश्यकता है। मध्यकाल विशेषतः भक्ति-साहित्य के मर्मज्ञ तथा भाषाविद् जार्ज अब्राहम ग्रियर्सन से भी भाईजी ने 'ईश्वरांक' के लिए लेख माँगा था। उन दिनों ग्रियर्सन सरे (इंग्लैण्ड) में रहते थे। ग्रियर्सन ने अपने 8 मार्च 1932 के पत्र में 'कल्याण' के प्रति अपनी आत्मीयता प्रदर्शित करते हुए अस्वस्थता के कारण लेख देने में असमर्थता व्यक्त की थी।

पोद्दार जी ने साहित्य के क्षेत्र में सक्रिय लोगों से तो सम्पर्क किया ही; विज्ञान, राजनीति, समाज, संस्कृति के क्षेत्र में कार्यरत शीर्ष लोगों से भी संवाद स्थापित किया। ऐसे लोगों की एक लम्बी शृंखला है। पोद्दार जी ने अपने समय के प्रख्यात वैज्ञानिक तथा नोबेल पुरस्कार विजेता सी.वी. रमण से भी 'कल्याण' के लिए लेख देने का आग्रह किया था। सी.वी रमण ने यद्यपि शोध-कार्य में अति व्यस्त होने के कारण लेख

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करने में असमर्थता व्यक्त की, पर इससे पोद्दार जी के सम्पर्क की व्यापकता का पता चलता है। पं. मदनमोहन मालवीय के प्रति पोद्दार जी को बहुत अधिक श्रद्धा थी, मालवीय जी भी पोद्दार जी को काफी स्नेह देते थे। वे 'कल्याण' के नियमित पाठक थे और प्रशंसक भी। 'कल्याण' के 'मानस अंक' की मालवीय जी ने बड़ी प्रशंसा की है। (विशेष सन्दर्भ के लिए देखें पुस्तक 'कल्याण पथ : निर्माता और राही' (पृ. 83 से 86 तक)

प्रसिद्ध समाजसेवी और गाँधी जी के परम अनुयायी सेठ जमनालाल बजाज के माध्यम से पोद्दार जी का परिचय गाँधी जी से हुआ। धीरे-धीरे यह परिचय प्रगाढ़ता में बदल गया। हालाँकि गाँधी जी एवं पोद्दार जी के सामाजिक-सांस्कृतिक दृष्टिकोण मेल नहीं खाते थे, पर इससे सम्बन्धों की उष्णता कम नहीं हुई। गाँधी जी के पत्र 'कल्याण' के विशेषांकों से सम्बन्धित हैं और अन्य सामाजिक-धार्मिक विषयों से भी। पोद्दार जी ने 'ईश्वरांक' निकालते समय कुछ प्रश्नों पर लोगों की राय माँगी थी। गाँधी जी से भी वे प्रश्न पूछे गए थे। गाँधी जी का उत्तर द्रष्टव्य है—"ईश्वर को मानना चाहिए क्योंकि हम अपने को मानते हैं। जीव की हस्ती है तो जीवमात्र समुदाय ईश्वर है और यही मेरी दृष्टि में प्रबल प्रमाण है। ईश्वर को नहीं मानने से सबसे बड़ी हानि वही है जो हानि अपने को नहीं मानने से हो सकती है, अर्थात् ईश्वर को न मानना आत्महत्या-सा है। बात यह है कि ईश्वर को मानना एक वस्तु है और ईश्वर को हृदयगत करना और उसके अनुकूल आचरण रखना यह दूसरी वस्तु है।" (यरवदा 7. 1.1932) ईश्वर को केवल वाचिक रूप से स्वीकार करनेवाले व्यक्तियों के लिए यह एक सबक है और उन पर व्यंग्य भी। इसी पत्र में गाँधी जी ने अपनी नियमित दिनचर्या के विषय में भी जानकारी दी है, जो अत्यन्त रोचक है और गाँधी जी की समय-पाबन्दी का उत्कृष्ट प्रमाण भी। गाँधी जी शब्द और कर्म की एकता को जीते थे—"मेरा प्रयत्न आचार के विरुद्ध वचन न कहने और वचन के विरुद्ध आचार न करने का रहता है।" गाँधी जी समाज में सहज और स्वाभाविक गति से होनेवाले परिवर्तन के समर्थक थे, बलात् परिवर्तन को वे आडम्बर मानते थे; उनका दिखावे में विश्वास नहीं था। उन दिनों अस्पृश्यता के विरुद्ध आन्दोलन चल रहा था। पर समाज का एक वर्ग इसका पक्षधर था। गाँधी जी ने पोद्दार जी को लिखे पत्र में अपनी जो स्पष्ट सम्मति दी, वह ध्यातव्य है—"सनातनी जो अस्पृश्यता को धर्म मानते हैं, उन पर किसी प्रकार का आक्रमण नहीं होना चाहिए। उनको अपने मन्तव्य पर कायम रहने का उतना ही अधिकर है जितना हमको अपने मन्तव्य पर कायम रहने का है। सहभोज में भी तर्क से स्वच्छता आदि के पालन की हमेशा आवश्यकता है और इसमें भी किसी पर बलात्कार करना अवश्य पाप है। इसी तरह मन्दिरों के संचालकों का विरोध करके बलात्कार से उसमें घुस जाना वह भी पाप-कर्म है और इस तरह के सब मन्दिर में हरिजनों का प्रवेश हो भी गया, हरिजनों के साथ दूसरे हिन्दू खान-पान के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लिए बैठ गए भी तदपि मैं इस अस्पृश्यता निवारण हरगिज नहीं मानूँगा। (यरवदा सेण्ट्रल जेल सं. 1989 अर्थात् 1932) गाँधी जी सामाजिक सामंजस्य और सौमनस्य को कितना महत्त्व देते थे तथा स्वाभाविक परिवर्तन को ही कितना उचित मानते थे, यह पत्र इसका प्रमाण है।

भारत के प्रथम राष्ट्रपति डॉ. राजेन्द्र प्रसाद से भी पोद्दार जी के आत्मीय सम्बन्ध थे। उस आत्मीयता की झलक राजेन्द्र बाबू के पत्रों में मिलती है। उन्होंने 1935 के एक पत्र में पं. चन्द्रशेखर शास्त्री की पुस्तक को प्रकाशित करने में मदद का अनुरोध किया था। राजेन्द्र बाबू की भारतीय संस्कृति में गहरी रुचि थी। वे चाहते थे कि ग्रीक एवं लैटिन साहित्य की भाँति भारतीय साहित्य का हिन्दी में पौराणिक कोश बने। इसके लिए उन्होंने 1957 में पोद्दार जी को पत्र लिखा था। हालाँकि पौराणिक कोश गीताप्रेस से नहीं निकल सका, पर इस पत्र से यह संकेत मिलता है कि पोद्दार जी से लोगों को कितनी अपेक्षाएँ थीं। वे एक समय सांस्कृतिक-धार्मिक क्षेत्र के महत्त्वपूर्ण केन्द्र बन गए थे। लालबहादुर शास्त्री के साथ पोद्दार जी का सम्बन्ध स्वतन्त्रता संघर्ष के समय से ही था। वह उत्तरोत्तर प्रगाढ़ होता गया। शास्त्री जी के प्रधानमन्त्री बनने पर पोद्दार जी ने जब बधाई दी तो शास्त्री जी ने विनम्र उत्तर दिया। शास्त्री जी का एक पत्र 25 अक्टूबर 1965 का है, जब भारत और पाकिस्तान के बीच जबर्दस्त तनाव था। इस पत्र में शास्त्री जी ने पोद्दार जी से जो विचार साझा किए, उनका अत्यन्त महत्त्व है—"इस समय देश और काल की पुकार है, क्रियाशील होने की, कठोर परिश्रम करने की। अपनी स्वतन्त्रता को अक्षुण्ण बनाने का जो हमारा संकल्प है, वह तभी पूरा हो सकता है।" शास्त्री जी ने अपने पत्र में धर्म के वास्तविक स्वरूप को भी प्रत्यक्ष किया है-"कर्म को प्रधानता देते हुए भी हम धर्म को नहीं भूल सकते। कर्म जहाँ शरीर है, वहाँ धर्म उसकी आत्मा है। धर्म जीवन को विश्वास और दिशा प्रदान करता है। इसके सहारे हम जीते हैं। हर बड़े काम के पीछे धर्म होता है। धर्म, चाहे वह कोई भी धर्म क्यों न हो, हमारे आध्यात्मिक अस्तित्व के लिए धर्म वैसा ही आवश्यक है जैसा पार्थिव अस्तित्व के लिए कर्म।" डॉ. सम्पूर्णानन्द राजनेता के साथ चिन्तक साहित्यकार भी थे। भारतीय संस्कृति में उनकी गहरी रुचि थी। पोद्दार जी से उनका घनिष्ठ सम्बन्ध था। 'राधा-माधव-चिन्तन' पोद्दार जी के लेखों का संकलन है। इस पुस्तक में उनकी दार्शनिक मान्यताओं का निदर्शन भी है। सम्पूर्णानन्द जी ने पुस्तक को पढ़कर पोद्दार जी को कुछ सुझाव भी दिए। 27.2.1962 के अपने पत्र में उन्होंने लिखा—"मेरी सम्मति में एक अध्याय 'तन्त्र में राधा तत्त्व' के सम्बन्ध में होना चाहिए था, क्योंकि तन्त्र में राधा उपासना की चर्चा है। देवी भागवत पुराण में भी राधा नाम का उल्लेख है।" सम्पूर्णानन्द पोद्दार जी के सेवा-कार्यों से बहुत प्रभावित थे। 30.8.1955 के अपने पत्र में उन्होंने लिखा था— "बाढ़-पीड़ितों की सहायता के लिए आप जो काम कर रहे हैं, श्लाघ्य है, मैं उसके लिए 2000/ भेज रहा हूँ।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राजनीति के क्षेत्र में प्रामाणिकता, निष्ठा और ईमानदारी से कार्य करनेवालों की एक लम्बी शृंखला रही है। ये लोग ऐसे थे, जिनके जीवन मूल्य आजादी की लड़ाई में विकसित हुए थे और उन मूल्यों को उन्होंने आजादी के बाद उत्तरदायित्व मिलने पर चरितार्थ किया था। उन्हीं में से एक थे श्रीप्रकाश जी। स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद वे बम्बई प्रान्त के गवर्नर भी रहे। उनके पत्रों से पोद्दार जी के प्रति उनकी गहरी आत्मीयता का पता चलता है। उन्होंने पोद्दार जी के साथ अपनी समस्याएँ भी साझा की थीं। श्रीप्रकाश जी ने पोद्दार जी को लिखे पत्र में अपने माता-पिता की अस्वस्थता की चर्चा मार्मिकता के साथ की है–"माता-पिता की सख्त बीमारी के कारण बड़ी चिन्ता लगी रहती है। ऐसी अवस्था में मैं अपने को बहुत ही असहाय और अशक्त-सा पा रहा हूँ। विशेषकर इस बात का दुःख है कि इतनी दूरी रहने के कारण माता-पिता की कोई सेवा भी नहीं कर सकता।" पोद्दार जी की ख्याति एक निःस्वार्थ सेवी की भी थी, लोग निःसंकोच रूप से सहायता के लिए आग्रह भी करते थे। श्रीप्रकाश जी ने भी एक प्रसंग में पोद्दार जी से वाराणसी में कार्यरत पोस्टमैन की मदद का आग्रह किया–"रामशरण मिश्र यहाँ पोस्टमैन हैं। इनकी पुत्री की शादी पास आ रही है। ये बड़े परेशान हैं; आपके लिए पत्र चाहते हैं। मैं इसे सहर्ष देता हूँ। इसकी स्त्री कई जगह गई आई; पर्याप्त सहायता नहीं मिली। यदि आप इनकी सहायता कर सकते या करा सकते तो इनका कल्याण हो जाता।" वस्तुतः पोद्दार जी ने विश्वसनीयता आत्मीयता, उदारता और नैतिक ईमानदारी का इतना अधिक विस्तार किया था कि लोग अपने जीवन की व्यक्तिगत समस्याओं को उनके समक्ष प्रकट करने में तनिक भी संकोच का अनुभव नहीं करते थे। श्रीप्रकाश जी की भाँति हरिवंश राय बच्चन, तेजी बच्चन, नन्ददुलारे वाजपेयी, लक्ष्मण नारायण गर्दे, वियोगी हरि, रामनरेश त्रिपाठी, रामनाथ सुमन जैसे विशिष्ट जनों के पत्र इस बात के प्रमाण हैं कि पोद्दार जी ने अपनी आत्मीयता से लोगों को आप्यायित किया था। हरिवंश राय बच्चन और तेजी बच्चन ने अपने जीवन की कठिनाइयाँ पोद्दार जी के समक्ष निःसंकोच भाव से रखीं। तेजी बच्चन का एक पत्र 7.8.1965 का है। यह वह समय था जब नेहरू जी का निधन हो चुका था और बच्चन जी अफसरशाही की हृदयहीनता के शिकार हुए थे–"रक्षा बन्धन के शुभ अवसर पर श्रीबाबा और आपके चरणों में राखी भेज रही हूँ, स्वीकार कीजिए। हर एक मनुष्य के जीवन में एक ऐसा समय आता है जबकि वह अपने बड़ों का आशीर्वाद और सहायता अधिक-से-अधिक चाहता है। 'भाई' का तो स्थान ही अलग है और फिर ऐसे भाई का जो भगवान रूप है। मेरी एक प्रार्थना है। कि आप मेरे बाबा को कह दीजिए कि उनकी बहन के जीवन में ऐसा समय आया है जबकि वह अपने और पवित्र भाई बाबा से रक्षा और सहायता चाहता है। आजकल मैं अत्यन्त चिन्तित और दुःखी हूँ। हमारा भविष्य एक अँधेरा है। उस नदी की तरह जिसका किनारा नहीं दिखता। मैंने अपना सब कुछ बाबा पर छोड़ दिया है, मेरी एकमात्र आशा बाबा हैं, वह मेरी सहायता अवश्य करेंगे, यह मेरा अटल विश्वास है। मैं अपनी समस्या प्रतिदिन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उन्हें सुनाती हूँ, उनका ध्यान करती हूँ। वह अन्तरजामी हैं। भाईजी! आप यह पत्र बाबा को सुनाने का कष्ट करें। धन्यवाद। आपकी दुखी बहन—तेजी।" पोद्दार जी के साथ आत्मीय सम्बन्ध के कारण ही बच्चन जी प्रसिद्ध उद्योगपति जयदयाल डालमिया और उनके परिवार के निकट आ गए थे। पोद्दार जी के प्रयत्न से बच्चन जी के ज्येष्ठ पुत्र और सदी के महानायक कहे जानेवाले अमिताभ बच्चन ने डालमिया कम्पनी से ही अपनी जीविका आरम्भ की थी। बच्चन जी के पत्रों से यह भी पता चलता है कि अमिताभ बच्चन के गले की गिल्टी का ऑपरेशन कलकत्ते में हुआ था।

हिन्दी के प्रसिद्ध आलोचक और छायावाद के समर्थन में अपनी आलेचना-दृष्टि का विकास करनेवाले नन्ददुलारे वाजपेयी ने कल्याण के सम्पादकीय विभाग में अपनी सेवाएँ दी थीं। 'कल्याण' के 'रामचरितमानसांक' का सम्पादन उन्होंने चिम्मनलाल गोस्वामी के साथ मिलकर किया था। यहाँ रहकर पोद्दार जी के साथ उनके इतने घनिष्ठ सम्बन्ध हो गए थे कि वे अपनी व्यक्तिगत समस्याएँ एवं जीवन की कठिनाइयाँ पोद्दार जी के समक्ष निःसंकोच भाव से रखते थे और उनके परामर्श को उचित महत्त्व और सम्मान देते थे। वाजपेयी जी ने 1.4.1937 को पोद्दार जी को जो पत्र लिखा है उससे कई तथ्यों पर प्रकाश पड़ता है। इस पत्र में उन्होंने अपनी स्वतन्त्र प्रकृति, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय जैसे उच्च आदर्शों से प्रेरित संस्था में नियुक्ति सम्बन्धी दोषपूर्ण पद्धति की चर्चा की है—"मुझे दुःख इस बात का है कि विश्वविद्यालय के कर्णधारों की मनोवृत्ति मुझे मालूम है और मैं यह जानता हूँ कि चुनाव सम्बन्धी यहाँ की नीति अधिक त्रुटिपूर्ण है, तो भी मैंने इसके लिए आवेदन-पत्र भेजा है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि मेरी जैसी प्रवृत्ति है—लोगों से बहुत कम मिलना-जुलना, बड़े आदमियों से दूर ही रहना, उसके अनुकूल विश्वविद्यालय का वातावरण नहीं है।... गीताप्रेस मेरे लिए आदर्श स्थान है, यह तो मैं नहीं कह सकता, तथापि वह अन्य स्थानों से अच्छा है विशेषतः जब तक आप वहाँ हैं मेरे लिए वह अत्यन्त प्रिय स्थान है। भाईजी, मैं दुर्भाग्यवश अत्यन्त स्वतन्त्र और नपी-तुली रुचियों का व्यक्ति हूँ। इसलिए मेरे लिए नौकरी करने की दृष्टि से किसी आदर्श संस्था का तो प्रश्न ही नहीं है। वह तो हो ही नहीं सकती। तो भी उस स्थान में अधिक प्रसन्न रह सकता हूँ जहाँ मैं अधिक-से-अधिक अपनी प्रकृति के अनुसार कार्य कर सकूँ। पर्याप्त समय तक मुझे देखने के बाद आप मेरे स्वभाव से परिचित हो गए होंगे, इसलिए इस सम्बन्ध में अधिक लिखना अनावश्यक होगा।

सम्प्रति मैंने यह विचार किया है कि अर्जी देकर मैं इस सम्बन्ध में अपना कार्य समाप्त करता हूँ। एक तो मुझे यह आशा नहीं है कि मेरी यहाँ नियुक्ति होगी, किन्तु यदि हो तो भी मैं हृदय से इसे स्वीकार करने को उद्यत न हो सकूँगा। फिर भी मैं उस समय परिस्थितियों की प्रेरणा से क्या करूँगा क्या नहीं यह मैं अपनी ओर से निश्चय नहीं कर सकता। इस सम्बन्ध में पूर्णतः आपकी आन्तरिक और सच्ची शुभकामना से

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पूर्ण सम्मति पर ही अवलम्बित हो जाऊँगा। यह मेरे लिए भविष्य के विचार से बहुत ही महत्वपूर्ण प्रश्न है और इसका निर्णय मैं आप पर ही छोड़ूँगा। मैंने कभी आपसे किसी ऐसे गम्भीर प्रश्न पर सम्मति नहीं ली किन्तु इस बार आप पर ही यह प्रश्न अवलम्बित रहेगा। यदि यह एक दृष्टि से व्यावहारिक प्रश्न है तो दूसरी दृष्टि से आध्यात्मिक भी है, कारण इस पर जीवन की स्थायी गतिविधि निर्भर है।"

वाजपेयी जी के ये पत्र एक तरह से युगीन दस्तावेज हैं, जिनसे कई संकेत निकलते हैं। 1936 में काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के कुलपति महामना मदनमोहन मालवीय और हिन्दी विभाग के अध्यक्ष आचार्य रामचन्द्र शुक्ल थे। जिन बड़े आदमियों की चर्चा वाजपेयी जी ने की है क्या वह इन दोनों की ओर संकेत तो नहीं है? 1937 ई. में आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र की नियुक्ति हुई थी। वाजपेयी जी 1937 में 'कल्याण' सम्पादकीय विभाग में कार्य करने आ गए और कुछ वर्ष यहाँ रहे। पुनः वे 1941 में काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग में नियुक्त हुए। वाजपेयी जी के इस पत्र में कुछ बातें और भी निकलती हैं। क्या वाजपेयी का अहं इतना बड़ा था कि वे दूसरों से सामंजस्य नहीं बैठा पा रहे थे। क्या शुक्ल जी वाजपेयी की प्रतिभा को उचित महत्त्व नहीं दे रहे थे? क्या मालवीय जी वाजपेयी जी की जान-बूझकर अनदेखी कर रहे थे? ये सब ऐसे प्रश्न हैं, जिन्हें अन्य घटनाओं या स्थितियों के परिप्रेक्ष्य में देखा जा सकता है। पर इतना तो अवश्य ही कहा जा सकता है कि वाजपेयी जी तत्कालीन परिस्थितियों से असन्तुष्ट थे और इसकी चर्चा उन्होंने पोद्दार जी से पत्र के माध्यम से की थी। वाजपेयी जी के अन्य पत्र विशेषांकों की समीक्षा से सम्बन्धित हैं। 'हिन्दू संस्कृति अंक' 'कल्याण' का एक महत्त्वपूर्ण विशेषांक था। वाजपेयी जी ने हिन्दू संस्कृति के ऐतिहासिक विकास पर लेख न होने की चर्चा की है। उन्होंने पोद्दार जी की धार्मिक एवं आचारमूलक दृष्टि की सीमा की ओर संकेत किया है। अपने एक अन्य पत्र में पोद्दार जी की अतिशय उदार सम्पादन नीति को प्रश्नांकित किया है—"केवल शंका के लिए क्षमा करेंगे। सम्पादकीय सिद्धान्त भी कुछ होना चाहिए। उनकी दृढ़ता के साथ रक्षा करनी चाहिए। यह कट्टरता नहीं है, मैं इसे नियम कहता हूँ। मैं आपको उचित से अधिक उदार देखता हूँ। आप सामग्री सजा देते हैं। आपका निर्वाचन कहाँ है?

इस प्रकार विभिन्न विद्वानों, सामाजिक-राजनीतिक चिन्तकों, रचनाकारों के पत्रों से पोद्दार जी के व्यापक दृष्टि-सम्पन्न एवं आत्मीय व्यक्तित्व का परिचय मिलता है। 'कल्याण' के माध्यम से पोद्दार जी ने सम्बन्धों का एक विशाल दायरा बनाया था और समाज के सभी वर्गों का विश्वास अर्जित किया था। ये पत्र इसके जीवन्त प्रमाण हैं। साथ ही इन पत्रों को युगीन दस्तावेज भी कहा जा सकता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संसदीय लोकतन्त्र और पर्यावरण का प्रश्न

श्री उदयन वाजपेयी*

मैं इस विषय पर कुछ बिखरी-बिखरी बातें आपसे कहूँगा। मैं लगातार मानवीय अस्तित्व की *जिग-सॉ पजल* को एक-दूसरे से जोड़कर मुकम्मल चित्र बनाने की कोशिश करता रहता हूँ। इसके पीछे पहली आकांक्षा यह है कि ये टुकड़े शायद एक-दूसरे से मिलकर मानवीय नियति का कोई स्वरूप उभार सकें। पर मैं आज तक ऐसी एक भी राजनीतिक या वैचारिक व्यवस्था की कल्पना नहीं कर पाया, जहाँ ये सारे टुकड़े एक-दूसरे में जुड़कर किसी मुकम्मल चित्र का आभास दे सकें। मैंने जितने भी विचारकों को पढ़ा है, वे बहुत गहनता से मनुष्यता के प्रवाह को या तो देख सके या देखने की चेष्टा करते रहे, पर वे भी मानवीय गति या नियति को किसी पक्के ढाँचे में बाँध नहीं पाए। शायद यही कारण है कि कैसी भी विचार व्यवस्था, वह ऊपर से कितनी ही संयोजित क्यूँ न लगे, भीतर से कहीं-न-कहीं बिखरी हुई होती है। इसीलिए अधिकतर वैचारिक लेखन अन्तिम रूप से शृंखलाबद्ध नहीं हो पाता। यही कुछ व्याख्यानों में भी होता है। मैं इस स्वीकारोक्ति से यह व्याख्यान आरम्भ करना चाहता हूँ कि मैं जो बोलनेवाला हूँ, उसमें पर्याप्त भटकाव और बिखराव होगा।

मैं एक प्रस्ताव से अपनी बात शुरू कर रहा हूँ—लोकतन्त्र के जिस स्वरूप को संसदीय लोकतन्त्र कहा जाता है, उसकी उम्र समाप्त हो गई है। इसका अर्थ यह है कि अब संसार के विचारकों, बल्कि सारी मनुष्य जाति को इसके कुछ विकल्प खोजने होंगे, क्योंकि लोकतन्त्र का यही प्रकार आज लगभग सारी दुनिया में चल रहा है। अब हमें लोकतन्त्र की भावना को आयत्त करने के कुछ नए उपक्रमों की, कुछ नई व्यवस्थाओं की, कुछ नई दृष्टियों की खोज करनी होगी। यह भी सम्भव है कि लोकतान्त्रिक भावना को नया रूप देने में हमें किन्हीं नितान्त नई उद्भावनाओं को करने की आवश्यकता हो।

---

*लेखक एवं सम्पादक 'समास' हिन्दी प्रत्रिका, सम्पर्क : एफ 90/45 तुलसी नगर, भोपाल—462003(म.प्र.), फोन:0755-2556940, (यह व्याख्यान सागर विश्वविद्यालय के ऑडिटोरियम में 'अनुपस्थिति' की 'उपस्थिति' व्याख्यान माला के अन्तर्गत दिया गया था।)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यहाँ 'हमें' से मेरा आशय केवल प्रबुद्ध लोगों से नहीं हैं। 'हम' से आशय वे सारे लोग हैं, जिन्हें अप्रबुद्ध मानकर पिछले दो-ढाई सौ सालों से यूरोप में और अनेक दशकों से भारत के बाहर रखा जाता है। उन्हें बहस के योग्य नहीं समझा जाता। हम साधारण लोगों के विषय में और साधारण लोगों की ओर से विचार करने के लिए केवल अपने को उपलब्ध कराते रहे हैं। यह बात सभी किस्म के राजनीतिक और अन्य बौद्धिक करते रहे, चाहे वे लेफ्टिस्ट मत के हों या राइटिस्ट या अन्य। चाहे वे गाँधीवादी हों, समाजवादी हों या कम्युनिस्ट। हमारी बहसों में अलावा महात्मा गाँधी के (जो निश्चय ही गाँधीवादियों से भिन्न थे) साधारण लोगों की स्वयं की आवाज कम-से-कम मुझे सुनाई नहीं पड़ती।

कुछ तथ्य हमें सामने रखने चाहिए—सबसे अधिक प्रदूषण फैलानेवाले कॉर्पोरेट्स संसार-भर में सरकारों के सबसे निकट हैं। चाहें अमेरिका हो, इंग्लैंड हो, भारत हो या चीन। ये सब बड़े कॉर्पोरेट्स, जो सबसे ज्यादा प्रदूषण संसार में फैलाते हैं और पर्यावरण को बिना किसी संकोच के संकट में डाले रखते हैं। एशियाई देशों में उनकी सरकारों के निकटवर्ती हैं। इसका कारण यह है कि वे यह मानकर चलते हैं (और कम-से-कम भारत में लम्बे समय तक ऐसा रहा भी है) कि ये सरकारें कमजोर मन की सरकारें हैं। उनका अपनी संसदों में कैसा भी बहुमत हो या न हो, उनकी अपने-आपमें कैसी भी शक्ति हो, ये अलग बात है। कॉर्पोरेट्स के लिए कमजोर मन की सरकारों और डावाँडोल नौकरशाही को वश में करना सबसे आसान होता है। आप किसी भी बड़े कॉर्पोरेट घराने के अधिकारी से मिलिए, आप पाएँगे कि वह बिलकुल सहज रूप से यह मानता है कि इन सरकारों को अपनी ओर मोड़ना कठिन कार्य नहीं है।

दूसरा तथ्य यह है कि 1909 में पानी के एक जहाज पर बैठकर लन्दन लौटते हुए गाँधी जी ने 'हिन्द स्वराज' लिखी थी। वर्ष 2009 में उसके लेखन के सौ वर्ष पूरे हुए। गाँधी जी अपने इस बीज ग्रन्थ में संसदीय लोकतन्त्र के पक्ष में खड़े नहीं दिखते। 'हिन्द स्वराज' में अन्यत्र भी उन्होंने समय-समय पर संसदीय लोकतन्त्र की सीमाओं को आलोकित कर उसकी कड़े शब्दों में निन्दा की है। उन्होंने संसद को 'बेसवा' (वेश्या), आसानी से वश में आनेवाली कहा है। उनके मन में यह बात रही कि स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद भारत को संसदीय लोकतन्त्र के फेर में नहीं पड़ना चाहिए। लोकतन्त्र का यहाँ कोई और रूप क्रियान्वित होना चाहिए। इस लक्ष्य के लिए वे स्वतन्त्रता आन्दोलन की अवधि में मतैक्य बनाने की चेष्टा करते रहे और विफल हुए। वे अपने ही सहयोगियों को यह स्वीकार कराने में विफल रहे और यह गाँधी की बहुत बड़ी विफलता रही। यह किसी छोटे-मोटे व्यक्ति की विफलता नहीं है, पिछली शताब्दी के सम्भवतः सबसे प्रभावी व्यक्ति महात्मा गाँधी की विफलता है। मैं उनका भक्त नहीं हूँ, पर मैं गाँधी को बीसवीं शती का महान विचारक मानता हूँ, जिन्होंने आधुनिक मनुष्य के कुछ मूलभूत संकटों के उत्स पर अँगुली रखी थी। वे संसदीय लोकतन्त्र के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पक्षधर भी रहे, पर उन्होंने एक पंक्ति लिखी है, यह उनकी संकलित रचानाओं में मिल सकती है! फिलवक्त के लिए तो संसदीय लोकतन्त्र ठीक है। जब उन्होंने देखा कि कोई उनकी इस बात को मान ही नहीं रहा है, उनके पास रास्ता क्या था? इसलिए हारकर उन्हें यह कहना पड़ा कि संसदीय लोकतन्त्र अभी के लिए ठीक है। उन्हें यह आशा थी कि वे समय रहते देश को अपनी अभीष्ट दिशा दे सकेंगे। दुर्भाग्य से उन्हें यह अवसर नहीं मिल सका, लेकिन जाते-जाते भी उन्हें पक्का विश्वास था कि यहाँ किसी अन्य किस्म के लोकतन्त्र की स्थापना हो सकती है। उन्हें यह विश्वास इसलिए था कि यूरोप के आन्तरिक जीवन के विषय में उनके जैसा जानकार-विचारक दूसरा नहीं हुआ, एशिया के किसी अन्य देश में भी। हम गाँधी जी के विषय में कितना ही माजक क्यूँ न करते रहें, थर्ड क्लास में उत्तीर्ण होने को 'गाँधी क्लास' में उत्तीर्ण होना कहते रहें, पर हमें जान लेना चाहिए कि यूरोप की मनीषा को, यूरोप की दुविधा को, उसके संकट को जितनी गहराई से गाँधी जानते थे, उनके समय तक शायद दुनिया में कोई नहीं जानता था। हिन्दुस्तान के पंडित जवाहरलाल नेहरू तो बिलकुल ही नहीं। उनका आधुनिक यूरोप की ओर झुकाव आलोचनात्मक न होकर महज संवेदनात्मक था। गाँधी विचारक थे, नेहरू यूरोप से आतंकित थे। एक सच्चे बौद्धिक की तरह गाँधी यह जानते थे कि संसदीय लोकतन्त्र का आरम्भ मनुष्य के इतिहास में एक खास मोड़ पर हुआ है, वह एक खास मोड़ पर जाकर समाप्त हो जाने को अभिशप्त है।

संसदीय लोकतन्त्र की शुरुआत दो सौ-सवा दो सौ साल पहले होती है। वहीं से संसदीय लोकतन्त्र की कहानी कही जाने लगती है, मनुष्यता के इतिहास में यह वहुत प्राचीन तिथि नहीं है। मैकेवली ने राजनीतिक दलों को जन-सामान्य की आकांक्षा का वाहक माना। उन्होंने कहा कि ये राजनीतिक दलों की 'प्रिन्स ऑफ द पिपुल' हैं। प्रिन्स ऑफ द पिपुल यानी ये राजनीतिक दल लोक के बल्कि जन के, जन-भावना के राजकुमार हैं। इतने सम्मान के साथ राजनीतिक दलों का मनुष्यता के भीतर प्रवेश हुआ था। आज उनकी जो भी हालत हो पर वे लम्बे समय तक जन-भावना के राजकुमार कहलाए जाते थे। फ्रांस में और इंग्लैंड में जो क्रान्तियाँ हुईं, उनके बाद संसदीय लोकतन्त्र का आरम्भ हुआ।

इसमें कोई सन्देह नहीं कि संसदीय लोकतन्त्र को आरम्भ करने के पीछे किसी सीमा तक कम-से-कम यूरोपीय देशों में लोकतान्त्रिक भावनाओं को साकार रूप देने का प्रयास हो रहा था, पर इंग्लैंड जैसे देशों में इसके स्वरूप के पीछे केवल यही सद्भावना नहीं थी। वहाँ संसद दो स्तरों में विभक्त थी, आज भी है—अपर हॉउस और लोअर हॉउस। लम्बे समय तक इन दोनों में अपर हॉउस की ही प्रतिष्ठा अधिक थी। इस 'हाउस' में लॉर्ड्स हुआ करते थे। अब तो यह केवल उपाधि है, पर कुछ ही समय पहले तक ये लोग लॉर्ड्स इसलिए कहे जाते थे, क्योंकि ये बडे-बड़े लैंड लॉर्ड्स ही थे यानी बड़े-बड़े जमींदार।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

महान इतिहासविद् धर्मपाल का यह मानना था कि पश्चिमी सभ्यता की एक ...नी रीति यह रही है कि वे जिस भी देश को जीतते थे, वहाँ के स्थानीय नागरिकों ... या तो गुलाम बना लिया जाता था या उन्हें क्रूरतापूर्वक मार दिया जाता था। ...ेता ही लॉर्ड्स होते थे। आज भी इंग्लैंड में 90 प्रतिशत के आस-पास की जमीन ...ुत थोड़े-से शक्ति-सम्पन्न लोगों के पास है।

ब्रिटेन की संसद में मुख्यतः निर्णय लेने और कानून बनाने का कार्य 'हाउस ...फ लॉर्ड्स' ही करता था, लेकिन चूँकि ये कानून या नियम अनिवार्यतः जमींदारों के ...ा में झुके होते थे, इसलिए उसके छोटे-मोटे विरोध भी होते थे, उन्हें शान्त करने में ... उनसे किसी तरह का समझौता करने में 'लोअर हाउस' की भूमिका होती थी, यह ...क युक्ति थी। इसका आशय यह है कि संसदीय लोकतन्त्र के आरम्भ से ही उसमें ...मत को बहलाने-फुसलाने के लिए युक्तियों का प्रयोग किया गया था।

संसदीय लोकतन्त्र की दार्शनिक और वैचारिक पीठिका यूरोप के ज्ञानोदय ...नलाइटनमेंट' ने रखी थी। वहाँ 17-18वीं शताब्दी में 'ज्ञानोदय काल' शुरू होकर ...ष्पित-पल्लवित हुआ। इस काल में वहाँ बड़े-बड़े दार्शनिक और विचारक सामने ...ए। आईजेक न्यूटन और इमानुएल कांट का उदय हुआ। कांट ने कहा, 'एनलाइटनमेंट ...ज फ्रीडम ऑफ इंटेलिजेन्स', 'ज्ञानोदय' ही मनीषा का स्वातन्त्र्य है।' इनके अलावा ...ें अनेक महत्त्वपूर्ण चिन्तकों का उदय हुआ। सार्वजनिक प्रश्नों पर विमर्श करने के ...वकाश बढ़ने लगे। सालों तक सार्वजनिक प्रश्नों पर, सार्वजनिक स्थानों में प्रश्न-प्रतिप्रश्न ...ते रहे। लन्दन में वर्ष 1650 में पहला 'कॉफी हॉउस' खुला। इसका नाम 'एंजिल' ...ा। यह देखना चाहिए कि यह कितना महत्त्वाकांक्षी नाम है, एंजिल। शायद इसका ...ारण यह है कि ऐसे स्थानों पर जो विमर्श चल रहा है, उनसे यूरोपीय समाज को ...हुत प्रत्याशा थी। इसके बाद फ्रांस में बड़ी संख्या में 'कैफे' खुलते हैं। पेरिस में वर्ष ...686 में एक कॉफी हाउस खुला और चालीस वर्षों के भीतर ही वहाँ चार सौ कॉफी ...ाउस खुल गए। हिन्दुस्तान में रहकर यह अनुमान करना भी कठिन है कि इन कॉफी ...ाउसों, सैलों और 'डिबेटिंग सोसायटीज' का यूरोप के इतिहास में क्या स्थान है? इनमें ...ौलिक विमर्श चला करता था। चारों ओर से आकर लोग मिलते थे और अनेक तरह ...ें बौद्धिक विमर्शों से संलग्न हो जाते थे। इन विमर्शों में मूल विचार यह आया कि ...नुष्य एक 'रेशनल बीईंग' है, तर्क-सम्पन्न प्राणी। यह कहा गया कि मनुष्य किसी ...ैवीय विधान का अंश नहीं है। यह विचार इस हद तक विस्तार पाता है कि यह कहा ...ाता है कि ज्ञानोदय के बौद्धिकों और विचारों ने मनुष्य के चारों तरफ के पवित्रता ...े घेरे को तोड़ दिया। मनुष्य शताब्दियों तक बल्कि अपने आरम्भ से ही जिस ...वित्रता के घेरे में रहता था, वह ज्ञानोदय काल में टूटकर बिखर गया। अब मनुष्य ...स घेरे से बाहर एक तार्किक जीव था। वह बिना कार्य-कारण सम्बन्ध जाने किसी ...ी बात को स्वीकृति नहीं देता। फ्रांसीसी दार्शनिक देकार्त ने कहा, 'मैं सोचता हूँ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इसीलिए मैं हूँ।' इसका अर्थ यह है कि अगर मैं आपके सोच को चिन्तन की कोटि से बाहर कर दूँ तो आप मनुष्य होने की कोटि से भी संकलित हो जाएँगे।

इस नई कोटि के बनते ही सार्वजनिक जीवन में एक त्रुटि उत्पन्न हुई। कहने को साधारण लोगों के विषय में साधारण लोग ही बातचीत कर रहे हैं, पर असल में इन कॉफी हाउसों, सैलों, फ्री नेशन लॉजेज और डिबेटिंग सोसायटियों में कुछ विशेष लोग ही जाते हैं, वे ही अनेक विषयों सहित साधारण लोगों पर भी विमर्श करते थे।

जब मनुष्य को तार्किक प्राणी या 'रेशनल बीईंग' कहा जाना शुरू होता है, एक मौलिक घटना घटती है—अब मनुष्य प्रकृति का अंश नहीं रह जाता, मनुष्य और प्रकृति के बीच का सदियों पुराना नैरन्तर्य टूट जाता है। यूरोप में यह विचार एक गहन स्तर पर स्वीकृत होता है और यह स्वीकृति धीरे-धीरे सारे यूरोप में फैल जाती है। अब यूरोप का मनुष्य स्वयं को प्रकृति से बड़ा मानने लगता है। हमारे देश में मनुष्य और प्रकृति के सम्बन्ध को लेकर यूरोप की नकल में निबन्ध प्रतियोगिताएँ होती हैं जिनमें यह अपेक्षित होता है कि प्रतियोगी प्रकृति को मनुष्य की विजय-यात्रा में बाधक बताए और साथ ही यह भी बताए कि किस तरह विज्ञान प्रकृति की बाधा का दूर करने का साधन है।

दूसरी ओर मनुष्य अपने को प्रकृति से अलग महसूस करना आरम्भ करता है। मनुष्य और प्रकृति के अलगाव की दार्शनिक पीठिका बनकर तैयार हो जाती है। यह दार्शनिक पीठिका यूरोप में सभी मजहबों में पहले भी थी, पर अब वह अधिक पुष्ट हो जाती है। ओल्ड टेस्टामेंट में यह लिखा है कि मनुष्य प्रकृति को व्यवस्थित करे। ये अब्राहम के उद्गार हैं। इसका अर्थ यह है कि मनुष्य प्रकृति से बड़ा है। इस विचार के बावजूद यूरोप में ज्ञानोदय काल तक यह सम्बन्ध इसलिए नहीं टूटा था, क्योंकि वह रीति-रिवाजों और आचार-व्यवहार में सूक्ष्म रूप से स्पन्दित था।

ज्ञानोदय काल में एक और महत्त्वपूर्ण घटना घटती है—आचार से अधिक प्रमुखता विचार को मिलने लगती है। कुछ विचार बहुत ऊँचाई पर भी जाते हैं और इसके साथ ही इंटेलेक्चुअल वर्ग (बुद्धिजीवी) पैदा होता है। यह इंटेलेक्चुअल अपने विचार को, अपने आचरण से बड़ा मानता है। उसके लिए विचार प्रमुख और आचार गौण हो जाता है। मनुष्यता के इतिहास में यह पहली बार होता है कि आचरण विचार का अनुगामी हो जाता है। विचार के अनुरूप आचरण करना मूल्य बन जाता है। यह वात कि आचरण स्वयं अपने में विचार है, यह दृष्टि जो मनुष्य के व्यवहार में सदियों से है, यह मान्यता हमारे गाँवों में बल्कि एशिया के गाँवों में आज भी उपस्थित है, पीछे छूट जाती है। विचार को बहुत ऊपर रखा जाता है और आचार उसके पीछे आने को अभिशप्त हो जाता है। आचार की अपनी एक स्वतन्त्र वैचारिक सत्ता भी है, यह बात त्याग दी जाती है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ज्ञानोदय या एनलाइटनमेंट के समय मनुष्य में यह गर्व प्रवेश करता है कि उसे सारे संसार को नए सिरे से व्यवस्थित करना है। तब तक जो भी व्यवस्था थी, पवित्रता के घेरे में बँधी हुई थी और उसकी अपनी त्रुटियाँ थीं। पर यह सब किसी षड्यन्त्र के अधीन नहीं था। पर यह बात सहज रूप से यूरोपीय मनुष्य में घर कर गई कि उसे अपने अलावा अन्य समाजों को भी पुनर्व्यवस्थित करना है।

यह कौन-सा मनुष्य है? यह वह मनुष्य है, जो प्रकृति से कट गया है। यह वह समय है, जब यूरोप में भी छोटे-छोटे समुदाय थे, जिन्हें 'गिल्ड' कहा जाता था, वे गिल्ड्स भी टूटना शुरू हो गए, क्योंकि उनका आधार भी धार्मिक चेतना थी। धार्मिक चेतना के निर्बल होते ही ये समुदाय और इनका आपसी जुड़ाव भी क्षीण होने लगते हैं और स्वयं समुदाय टूटने लगते हैं।

'सेक्युलरिज्म' यूरोप को संगठित करने का एक बड़ा साधन था। उस समय जब यूरोपीय समाजों को बाँधे रखना कठिन होता जा रहा था, 'सेक्युलरिज्म' के आधार पर पूरे यूरोप को जोड़ने का कार्य सम्पन्न किया गया।

भारत में 'ज्ञानोदय' की सीखों का प्रचार-प्रसार उन्नीसवीं शती में उपनिवेश काल के प्रभाव और दबाव में होता है। वह प्रचार-प्रसार राजा राजमोहन जैसे अनेक महत्त्वपूर्ण व्यक्तित्वों के हाथों से सम्पन्न हुआ था। इन व्यक्तियों ने भारतीय समाज में तथाकथित रूप से व्याप्त कुछ कुरीतियों का विरोध किया था। पर ध्यान से देखने पर यह सहज ही समझ में आ सकेगा कि यह विरोध एक विशेष दृष्टि को विस्थापित करने और उसके स्थान पर एक और दृष्टि को स्थापित करने के लिए किया गया था। वहाँ भारतीय जीवन-दृष्टि के परिशोंधन की चेष्टा नहीं थी, 'ज्ञानोदय' की यूरोपीय दृष्टि को स्थापित करने का प्रयास था। इसलिए उसका भारतीय समाज की वास्तविकता से वैसा गहन सम्बन्ध नहीं था, जैसा कि इन प्रयासों में हो सकना चाहिए था। यह बात महान इतिहासकार धर्मपाल के इतिहास से सहज ही निकल आती है। धर्मपाल किसी विश्वविद्यालय में इतिहास के प्रधानाध्यापक नहीं रहे। उन्होंने लन्दन में बीस वर्ष रहकर अंग्रेजों के भारतीय समाज विषयक अनेक सर्वेक्षणों का बड़ी सूक्ष्मता से अध्ययन किया। उसके आधार पर कुछ निष्कर्ष निकाले, जिन्हें कुछ पुस्तकों में सर्वेक्षणों की रपटों के साथ प्रकाशित किया। यह बहुत बड़ा काम था, क्योंकि भारत के समाज का 18वीं, 19वीं शती का चित्र जो आज हम सब तथाकथित पढ़े-लिखे लोगों के मन में है, उसका आधार या तो ठोस आँकड़ों पर आश्रित नहीं है या वह अंग्रेजों का लिखा ऐसा भारतीय इतिहास है (जो दुर्भाग्य से हमारे वामपन्थी इतिहासकारों का प्रियतम स्रोत है), जो भारतीय समाज को नीचा दिखाने के लिए लिखा गया था। यह उपनिवेशवाद का एक ऐसा अनिवार्य लक्षण है, जो लगभग अदृश्य रहकर समूचे उपनिवेशित समाज का मनोबल गिराने की चेष्टा करता है और जिस पर स्वतन्त्रता के बाद हमें सचेत भारतीय नागरिक होने के कारण ध्यान देना था और अपनी सभ्यता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पर हुए असत्य के लेपन को दूर करने की बौद्धिक चेष्टा करनी थी, पर हम इसके ठीक विपरीत अंग्रेज इतिहासकारों- नृतत्त्वशास्त्रियों—भारतविदों के तैयार किए असत्य मार्ग पर ही चलते रहकर अपने-आपको गौरवान्वित और अपने समाज को निरन्तर लांछित करते रहे। फ्रांस के क्लॉद लेवी स्ट्रॉस—जो पिछली शती के शायद सबसे प्रभावशील नृतत्त्वशास्त्री रहे—ने इससे ठीक विपरीत अपने जीवन-भर संसार-भर में फैले जन-समुदायों के अध्ययन के बाद कहा कि पश्चिमी सभ्यता पृथ्वी के चेहरे पर फेंकी गई विष्टा है, 'वेस्ट इज द शिट ऑन द फेस ऑफ अर्थ!' इसके बाद भी हमारे अध्येता पश्चिम का हाथ थामने, उससे दिशा-निर्देश लेने से बाज नहीं आते।

इसके ठीक विपरीत धर्मपाल उन बिरले इतिहासकारों में थे, जिन्होंने अंग्रेजों के शासन के ठीक पहले, उसके शुरुआती दौर के भारतीय समाज-सम्बन्धी ठोस आँकड़ों को ढूँढ़ा। इंग्लैंड में बीस वर्ष से लगभग गरीबी में रहकर कार्ल मार्क्स की तरह ही डबलरोटी के टोस्ट कोट की जेब में रखकर 'इंडिया ऑफिस पुस्तकालय या ब्रिटिश संग्रहालय' जाकर, वहाँ बैठकर, इन आँकड़ों को हाथ से कॉपियों पर उतारा (उन दिनों —1960 के दशक में फोटोप्रति की व्यवस्था नहीं थी) साथ ही उसका विश्लेषण किया। उन आँकड़ों में उन्होंने पाया कि सन् 1842 तक भारत में शिक्षा के जो केन्द्र थे—उन्हें स्कूल कह सकते हैं—उनकी संख्या बहुत थी। तीन अलग-अलग सर्वेक्षणों से—जो सन् 1836-सन् 1842 तक स्वयं अंग्रेज प्रशासन ने कराए थे—यह तथ्य सामने आता है कि इस देश के लगभग सभी अंचलों में हर तीन गाँवों के बीच दो स्कूल थे। इसका विश्लेषण कर धर्मपाल जी ने यह पाया कि उस समय तक यहाँ हर बारह-तेरह छात्रों के लिए एक शिक्षक उपलब्ध था। शिक्षक और छात्रों में सभी जातियों के लोग थे। कई स्थानों पर सत्तर प्रतिशत छात्र-छात्राएँ उन जातियों के थे, जिन्हें उन्नीसवीं शती में आकर अंग्रेज अध्येताओं की मेहरबानी से 'दलित' कहा जाने लगा। शिक्षक लगभग अस्सी से अधिक जातियों से आते थे। धर्मपाल जी ने यह अध्ययन भी किया कि भारतीय गाँव का कामकाज, कैसे चला करता था? यहाँ ऐसी कौन-सी व्यवस्थाएँ थीं, जिनके कारण यह समाज, अंग्रेजों के पहले तक, कमोबेश सुचारु रूप से चलता था। आप चीनी यात्रियों के संस्मरण पढ़ लीजिए या जापानी और कोरियाई यात्रियों के संस्मरण देख जाइए, आप कहीं नहीं पाएँगे कि भारतीय समाज में व्यापक युद्ध या गृह-युद्ध की स्थिति रही है या कि यहाँ का समाज आन्तरिक उथल-पुथल से असन्तुलित था। अगर ऐसा था, तब तक तो इस समाज को चलाने के लिए कुछ ऐसी व्यवस्थाएँ रही होंगी, जिनसे सारा समाज लगभग सहिष्णुता से साथ रहा आता है। ये व्यवस्थाएँ क्या थीं? क्योंकि बिना व्यवस्थाओं के समाज का अनेक स्तरीय संचालन सम्भव नहीं होता। इन व्यवस्थाओं का भी धर्मपाल जी ने अध्ययन किया, उनके कुछ पहले ऐसा ही कुछ अध्ययन वासुदेवशरण अग्रवाल ने भी किया था। उन्होंने भारत के एक विशेष काल-खंड पर अद्भुत पुस्तक लिखी है—'पाणिनीकालीन भारत'। मेरा यह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ग्रह है कि इस पुस्तक को सभी संस्कारी भारतीयों को पढ़ना चाहिए। 'पाणिनिकालीन रत' में जिन सामाजिक व्यवस्थाओं का रूप निकलकर सामने आता है, उनमें कतान्त्रिक (जहाँ 'लोक' का आशय केवल मनुष्य समाज न होकर पशु-पक्षियों और नस्पतियों का व्यापक लोक है) भावना भी है, पर वह हमारी अपनी वर्तमान कतान्त्रिक व्यवस्थाओं से नितान्त भिन्न थी। राजा को राज्य-नियम और समूह-नियम नों की मान्यता आवश्यक थी। किन्हीं सम्प्रदायों के भीतर जो नियम-कायदे चल रहे जो अनुष्ठान आदि चल रहे हैं, उनमें हस्तक्षेप का अधिकार राजा को भी नहीं था। ह बहुत बड़ी बात है और इससे राज-सत्ता और समाज के बीच के सम्बन्ध के स्वरूप ा अनुमान होता है। इससे यह भी स्पष्ट हो जाता है कि वह अलग तरह का सम्बन्ध और तब भी वह लोकतान्त्रिक है।

'राजा' शब्द देखते ही 'राजशाही' कहने की जो बौद्धिक आदत हमें पड़ गई है, समें झाँकने की आवश्यकता है। सारी दुनिया में 'राजा' के नेतृत्व में बनी व्यवस्थाएँ क-सी नहीं रहीं। उनके बीच छोटे-छोटे और अक्सर कुछ मूलभूत अन्तर रहे हैं। मैं ह बड़े दुःख से कह रहा हूँ कि हम, भारतवासी, विशेषकर तथाकथित शिक्षित ारतवासी, अपने देश के या सभ्यता के अतीत के विषय में कोई सही चित्र नहीं बना ाए। हमारे साथ जो अधिकतर ऐसे चित्र हैं भी, वे अंग्रेज इतिहासकारों या उनके अनुकर्ताओं के बनाए हुए हैं।

इसके बिलकुल विपरीत धर्मपाल अंग्रेजों के बनाए अपनी सभ्यता के चित्र से असन्तुष्ट रहे। इसका असली स्वरूप पाने के प्रयास में वे 1960 के आस-पास—जब े लन्दन में अपना शोध भी करते जा रहे थे—राजस्थान गए। वहाँ वे ग्रामीणों से मिले। उन्होंने धर्मपाल को बताया कि उनके गाँव के सरोवर को सुधारने के कार्य का निर्णय सरकारी पंचायत नहीं लेती। ऐसे महत्त्वपूर्ण निर्णय 'बीस बिसवा पंचायत', जो उनके बीच की पंचायत है, लेती है। इस पंचायत में गाँव के सभी लोग बैठते हैं, निर्णय लेते हैं। इन्हीं निर्णयों से सरोवर को ठीक करने का काम होता है। ऐसे ही किस्से उन्हें आन्ध्र प्रदेश में मिले, तमिलनाडु में मिले। वे उन सबके विवरणों को एकत्र करते रहे। उनके इस काम का फल यह हुआ कि हमें पता चला कि अंग्रेजों के आने के पहले यहाँ कौन-कौन-सी व्यवस्थाएँ सक्रिय थीं, जो अंग्रजों का शासन स्थापित हो जाने के बाद भी क्षीण रूप में ही सही, पर अंग्रजों की लुटेरी व्यवस्थाओं के समानान्तर चलती रहीं।

धर्मपाल जी की दूसरी महत्त्वपूर्ण खोज यह है कि उन्होंने निर्णायक रूप से यह दर्शाया कि यहाँ की राजस्व व्यवस्था केन्द्रीकृत नहीं थी। वह हमेशा से 'विकेन्द्रित' रही है। राजस्व का जो धन गाँव के स्तर पर एकत्र होता था, उसमे से अधिकांश गाँव में ही रह जाता था, उससे गाँव के सार्वजनिक कार्य हुआ करते थे। एकत्र हुए राजस्व का केवल कुछ भाग ही जनपद स्तर पर जाता था। वहाँ के बाद और थोड़ा भाग

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राजधानी तक जाता था। इस तरह गाँव आदि राजसत्ता के अनुदान पर निर्भर नहीं थे। उन्हें पता होता था कि जो धन राजस्व के रूप में उनसे लिया गया है, उसी से उनके अपने सार्वजनिक लोक कार्य सम्पन्न हो रहे हैं। राजाओं के पास या राजखजाने में कभी भी बहुत अधिक सम्पत्ति एकत्र नहीं हो पाती थी। राजा का यह दायित्व था कि हर बारह वर्ष बाद अपने अंचल या अंचल के निकट होनेवाले कुम्भ में अपना सारा खजाना खाली कर दे। वे यह कार्य हर बारह वर्षों में करने के कृतसंकल्प थे, इसलिए भी उनका खाजना आवश्यकता से अधिक समृद्ध नहीं हो पाता था। इसलिए भी लोक पर उनका अतिशय दबाव नहीं बन पाता था। राजा श्रीहर्ष के कुम्भ-दान के विविध वर्णन मिलते हैं। उनमें यहाँ तक है कि राजा अपना सारा धन कुम्भ में दान करने के बाद अपनी बहन से एकमात्र वस्त्र ग्रहण करके ही राजधानी लौटता था। इसका एक आशय यह है कि कुम्भ के विषय में हमने यह जो धारणा बना रखी है कि, 'यह धार्मिक मेला है', अपर्याप्त है। यह दरअसल पारम्परिक रूप से सामाजिक सम्मेलन था, जिसे 'सोशल काँग्रेस' कहा जा सकता है। यह हमारी सीमा है कि हमारे आधुनिक विमर्शों में इन सब महत्त्वपूर्ण सम्मेलनों और उनमें होते सामाजिक कार्यों पर न तो पर्याप्त ध्यान दिया गया है और न उसका पर्याप्त विश्लेषण किया जाता है। हमारे वामपन्थी इतिहासकार इस सबको 'धार्मिक' की कोटि में डालकर ही प्रसन्न होते रहे हैं या उन्होंने भारतीय समाज की इन सब महत्त्वपूर्ण परिपाटियों पर ध्यान देना उचित ही नहीं समझा। शायद इसीलिए हम आधुनिक स्वतन्त्र भारत की सामाजिक प्रक्रियाओं में इन परिपाटियों का पुनर्निविश नहीं कर पाए।

यह सब यहाँ यानी एक विश्वविद्यालय के प्रेक्षागृह में खड़े होकर कहने का एक औचित्य यह भी है—हमारे अकादमिक लोग, हमारे प्रोफेसर आज भी पूरे गर्व से अंग्रेजों का बनाया हुआ इतिहास पढ़ा रहे हैं, अंग्रेजों का बनाया समाजशास्त्र पढ़ा रहे और वैसा ही नृतत्त्वशास्त्र भी। हमारे अध्येताओं ने अपनी सभ्यता के सदर्भ में अपने ढंग का शोध करने के लिए स्वयं अपने आँकड़े कभी इकट्ठा नहीं किए। करते भी क्यों? इसके लिए उन्हें विदेशी अकादमिक संस्थाओं से समर्थन और अनुदान कैसे मिलता? हमारे इन याचक अकादेमिक अध्येताओं के लिए अपनी सभ्यता को अपनी तरह से समझने के स्थान पर ऐसे कार्य करना ही ठीक जान पड़ा, जिनसे उन्हें यूरोप और अमरीका से अध्येतावृत्तियाँ मिलती रह सकें। धिक्कार है ऐसे अध्येताओं पर!

पर भारत का जितना जैसा भी नक्शा धर्मपाल जी जैसे महान इतिहासविदों के कारण हमारे निकट है, उससे इतना तो स्पष्ट समझ में आ सकता है कि हमारे देश में अंग्रेजों के पहले लोकतन्त्र के अन्य रूप व्यवहार में थे। मैं यह नहीं कहता कि आज हम उन व्यवस्थाओं को ज्यों-का-त्यों स्वीकार कर सकते हैं, पर अगर हम उनका गहराई से अध्ययन करें, तो हम आज के लिए भी संसदीय लोकतन्त्र का कोई बेहतर लोकतान्त्रिक विकल्प निकाल सकते हैं। वे कैसे विकल्प होंगे, इस पर सभी को—साधारण

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ौर शिक्षित, शहरी और ग्रामीण भारतीयों को—सोचना होगा। यह कुछ वैसा ही वार मेला (मिलन-स्थल) होगा जैसे वर्षों पहले नैमिषारण्य में हुआ था। नैमिषारण्य 'महाभारत' की शुरुआत में सभी ऋषि आदि एकत्र हुए और उन्होंने विचार-विमर्श या। वहीं महाभारत का आख्यान उद्‌घाटित हुआ था।

लेकिन प्रश्न यह उठता है कि आखिर पर्यावरण की देखभाल संसदीय लोकतन्त्र भीतर क्यों नहीं हो सकती? इसका कारण यह है कि संसदीय लोकतान्त्रिक वस्था अनिवार्यतः केन्द्रीकृत अर्थव्यवस्था, केन्द्रीकृत राजस्व व्यवस्था और केन्द्रीकृत म्प्रभुता की रचना करती है। यही इसकी असली गति है। इसमें मन्त्री आदि सबसे धिक शक्ति सम्पन्न होते हैं। कोई अपने को वास्तव में 'लोक का सेवक' नहीं नता। यह मानने का नाटक वे कितना ही क्यों न करते रहें, पर उन पर ऐसा मानने ा दबाव वर्तमान संसदीय लोकतन्त्र नहीं डाल सकता। इसका यह अर्थ नहीं है कि ह फौजी शासनतन्त्र या साम्यवादी नौकरतन्त्र कर सकता है। वे तो यह बिलकुल हीं कर सकते, क्योंकि उन तन्त्रों में तो केन्द्रीकरण का नंगा रूप उभरकर सामने ाता है और सारी सम्प्रभुता या तो कम्युनिस्ट पार्टी के सदस्यों या फौजी शासकों के थों में सिमटकर रह जाती है। वे तन्त्र संसदीय लोकतान्त्रिक व्यवस्थाओं के विकल्प हीं, शर्मनाक विकृतियाँ हैं। इन सभी व्यवस्थाओं में दैनन्दिन निर्णय लेने का अधिकार धारण लोगों के हाथ से निकल जाता है। और चूँकि पर्यावरण स्थानीय हुआ करता , इसलिए बिना स्थानीय साधारण लोगों के हस्तक्षेप के उसे बचाना या संरक्षित करने ी चेष्टा करना न सिर्फ अव्यावहारिक है, बल्कि लगभग असम्भव है। आखिर एक ड़ी कम्पनी, वह राष्ट्रीय हो या अन्तरराष्ट्रीय, किसी विशेष स्थान के पर्यावरण को रक्षित रखने की कोशिश क्यों करेगी? देश की संसद भी आखिर उस अंचल की र्यावरण क्षति को रोकने की कोशिश क्यों करेगी? उसके पास उस अंचल के सौन्दर्य ौर समृद्धि का कोई भी अनुभव कैसे होगा? और हमारी शासकीय नयी पंचायतें? वे ने हुए भी नहीं हैं। सारे बड़े निर्णय विधानसभाओं और संसद में होते हैं, जिसके तिनिधि पूरे 'लोक' यानी उस इलाके के मनुष्यों, पशु-पक्षियों, पेड़-पौधों आदि का तिनिधित्व नहीं करते हैं। करते भी हैं तो आधे-अधूरे प्रतिनिधियों की इन सभाओं में ोलने का अवसर ही नहीं होता। होता भी है तो वे किन्हीं कम्पनियों के दलालों की रह व्यवहार करते हैं, जिससे उनका अपना लाभ हो सके। इसी सबको जानकर गाँधी ी ने लोकतान्त्रिक व्यवस्था के एक और बेहतर रूप का प्रस्ताव दिया होगा। वह ांग्रेस के पदलोलुप नेताओं को स्वीकार नहीं था। वे स्वतन्त्रता संग्राम में दिए गए पने 'जीवन का मूल्य' चाहते थे। मूल्य एक ही तरह प्राप्त किया जा सकता था— ाजसत्ता की भागीदारी से। पर उस प्रस्ताव से ऐसा नहीं होनेवाला था। उस पर हम ोड़ी-सी देर में लौटते हैं। पहले धर्मपाल जी की लगभग अन्तिम आकांक्षा की बात उठाता हूँ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वे एक बार मुझसे बोले कि वे सोचते हैं कि राजसत्ता को देश के कुछ जिलों से हट जाना चाहिए। इसका आशय यह था कि कुछ जिलों से जिलाधीश, उपजिलाधीश, तहसीलदार आदि, पुलिस चौकियाँ अन्य सभी शासकीय नियन्त्रणों को हटा लेना चाहिए। उनकी यह मान्यता थी कि ऐसा करके यह देखना चाहिए कि लोग–सभी शहरी और ग्रामीण–क्या करते हैं। पहले मैं समझा नहीं फिर मुझे एक झटके से यह समझ में आया कि वे ऐसा इसलिए कह रहे हैं कि संसार में आज तक कोई भी पूर्णतः अराजक व्यवस्था नहीं बन पाई, अपेक्षाकृत अराजक समाज भले रहे हों, पर सिरे से अराजक समाज बन नहीं सका। लोग कोई-न-कोई व्यवस्था तो बना ही लेते हैं। यहाँ तक कि जिन जल-दस्युओं के आधार पर प्रिन्स क्रोपोट्किन ने अराजकता का सिद्धान्त लिखा, वहाँ भी एक व्यवस्था बन गई थी। इसका अर्थ यह है कि अगर राजसत्ता को हटा लिया जाता है तो लोग अपने हिसाब से, अपने आचरण में निहित समझ से, उसमें निहित विचार से कोई-न-कोई व्यवस्था अवश्य बना लेंगे। इससे दो कार्य सम्पन्न होंगे, सभी लोग व्यवस्था को गढ़ने में अपना योगदान देंगे। इसमें वे लोग भी होंगे, जो स्वयं को विचारवान मानते हैं और वे लोग भी जिन्हें साधारण मानकर उनका आचरण में निहित विचारों को देखने की चेष्टा तक नहीं होती और जिन्हें व्यवस्थाओं के गढ़न में–कम-से-कम 'ज्ञानोदय' के बाद से–बाहर रखा जाता है। उनके अवरुद्ध योगदान को दोबारा समाज निर्माण की प्रक्रिया में शामिल करने का अवसर होगा। दूसरी बात यह होगी कि जो व्यवस्था भारत के लोगों में सहज रूप में प्रवाहित होती रही है–शताब्दियों से–उनके लोकाचारों में, उनके रीति-रिवाजों में, उनके जीवन के अन्यान्य आयामों में जिनकी अदृश्य उपस्थिति है, जो अंग्रेजी शासन-विचारों के नीचे दब गई हैं–और जो धर्मपाल जी के अध्ययन के अनुसार गहन रूप से लोकतान्त्रिक है–सामने आ जाएगी। इस तरह हर 'एनलाइटेनमेंट' के परे अपनी सभ्यता की सुप्त सम्भावनाओं के दर्शन कर सकेंगे।

अब हम गाँधी जी के प्रस्ताव पर लौटते हैं। उन्होंने इसे 'ओशेनिक' सिद्धान्त कहा था। उनके इस सिद्धान्त में लोकतन्त्र का एक प्रारूप प्रस्तावित था। इस सिद्धान्त के अनुसार शासन व्यवस्था का स्वरूप वैसा ही होना चाहिए, जैसा कि पानी में पत्थर फेंकने से उसमें उठी लहरों का होता है। जब आप कोई पत्थर पानी की सतह पर फेंकते हैं, उससे एक तरंग उठती है, यह तरंग एक और तरंग को जन्म देती है, वह एक और तरंग को, इस तरह पत्थर से अनेक तरंगें निरन्तर उत्पन्न होती चलती हैं। गाँधी जी पत्थर के स्थान पर ग्राम्य समुदाय को रखते थे। ग्राम्य समुदाय या शहरी समुदाय पंचायतें चुनेंगे। ये चुने हुए लोग फिर अपने बड़े स्तर के आगे के यानी जनपदों, जिलों के प्रतिनिधियों को चुनेंगे। और ये लोग अगले स्तर के प्रतिनिधियों का चुनाव करेंगे। इस तरह प्रभुता का स्रोत जन-समुदाय होंगे, वे संसदीय लोकतन्त्र की तरह सम्प्रभुता या राजनीतिक अथॉरिटी के विषय नहीं होंगे, उसका स्रोत होंगे। जो

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

निर्णय सामुदायिक स्तर पर लिए जाएँगे, उन्हें ही एक के बाद दूसरे बड़े स्तर के निर्णयों का अनिवार्यतः आधार बनाया जाएगा। इस तरह जो देश की तमाम स्थानीय आवश्यकताएँ हैं, वे राष्ट्रीय योजनाओं का नियमन करेंगी। इस तरह की शासन व्यवस्था प्रारूप में स्थानीय स्थितियों, पशु-पक्षियों, वनस्पतियों, वनों आदि का भी ध्यान रख जाना अनिवार्य हो जाएगा। अगर आपको यह स्मरण हो कि भारत में 'लोक' का अर्थ केवल मनुष्य समुदाय न होकर समूचे पर्यावरण और उसके बीच रहते मानवीय समाज से है, आप समझ पाएँगे कि गाँधी जी के द्वारा प्रस्तावित 'ओशेनिक सिद्धान्त' में समूचे लोक का हित सम्भव होगा। अपने इसी विचार का विस्तार करते हुए गाँधी जी ने 29 जनवरी, 1948 यानी अपनी मृत्यु से केवल कुछ घंटों पहले कांग्रेस के नए संविधान का अन्तिम प्रारूप तैयार किया था। उसे उन्होंने देर रात अपने सहयोगी प्यारेलाल जी को दे दिया था कि वे उसे काँग्रेस के प्रमुख नेताओं तक पहुँचा दें। इस प्रारूप में कांग्रेस को राजनीतिक दल नहीं रह जाना था। उसे लोक सेवक संघ में परिवर्तित होकर गाँवों और शहरों में पंचायतीराज लाने और अन्य सामाजिक कार्यों में सहयोगी होना था। हम जानते हैं, वैसा नहीं हो पाया। हम यह भी जानते हैं कि वैसा क्यों नहीं हो पाया। इसी का परिणाम है कि आज हम लोकतन्त्र के अत्यन्त पिटे हुए रूप, संसदीय लोकतन्त्र को उपयोग में ला रहे हैं और उसका कोई विकल्प खोजने की चेष्टा नहीं करते। इसी के फलस्वरूप तमाम 'लोक' यानी मनुष्य और उसका पर्यावरण इतनी कठिन स्थिति में आ गए हैं।

अब मनुष्य का प्रकृति से 'पवित्र' सम्बन्ध बनना कठिन है। एक तरह से मनुष्य पवित्रता के घेरे से बाहर आ गया है, उसका स्वयं को प्रकृति का अंश मानने का अब कोई मार्ग निकलता नहीं जान पड़ता। पर नए जैव वैज्ञानिक अनुसन्धान मनुष्य और प्रकृति के आत्यन्तिक और परस्पर निर्भर सम्बन्ध को निरन्तर अन्वेषित और उद्घाटित कर रहे हैं। ऐसी ही एक पुस्तक है—'व्हाट गुड आर बग्स'। इसके लेखक हैं—गिल्बर्ट वॉल्डवॉउर। ये जाने-माने जैव-वैज्ञानिक हैं और अपनी इस पुस्तक में उन्होंने विस्तार से यह बताया है कि जीवन-जाल किस सूक्ष्मता से बुना गया है और कैसे उसमें छोटे-से-छोटा जीव, उदाहरण के लिए खटमल भी, कैसी महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता है। उनके अनुसार यह विराट बुनावट है, ऐसा महाकाव्य, जो जीवन नाम से पृथ्वी पर बुना गया है, जिसका हर पात्र प्रमुख पात्र है। इस महाकाव्य की बुनावट आधुनिक उपन्यास की तरह नहीं है। ऐसा इसलिए है, क्योंकि अगर किसी भी जीव को, खटमल हो या गौरैया, तितली हो या मच्छर हटा दिया जाए, यह जीवन-जाल एकाएक ढह जाएगा। उन्होंने तितली का उदाहरण देकर बताया है कि यह किस तरह होगा। छोटी-सी तितली पेड़ से निकल रहा मधु पीती है, उसका यह मधु पीना भी इस व्यापक जीवन-जाल का महत्त्वपूर्ण अंश है। पेड़ में लार्वा रखने के लिए एक दूसरा कीड़ा उसमें छेद करता है और एक कठफोड़वा आकर 'लार्वा' खाने के लिए जब उस छेद में चोंच

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मारता है, उसमें से रस बाहर आता है, यह रस लार्वा के पोषण के लिए काम आता है। इस तरह यह जाल परस्पर निर्भरता के सहारे व्यापक होता चलता है। इसी पुस्तक में लेखक ने यह भी बताया है कि केवल एक ही जीव ऐसा है, जिसको हटाने से इस समूचे जीवन-जाल पर कोई असर नहीं पड़ेगा। यह एकमात्र जीव ही ऐसा जीव है, जो मानो इस जीवन-जाल के संदर्भ में अतिरिक्त है। यह अतिरिक्त जीव मनुष्य है। इस अर्थ में मनुष्य को इस व्यापक जीवन-जाल में निरन्तर अपनी अपरिहार्यता खोजनी पड़ती है। यह तभी हो सकेगा, जब वह कोई ऐसी लोकतान्त्रिक व्यवस्था या व्यवस्थाएँ बनाएगा, जिसमें न केवल उसकी, बल्कि व्यापक जीवन-जाल की अत्यन्त भंगुर उपस्थिति का बोध हो। मुझे नहीं लगता कि यह स्वभाव से ही मनुष्य-केन्द्रित और प्रकृति के प्रति अवहेलना से प्रेरित संसदीय लोकतन्त्र के सहारे सम्भव है। हम सभी को इसके लिए प्राचीन और पारम्परिक समाजों में व्यवहृत अन्य लोकतान्त्रिक व्यवस्थाओं को सामने रखकर कुछ नया या नए राजनीतिक दर्शनशास्त्र/शास्त्रों का अन्वेषण करना होगा, जहाँ स्थानीय स्तर से उच्च स्तर तक सभी लोगों की—जिसमें विचारवान, लोग भी हों और वे भी, जिन्हें ऐसा नहीं माना जाता—की भागीदारी हो। यह केवल सदिच्छा से सम्भव नहीं है, इसके मूल में जैविक अन्तर्निर्भरता के नए जैव वैज्ञानिक अनुसन्धानों को मनुष्य की प्राचीन अलौकिक छवि के निकट लाना होगा; क्योंकि इन दोनों में ही उसे इस व्यापक प्रकृति के अंश की तरह परिकल्पित किया गया है। इन दो ज्ञान परम्पराओं के संवाद पर ही किसी नई राजनीतिक व्यवस्था की पीठिका रखी जा सकेगी और पर्यावरण हमें एक-दूसरे में सहज जीवन जीने का अवसर दे सकेगा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हमारे नेता इतने अपढ़ क्यों हैं?

कमलेश*

हमारे लोकतान्त्रिक गणराज्य को कभी-कभी 'निरक्षरों का लोकतन्त्र' कहा जाता है। बहुसंख्य मतदाताओं की निरक्षरता को हमारे गणराज्य की असफलता का कारण बताया जाता है। हालाँकि इस वर्ष के आँकड़ों के अनुसार भारतवर्ष में 70 प्रतिशत मतदाता साक्षर हो चुके हैं, अनेक लोग यह कहते सुने जाते हैं कि जब मतदाता निरक्षर हैं तो यह लोकतन्त्र भला कैसे चलेगा। लोकतन्त्र ठीक चले इसके लिए साक्षरता आवश्यक है। गणराज्य सफल हो इसके लिए नागरिक पढ़े-लिखे होने चाहिए।

भारत सरकार द्वारा 'सर्व शिक्षा अभियान' चला कर, राज्य सरकारों द्वारा प्रौढ़ शिक्षा के विविध प्रायोजन कर, गैर-सरकारी संस्थाओं को साक्षरता बढ़ाने के लिए अनुदान देकर, नागरिकों को पढ़ा-लिखा बनाने का प्रयत्न किया जाता रहा है। ये अभियान अंग्रेजी जमाने में ब्रिटिश राज्य में ही शुरू हो गए थे। बीसवीं शती में स्थानीय स्वशासन की संस्थाओं द्वारा और तीसरे दशक में बनी राज्य सरकारों द्वारा भी साक्षरता के अभियान चलाए गए। कहा जा सकता है कि कोई 100 वर्षों से साक्षरता अभियान चलाए जाते रहे हैं। इसके बाद भी अभी तक उत्तर भारत के राज्यों की पूरी जनसंख्या साक्षर नहीं हो पाई।

सरकारी और गैर-सरकारी लोगों के ध्यान में यह बात भी जरूर आई होगी कि साक्षरता मनुष्य के लिए इतनी महत्त्वपूर्ण हो, यह आवश्यक नहीं है। साक्षरता के बिना भी अनेक प्रकार से बहुविध ज्ञान प्राप्त किए जा सकते हैं। हमारे समाज में सदा ही बहुत से लोगों को लिखना-पढ़ना जाने बिना भी ज्ञान का बहुलांश प्राप्त होता रहा है। आनन्द कुमारस्वामी पहले चिन्तक नहीं थे जिन्होंने 'बगबियर ऑफ लिटरेसी' की तरफ ध्यान आकृष्ट किया था।

* कमलेश, बी-25 वसन्त कुंज एनकलेव, नयी दिल्ली-110070 मो. 9873259909

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एक

समाज का बड़ा भाग निरक्षर भी हो, उसे 1951 के संविधान से मतदान का अधिकार तो दिया ही है। निर्वाचन में भाग लेकर ग्राम पंचायत, जिला पंचायत से विधानसभा और लोकसभा का सदस्य भी बना जा सकता है। इसके लिए साक्षर होना आवश्यक नहीं है। बहुत सी वैधानिक कार्रवाइयों में कागजों पर हस्ताक्षर करने के अलावा भी अँगूठे का चिह्न लगवाया जाता है। पाठकगण इस बहस में नहीं पड़ना चाहेंगे कि बिना साक्षर हुए कुछ तरह के ज्ञान प्राप्त हो सकते हैं या नहीं? मूक-वधिरों को शिक्षित करने के लिए किए गए उपाय किस सीमा तक का ज्ञान दे सकते हैं? दृष्टि की अपर्याप्तता होने पर ब्रेल आदि के जरिए कितना ज्ञान पाया जा सकता है?

अभी तो समस्या यह है कि हमारे बहुत से नेता जिन्हें स्कूल, कॉलेज और विश्वविद्यालय की शिक्षा प्राप्त है वे भी अपने वक्तव्यों में कभी-कभी ऐसी बातें कहते हैं जो अपढ़ लोगों को भी शोभा नहीं देतीं। वे अपढ़ों जैसा ही व्यवहार करते हैं। वे विधानसभाओं और लोकसभा में अपढ़ों की ही बोली बोलते हैं, अपढ़ होकर भी वे चुनाव जीत जाते हैं। सरकार बनाकर वे अपढ़ों जैसा ही शासन चलाते हैं। हमारे सामने बार-बार यह प्रश्न उठता है कि हमारे नेता इतने अपढ़ क्यों हैं?

अपढ़ता अगर राजनेताओं तक ही सीमित रहती तो उनके ऊपर कुछ आसान फिकरे कसकर अपने से उनकी निकृष्टता का बयान किया जा सकता था। लेकिन किसी विषय में 'डॉक्टरेट' प्राप्त करके दुनिया के बड़े विश्वविद्यालयों में पढ़ाने का सौभाग्य पानेवाले लोग भी ऐसी शब्दावली बोलते हैं कि विश्वास नहीं होता कि वे अपढ़ नहीं हैं। यह तो उन्हें सुनकर तुरन्त पता लग जाता है कि अपने समाज की सही जानकारी उनको नहीं है। उसके बारे में ये ऐसे लोगों से जानकारी प्राप्त करने का प्रयत्न करते हैं, जो स्वयं अल्प जानकार होते हैं। उदाहरण के लिए गाँधी जी ने 'हिन्द स्वराज' में भारत के गाँवों का उल्लेख किया, पुस्तक के अन्त में उन्होंने अपने पाठकों को सुझाव दिया कि गाँवों के बारे में अधिक जानकारी के लिए लोग सर हेनरी मेन्स की किताब पढ़ें। गाँधी जी स्वयं कभी भारत के किसी गाँव में नहीं रहे थे। फिर भी उन्होंने एक अंग्रेज सर हेनरी मेन्स की किताब को प्रामाणिक मान लिया। यही नहीं, भारत की अनेक महत्त्वपूर्ण समस्याओं के बारे में 'निरक्षर' रहते हुए भी उनका समाधान बताने में उन्हें कभी संकोच नहीं हुआ।

दो

भारतवर्ष के पिछले 10 वर्षों से प्रधानमन्त्री बने हुए डॉक्टर मनमोहन सिंह ने अपने विषय की सम्पूर्ण संभव योग्यता प्राप्त कर रखी है। फिर भी उन्हें निरक्षर कहा जा सकता है। सही साक्षरता तभी हो सकती है जब किसी को अपने देश के समग्र समाज

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ा ऐसा ज्ञान हो कि उनमें उस समाज में पैदा होनेवाले हर तरह के ज्ञान की कुछ नना हो। ऐसा लगता है कि डॉक्टर मनमोहन सिंह को अपने देश के विभिन्न हित्यों में लिखनेवाले श्रेष्ठ कवियों या लेखकों की कोई जानकारी नहीं है। उन्हें त में पिछली चार-पाँच पीढ़ियों में काम कर रहे दार्शनिकों का भी नाम नहीं पता गा। अभी, आज तक भी, भारतवर्ष में विद्याओं के क्षेत्र में बहुत महत्त्वपूर्ण कार्य कृत भाषा में होता रहा है। उसमें से किसी भी कार्य की जानकारी वर्तमान ानमन्त्री को होने की आशा नहीं की जा सकती। अनेक भारतीय भाषाओं में वाले काम से वे कदाचित ही परिचित हों।

दुनिया के अन्य देशों के बारे में ऐसी बात नहीं कही जा सकती। जहाँ तक मैं नुमान लगा सकता हूँ ग्रेट ब्रिटेन में अब तक कोई ऐसा प्रधानमन्त्री नहीं हुआ होगा नने अपने देश के श्रेष्ठ कवियों, लेखकों, समाजशास्त्रियों, दार्शनिकों का थोड़ा बहुत ययन न किया हो, उसे कम से कम उनका नाम तो पता ही होता है। भारतवर्ष के सी प्रधानमन्त्री के बारे में ऐसा कह पाना कठिन है। यहाँ तक कि जवाहरलाल नेहरू इस कसौटी पर खरे नहीं उतरेंगे। उन्हें यूरोप-अमरीका के बड़े बौद्धिकों से मिलने ने की इच्छा होती थी। वे उन देशों में जाते या उन देशों का कोई बौद्धिक भारत ता तो समय निकालकर उससे मिलने से उन्हें प्रसन्नता होती थी। अपने देश के द्धिकों के बारे में उनकी जानकारी अपेक्षाकृत कम थी। उनके समय में भारतवर्ष के हित्यकार और बौद्धिक किसी न किसी स्तर पर राष्ट्रीय आन्दोलन से जुड़े हुए होते । राष्ट्रीय आन्दोलन के नेताओं का उनसे परिचय होना सामान्य बात थी। ऐसे बहुत लोग गाँधी जी से पत्र-व्यवहार भी करते थे। गाँधी जी द्वारा उनको दिए गए उत्तर म्पूर्ण गाँधी वाङ्मय' में संगृहीत हैं।

मैं दक्षिणी राज्यों के नेताओं के बारे में कुछ कम ज़ानता हूँ। इसलिए यहाँ हिन्दी न के नेताओं की ही बात कर रहा हूँ। इनमें से कभी किसी ने भी अधुनातन भारतीय मय से परिचित रहने की आवश्यकता कभी नहीं महसूस की होगी, अपने समय या पहले के दार्शनिकों-चिन्तकों में हुई बहसों को समझने की चेष्टा करना तो दूर नके नाम भी नहीं जानते होंगे। किसी में भी कभी किसी समकालीन साहित्यकार रचनाएँ पढ़ने की इच्छा नहीं जगी होगी, अपने देश के विद्या क्षेत्र से थोड़ा सा ुराग भी उनमें नहीं होगा। अपने समाज में साहित्य, दर्शन, समाजशास्त्र, राजनीतशास्त्र दि क्षेत्रों में निष्णात लोगों को बुलाकर वे कभी बातचीत भी नहीं करते होंगे। इस का, इतनी अल्पज्ञता का, अपनी ही विद्या से कटे होने का उन्हें एहसास भी नहीं ा होगा। वे यह भी नहीं सोच पाते होंगे कि क्या वह अपने में कोई कमी है, क्या न होना अपने लिए हानिकारक है? नहीं, हमारे नेतागण ऐसे किसी भी प्रश्न से सीन हैं। उन्हें इसका कोई गम नहीं है। वे यह भी नहीं सोच पाते हैं कि यह सरता उनकी शासन-संचालन क्षमता को कितनी बड़ी सीमा तक क्षीण करती है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इन सब प्रश्नों से दूर वे अपने निकट कार्यकर्ताओं की चापलूसी में सराबोर अपने में ही मगन रहते हैं।

तीन

ऐसी स्थिति हमेशा नहीं थी। आज से 100 से 50 साल पहले तक के अपने नेताओं पर ध्यान दें तो वे इस तरह निरक्षर नहीं होते थे। अपने समय के पढ़े-लिखे लोगों से उनका निरन्तर संवाद चला करता था। वे अपनी भाषाओं में छपी पुस्तकें पढ़ते थे, महत्त्वपूर्ण पुस्तकों को खरीदते-बाँचते थे। बीसवीं सदी में अंग्रेजी जमाने में जब तीसरे दशक में चुनाव होकर राज्य सरकारें बनीं तो उनके मुख्यमन्त्रियों पर जरा दृष्टि डालिए। बिहार के मुख्यमन्त्री श्री श्रीकृष्ण सिंह थे। सम्भवतः वे ही वहाँ के शिक्षामन्त्री भी थे। इन लोगों के प्रयत्नों से बिहार में ज्ञान-विज्ञान की बड़ी श्रीवृद्धि हुई। पूरे बिहार में पुस्तकालय आन्दोलन चला। हिन्दी में गम्भीर साहित्य लिखवाने के भी इनके प्रयत्न काफी कारगर रहे। बिहार राष्ट्रभाषा परिषद ने हिन्दी में अनेक विषयों पर मौलिक पुस्तकें लिखवाने का सराहनीय और सफल प्रयत्न किया है। उत्तर प्रदेश और मध्यप्रदेश के विषय में भी यही बात सही है। उत्तर प्रदेश में श्री सम्पूर्णानन्द के मुख्यमंत्रित्व काल में हिन्दी समिति की स्थापना हुई। पहले ही वर्ष में 'संस्कृति का दार्शनिक विवेचन' (डॉ. देवराज), भारतीय गणित का इतिहास (डॉ. ललित प्रसाद सिंह), ज्योतिष का इतिहास (शिवनाथ झारखण्डी), भारतीय संगीत शास्त्र, रूसो के सोशल कान्ट्रैक्ट का अनुवाद, प्लेटो के रिपब्लिक का अनुवाद आदि उत्कृष्ट ग्रन्थ छपे। सभी ग्रन्थों का मुद्रण उच्च कोटि का था, कागज अच्छा लगा था, जिल्द मजबूत थी, मूल्य सर्वसुलभ थे। लेकिन सम्पूर्णानन्द जी के उत्तर प्रदेश से हटते ही कागज खरीदने के लिए टेण्डर निकलने लगे और छपाई भी सस्ती दर पर छापनेवाले को दी जाने लगी। थोड़े ही दिनों में पुस्तकों का स्तर भी घटने लगा। अब हिन्दी समिति से यदा-कदा ही किसी उत्कृष्ट पुस्तक के छपने की आशा की जा सकती है। हिन्दी क्षेत्र के दो अन्य राज्यों मध्य प्रदेश और हरियाणा ने भी प्रकाशन कार्यक्रम शुरू किए। वहाँ भी प्रारम्भिक उत्कृष्टता के बाद लगातार गिरावट दिखने लगी। एक ही कारण लगता है कि जब तक मुख्यमन्त्री विद्याव्यसनी होते थे तब तक कुछ उत्कृष्ट कार्य होते थे। जैसे ही सामान्य शिक्षित लोग राजनीति में उच्च पदों पर पहुँचे राजकीय कार्यों में गिरावट दिखाई देने लगी।

हम जिस तरह की साक्षरता की बात कर रहे हैं। उसके अभाव में राजनेताओं और मन्त्रियों को अपने उत्तरदायित्वों की पूर्ण गम्भीरता से चिन्ता नहीं हो पाती, न ही उनका परिपालन हो पाता है। वे अधीनस्थ नौकरशाहों की सलाह पर चलने लगते हैं, जो भी हमारे अर्थ में निरक्षर ही होते हैं। कम-से-कम उनके द्वारा कोई ऐसा कार्य नहीं होता जो पाठकों और नागरिकों में विचार का प्रवाह चला दे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यही स्थिति अधिकांश विश्वविद्यालयों के स्नातकों के बारे में भी है। ये लोग तचीत करने पर पढ़े-लिखे निरक्षर प्रतीत होते हैं। जिस भाषा में इनका दाय है, तृभाषा अथवा संस्कृत, न जानने के कारण, मात्र अंग्रेजी में शिक्षित होने के कारण नको अपने प्राचीन दाय के विषय में कोई स्मृति नहीं होती। कालिदास, भास, भरत ने या भामह, कौटिल्य या मनु इनके लिए नाम मात्र होते हैं। इससे अधिक कुछ हीं। इसलिए विश्वविद्यालयों में शिक्षित लोग भी अपनी दाय को लेकर निरक्षर होते । ये लोग भी अपनी संस्कृति में साक्षर न होने के कारण कोई भाषा और कोई विषय नते हुए भी निरक्षर ही होते हैं।

चार

मरीका आदि देशों में पढ़े-लिखे लोगों की इस निरक्षरता को लेकर समय-समय पर न्ता व्याप्त होती रहती है। किसी साक्षर मनुष्य को क्या ज्ञान होना चाहिए, उसके ए उसे कौन-कौन सी पुस्तकें पढ़नी चाहिए उसकी सूचियाँ बनती रहती हैं। विभिन्न षयों में मानक ग्रन्थों का निर्धारण होता रहता है। कभी-कभी ये ग्रंथ एक साथ छाप ो दिए जाते हैं। अमरीका में पिछली शताब्दी के तीसरे-चौथे दशक में कुछ दार्शनिकों यथा—स्कॉट बुकनान), इतिहासकारों (यथा—स्ट्रिंजफेलो बार), गणितज्ञों-वैज्ञानिकों यथा—मार्टिनर एडलर), शिक्षाशास्त्रियों (यथा—रॉबर्ट हचिन्स) आदि ने मिलकर पहले क कॉलेज (सेण्ट जॉन्स कॉलेज) में पश्चिमी सभ्यता की महान कृतियों के माध्यम े शिक्षा देनी शुरू की। बाद में बुलावा मिलने पर वे शिकागो विश्वविद्यालय में गए। न लोगों ने पश्चिमी सभ्यता की 100 महान पुस्तकों का चयन किया। ये ग्रन्थ ाजनीतिशास्त्र, दर्शनशास्त्र, विज्ञानों और अन्य विषयों के नितान्त मौलिक ग्रन्थ थे। क मानदंड यह रखा गया था कि उन्हीं ग्रन्थों को पढ़ाया जाएगा जिनमें मौलिकता ोगी (अर्थात् पाठ्यपुस्तकें नहीं पढ़ाई जाएँगी।) इसमें 'ग्रेट बुक्स ऑफ द वेस्टर्न वर्ल्ड' रके 100 पुस्तकों का चयन किया गया। उन्हें सम्पादित करके उनमें आए विचारों ो सम्बन्धित विचारों के साथ रखते हुए एक अलग पुस्तक बनाई गई। इसकी सूची ी बनाई गई। ज्ञान के क्षेत्र के सारे विचारों को इन पुस्तकों में से छाँटकर एक अलग ुस्तक बनी, जिसे प्रोपीडिया कहते थे। इसकी अनुक्रमणिका से आप यह जान सकते ैं कि किस विचार पर किन-किन विचारकों ने अपने ग्रन्थों के किन पृष्ठों पर उल्लेखनीय विचार व्यक्त किए हैं। रॉबर्ट हचिन्स के शिकागो विश्वविद्यालय का ुलपति बनने के बाद वहाँ भी 'ग्रेट बुक्स' की शिक्षा की शुरुआत हुई। पिछले 80 र्षों से ये पुस्तकें और इन पर चलनेवाला शिक्षा का कार्यक्रम अमरीका के सारे ागरिकों को उपलब्ध हैं। बहुत से लोग अपनी-अपनी व्यस्तता के अनुसार इन महान ुस्तकों को पढ़ने का अपना निजी कार्यक्रम बनाते हैं और तीन-चार वर्षों में ही अपनी सभ्यता के महान पुरुषों द्वारा प्रदत्त ज्ञान का अवगाहन कर, अपनी सभ्यता के मूल

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विचारों और विश्वासों के पक्ष और विपक्ष के तर्कों के बारे में जानकर, स्वयं चिन्तनशील होकर अपना मत स्थित करते हैं। इस प्रकार एक सभ्यता को माननेवाली बड़ी जनसंख्या सही अर्थों में साक्षर बन करके अपनी सभ्यता का अंग बनती है।

कहना नहीं होगा कि इस साक्षरता की भी सीमाएँ होती हैं। सम्भवतः बहुत से साक्षर अमरीकी-चीनी सभ्यता के मूल्यों के विषय में उतने सजग न हों, जापानी या भारतीय सभ्यता के प्राचीन अवदानों से अनभिज्ञ हों। लेकिन आवश्यकता पड़ने पर या समझ में आने पर यह ज्ञान भी वे प्राप्त कर सकेंगे और अपनी साक्षरता को पूर्णत्व की दिशा में ले जा सकेंगे। क्योंकि अमरीकी विश्वविद्यालयों और अमरीका के प्रकाशकों में भी भारतीय-चीनी-जापानी ग्रन्थों के भी अनुवाद करा लिए हैं।

हमने यहाँ पर अमरीका में हुए एक प्रयत्न का उदाहरण दिया है। लेकिन ऐसे प्रयत्न इंग्लैंड में भी 19वीं शताब्दी के मध्य से ही होने लगे थे। विश्वविद्यालयों में आज मान्यता प्राप्त विद्याओं की शुरुआत उन्हीं वर्षों में हुई थी। इंग्लैंड और यूरोप से युवा लोग अफ्रीका और लैटिन अमेरिका की नदियों के उत्स को ढूँढ़ने के लिए जाने लगे थे, दुर्गम स्थानों की यात्राएँ करने लगे थे। घने वनों और ऊँची पहाड़ियों के जीव जन्तुओं का पता करने लगे थे। अपनी इन खोजों के बारे में वे स्वयं लिखने लगे थे। या पत्रकार लोग उनसे पूछताछ कर समाचारपत्रों और पुस्तकों में पाठकों के लिए मनोहारी सामग्री प्रस्तुत करने लगे थे। जब हवाई जहाजों का बनना शुरू हुआ तो आरम्भिक उड़ाकों को बहुत साहसी, कुशल और एक नए क्षेत्र का उद्यमी मानकर उन्हें राजनेताओं से भी अधिक सम्मान मिला। अमरीका के आरम्भिक उड़ाके ने जब 'सेंट लुईस' नामक वायुयान को चलाकर अटलांटिक महासागर को पारकर फ्रांस पहुँचने का लक्ष्य निर्धारित करके उसे पूरा किया तो अभियान के हर चरण पर नियुक्त संवाददाताओं ने उसकी खबरें सारी दुनिया के समाचारपत्रों में प्रकाशित कीं और वह जन-साक्षरता का एक नया मापदण्ड बन गया। इस तरह की साक्षरता ओलम्पिक खेल भी प्रदान करते हैं।

पाँच

हमारे देश में राजनीतिज्ञों की निरक्षरता बहुत हद तक हमारी शिक्षा-पद्धति की देन है। हम इस शिक्षा-पद्धति की आलोचना तो करते हैं लेकिन उसमें चाहते हुए भी सुधार नहीं कर पाते। अभी तक हर एक को प्राथमिक शिक्षा दे देना ही हमारा लक्ष्य बना हुआ है। मात्र प्राथमिक शिक्षा से जागरूक नागरिकता के लिए अपरिहार्य साक्षरता नहीं आ सकती। आज की स्कूली शिक्षा में प्रारम्भ से ही निरक्षरता के बीज अंकुरित होने लगते हैं। धीरे-धीरे तो ऐसा हो गया लगता है कि जैसे हमारा समाज ही ज्ञान के महत्त्व से उपराम हो गया है। अगर अपना ज्ञान बढ़ाने का अवसर मिले भी तो हम लोग उसका लाभ उठाने के लिए अपनी उँगली उठाने जितना प्रयत्न भी नहीं करेंगे। इसका

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एक परिणाम तो यह हुआ है कि हमारी भाषाओं में नए-नए विषयों पर स्तरीय पुस्तकों का प्रकाशन बन्द हो गया है। मैं अपने अनुभव से कह सकता हूँ कि ऐसी स्तरीय पुस्तकों की हजार प्रतियों का संस्करण भी, यदि वह पुस्तक कहीं पाठ्य पुस्तक न लगी हो तो 20 वर्षों बाद भी उसकी प्रतियाँ प्रकाशकों की दूकानों में यदि नहीं तो उनके गोदामों में अवश्य मिल जाएँगी।

आखिर इस प्रकार की नीतियाँ किसने बनाई हैं। शिक्षा के आयोग बनते रहे हैं, उनकी सिफारिशों के कार्यान्वयन के लिए समितियाँ भी बनी हैं लेकिन हमारी शिक्षा केवल निरक्षर ही क्यों पैदा कर रही है। हमारे समाज का नेतृत्व, केवल राजनीतिक ही नहीं हर तरह का नेतृत्व निरक्षर क्यों हो रहा है? सरकारें शिक्षा के विषय में जो भी कार्य कर रही हैं, अधिकांश प्रयत्न 'टेक्निकल' या 'डॉक्टरी' की शिक्षा के लिए बढ़ाने के लिए किया जा रहा है। शिक्षा का बजट बढ़ता जा रहा है। हमारे नए प्रधानमन्त्री ने अनेक नए आईआईटी खोलने की घोषणा कर दी है। स्थिति तो यह है कि अभी तक जो आईआईटी पहले से बने हुए हैं उनके लिए भी विविध विषयों के अध्यापक नहीं मिल पा रहे हैं, ऐसे अवस्था में नए खुलनेवाले आईआईटी संस्थाओं में कौन से लोग अध्यापन करेंगे? वे किस-किस स्तर की शिक्षा दे पाएँगे, वे किस तरह के विद्यार्थी तैयार करेंगे, उससे आगे किस तरह की साक्षरता बढ़ेगी?

छह

समाजों और सभ्यताओं का अधिकांश दाय उनकी पुरानी और क्लैसिकी भाषाओं के ग्रन्थों में सुरक्षित होता है। बहुत से विद्यार्थी इन ग्रन्थों के अनुवादों से भी काम चला लेते हैं, पर अनुवादों से उन्हें कोई गहन ज्ञान सम्पदा नहीं प्राप्त होती। आजकल हमारे विद्यालयों से हमारी क्लैसिकी सभ्यता की भाषा को बाहर निकालने का आन्दोलन चल रहा है। दुनिया में जो भी सभ्यताएँ हैं वे अपने नागरिकों को बचपन से ही उन भाषाओं की कारगर शिक्षा देती हैं ताकि उनके नागरिक उस सम्पदा से अवगत रहें। हम यह आशा नहीं कर सकते कि इंग्लैंड, फ्रांस, जर्मनी, इटली के समाज अपने बालकों को ग्रीक या लैटिन की शिक्षा न दें। वहाँ हर विद्यालय में यह प्रारम्भिक आवश्यकता है। लेकिन भारतवर्ष में आज यह प्रगतिशीलता का लक्षण हो गया है कि हम अपने पुरखों के, अपने प्राचीन ज्ञान, अपनी प्राचीन भाषाओं को भुला दें, उन पर ध्यान न दें, अपने बच्चों को उनकी शिक्षा न दें। बहुत से लोग ख़ासकर कुछ दलित नेताओं ने संस्कृत को हिन्दू धर्म की या ब्राह्मणों की भाषा मान रखा है। इसलिए भी वे लोग संस्कृत की शिक्षा बन्द करना चाहते हैं। बहुत से माता-पिता ऐसा मानने लगे हैं कि बच्चों की आजीविका के लिए 'टेक्निकल' ज्ञान की आवश्यक है, क्लैसिकी भाषा की क्या आवश्यकता। यूरोप और अमरीका आदि में इस विषय पर बार-बार बहस हुई है और हमेशा क्लैसिकी भाषाओं के ज्ञान के महत्त्व की प्रधानता के निष्कर्ष पर ही पहुँचा गया

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है। अच्छा होता कि कोई पश्चिमी समाजों की इन बहसों को भारतीय समाज के नेताओं से परिचित कराने की कोशिश करता।

सात

हमारे नेता हमें किसी विषय में नेतृत्व नहीं प्रदान करते, क्योंकि वे अपढ़ हैं। हमारे नेता जनतन्त्र की अपेक्षाओं को समझने से उपराम रहते हैं क्योंकि वे अपढ़ हैं। हमारे नेता समाज से पूरी तरह जुड़े नहीं रहते, समाज की समस्याओं को समझने का प्रयत्न नहीं करते क्योंकि वे अपढ़ हैं।

हमारे नेता अपढ़ हैं क्योंकि हमारा समाज भी अपढ़ होता गया है। क्योंकि हम अपने बच्चों को ऐसी शिक्षा दे रहे हैं कि वे भी अपढ़ होते चले जाएँ। हमारी शिक्षा देने की जो भी चेष्टा है, हम अपने बच्चों को जो भी टेक्निकल ज्ञान दे रहे हैं उससे उनमें जो भी कुशलता आती हो लेकिन एक शिष्ट सुसभ्य समाज के सदस्य के रूप में वे निरक्षर रहते हैं, वे अपनी सांस्कृतिक दाय से निरक्षर रहते हैं, वे अपने समाज में चल रहे विविध प्रकार के ज्ञान को प्राप्त करने से निश्चेष्ट रहते हैं। इसलिए हमारा पूरा समाज ही निरक्षर होता जा रहा है।

हमारे समाज की निरक्षरता हर क्षेत्र में प्रकट है। यह स्कूली शिक्षा के पाठ्यक्रम में प्रकट है। यह विश्वविद्यालयों में दिए जानेवाले व्याख्यानों में प्रकट है। अपने देश और समाज की समस्याओं की समझ में प्रकट है, उनके बारे में बातचीत में प्रकट है। उनका समाधान ढूँढ़ने के बारे में कोई प्रयत्न न करने में प्रकट है, यह हमारी प्राणघाती आत्मकेन्द्रिकता में प्रकट है।

हमारा समाज निरक्षर हो रहा है, हमारा शिष्ट वर्ग निरक्षर हो रहा है इसीलिए हमारे नेता निरक्षर हैं, इसीलिए हमारा समाज ज्ञान शून्य होता जा रहा है।

आखिर इस स्थिति से कौन विचलित होगा। आखिर इस स्थिति की भीषणता का संज्ञान किसे होगा। कौन इससे उबरने के लिए सचेष्ट होगा। कहाँ से शुरुआत होगी हमारे साक्षर होने की। कौन कदम उठाएगा कि हम अपने पूर्वजों द्वारा रचित ज्ञान को पुनः उपलब्ध करें। हम सुसंस्कृत हों। हम ज्ञानवान हों।

यह कैसे हो कि हमारा समाज सही अर्थों में साक्षर हो। यह कैसे हो कि हमारे नेता अपढ़ न हों।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हमारे विश्वविद्यालयों की स्थिति

शंकर शरण*

मारे देश के विश्वविद्यालयों की स्थिति की जब भी चर्चा होती है, तो उनमें प्रायः एक टपटापन झलकता है। जान पड़ता है मानो किसी कम्पनी, फैक्टरी या उद्योग की र्चा हो रही हो। यह बात मानो खो जाती है कि विश्वविद्यालय का अर्थ क्या है, उसे कसलिए बनाया गया था? किन्हीं प्राचीन शताब्दियों में नहीं, वरन हाल के स्वतंत्र रत में डॉ. राधाकृष्णन की अध्यक्षता वाले विश्वविद्यालय शिक्षा आयोग (1948) ने पनी रिपोर्ट में विश्वविद्यालयों का क्या लक्ष्य रखा था? याद रहे, इसी आयोग की नुशंसाओं के आधार पर विश्वविद्यालय अनुदान आयोग बना और स्वतंत्र भारत के श्वविद्यालयों की आधारशिला बनाई गई।

अर्थात् हमारे विश्वविद्यालय की स्थिति की समीक्षा डॉ. राधाकृष्णन विश्वविद्यालय आयोग, 1948 के मन्तव्यों के आलोक में भी हो सकती है। तब पता चलेगा कि यह कस हाल में हैं, इन्होंने क्या किया, और कर रहे हैं, तथा क्या यह उन उद्देश्यों के नुरूप है, जिसके लिए सरकार ने स्वतन्त्र भारत में इन्हें चलाना स्वीकार किया था?

इसलिए विश्वविद्यालयों की स्थिति पर विचार करने में 'हायर एजुकेशन क्टर', 'फैकल्टी शॉर्टेज', 'इन्फ्रास्ट्रक्चर डेवलपमेंट' जैसी शब्दावली भ्रमित करती है। ससे लगता है मानो विश्वविद्यालय को किसी वाणिज्यिक, यान्त्रिक, कारोबारी तिविधि चलाना जैसी समझ लिया गया है। यह कितनी दोषपूर्ण स्थिति है, इसे शिक्षा ी सामान्य परिभाषा से मिलाकर भी देखा जा सकता है। दुनिया की किसी भी भ्यता में शिक्षा को रोजगार, उत्पादन आदि से जोड़कर नहीं देखा गया है।

उदाहरण के लिए, नीचे पाँच महापुरुषों के विचार उद्धृत हैं, वस्तुतः सभी महान शिक्षाविदों के विचार इनसे मूलतः भिन्न नहीं हैं–

"वह शिक्षा जो जनसमुदाय को जीवन-संग्राम के उपयुक्त नहीं बनाती, जो नकी चारित्र्य-शक्ति का विकास नहीं करती, जो उनमें भूत-दया का भाव और सिंह

---

*सम्पर्क : 4/44, एन.सी.ई.आर.टी. आवास, श्री अरविन्दो मार्ग, नई दिल्ली-110016

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

का साहस पैदा नहीं करती, क्या उसे भी हम 'शिक्षा' का नाम दे सकते हैं?" (स्वामी विवेकानन्द)

"स्वार्थी उद्देश्यों से या बिना सोचे बनाई गई बाध्यतामूलक, नकलची और यान्त्रिक शिक्षा ने वास्तव में हमें अनेक क्षेत्रों में पीछे ढकेल दिया है। विभिन्न सामाजिक बुराइयाँ व्यापक अज्ञान द्वारा हिंसा के अतिरिक्त और कुछ नहीं हैं।" (लेव टॉल्सटॉय)

"हमारे देश के लिए वही शिक्षा सच्ची शिक्षा है जिसके द्वारा देश का अपना मन सत्य संचय करने में और उसे अपनी शक्ति द्वारा प्रकाशित करने में समर्थ बने। पुनरावृत्ति करने की शिक्षा मन की शिक्षा नहीं है। पुनरावृत्ति तो यन्त्र के द्वारा भी हो सकती है।" (रवीन्द्रनाथ ठाकुर)

"मेरे लिए इसका कोई महत्त्व नहीं कि मेरा विद्यार्थी सैन्य सेवा में जाएगा, या चर्च, या कानून के क्षेत्र में। इससे पहले के उसके माता-पिता उसके लिए कार्य-क्षेत्र तय करें, प्रकृति ने उसे पहले मनुष्य होने के लिए कहा है...अतः जब वह मुझसे शिक्षा प्राप्त करके जाएगा तो वह न मजिस्ट्रेट होगा, न सिपाही, न पादरी; वह एक मनुष्य होगा।" (रुसो)

"हमारे हाथ मुक्त हों, हमारा हृदय मुक्त हो, हमारी बुद्धि मुक्त हो, इससे बड़ी सफलता न हमारी शिक्षा दे सकती है, न हम अपनी शिक्षा को दे सकते हैं।" (अज्ञेय)

अतः हमें शिक्षा का अर्थ बदलने का कोई अधिकार नहीं है। सारे संसार में विश्वविद्यालय सदैव बड़े ज्ञानियों, चिन्तकों, बौद्धिकों का केन्द्र मात्र होता था। वहाँ डॉक्टरी, इंजीनियरिंग आदि विषय तो पहले थे भी नहीं। इन विषयों का शिक्षण-प्रशिक्षण अन्य स्थानों पर होता था। विश्वविद्यालय का अर्थ था; सर्वोच्च चिन्तन केन्द्र। वहाँ समाज के चिन्तक, मार्गदर्शक, नीतिकार और विद्वान निखरते थे। यह हर तरह के लड़के-लड़कियों, और कथित प्राध्यापकों की भीड़ जुटाकर नहीं हुआ करता।

इस प्रकार, सर्वोच्च ज्ञान-केन्द्र होना ही विश्वविद्यालय का आदर्श है। इसे भूल या भटकाकर मात्र यान्त्रिक-औपचारिक डिग्री वितरण, नौकरी योग्य युवा प्रमाणित करना, तदनुरूप हॉस्टल, अनुदान जैसी सुविधाओं को नौकरी-तैयारी धर्मशालाओं में बदल देना, अथवा राजनीतिक प्रशिक्षण और प्रचार का अड्डा बनाना—इन सबके लिए विश्वविद्यालय नहीं होता। न होना चाहिए। यह बुनियादी बिन्दु है। इसे सुधारना आज कठिन हो, तो यह नहीं कि इस विकृति को मान्यता दे दें।

वह बुनियादी अर्थ यूरोप, अमेरिका के प्रतिष्ठित विश्वविद्यालयों में अब भी लागू है। अमेरिका की विश्व-प्रसिद्ध मेसाचुसेट्स इन्स्टीच्यूट ऑफ टेक्लोनॉजी (एम. आई.टी.) में भी दर्शन, साहित्य और भाषा के प्रभावशाली विभाग हैं जहाँ अनेकों विद्वान हैं। इसकी तुलना में हमारे केन्द्रीय विश्वविद्यालयों में स्वयं दर्शन विभागों का ही क्या हाल है? इसकी चिन्ता भी कभी, किसी को करनी होगी। अन्यथा देश की

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जनता का करोड़ों, अरबों रुपया उस काम के लिए नष्ट होता रहेगा, जो घोषित रूप से किसी और उद्देश्य के लिए दिया जाना आरम्भ हुआ था।

हमारे असंख्य बड़े विश्वविद्यालयों में भी ठीक उन विभागों की ही स्थिति सबसे खराब है, जिन्हें शुद्ध ज्ञान से जुड़ा होना था, अर्थात् सामाजिक विज्ञान और मानविकी। इनमें अच्छे शिक्षक और शिक्षार्थी, दोनों का ही अकाल हो चुका है। दर्शन, राजनीति, भाषाविज्ञान और सामाजिक विषयों में विश्वप्रसिद्ध तो दूर, किसी प्रान्त में भी प्रसिद्ध विद्वान देखना, दिखाना कठिन है।

इस दुरवस्था के दो प्रमुख कारण प्रतीत होते हैं। पहला, शिक्षा पर पूर्णतः भौतिकवादी दृष्टि हावी हो गई है। यह मनुष्य को केवल शरीर समझती है। इसीलिए उसका लक्ष्य रोजगारोपयोगी हो गया है तथा शुद्ध ज्ञान-चिन्तन निरर्थक-सा मान लिया गया। इसमें अव्यक्त मान्यता है कि प्रत्येक व्यक्ति को अधिक-से-अधिक वस्तुएँ, सुविधाएँ चाहिए। मानो यही जीवन का मूल-मन्त्र है। मगर यहीं भौतिकवादी दर्शन की सीमा भी है। तभी वह कथित प्रगति के बावजूद बढ़ती अनैतिकता, दुराचार, झगड़े, असन्तोष आदि सामाजिक व्याधियों के सामने निरुत्तर भी है। पश्चिमी उदारवाद, सेक्यूलर-प्रोटेस्टेंट लोकतन्त्र, मार्क्सवाद या अमेरिकी बाजारवाद किसी के पास सामाजिक रुग्णता तथा आत्मिक खोखलेपन का उपचार नहीं है, क्योंकि उन्होंने मनुष्य की अवधारणा ही भौतिकवादी मान ली है, जो सत्य नहीं है।

भगवद्गीता में कहा है : इन्द्रियाणि पराण्याहुः इन्द्रियेभ्यः परं मनः। मनसस्तु परा बुद्धिर्यो बुद्धेः परतस्तु सः॥ (3/42) अर्थात् मनुष्य के शरीर से परे, अर्थात् ऊपर उसकी इन्द्रियाँ हैं। इन्द्रियों के परे मन है। मन के परे बुद्धि है और बुद्धि के भी परे आत्मा है। यह सम्पूर्ण मनुष्य का चित्र है। इसीलिए शिक्षा को सदैव मनुष्य के सम्पूर्ण आयाम को ध्यान में रखना चाहिए।

उपर्युक्त कथन भूख को अध्यात्म से सन्तुष्ट करने की बात नहीं, जो आरोप कुछ भौतिकवादी लगा उठते हैं। वरन् भूख के निदान के बाद आत्मिक, आध्यात्मिक आहार भी देने की बात है। जिसके अभाव में शिक्षा अधूरी रह जाती है। स्वामी विवेकानन्द ने इसी को ऐसे कहा था, "पाश्चात्य सभ्यता की बुराइयों में से एक यह भी है कि वहाँ हृदय की परवाह न करते हुए केवल बौद्धिक शिक्षा दी जाती है। ऐसी शिक्षा मनुष्य को दस गुना स्वार्थी बना देती है।"

दूसरा कारण यह प्रतीत होता है कि हमारी कथित उच्च शिक्षा की भाषा अंग्रेजी होने कारण, तथा हमारी हाल की औपनिवेशिक पृष्ठभूमि में सभी ज्ञान का स्रोत संयुक्त राज्य अमेरिका और यूरोपीय देशों को मान लिया गया है। परिणामतः सामाजिक-मानविकी विषयों में भी यहाँ उन्हीं पुस्तकों, लेखों, नए विचारों, मुहावरों का अनुकरण होता है, जो उधर से आते रहे हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

किन्तु किसी भी समाज का आत्म-ज्ञान मूलतः उसके अपने चिन्तन से होता है। दूसरे देश के विद्वान भी पहले अपने समाज को, और अपनी दृष्टि से, देखते हैं। दूसरों को भी देखते हैं, तो अपनी दृष्टि से ही। उसका भी महत्त्व है। किन्तु दूसरों के समाज ज्ञान से किसी समाज को अपना ज्ञान नहीं हो सकता! अतः भारतीय समाज, भाषा-संस्कृति, धर्म, दर्शन इतिहास, चारित्रिक मनोवैज्ञानिक विशेषताएँ, सामाजिक-राजनीतिक-आर्थिक यथार्थ, आदि के सम्बन्ध में वास्तविक ज्ञान अपने अनुभव और चिन्तन पर ही वास्तविक होगा।

फिर, सामाजिक ज्ञान और प्राकृतिक ज्ञान (साइन्स) में एक मौलिक भेद है। प्राकृतिक-प्रायोगिक विज्ञान पूरी दुनिया में एक से हो सकते हैं। किन्तु समाज ज्ञान हर देश में अपना ही हो सकता है, क्योंकि हर समाज, उसकी भाषा, संस्कृति, इतिहास, रीति-रिवाज, अनुभव आदि अत्यन्त विभिन्न होता है। अतः उसके लिए अपना, विशिष्ट समाज-ज्ञान ही सार्थक, रुचिकर, रचनात्मक होगा। ऐसा न हुए होने के कारण ही अभी भारत में पश्चिमी समाज विज्ञान का बोझ युवाओं को मौलिक विचारों के लिए प्रेरित नहीं कर पाता। तभी यहाँ समाज ज्ञान विषयों में सच्ची प्रतिभाएँ कम रुचि लेती हैं।

जबकि मानविकी विषयों की मौलिक, शास्त्रीय सामग्री में भारतीय मनीषा अत्यन्त समृद्ध रही है। हमने इसे उपेक्षित किया है, जबकि पश्चिम के भी गम्भीर विद्वान यह सत्य जानते हैं। महान समाजशास्त्री मैक्स वेबर ने म्यूनिख विश्वविद्यालय में अपने प्रसिद्ध व्याख्यान 'पॉलिटिक्स ऐज ए वोकेशन' (1919) में राजनीति एवं नैतिकता के अन्तःसम्बन्ध पर भी विचार किया था। उसमें वेबर ने विश्व की जिन चार महत्त्वपूर्ण कृतियों का उल्लेख किया, उनमें से तीन भारतीय मनीषा से हैं : उपनिषद्, भगवद्-गीता और अर्थशास्त्र। नैतिक मूल्यों के साथ राजनीति-कर्म की ऐसी अविच्छिन्न प्रस्तुति वेबर को हिन्दू मनीषा छोड़कर कहीं और नहीं मिली। इस सन्दर्भ में 'हिन्दू' शब्द मैक्स वेबर ने ही प्रयोग किया है।

ध्यान दें, वेबर बीसवीं सदी के आधुनिक उच्च शिक्षार्थियों को बता रहे थे। इस से समझा जा सकता है कि सामाजिक-मानविकी विषयों की मूल तथा शास्त्रीय दोनों प्रकार की पाठ्य-सामग्री भारत में कितनी अधिक है। अतः पश्चिमोन्मुखी और रोजगारोपयोगी शिक्षा में उपयुक्त सुधार कर, हम स्वयं अपनी दृष्टि से अपने समाज को देखना आरम्भ कर सकें, तभी सामाजिक-मानविकी विषयों में हमारे विश्वविद्यालयों की स्थिति सम्मानजनक हो सकती है।

यदि ऐसा नहीं होता, और भारत (तथा यूरोप के भी) महान शास्त्रीय ग्रन्थों को शिक्षा में महत्त्वपूर्ण स्थान नहीं दिया जाता, तो यह एक विभीषिका साबित होगी। पौष्टिक मानसिक, आध्यात्मिक आहार के स्थान पर हमारी नई पीढ़ियाँ जैसा-तैसा रातिब पाएँगी, चाहे उनकी जेब में कितने ही मशीनी चमत्कार क्यों न भरे हों। तब

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
समाज भौतिक सुख-सुविधा से तो सम्पन्न दिखेगा, किन्तु नैतिक, सामाजिक और भावनात्मक रूप से अत्यन्त विपन्न हो चुकेगा। अभी भी युवाओं में अनेक रोग देखे जा सकते हैं, जो इसका दुःखद संकेत देते हैं। जिनके पास भरपूर साधन है, सुख-सुविधाएँ हैं, वे भी एक दिन के लिए स्वस्थ सामाजिक आनन्द उठा सकने का उपाय नहीं जानते।

यह मानसिक अपंगता है। उस प्रवृत्ति का ही एक सामाजिक परिणाम जिसमें शिक्षा को पैसे कमाने की ट्रेनिंग में बदलकर रख दिया गया है। हमारे शिक्षित, धनी युवाओं में दिग्भ्रम, भावशून्यता या चरित्रहीनता कोई दुर्घटना या व्यतिक्रम नहीं है। निरी भौतिकवादी और धनोपार्जन शिक्षा का यह अनिवार्य परिणाम है। यदि अभी भी यहाँ बड़ी संख्या में युवा उन लोगों से बचे हैं तो यह परम्परागत भारतीय संस्कार हैं, जो परिवार, विशेषकर स्त्रियों के माध्यम से बची हुई है। किन्तु यह सदैव यथावत् नहीं रहेगा। संस्कार भी 'धर्मो रक्षति रक्षितः' की तरह हमें तभी बचाएँगे, जब हम पहले संस्कारों को प्रतिष्ठा दें। यह शिक्षा में उन्हें प्रमुख स्थान देकर ही हो सकता है।

किन्तु यदि औपचारिक शिक्षा में कर्तव्य-अकर्तव्य की भावना, देश-भक्ति, सदाचार अर्थात् भारतीय धर्म-चेतना की, और इस प्रकार व्यक्तित्व के सर्वांगीण विकास की चिन्ता उपेक्षित होती है, तो इसके दुष्परिणामों से बचा नहीं जा सकेगा। यूरोप, अमेरिका और महानगरीय भारत, सभी जगह इसके लक्षण देखे जा सकते हैं।

अतएव, जिन महान भारतीय ग्रन्थों को शिक्षा से बाहर कर दिया गया है, वस्तुतः वही शिक्षा के प्रमुख आधार होने चाहिए। उपनिषद्, महाभारत, नीति-शतक, आदि किसी को भी गम्भीरता से देखें। उनमें हमारी आज की समस्याओं को समझने की भी कुंजी झलकती है। वे ग्रन्थ शाश्वत रूप से विचारोत्तेजक हैं। यह अकारण नहीं कि आज भी अनेक वैज्ञानिक और उद्योग जगत की प्रतिभाएँ भी उन ग्रन्थों से निकट सम्बन्ध रखती हैं। (जैसे, पूर्व-राष्ट्रपति और वैज्ञानिक ए.पी.जे. अब्दुल कलाम, व्यापार प्रबन्धक गुरचरण दास, आदि)। क्योंकि वे रिलीजस पुस्तकें नहीं, अनूठे ज्ञान-भंडार हैं, जो सम्पूर्ण जीवन और समाज को समझने, सँभालने में सहायक हैं।

अच्छा जीवन क्या है? अच्छी राज्य व्यवस्था कौन-सी है? क्या ईश्वर का अस्तित्व है? इस संसार में मनुष्य का क्या काम है? क्या मानव संसार से परे भी कोई संसार या अस्तित्व है? किसी विषय में उचित और अनुचित का निर्णय करने का आधार क्या होना चाहिए? क्या कानून बनाना पर्याप्त है? लोक-हित, राज-हित और व्यक्ति-हित में क्या सम्बन्ध है? राज-धर्म का अर्थ एक है या समय के साथ यह बदलता रहा है? आदि कई प्रश्न सदैव मानवता के साथ रहे हैं और इसीलिए महान, शास्त्रीय ग्रन्थों को उच्च शिक्षा से कभी विलग नहीं करना चाहिए। क्योंकि उनमें इन्हीं बिन्दुओं पर सुचिन्तित ज्ञान भरा पड़ा है। नए युग में नई स्थितियों का सामना करने के लिए भी उससे सम्पृक्त होना जरूरी है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कहावत है कि दुनिया जितनी बदलती जाती है, उतनी ही वह वैसी की वैसी भी रहती है! जीवन-मृत्यु, स्वास्थ्य-रोग, आशा-आकांक्षा, लोभ-स्वार्थ, परोपकार-त्याग, लूट-पाट, युद्ध-शान्ति, प्राकृतिक विपदा, दुर्घटना, गरीबी-अमीरी, अहंकार, मोह, क्षुद्रता, महानता, साधु-सन्त, दुष्ट-कुकर्मी, अराजकता, सुव्यवस्था आदि अनेक परिघटनाएँ ऐसी हैं, जो हजारों साल से मानवता के साथ यथावत हैं। नीति-अनीति, छल-प्रपंच, ऊँच-नीच, धर्म-अधर्म, प्रेम-वैराग्य, सेवा-भक्ति, आदि मनुष्य के साथ उसी तरह हैं जैसे जीवन-मरण। इसीलिए महान पुस्तकें, चाहे वह वेदव्यास लिखित हों या मार्क्स ऑरेलियस या टॉल्सटॉय की, कभी पुरानी नहीं पड़तीं। वैसे ग्रन्थों, विचारों के अध्ययन, मनन में रुचि रखनेवालों के लिए ही विश्वविद्यालय नामक स्थान होता रहा है। उन्हीं से विश्वविद्यालय सार्थक होता है।

उपर्युक्त बातें इसलिए भी प्रासंगिक हैं, क्योंकि चामत्कारिक उन्नति के साथ, कई क्षेत्रों में मानवता की भारी अवनति भी हुई है। न केवल आध्यात्मिक, चारित्रिक, वरन् भौतिक विषयों में भी। स्वच्छ नदियाँ, स्वच्छ वायु, बाग-बगीचे अब मनुष्यों के जीवन से दूर होते जा रहे हैं। यह भौतिक समृद्धि में कमी, बल्कि दरिद्रता का परिचायक भी हैं। 'पानी की तरह पैसा बहाने' वाला मुहावरा क्या आज उलटने का समय नहीं आ गया है? यदि बुनियादी भौतिक वस्तुओं की यह स्थिति है, तब भावनात्मक, आध्यात्मिक, चारित्रिक आदि अ-भौतिक विषयों में मानवता की उन्नति या अवनति का हिसाब रोज समाचार-पत्रों से ही मिल जाता है।

वस्तुतः शिक्षा का भौतिकवादीकरण, बाजारीकरण भी अवनति का ही प्रमाण है। पहले रोजगार और शिक्षा दो अलग चीजें थीं। किन्तु धीरे-धीरे रोजगार का प्रशिक्षण शिक्षा का केन्द्रीय उद्देश्य बन जाना एक बड़ी सामाजिक दुर्घटना हुई है। आदमी दैनिक रूप से रोजगार इसलिए करता है कि वह शेष समय सुखमय जीवन जी सके। मगर वह जीवन क्या है? यह ज्ञान उसे कथित शिक्षा में नहीं मिलता। एकांगी भौतिकवादी दृष्टि बिन्दु हर चीज को भौतिक सुख-सुविधा के नजरिए से तौलती है। तभी आज स्वयं मनुष्य निरा उपभोक्ता, प्रचार का लक्ष्य भर बन गया है। बल्कि उपभोक्ता से भी गिरकर वस्तुओं की खपत का उपकरण मात्र। उसकी अपनी संवेदना घटती जा रही है। वह अनाप-शनाप, अनावश्यक, अनर्गल, यहाँ तक कि हानिकारक वस्तुओं का भी उपभोक्ता बन रहा है। यह भौतिकतावादी दर्शन का (तदनुरूप साइन्स-टेक्नॉलॉजी, वाणिज्य-व्यापार की शिक्षा मुख्य माननेवाले दर्शन का भी) दिवालियापन है कि धर्म-अधर्म की उपेक्षा से बढ़ते-बढ़ते अन्ततः उसका पैमाना मनुष्य भी नहीं रह गया। वस्तुओं का अन्धाधुन्ध निर्माण, वित्तीय लाभ और बाजारी आँकड़े अपने-आप में सर्वोपरि हो गए हैं। स्वयं मनुष्यता किसी गिनती में नहीं है!

शिक्षा में 'सेक्यूलर और प्रोग्रेसिव' पाठ इस बाजारीकरण, तुच्छीकरण को समझने में भी असमर्थ हैं, कोई समाधान देना तो दूर रहा। उलटे वे उसी के पैरोकार

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ते रहते हैं। हर चीज को वस्तुओं, वेतनों और इन्हीं की घट-बढ़ के आँकड़ों से खने-दिखाने की प्रवृत्ति और क्या है? मानो गुणवत्ता, चरित्र, भाव, स्वाभिमान, ल्लास, ज्ञान, आदि कुछ नहीं। हमारे देश में इतने हाई-स्कूल पास, ग्रेजुएट या -एच.डी. कहने का क्या अर्थ है, यदि ग्रेजुएट की वास्तविक मूल्यवत्ता आकलन से हर कर दी गई हो? मात्रा से लिप्त, गुण से निर्लिप्त, यह दृष्टि अमानवीय, स्कृति-विरोधी, छली और अज्ञानभरी है। लेकिन इसी से आज पूरी शिक्षा का ल्यांकन हो रहा है।

अतः सर्वप्रथम, विश्वविद्यालयों को रोजगारोपयोगी परीक्षाओं की तैयारी के न्द्रों से अलग करना जरूरी है। रोजगार परीक्षा की तैयारी करनेवाले युवा महान ाहित्य नहीं पढ़ते। समाज, जीवन और समस्याओं पर गहन सोच-विचार को प्रवृत्त हीं होते। लेकिन उसके बिना किसी देश की दूरगामी सोच-विचार करने, विवेकपूर्ण विश्लेषण कर सकने की क्षमता खो जाती है या विकसित ही नहीं होती। किन्तु प्रत्येक माज को उसकी भी जरूरत है। अतः इन दो प्रकार के केन्द्रों को अलग करना जरूरी ।

हमें समझना होगा कि जो रोजगार एक साधन है, वह साध्य में बदल गया है। सीलिए शिक्षा का मूल तत्त्व ही शिक्षा से बाहर होता चला गया है। यही कारण है कि ई विकट समस्याओं के समक्ष हम निपट असहाय नजर आते हैं। यह स्थिति कैसे नी? इसके अन्य जो भी कारण हों, एक यह भी है कि शिक्षा और रोजगार का ल-मेल कर दिया गया है। हमारे बीच चिन्तक, ज्ञानी, सच्चे मार्गदर्शक बनने बन्द गए हैं।

श्रीअरविन्द ने कहा था : "किसी भी महान देश का बौद्धिक पतन सदैव गुणों क्षरण से आरम्भ होता है।" उन्होंने यह तीन गुण या मानसिक क्षमताएँ बताई थीं : विवेकपूर्ण विचार करने की क्षमता, तुलना एवं विभेद करने की क्षमता; तथा अभिव्यक्ति ी क्षमता। इससे युवा पीढ़ी में इन क्षमताओं के सतत विकास की आवश्यकता मझी जानी चाहिए। ये तीन क्षमताएँ मुख्यतः महान, शास्त्रीय ग्रन्थों तथा उत्कृष्ट ाहित्य के अध्ययन से ही आती हैं। साइन्स का अध्ययन इसमें बहुत कम मददगार । श्रीअरविन्द की चेतावनी हमें सदैव ध्यान में रखनी चाहिए।

विशेषकर भारत के लिए तो श्रीअरविन्द की उक्त चेतावनी सदा स्मरणीय है, योंकि पिछले हजार वर्ष से दस्यु, बर्बर और धूर्त आकर यहाँ उनसे उन्नत सभ्यता-संस्कृति ले लोगों पर अधिकार जमाते रहे हैं। ऐसी समस्याओं की विवेचना, तथा उपयुक्त ष्कर्षों का अध्ययन किस प्रयोगशाला में होगा? यदि न किया गया, जैसा केवल कनीकी, इंजीनियरी, प्रबन्धकीय संस्थानों की प्रतिष्ठा से झलकता है, तो भारत का तः पराभव नहीं होगा, इसकी गारंटी कौन करेगा?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

याद रहे, सोने की चिड़िया ही लूटी गई थी! यानी, उद्योग, तकनीक, धन-वैभव से परिपूर्ण भारत ही पराधीन हुआ था। किनके हाथों, कैसे, किन स्थितियों में? उस दुर्गति से बचने के क्या उपाय होने चाहिए? ऐसे प्रश्नों को केवल उत्कृष्ट सामाजिक चिन्तन, दर्शन एवं साहित्य ही समझता और हल करता है। जिस पर कोई सभ्यता टिकती, सुरक्षित रहती है।

इस पृष्ठभूमि में उस घातक प्रवृत्ति पर विचार करना चाहिए, जो केवल रोजगार, धन कमाने की योग्यता को ही 'शिक्षा' का उद्देश्य बना चुकी है। हमें चिन्तक, दार्शनिक, द्रष्टा भी चाहिए। जबकि भारत के युवा मुख्यतः तकनीकी, मशीनी, प्रशासनिक कार्य करनेवाले, प्रबन्धक आदि भर बन रहे हैं। चाहे उन्हें कितनी ही अच्छी आय हो, वे अपने ही देश, समाज के वर्तमान और भविष्य के बारे में सोचने-विचारने में उदासीन या अयोग्य हैं, हो रहे हैं। स्वयं अपने अस्तित्व, जीवन-मूल्य और भूमिका के बारे में वे कुछ ढंग का सोच-विचार नहीं कर सकेंगे। जिन्हें हमारे शास्त्रों में संज्ञा दी गई है—'मनुष्य रूपेण मृगाः चरन्ति'।

कभी विश्वविद्यालय से निकले स्नातक अपने नाम के साथ बी.ए., लगाकर गौरवान्वित महसूस करते थे। अब उसकी कोई पूछ नहीं रह गई है। उससे अब सीधे कोई पद, मान, नौकरी आदि भी नहीं मिलती, जो पहले मिलती थी। 'शिक्षा को रोजगार से जोड़ो' के गलत नारे ने समय के साथ शिक्षा को मात्र रोजगार ट्रेनिंग में बदल दिया। इसीलिए नए विश्वविद्यालयों ने विश्वविद्यालय शब्द का अर्थ ही खो दिया। सब अधिकांशतः रोजगारी प्रशिक्षण दे रहे हैं, जिनका सही नाम, 'पोलिटेक्निक' होता। चारों तरफ विश्वविद्यालय या इन्स्टीच्यूट के नाम पर केवल उसी तरह के प्रशिक्षण केन्द्र बन, बढ़ रहे हैं।

किन्तु सोचना चाहिए कि यदि निर्जीव मशीनों, ऑफिस, कारोबार आदि चलाने के लिए व्यवस्थित प्रशिक्षण जरूरी है, तब देश, समाज और अपने जीवन को समुचित रूप से चलाने के लिए कितने दुरूह शिक्षण की आवश्यकता है? दुनिया के विविध हिस्सों में राजनीतिक समस्याएँ, झगड़े, युद्ध, आतंकवाद, आदि इसके उदाहरण हैं। न केवल साइन्स और तकनीक, बल्कि धन, बुद्धि, सदिच्छा, कूटनीति आदि मिलकर भी तिब्बत, फिलीस्तीन, जिहादी आतंकवाद, नशीली दवाओं का प्रसार, पर्यावरण नाश, गरीबी-अमीरी से अलग पनपती अमानवीयता, घृणित अपराध, अनाचार आदि का समाधान नहीं ढूँढ़ पाए हैं। इन समस्याओं के लिए भी सुयोग्य लोगों द्वारा व्यवस्थित चिन्तन-मनन व्यवस्था होनी चाहिए, जिसके बिना आत्म-रक्षा तक के लिए नीति-निर्माण असम्भव है। हमारे विश्वविद्यालयों की समीक्षा इस दृष्टि से भी होनी चाहिए।

सामाजिक समस्याओं की मसझ और समाधान के लिए बहुत गहरे प्रशिक्षण, बल्कि आत्म-प्रशिक्षण की आवश्यकता है। यहाँ शिकागो विश्वविद्यालय के प्रमुख रहे रॉवर्ट हचिन्स की टिप्पणी स्मरणीय है, "मैंने कई खगोलशास्त्रियों का नाम सुना है जो

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सोलह वर्ष की आयु से पहले ही अन्तराष्ट्रीय विशिष्ट पत्रिकाओं में शोध-पत्र लिखते रहे हैं। किन्तु मैंने किसी ऐसे बच्चे के बारे में नहीं सुना जो सामाजिक संगठन और मनुष्य के भ़वितव्य के बारे में कोई उपयोगी बात कह सका हो।" यह मानवीय प्रश्नों की अधिक जटिलता का संकेत है। किन्तु हमारे देश में ऐसे प्रश्न ही शिक्षा और शोध की दृष्टि से उपेक्षित छूट गए हैं।

उच्च शिक्षा की अस्त-व्यस्त स्थिति पर विचार करते हुए दो कारक अलग से विचारणीय हैं। पहला, शिक्षा में अंग्रेजी के बढ़ते वर्चस्व; तथा दूसरे, राजनीतिक विचारधाराओं के हानिकारक दबदबे के परिणाम।

यहाँ विचार-विमर्श और नीति-निर्माण में अंग्रेजी वर्चस्व से कर्ता वर्ग आम जन-गण से कटता गया है। वह अब अपनी ही संकीर्ण दुनिया में रहता है, और आपसी, औपचारिक आदान-प्रदान से आगे नहीं देखता। उसमें दर्प, अहंकार, स्वार्थ भी इस कारण बढ़ गया है। इसीलिए वह अब भारतीय भाषाओं में स्तरीय पुस्तकों तथा पाठ्य-सामग्री की चिन्ता भी नहीं करता। यह घोर अवनति है, क्योंकि किसी सभ्य देश में यह स्थिति नहीं है। स्वतन्त्रता पूर्व भारत में तथा स्वतन्त्रा के आरम्भिक दशकों में भी इस बिन्दु पर हमारी स्थिति बेहतर थी।

इतिहास, राजनीति, समाजशास्त्र, मनोविज्ञान, अर्थशास्त्र तथा दर्शन में जो अनगिनत अच्छी, आधुनिक, पुस्तकें 1960 के दशक तक हिन्दी में प्रकाशित हुई थीं, अब उनमें अधिकांश का लोप हो चुका है। उनमें कई विदेशी विद्वानों की विख्यात पुस्तकें भी थीं, जिनका बड़े श्रम से अच्छे जानकारों ने अनुवाद किया था। अब वे पुस्तकें बाजार में तो क्या, कई तो पुस्तकालयों तक में उपलब्ध नहीं हैं। यह अत्यन्त दुःखद परिदृश्य है, जो मात्र अंग्रेजी दबाव का फल है। एक उदाहरण भी, कि किस तरह भारत में अंग्रेजी ज्ञान नहीं, अज्ञान को बढ़ावा दे रही है। भारतीय भाषाओं में स्कूली शिक्षा और उच्च-शिक्षा, दोनों के लिए उत्कृष्ट पुस्तकें होना, न होना महत्त्वहीन हो गया है। हर कहीं, जैसे-तैसे कुछ भी नोट, हेल्प-बुक जैसी परीक्षोपयोगी पुस्तकें भर बाजार में ला देने का चलन बन गया है। यह हमारे आम नौनिहालों के लिए कैसी घातक स्थिति है! इसे समझनेवाले भी दुर्लभ हो चले हैं।

इसी बीच, समाज ज्ञान और मानविकी विषय को राजनीति के औजार के रूप में भी इस्तेमाल करने की प्रवृत्ति खूब बढ़ी। गुणवत्ता शिक्षण, लेखन, शोध से प्रोत्साहित करने के बदले विशेष राजनीतिक आग्रहों को पुष्ट, प्रचारित करने का काम सर्वप्रमुख हो चुका है। इसने अकादमिक संस्थानों में राजनीतिक-वैचारिक गिरोहबन्दी को प्रश्रय दिया। फलतः सामाजिक विचार-विमर्श, अध्ययन-अध्यापन-लेखन और शोध में वास्तविक प्रश्न पूरी तरह किनारे कर संकीर्ण, मताग्रही बिन्दु महत्त्वपूर्ण बन गए। यह राष्ट्रीय स्तर पर हुआ, जिसका दुष्प्रभाव धीरे-धीरे आम शिक्षण-चिन्तन पर भी पड़ा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तदनुरूप 'वैज्ञानिक विचारधारा', 'प्रगतिवाद', 'सेक्यूलरवाद' आदि मताग्रहों ने खुले ज्ञान-चिन्तन के बदले इन पक्षधरताओं को केन्द्रीय महत्त्व दे डाला। वामपन्थी राजनीति ने विशेषरूप से अथक प्रयास, सक्रियता और समीकरणों के सहारे देश के सामाजिक-मानविकी अध्ययन को आमूल इन मताग्रहों के अधीन करने में भारी सफलता प्राप्त की। समय के साथ मताग्रहों की मात्रा बढ़ती गई : 'मल्टी' कल्चरिज्म', 'डाइवर्सिटी', 'जेंडर', 'दलित', 'मायनोरिटी', आदि दृष्टियों से ही हर विषय, घटना और समस्या को देखने, व्याख्यायित करने की जिद फैलाई गई। इस प्रकार, विश्वविद्यालयों में अनेक अध्ययन विषय ज्ञान के बदले ऐसे राजनीति-प्रेरित प्रचार को ही सामाजिक-मानविकी अध्ययन और विमर्श की संज्ञा दे बैठे हैं। यह इतने गहरे बैठ चुका है, कि इस पर ध्यान दिलाना भी गाली-गलौज आमन्त्रित करने के समान है! (इस का प्रमाण भी, कि राजनीतिक प्रचार ने किस तरह सहज ज्ञान-चर्चा को अपदस्थ कर दिया है।)

किन्तु मताग्रहों, राजनीतिक मतवादों का वर्चस्व शिक्षा के बाजारीकरण से प्रत्यक्ष तुलनीय है। बाजार के संचालक मनुष्य को उपभोक्ता मात्र समझते हैं। उसी तरह राजनीति-प्रेरित प्रोफसेर प्रचारक लोगों को मात्र वोटर, एक्टिविस्ट समझते हैं, जिनका 'उपयोग' किसी विचारधारा या राजनीति को मजबूत करने में किया जाना है। यह केवल कम्युनिस्ट या इस्लामी देशों में ही नहीं हुआ, जहाँ किसी 'सर्वोच्च' मतवाद के सामने मनुष्य के स्वविवेक को दोयम समझा जाता है। भारत में भी सामाजिक-मानविकी विषयों में विचारधारा विशेष का आग्रह उसी तरह जमा दिया गया है। विद्यार्थियों के स्वविवेक और चेतना को जाग्रत, विकसित करने के बदले बने-बनाए निष्कर्ष भरने और उन्हें दुहरानेवाला प्रचारक भर बनाने का सफल प्रयास किया गया है। विगत दशकों में हमारे विश्वविद्यालयों के इतिहास, राजनीति, अर्थशास्त्र और साहित्य विभागों के सम्पूर्ण कार्य की समीक्षा इस बिन्दु पर भी की जानी चाहिए।

कहने के लिए यह सब अच्छे लगते उद्देश्यों से किया गया, किन्तु विशेष मताग्रहों को विद्यार्थियों में भरने के लिए खुली गुटबाजी से लेकर बनाव-छिपाव, तथ्यों की काट-छाँट और निरे मिथ्याचार तक का भरपूर उपयोग किया गया। अर्थात् किसी मतवाद और राजनीति को पुष्ट करने के लिए सच्चाई और तथ्यों को तोड़ा-मरोड़ा गया। यह सब शिक्षार्थियों के सम्यक् बौद्धिक विकास के लिए घोर हानिकारक रहा है। यह लोकतन्त्र, सत्यनिष्ठा, नागरिक उत्तरदायित्व आदि दृष्टि से भी अनुचित है। हमारे असंख्य स्नातक और प्राध्यापक भी एजुकेटेड के बजाय मिसएजुकेटेड हैं।

विश्वविद्यालयों के पाठ्यक्रम, पाठ्य-सामग्री आदि को परखने से भी यह स्थिति दिखेगी। दो वर्ष पहले हमने दिल्ली विश्वविद्यालय में 'भारतीय संस्कृति' पर बी.ए. का पाठ्यक्रम और पाठ्य-सामग्री देखी थी, जो नितान्त विदेशी लगती थी। इसकी पाठ्य-सूची में कालिदास से लेकर रायकृष्ण दास तक नदारद थे, जबकि किन्हीं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चमैन, जॉनसन, आदि के कई पाठ थे! क्या कोई जर्मन या फ्रांसीसी विश्वविद्यालय पने में भी सोचेगा कि अपने विद्यार्थियों को अपनी ही संस्कृति के बारे में किन्हीं देशी लेखकों के लिखे पाठ पढ़ाए?

किंतु भारत के उच्च-शिक्षार्थी रामायण के बारे में भी मुख्यतः विदेशी लेखकों ी चीजें पढ़ते हैं। वह पाठ कैसे होते हैं, इसका उदाहरण प्रोफेसर वेंडी डोनीजर की र्चित पुस्तक है—'द हिन्दूज : एन अल्टरनेटिव हिस्ट्री' (2009)। इसमें हिन्दू आख्यानों ो 'वैकल्पिक' कामुक व्याख्या दी गई है। यह प्राचीन आख्यानों तक सीमित नहीं, ल्कि आज की राजनीति तक खींच लाया गया है। वेंडी के अनुसार, 'रामराज्य' का चार भारत को मुसलमानों और ईसाइयों से खाली कर हिन्दू राज्य बनाने की कल्पना , आदि। हमारे उच्च शिक्षार्थियों को ऐसा ही लेखक पढ़ाने की जिद फैलाई गई है। क्यूलरिज्म के नाम पर यह घोर राजनीति-प्रेरित और भारत-विरोधी पाठ्य-सामग्री है। रतीय प्रोफेसरों, नए शोधार्थियों को भी इसी तरह समझने, लिखने को प्रेरित किया ाता है।

उदाहरणार्थ, दिल्ली विश्वविद्यालय के अवकाशप्राप्त इतिहास के प्रोफेसर डी. न. झा ने अपनी पुस्तकें इसी अन्दाज में लिखी हैं। हिन्दू धर्म से लेकर हिन्दू समाज, तिहास पर छींटा-कशी के सिवाय उनके कथित इतिहास लेखन में कोई अन्य भाव हीं निकलता। उन जैसे इतिहासकार, राजनीतिशास्त्री हमारे केन्द्रीय विश्वविद्यालयों में र गए हैं। वे सभी तथ्यों पर अपनी मतवादी झक लादने में अधिक रुचि रखते हैं।

कई केन्द्रीय विश्वविद्यालयों में राजनीतिशास्त्र का पाठ्यक्रम आज भी वामपन्थी जनीति का पार्टी-स्कूल जैसा लगता है। उनमें कम्युनिज्म के बारे में गर्व-मिश्रित हानुभूति के साथ पढ़ाया जाता है। दशकों तक रूसी-चीनी कम्युनिज्म की भयावह मीषिका के जगजाहिर सम्पूर्ण इतिहास को छिपाकर उसे 'समाजवाद के प्रकार' के प में शासन-व्यवस्था की एक सहज, सामान्य पद्धति जैसा दिखाया जाता है, जिसमें ोई विशेष दोष नहीं था। बल्कि कई गुण थे, आदि। यह दो विषय के उदाहरण हैं। स्तुतः विश्वविद्यालयों के समाज विज्ञान और मानविकी अध्ययन ऐसी राजनीति-प्रेरित ानसिकता से पूर्णतः ग्रस्त और ध्वस्त किए जा चुके हैं।

समाज विज्ञान और मानविकी शिक्षा का यह घोर राजनीतिकरण, इसके प्रभाव और इससे मुक्ति पाना हमारी राष्ट्रीय चिन्ता का विषय होना चाहिए।

हाल के वर्षों में इतिहास, राजनीति और समाज विज्ञान सम्बन्धी पाठ्य-पुस्तकों र सभी विवादों का सार केवल एक बात में समाविष्ट है। वह यह कि शिक्षा का थ्य, नीति, पाठ्य-पुस्तकें, पाठ्य-चर्चा कौन तय करेंगे? इसका उत्तर पिछले पाँच शक से वामपन्थी प्रचारकों ने छल-प्रपंच और राजनीतिक समीकरणों की सहायता से थापित कर दिया है। इस स्थापित जबरदस्ती से यदि कोई मतभेद प्रकट करे, तो उसे हिन्दू-सम्प्रदायवादी' कहकर लांछित किया जाता है। इस प्रकार, गिने-चुने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राजनीतिक-वैचारिक कर्मियों ने देश में सामाजिक मानविकी शिक्षा निर्धारित करने का एकाधिकार प्राप्त कर लिया है।

किन्तु यह लोग, हमारे असंख्य अंग्रेजीदाँ सामाजिकी, मानविकी प्रोफेसर, कथित शिक्षा-शास्त्री अपने ही समाज से अजनबी हैं। वे न सामान्य विद्यार्थियों, शिक्षकों के लिए लिखते हैं, न उनसे जुड़ने-समझने की उनहें कोई चिन्ता है। ऐसे प्रोफेसर, बुद्धिजीवी जो लिखते-बोलते हैं, जान पड़ता है जैसे ये विदेशी लोग हों और किसी मूढ़ सभ्यता को कुछ काम लायक बनाने का प्रयास कर रहे हैं। हिन्दू समाज, धर्म से लेकर वेद, महाभारत, रामायण जैसे कालजयी ग्रंथों और राम, कृष्ण अथवा शिवाजी, गुरु गोविन्द सिंह के बारे में ऊल-जुलूल या अपमानजनक टिप्पिणयाँ एक विदेशी मानसिकता की ही व्युत्पत्तियाँ हैं।

ऐसे बुद्धिजीवियों का विरोध करनेवाले भी इस प्रवृत्ति का सम्पूर्णता में आकलन नहीं करते। स्वयं को हिन्दुओं का रक्षक कहनेवाले कई नेता, प्रवक्ता प्रायः इस या उस पुस्तक पर प्रतिबन्ध लगाने जैसी बचकानी माँगें करते रहते हैं। इस तरह, एक गम्भीर समस्या को फूहड़ दिशा देकर भटका डालते हैं। ऐसे 'शिक्षा बचाओ' रटनेवाले महानुभवों से भी बचने की जरूरत है। प्रायः वे एक राजनीतिक मतवाद के बदले दूसरा राजनीतिक मतवाद थोपने से अधिक किसी योग्य नहीं प्रतीत होते।

अतएव, भारत में विश्वविद्यालयों, तथा स्कूलों की भी, सम्पूर्ण शिक्षा को मानवीय संस्कृति, राष्ट्रीय हित और स्वतन्त्र दृष्टि से जाँचने-परखने की आवश्यकता है। इस कार्य को टालना हितकारी नहीं है। इसके लिए पहले देश में उपलब्ध सच्चे विद्वानों, चिन्तकों, शिक्षकों को ढूँढ़कर एकत्र करना चाहिए। अगला कदम उसके बाद ही उठाना श्रेयस्कर होगा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

क्या धर्म में आस्था के लिए चमत्कार आवश्यक है?

डॉ. महीप सिंह

इस संसार का चिंतन कितना भी वैज्ञानिक क्यों न हो जाए, चमत्कारों और करामातों से हमारा विश्वास कम नहीं होता। हमारे पास संतान का अभाव हो, धन की कमी हो, हमें कोई असाध्य रोग लग गया हो, या अन्य किसी प्रकार की व्याधि ने हमें घेर लिया हो, हमारा ध्यान किसी चमत्कार की ओर जाता है। हम समझते हैं कि किसी बाबा, संत, महात्मा, गुरु, औलिया के चमत्कारी प्रभाव से हमारा संकट देखते-देखते दूर हो जाएगा।

चमत्कार क्या है? कोई ऐसी बात या घटना, जो प्राकृतिक नियमों का भाग अथवा परिणाम न हो, जिसे तर्क द्वारा प्रमाणित न किया जा सके, जिसका आधार केवल अंध विश्वास होता है।

कुछ समय पूर्व मेरे पास हिंदी में एक पत्रिका आई 'यीशु पुकारता है।' इस पत्रिका में अनेक चामत्कारिक घटनाओं का उल्लेख है। एक लड़की जन्म से बहरी थी। वह ईसा मसीह की शरण में आई। उनकी कृपा से वह बोलने लग गई। एक लड़के को कुछ दिखाई नहीं देता था, ईसा की उस पर कृपा हुई और वह देखने लग गया। एक व्यक्ति गठिया से बुरी तरह पीड़ित था, वह चल फिर नहीं सकता था। ईसा के वरदान से वह दौड़ने लगा। इस प्रकार की अनेक चामत्कारिक घटनाओं का उल्लेख उस पत्रिका में है।

संसार का एक ऐसा कोई धर्म नहीं, जिसमें इस प्रकार के चमत्कारों की बात न कही गई हो। इस्लाम में भी बहुत सी करामातों की चर्चा होती है। ईद उल जुहा, जिसे आमतौर पर बकरीद कहा जाता है, में भेड़ों-बकरियों की कुर्बानी दी जाती है। इस प्रकार की कुर्बानी की इस्लाम में बड़ी मान्यता है। यह माना जाता है कि हज़रत

सम्पर्क : सी–1/407 पालमविहार, गुड़गाँव–122017, मो.–9313932888

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इब्राहीम ने अल्लाह को प्रसन्न करने के लिए अपने पुत्र इस्माइल की कुर्बानी देने का फैसला कर लिया। जब वे अपने पुत्र की गर्दन पर छुरी चलानेवाले ही थे कि गैब्रिअल नामक फरिश्ते ने इस्माइल को एक भेड़ में तब्दील कर दिया। इस प्रकार भेड़ की कुर्बानी हो गई, इस्माइल बच गया।

बड़े-बड़े औलियां और फक़ीरों की दरगाहों पर अगणित लोग जाकर चादर चढ़ाते हैं और दुआएँ माँगते हैं उनका विश्वास है कि ऐसे औलिए उनकी मुरादें पूरी कर सकते है। बादशाह अकबर का अजमेर शरीफ जाकर ख्वाजा मोइउद्दीन चिश्ती की दरगाह से अपने पुत्र सलीम की प्राप्ति की बात लोक प्रसिद्ध है। संतान की प्राप्ति के लिए आज भी हजारों लोग इस दरगाह की जियारत करते हैं। बहुत से मुसलमानों का यह विश्वास भी है कि कुरआन मजीद में अनेक ऐसी आयतें हैं, जिनको पढ़कर झाड़-फूँक करने से बड़े-बड़े रोग दूर हो जाते हैं।

इस्लाम में यह विश्वास है कि पैगंबरों को ईश्वरीय शक्ति प्राप्त होती है, जिससे वे किसी भी प्रकार का चमत्कार कर सकते हैं।

हिंदू धर्म की मान्यताएं तो चमत्कारों से भरी हुई हैं। वेदों और उपनिषदों में चमत्कारों का वर्णन नहीं मिलता। किंतु पुराणों में चमत्कारों का अभाव नहीं है। 'मार्कण्डेय पुराण' की 'दुर्गा सप्तशती' में काली द्वारा अनेक राक्षसों के वध में चमत्कार भरे हुए हैं। 'रामायण' और 'महाभारत' जैसे महाकाव्यों के मूल स्वरूप में चमत्कारों की अधिक चर्चा नहीं थी। किंतु बदलते स्वरूप में चमत्कारों का प्रवेश होता गया।

सिखों में करामात या चमत्कार को कहर (पीड़ा या दुख) कहा गया और चमत्कारों पर विश्वास न करने को कहा गया। गुरु तेग बहादुर को जब बंदी बनाकर दिल्ली लाया गया तो उनके सामने तीन बातें रखी गईं धर्म परिवर्तन कर लें, या कोई चमत्कार दिखाएँ या फिर मृत्युदंड स्वीकार करें। गुरु तेग बहादुर का उत्तर था—बलात धर्म परिवर्तन मुझे स्वीकार नहीं है। चमत्कार दिखाना प्रकृति के नियम में बाधा डालना है। तीसरी बात, मृत्युदंड मुझे स्वीकार है।

सिख चिंतन चमत्कार के विरुद्ध है, फिर भी असख्य चमत्कार भरी कथाएँ सिखों में प्रचलित हैं। गुरु नानक देव की जन्म साखियाँ उनसे संबंधित कितने ही चमत्कारों से भरी हुई हैं।

प्रकृति के अपने कुछ नियम हैं। अग्नि का धर्म है जलना। कोई भी व्यक्ति या वस्तु जब आग में डाली जाएगी तो वह अवश्य जलेगी, बशर्ते उसे किसी ऐसे रसायन युक्त वस्त्र से न लपेटा गया हो, जिस पर आग का प्रभाव नहीं होता हो। इसी प्रकार जल का अपना धर्म है, ऊँचाई और नीचाई का अपना धर्म है।

बहुत-सी अलौकिक समझी जानेवाली चीजों को विज्ञान ने लौकिक सिद्ध कर दिया है। ज्वाला देवी से निंरतर निकलनेवाली अग्नि को सैकड़ों वर्षों तक अलौकिक समझा जाता रहा था। वैज्ञानिकों ने खोज की तो पता लगा कि उसके नीचे गंधक है, जो एक प्रकिया से निंरतर जलती रहती है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अलौकिकता या चमत्कार व्यक्ति को दुर्बल बनाते हैं। अपने सभी कष्टों और संकटों में वह सोचने लगता है कि कोई चमत्कार होगा और सब कुछ ठीक हो जाएगा। जब महमूद गजनवी अपनी सेना लेकर भगवान सोमनाथ के मंदिर की ओर बढ़ रहा था तो मंदिर के बहुत से पुजारियों को यह विश्वास था कि एक चमत्कार होगा, शिव अपना तीसरा नेत्र खोलेंगे और आक्रमणकारी यवन अपनी सेना सहित भस्म हो जाएँगे। किंतु उस समय हुआ क्या था, हम सभी जानते हैं। यवन शिवलिंग को भंग करके और अपार धन राशि लूटकर गजनी वापस लौट गया था।

चमत्कारों की कथाएँ बहुत विचित्र भी हैं और चमत्कृत करनेवाली भी। संसार के अनेक धर्मों और संप्रदायों मे यह विश्वास है कि उनका देव पुरुष अथवा प्रवर्तक उस प्रक्रिया से जन्म लेकर धरती पर अवतरित नहीं हुआ, जैसे मनुष्य का जन्म होता है। वह एक देव पुरुष के रूप में संसार के प्राणियों का कल्याण करने के लिए सीधा धरती पर आया। ईसा मसीह और मदर मेरी की कथा ऐसी ही कही जाती है। संत कबीर, दादू दयाल और स्वामी रामकृष्ण परमंहस के अधिसंख्य अनुयायी भी ऐसा ही मानते हैं।

इसी प्रकार अनेक गुरुओं-संतों-महात्माओं के देहावसान को लेकर ऐसी कथाएँ प्रचलित हैं। उनका किसी प्रकार का सांसारिक अंतिम संस्कार नहीं हुआ, वे सशरीर स्वर्गारोहण कर गए।

चमत्कारपूर्ण घटनाओं में भी काफी होड़ है। किसी धर्म या संप्रदाय का प्रवर्तक चाहे अपने नाम के साथ चमत्कारों को न जोड़ना चाहता हो, उसके अनुयायी ऐसी बातें उसके साथ अवश्य जोड़ देते हैं। अनुयायियों को लगता है कि यदि अमुक धर्म अथवा संप्रदाय का प्रवर्तक चमत्कार कर सकता है तो मेरा क्यों नहीं? इस कारण भी अनेक चामत्कारिक घटनाएँ उनके नाम के साथ जुड़ जाती हैं।

अपने देश में इस समय ऐसे बाबाओं, संतों और औलियों की बाढ़ आई हुई है, जो यह दावा करते हैं कि उनके पास सभी प्रकार की सिद्धियाँ हैं और वे पलक झपकते ही व्यक्ति की सभी समस्याओं का निदान निकाल सकते हैं। ऐसे बाबा लोग आजकल अपनी अलौकिक शक्तियों का विज्ञापन भी बहुत करते हैं।

कुछ समय पूर्व मुझे पंजाब के एक डेरे में जाने का अवसर मिला था। चमत्कारी शक्तियों के लिए इस डेरे की बड़ी प्रसिद्धि है। प्रति वर्ष होली के अवसर पर यहाँ लाख-दो लाख की भीड़ जमा होती है।

इस डेरे में दो प्रकार के लोग आते हैं। एक वे, जिन्हें यह लगता है कि किसी शत्रु ने उन पर जादू-टोना कर दिया है, जिसके कारण वे किसी बीमारी से पीड़ित हो गए हैं। दूसरे वे, जो निस्संतान होते है। जादू-टोने को दूर करने के लिए यहाँ कुछ लोग होते हैं, जिन्हें मसंद कहा जाता है। ये मसंद भोले-भाले लोगों को मानसिक दृष्टि से वशीभूत करते हैं, फिर उनके अंदर से भूत-प्रेत निकालने का दावा करते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सबसे बड़ा प्रपंच निस्संतानों को लेकर होता है। होली समारोह के अंतिम दिन यह घोषणा की जाती है कि यहाँ के बाबा जी ने इस वर्ष अमुक संख्या में लड़के और अमुक संख्या में लड़कियों को देने का निश्चय किया है। दिए जानेवाले बच्चों में लड़कों की संख्या कम और लड़कियों की ज्यादा होती है। फिर यह घोषणा की जाती है कि जिन्हें लड़का चाहिए वे इतना धन (कुछ धन राशि) डेरे के मुख्य प्रबंधक के पास जमा करवाकर अपने नाम की अरदास करवा लें। जिन्हें लड़की चाहिए, वे इतना धन (उससे कम धन राशि) जमा करके अपने नाम की अरदास करवा लें।

यहाँ के बाबा जी अपने पास अलौकिक शक्ति होने का दावा करते हैं और इस प्रकार लड़के और लड़कियों के बेचने का व्यवसाय करते हैं। ऐसे बाबाओं की इस देश में कमी नहीं है। चमत्कार और अलौकिकता के नाम पर इस देश में क्या कुछ नहीं होता?

दक्षिण भारत के एक बाबा चमत्कार प्रदर्शन के लिए बहुत प्रसिद्ध रहे हैं। उनकी लाकेप्रियता भी अद्‌भुत थी। बहुत से पढ़े-लिखे लोग उनके शिष्य थे। कहा जाता है कि वे अपने लंबे चोंगे में करेंसी नोटों की गड्डियाँ निकाल देते थे, जिसे घड़ी चाहिए उस कीमती सोने की घड़ी दे देते थे, जिसे अपनी भभूति देते थे वह मालामाल हो जाता था।

कई वर्ष पहले की बात है। दक्षिण के ही एक वैज्ञानिक डॉ. कयूर ने उन्हें चुनौती दी थी कि वे उनके सम्मुख कोई चमत्कार करके दिखाएँ, वे बाबा को एक लाख रुपये नकद देंगे। अब वह बाबा संसार में नही हैं, किंतु लोगों के अंधविश्वास के सहारे उसने जो अकूत धनराशि एकत्र की थी, उसका भेद उसकी मृत्यु के बाद उजागर हुआ।

किसी भी प्रकार का चमत्कार अनैसर्गिक है और अवैज्ञानिक है। सबसे बड़ा चमत्कार तो मनुष्य स्वयं है। मनुष्य के अनवरत श्रम ने संसार का भूगोल कितना व्यापक बना दिया। उसका द्रुतगति से आकाश में उड़ना और संचार माध्यमों से संसार के किसी भी भाग में बैठे हुए व्यक्ति से प्रत्यक्ष बातचीत करना क्या किसी चमत्कार से कम है।

मनुष्य एक दुर्बल प्राणी है। वह अनेक प्रकार के संकटों से घिरा रहता है। धर्म और ईश्वर में आस्था उसे बल प्रदान करती है। किंतु चमत्कार का ढोंग करनेवाले कुछ स्वार्थी लोग मनुष्य की दुर्बलता और सीमाओं का लाभ उठाते हुए उन्हें अपने मोहपाश में जकड़कर लाभ उठाते हैं। धर्म का चमत्कार से कोई सीधा संबंध नहीं है। धर्म व्यक्ति को सबल बनता है, जबकि चमत्कार उसे दुर्बल बनाते हैं। जैसे-जैसे मनुष्य में अपनी शक्ति अपनी योग्यता और अपनी सक्रियता में विश्वास बढ़ेगा, वह तथाकथित चमत्कारी बाबाओं, ज्योतिषियों और तांत्रिकों के माया-जाल से मुक्ति प्राप्त करता जाएगा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रमेशचन्द्र शाह : बहुवचनी सृजनात्मकता के शीर्षस्थ साधक

डॉ. छबिल कुमार मेहेर*

'साहित्य के सवालों को शाह साहित्य में उगाकर साहित्य में ही नहीं काट लेते हैं। उनके लिए ये सवाल मानव-संस्कृति के भी सवाल हैं। शाह अपने साहित्य-विमर्श में किसी रचना का तार छूते हैं और उससे उत्पन्न झंकृति मानव-नियति और मानव-अस्तित्व के क्षितिजों-सीमान्तों तक एक सघन और सजीव स्पर्श की-सी थरथराहट लिये दौड़ जाती है। उनका साहित्य चिन्तन इतिहास, संस्कृति और परम्परा का एक भरा-पूरा आर्केस्ट्रा है। सिर्फ साहित्य या कला की दुबली, एकल तान नहीं... शाह ने अपना साहित्य-विवेक संस्कृति-मन्थन की अपेक्षाकृत गहन-जटिल किन्तु अनिवार्य प्रक्रिया में से गुजरकर अर्जित किया है। यह प्रक्रिया अभी खत्म नहीं हुई है। इसलिए उस विवेक में विचार-संवेदना की नयी-नयी क्यारियाँ निकलती जाती हैं, भाषा-व्यंजना के नये-नये कल्ले फूटते जाते हैं। तथ्य को तत्त्व से पकड़ने और तत्त्व में बदल डालने की उस प्रक्रिया के चलते... यह विवेक एक कसावट लिये हुए हैं, एक तनाव लिये हुए है।"—**मलयज**

"रमेशचन्द्र शाह हमारी पीढ़ी के उन विरले लेखकों-विचारकों में हैं जो साहित्य को अन्य अनुशासनों का 'गरीब बिरादर' नहीं बल्कि भोजराज के शब्दों में 'सभी प्रकार की विद्यारूपी परिषदों का सदस्य' मानते हुए उसकी स्वतन्त्र हैसियत को प्रतिष्ठित करते हैं। और शायद यही कारण है कि उनकी आलोचना जीवन के दिक्काल में सम्पूर्ण विस्तार और उसकी समकालीन अभिव्यक्ति को टटोलती हुई कुछ ऐसे प्रश्न उठाती है जिनके उत्तर साहित्य और केवल साहित्य में ही मिल सकते हैं। इस प्रकार शाह की आलोचना, जीवन और साहित्य के जटिल अन्तःसम्बन्धों और

* संपर्क : सी—100, विश्वविद्यालय परिसर, डॉक्टर हरीसिंह गौर विश्वविद्यालय, सागर, मध्यप्रदेश—470003, मो. 08989154228

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साहित्य की अपनी विशिष्टता को एक साथ रेखांकित करती है।"—नन्दकिशोर आचार्य

1. बहुमुखी सृजन सरोकार

पिछले पाँच दशकों से साहित्य की समस्त विधाओं में लेखनी चलाकर उन्हें उत्कर्ष तक पहुँचाने वाले शीर्षस्थ साधक सर्जक, संस्कृति चिन्तक, तत्त्वान्वेषी विचारक हैं—रमेशचन्द्र शाह। वे हमारे समय के अहम् एवं अद्वितीय सांस्कृतिक मूल्यान्वेषी साहित्यकार और स्वाधीनता-स्वराज-स्वायत्तता के स्वतन्त्रचेता आलोचक हैं। परन्तु इतना भर उनके चेतना-सम्पन्न गम्भीर व्यक्तित्व और बहुमुखी सृजन सरोकार का परिचय नहीं है। वैसे शाह साहब के बारे में कुछ भी कहना या लिखना इस लिहाज से खतरे से खाली नहीं कि उनके व्यक्तित्व एवं कृतित्व का सम्यक मूल्यांकन एक गम्भीर साधक विवेक, विशद् अध्ययन और गहन चिन्तन-मनन की माँग करता है। बहरहाल उनके लेखन, चाहे आलोचना हो या निबन्ध, कथा-कहानी हो या कविता, सबमें उनके चिन्तन, विद्वत्ता, सुदीर्घ जीवनानुभव और विशद व बहुमुखी अध्ययन को आसानी से रेखांकित किया जा सकता है। उनकी सशक्त सर्जनात्मक उपस्थिति हमारी नयी पीढ़ी के लिए ही नहीं, समकालीन सृजन-आलोचना एवं हिन्दी साहित्य के लिए भी गौरव की बात है। संवादहीनता, मौलिकता के क्षरण तथा गुलाम-मानसिकता के मौजूदा दौर में उनकी संवेदनात्मक चिन्ता बहुत ही प्रासंगिक है और हमारी पीढ़ी के लिए प्रेरक-संजीवनी। वैसे शाह जी के सृजन का केन्द्रीय तत्त्व है 'स्वाधीनता'। जड़ता और पराधीनता से मुक्ति। व्यक्ति की मूल सत्ता स्वीकारते हुए वे उसके विवेक और स्वतन्त्रता को जगाना चाहते हैं। प्रो. कृष्णदत्त पालीवाल जी ने ठीक ही लक्ष्य किया था : 'शाह जी की बुनियादी चिन्ता वैचारिक स्वराज या स्वाधीनता से जुड़ी है।' अंग्रेजी के गहरे अध्येता एवं प्राध्यापक रह चुके शाह जी का देशज सर्जनात्मक मानस शुरू से ही हिन्दी की ओर झुका हुआ है। प्रख्यात ललित निबन्धकार पण्डित विद्यानिवास मिश्र जी ने शाह जी की प्रशंसा में कहा भी था : "वे अंग्रेजी के अध्येता होने के साथ-साथ अध्ययन काल से ही हिन्दी साहित्य में डूबे रहे।" उनका संवेदनशील कोमल-विदग्ध मन कबीर, निराला, प्रसाद, प्रेमचन्द, अज्ञेय, निर्मल वर्मा, रवीन्द्र, कालिदास, दॉस्ताएव्स्की, वर्जीनिया वुल्फ़, टी.एस.इलियट, येट्स जैसे लेखकों के सृजन में रमता, डूबता-उतराता है। दिलचस्प बात यह है कि साहित्य की हर विधा को छूने वाले शाह जी खुद को 'कविता' के ज्यादा करीब पाते हैं। इसका कारण उल्लेख करते हुए उन्होंने 'मेरे साक्षात्कार' में कहा है : "मुझे सबसे ज्यादा आनन्द कविता में आता है। बुनियादी तौर पर कवि की संवेदना है : अत्यधिक संवेदनशीलता, सौन्दर्य के प्रति लगाव एवं भाषा, शब्द की ध्वनियों के प्रति आकर्षण। भाषा की अपनी लय होती है, संगीत होता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दरअसल, अपने आस-पास की लय मिलाना कवि का स्वभाव होता है, इसलिए कवि हूँ।" 'आधुनिक कवि' की भूमिका में वे इस बात को स्पष्ट करते हुए कहते हैं : 'मैं तो अपनी समझ से मेरी जीवनानुभूति में ही जो कविता थी, उसी को उकसाने और तीव्रतर-प्रगाढ़तर करने के लिए शब्दों के पास जाता था—अपने जिये को कविता में सघन-संश्लिष्ट ढंग से जीने के लिए।' ऐसे में पाठक के मन में सवाल उठना स्वाभाविक है कि फिर वे (शाह जी) कथा-कहानी की ओर क्यों मुड़े? शाह जी कहते हैं : "मानव-चरित्र, सामाजिक सम्बन्ध के अनुभव, यह सब कहानी की माँग करते हैं और आज का समय गद्य का समय ज्यादा है। अपने लोगों के मन को समझने के लिए उन्हीं से प्रेरणा पाकर कहानियाँ लिखीं। कहानी हमारी जातीय विधा है। खास अपनी खोज है। कहानी का कलेवर छोटा होता है, इसलिए उपन्यास भी लिखे। पुराने जमाने में जो काम महाकाव्य करते थे, आज उपन्यास कर रहे हैं।" इससे पहले कि हम उनसे पूछें 'फिर निबन्ध, आलोचना क्यों?' वे स्वयं ही अपनी ओर से स्पष्ट कर देते हैं— "गद्य ही कवि का निकष होता है, इसलिए कवित्व की जरूरत और जिम्मेदारी के बोध से गद्य लिखा। निबन्ध गद्य की कसौटी है, इसलिए निबन्ध लिखा। जीवन-मूल्यों और साहित्य-मूल्यों की रक्षा के लिए आलोचना लिखी।" स्पष्ट है कि अलग-अलग अभिव्यक्ति की माँग और जरूरत के अनुरूप शाह जी ने अलग-अलग विधा को चुना। उनकी स्वीकारोक्ति है कि कोई विधा किसी दूसरी विधा का विकल्प नहीं होता : 'जो बात मैंने निबन्धों में कही है, यह मैं कविता में नहीं कह सकता था—वह एक अलग जरूरत, अलग चुनौती में से आती है। जो उपन्यास-कहानी में अभिव्यक्त होता है, वह निबन्ध से नहीं मिल सकता था। इसी तरह आलोचना और चिन्तन की भी अपनी एक स्वायत्त प्रेरणा और हैसियत होती है।'

अपने आस-पास की जिन्दगी, अनुभव प्रकृति और मानव-चरित्र को अपने लेखन के प्रेरणा-स्रोत स्वीकारने वाले शाह जी ने जिस विधा को भी छूआ उसे आसमान तक पहुँचाया। अपनी रचना-प्रक्रिया को स्पष्ट करते हुए उन्होंने लिखा है : "मैंने जब भी, जिस भी विधा में लिखा है, भरसक पूरे मन और पूरे आत्मदान के साथ लिखा है।... मैं धीरे-धीरे ही अपने को पहचान सका हूँ। धीमी चाल और धीमी लय में आगे बढ़ता रहा हूँ। कुछ लोग बहुत जल्दी सयाने हो जाते हैं। मैं शायद उनमें नहीं हूँ। मुझे काफी समय लगता है, अपने स्वभाव-स्वधर्म को पहचानने-निबाहने में। संयोग देखिये कि मेरे पहले कविता-संग्रह का नाम भी 'कछुए की पीठ पर' ही है।

2. आलोचना का बुद्धिवैभव

शाह जी के अनुसार आलोचना का पक्ष सार्वभौम बुद्धिवैभव का पक्ष है। वैचारिक स्वराज और सांस्कृतिक आत्मविश्वास का पक्ष है। उनके शब्दों में, आलोचना स्वैरिणी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नहीं, बल्कि स्वाधीन बुद्धि की उत्तरदायी गतिविधि है। आलोचना को लेकर शाह जी कितना सजग हैं, उनके इस कथन से स्पष्ट हो जाता है : 'हमारी आलोचना खोज की प्रेरणा से वंचित हो जाय, यह तो समझ में आ सकता है—क्योंकि रचनात्मकता साहित्य की तरह ही आलोचना में भी पस्ती के दौर कभी-कभार आते ही हैं। चिन्ता तब होती है जब आलोचना जीवन और साहित्य दोनों की धुरी से छिटककर स्वयं आलोचनाजीवी बनने लगे... ।' स्पष्ट है कि समाज-साहित्य की सापेक्षता में ही आलोचना की सार्थकता है। उनकी प्रसिद्ध पुस्तक 'आलोचना का पक्ष', 'वागर्थ', 'भूलने के विरुद्ध', 'छायावाद की प्रासंगिकता' आदि में उन्होंने अपने समकालीन सर्जकों एवं सृजन पर गम्भीर चिन्तन-विवेचन किया है। शाह जी ने सैद्धान्तिक आलोचना के बदले कृति-व्यक्ति केन्द्रित आलोचना अधिक लिखी है। इस क्रम में आलोचक विश्वनाथ प्रसाद तिवारी जी का विचार उल्लेखनीय है : 'रमेशचन्द्र शाह ने उन्हीं रचनाकारों पर लिखा है जिनकी रचनाओं से उनके आलोचक मन का एक आत्मीय रिश्ता कायम हो सकता है, या कहें कि जो उनके भाव और विचार-लोक के निकट पड़ते हैं। किसी को उखाड़ने-पछाड़ने के लिए या किसी से अपना हिसाब-किताब चुकता करने के लिए शाह ने कुछ नहीं लिखा है। इस अर्थ में उनकी आलोचना वाद-विवाद (पोलेमिक्स) पैदा करने वाली आलोचना नहीं है और न ही वर्ग-भेद पैदा करने वाली... उनके आलोचना के बीज शब्द हैं—स्वाधीनता, बौद्धिक स्वराज, आत्मालोचन, जातीय स्मृति, परम्परा, सृजनशीलता, स्वधर्म और सांस्कृतिक आत्मविश्वास।' अज्ञेय, निर्मल वर्मा, विजयदेव नारायण साही, मलयज, अशोक वाजपेयी जैसे अपने समकालीनों के प्रति वे बहुत ज्यादा संवादी रहे हैं। इन्हीं सन्तुलित संवाद, वैचारिक टकराहट से महत्त्वपूर्ण सवाल और सार्थक उत्तर-प्रत्युत्तर उभरकर सामने आते हैं। शाह जी की यह मान्यता है कि साहित्य की दुनिया हमारे व्यापक सांस्कृतिक दृश्य का ही एक हिस्सा—गोकि सबसे अन्दरूनी और सबसे गझिन बुनावटवाला हिस्सा है। वे एक गम्भीर अध्येता हैं, और तदनुरूप एक गम्भीर लेखक, विचारक और आलोचक। उनकी आलोचना से गुजरना एक तरह से विश्व-साहित्य की परिक्रमा करने जैसा है। हम उनकी आलोचना को कुर्सी पर आराम से बैठकर, तकिये पर शरीर को टिकाकर रिलैक्स्ड मुद्रा में नहीं पढ़ सकते। उनकी आलोचना को पढ़ने और समझने के लिए हमें आत्मचेतस और जागरूक होना पड़ेगा। ऐसे में सिर्फ हिन्दी भाषा तक अपने अध्ययन को सीमित रखने वाले पाठकों, समीक्षकों को शाह जी की आलोचना प्रथम दृष्ट्या गम्भीर, बौद्धिक और कुछ हद तक बोझिल लगे तो आश्चर्य नहीं। जैसे कि मधुरेश जी ने 'हिन्दी आलोचना के विकास' में लिखा है : 'आलोचना में चिन्तन के नाम पर वे बहुत दुरूह, असम्प्रेषणीय और उलझी हुई भाषा लिखते हैं— जैसे भाषा की जलेबियाँ तल रहे हों। निर्मल वर्मा की पुस्तकों पर लिखे गये उनके लम्बे-लम्बे निबन्ध हों, या फिर मलयज और श्रीकान्त वर्मा की कविताओं पर—सरल और सहज अभिव्यक्ति शाह की प्रकृति

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नहीं है। चाहे विनोद कुमार शुक्ल के उपन्यास हों या कुँवर नारायण की 'आकारों के आस-पास' की बेहद असम्प्रेषणीय और अमूर्त कहानियाँ, इन्हें 'वैचारिक एडवेंचर' के रूप में लेकर यान्त्रिक यथार्थवाद के विरुद्ध इन्हें 'आधुनिक भारतीय मानस के गहन अन्तर्द्वन्द्व' के रूप में रखकर इनकी व्याख्या की कोशिश करते हैं—बहुत कुछ इन कहानियों की तरह ही दुरूह और दुर्बोध शैली में।' बहरहाल, मधुरेश जी का क्षेत्र कथा-समीक्षा है, आलोचना की आलोचना नहीं। सच तो यह है कि शाह जी की आलोचना पढ़ते हुए हम उन कृतियों-रचनाकारों के साथ एक आत्मीय सम्बन्ध अनुभव करने लगते हैं। इस क्रम में मैं प्रवर आलोचक नामवर सिंह जी को उद्धृत करना चाहूँगा। शाह जी को लिखे दिनांक 26.09.69 के पत्र में उन्होंने स्वीकार किया है : 'प्रसाद, निराला और पन्त की लहर-सम्बन्धी कविताओं का तुलनात्मक विश्लेषण आलोकप्रद है। प्रसाद की आरम्भिक कविताओं से जो उद्धरण आपने चुने हैं, उनमें वस्तुतः प्रसाद पुनर्जीवित हो उठते हैं। आपने इस निबन्ध के द्वारा समकालीन काव्य-प्रेमियों के लिए प्रसाद को सप्रसंग और सार्थक बनाया है। वस्तुतः इस निबन्ध से प्रसाद के पुनर्मूल्यांकन की सही शुरुआत होती है।' 'छायावाद की प्रासंगिकता' से गहरे प्रभावित प्रभाकर श्रोत्रिय जी ने यहाँ तक कहा है कि नन्ददुलारे वाजपेयी के बाद प्रसाद पर किया हुआ यह दूसरा मौलिक काम है। वाजपेयी जी ने प्रसाद को छायावादी जमीन पर एक खुली और साफ साहित्यिक दृष्टि से परखा था, जबकि शाह जी ने उनके अन्तःसौन्दर्य की भाषा की भीतरी तहें वर्तमान युग की प्रासंगिकता में बाँध दिया है।

आलोचना कितनी सन्दर्भवान, सर्जनात्मक और व्यावहारिक हो सकती है यह शाह जी के आलोचनात्मक-निबन्धों से गुजरते हुए सहज ही महसूस किया जा सकता है। नन्दकिशोर आचार्य जी के शब्दों में कहा जाये तो 'समकालीन परिदृश्य में, जहाँ आलोचना अधिकांशतः संकीर्ण मताग्रही तर्कों के पिष्टपेषण और साहित्य में से सर्जनात्मकता को ही खारिज कर देने की दुरभिसन्धि बनती जा रही है, रमेशचन्द्र शाह जी के निबन्ध हमें न केवल आलोचना-कर्म के प्रति पुनः आश्वस्त करते हैं बल्कि अपनी विचारोत्तेजक भाषा के जरिये पाठक को भी आमन्त्रित करते हैं कि इस 'सांस्कृतिक दलदल' को सुखाने के महाप्रयास में वह भी उनका सहभागी हो। शायद यही चीज है जो आलोचना को भी सृजन की हैसियत देती है।' वैसे भी शाह जी आलोचना की बुद्धि-ऊर्जा को कविता और कथा-साहित्य की बुद्धि-ऊर्जा से अलग और विशिष्ट नहीं मानते हैं। उनके लिए आलोचना और सृजन सहवर्ती और परस्पर पूरक गतिविधियाँ रही हैं। उनकी स्पष्ट स्वीकारोक्ति है : "मैं जब आलोचना लिखता हूँ तो उसके पीछे जो भाव ऊर्जा है वह मेरे कवि और कथाकार की भी तो है। मैंने अपनी आलोचना भाव-निरपेक्ष बुद्धि से नहीं लिखी है।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

3 कविता की जमीन

शाह जी का साहित्य अनुरागी जीवन संवेदन मूलतः एक कवि का ही संवेदन है। कविता के अध्ययन-मनन में उन्हें अपार सुख, शान्ति और रस मिलता है। वे भाषा के प्राथमिक संस्कार कविता में ही ढूँढ़ते हैं। इनके काव्य-संग्रहों में से 'प्यारे मुचकुन्द को', 'चाक पर', 'अनागरिक', 'कछुए की पीठ पर', 'हरिश्चन्द्र आओ', 'देखते हैं शब्द भी अपना समय' आदि पाठकों के बीच खासे चर्चित रहे। उनकी कविता अपनी प्रकृति में बहिर्मुखी न होकर अन्तर्मुखी है और अपने स्वभाव में ठोस न होकर तरल। शाह जी कविता को स्वतःस्फूर्त (Spontaneous Overflow) मानते हैं। उनके कथनानुसार : "यदि हमें पहले से ही पूरा-पूरा मालूम है कि हमें क्या करना है और कविता उसी का पद्य-लेखा है तो फिर कविता-कविता नहीं, महज एक उद्गार, एक अस्फालन है।"

इनकी कविताएँ अनुभव की ऊँचाई से निकलकर जीवन की ठोस समतल भूमि पर निर्मल जल की भाँति प्रवहमान हैं। इसमें तालाब का जड़त्व एवं सड़ान्ध नहीं, नदी की कल-कल बराबर सुनायी पड़ती है। इस बहते स्वच्छ पानी में हम अपनी प्रतिच्छवि तो देख ही सकते हैं, इसके अन्दर बह रहे सिकता कण, कंकड़, केकड़ा, मीन आदि की सन्तुलित पारिस्थितिकी (Balanced Ecology) से भी अभिभूत हो सकते हैं। सच्चे अर्थों में शाह जी की कविताएँ जीवन की मर्म-भरी कविताएँ हैं :

"एक गरीब मोहल्ला
सार्वजनिक नल के नीचे,
रात-भर ठिठुरते
खाली बरतन
हाँ, मैंने देखे हैं,
जाने कितने सूर्योदय
उनमें
डबडबाते।"

शाह जी जीवन की छोटी-छोटी चीजों को, मामूली-सी लगने वाली बातों को कविता में तब्दील कर देते हैं। 'आत्मकथ्य' में शाह जी ने लिखा है कि कविता की रचना-प्रक्रिया और जीवन-प्रक्रिया के बीच बड़ा गहरा सम्बन्ध है : "शायद इसीलिए कविता से मिलने वाला समाधान या प्रकाश जीवन की द्वन्द्वात्मक जटिलता से बहुत गहरे जूझते हुए पाया हुआ समाधान होता है। यह भी अनुभव से धीरे-धीरे ही समझ में आता है कि क्यों बौद्धिक स्पष्टता की तुलना में भाव-संवेदनात्मक परिपक्वता कहीं कठिनतर सिद्धि है जो दीर्घ साधना की माँग करती है।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

निर्मल वर्मा जी ने शाह जी की कविताओं को 'रसभरी, पकी, परिपक्व कविता' स्वीकारा था। परन्तु यह भी सच है कि इनकी कविताओं में एक तरह की बौद्धिकता है। बौद्धिकता इसलिए कि शाह जी अपने पाठक को अपने जितना ही, बल्कि अपने से ज्यादा समझदार मानते हैं। बावजूद इसके इसमें निहित लालित्य के कारण बौद्धिकता कोई बोझिल प्रभाव नहीं छोड़ती और दूसरे ही क्षण यह बौद्धिकता जीवन की सहजता में पर्यवसित हो जाती है :

"बहुत दिनों के बाद
लगी है आँख अचानक
तेरी
बहुत दिनों के बाद
हुई है साँस अधूरी
पूरी
सोयी रह माँ युगों-युगों तक
तू पृथ्वी-सी
रह न जाय डरता हूँ
फिर भी
तेरी नींद अधूरी।"

शाह जी की कविताओं में बुद्धि, विचार, अनुभूति और कल्पना की अद्भुत समानुपातिक अन्विति देखने को मिलती है। सुप्रसिद्ध कवि कुँवर नारायण जी ने शाह जी के काव्य-विवेक पर सटीक टिप्पणी की है : 'साधारणतः शाह की कविताओं में एक सहज और संश्लिष्ट जीवन-बोध है जो बौद्धिक और भावात्मक के बीच अनावश्यक विभाजन नहीं एक अन्तरंग जगह बनने का उपक्रम है।' शाह जी की विशिष्टता भी शायद यही है :

"क्या यह सम्भव है कि इसमें हीरा हो ?
वह ठठाकर हँस पड़ा और दूसरी जगह ले गया
जहाँ वैसी ही अनगिनत चट्टानें
चकनाचूर की जा रही थीं
एक अभेद्य कण की उम्मीद में।"

शाह जी के लिए कविता कौशल नहीं, प्रसव है। कविता के रूपात्मक विन्यास के बारे में उनका अभिमत उल्लेखनीय है : 'जिस मनःस्थिति में कविता का आरम्भ होता है, वह एक भाविक उद्वेग की मनःस्थिति होती है, जो भाषा और समाज के बृहत्तर अनुभव कोश से जुड़कर, वहीं से एक अपनी लयात्मक संगति और अर्थ भी योजना-रचना चाहती है। एक अराजक अनुभव जगत् से, तमाम तरह की विसंगतियों

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और विडम्बनाओं से जूझते उन्हीं के बीचोंबीच से पाया जाने वाला यह सन्तुलन, एक बार-बार कमाया जाने वाला सन्तुलन है। कविता करना, अपने अनुभव का अर्थोन्मेष पाना और रचना है। उसमें एक विन्यास, एक लयात्मक संगति का आश्वासन पाना है। दरअसल, हर कविता का प्रारम्भ ही एक लयात्मक शब्द-संगति से होता है। कविता पूरी होने का मतलब ही उस आरम्भिक उद्वेग से एक नियन्त्रित लय के जरिये उबर आना है।' मुझे यहाँ वरिष्ठ कवि-आलोचक अशोक वाजपेयी जी की टिप्पणी याद आ रही है : 'भाषा, चीजें, भू-दृश्य, आख्यान, छन्द-लय आदि सब घुल-मिलकर वह रसायन रचते हैं जो रमेशचन्द्र शाह की कविता है। उसकी चिन्ताएँ भावप्रवण हैं पर निश्चय ही बौद्धिक और आध्यात्मिक भी। वह चीजों को उनकी निरपेक्ष अर्थमयता में देखने की बजाय हमारी आज की जिन्दगी और वैचारिक संघर्ष के प्रसंग में उनके गहरे आशय खोजने-देखने की चेष्टा करती है।' यही वजह है कि शाह जी की कविताओं से गुजरते हुए हिन्दी काव्य-परम्परा की समृद्ध रचनाशीलता एवं विराट कवि-अनुभवों से हम स्वतः ही जुड़ जाते हैं। प्रयाग शुक्ल जी के शब्दों में कहें तो : "यह अकारण नहीं है कि रमेश जी की कविता(एँ) पढ़ते हुए, मानो हम उनकी कविता के आस्वाद के साथ ही, हिन्दी की भाषा-परम्परा के भी कई कवियों और कई काव्य प्रविधियों-युक्तियों के आस्वाद के रचनाशील स्मरण से जुड़ जाते हैं। उनके पहिले कविता-संग्रह 'हरिश्चन्द्र आओ' की कविताएँ तो इस बात की गवाही देती ही हैं, बाद की भी प्रायः सभी कविताओं में हम किसी-न-किसी रूप में इस तथ्य को पढ़ सकते हैं। इसे मैं रमेश जी की कविता की एक शक्ति मानता हूँ कि कविताओं में आ गये कवि-अनुभवों के साथ ही हम अपने भीतर ऐसा भी बहुत कुछ जाग्रत होता हुआ पाते हैं, जिसका सीधा सम्बन्ध हमारी अपनी भाषा के इतिहास से है।" शाह जी ने हिन्दी के अलावा कुमाऊँनी में भी कविताएँ लिखी हैं। 'उकाव उलार' उनकी कुमाऊँनी कविताओं का संग्रह है।

4. कथा-आत्मकथा

रमेशचन्द्र शाह जी को शीर्षस्थ चिन्तक-आलोचक स्वीकारने वाले विद्वज्जन भी अक्सर उनके कथाकार पक्ष पर चुप्पी साध लेते हैं। जबकि वे जितने प्रखर-सुग्राही आलोचक है उतने ही मार्मिक-मौलिक किस्सागो। शाह जी आत्ममुग्धता के नहीं, आत्मविश्लेषण के कथाकार हैं। लिखना और पढ़ना शाह जी के लिए राहत-कार्य नहीं, आत्मज्ञान का एक साधन है। उन्होंने कोई भी रचना भावुक होकर नहीं लिखी। सृजन के आन्तरिक क्षण में भी उनका जागरूक मानस हमेशा क्रियाशील रहा है। चिन्तन, मन्थन और आत्मविश्लेषण उनकी सृजन-प्रक्रिया के अनिवार्य अंग रहें हैं। यही कारण है कि उनका अधिकतर कथा-साहित्य आत्मकथात्मक है। उनके उपन्यास 'गोबर गणेश', 'किस्सा गुलाम', 'पूर्वापर', 'आखिरी दिन', 'पुनर्वास', 'कंमबख्त इस मोड़ पर', 'सफेद

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परदे पर', 'आप कहीं नहीं रहते विभूति बाबू', और 'विनायक' बहुचर्चित रहे हैं। उनके कहानी-संग्रह 'मुहल्ले का रावण', 'मानपत्र', 'गेट कीपर', 'थियेटर', 'जंगल में आग' हिन्दी कहानी की अमूल्य निधि हैं। संग्रह के रूप में संकलित होने के पूर्व शाह जी की कहानियाँ नियमित रूप से 'समकालिन भारतीय साहित्य', 'सारिका', 'इण्डिया टुडे', 'जनसत्ता', 'नवभारत टाइम्स', 'हंस' तथा 'साप्ताहिक हिन्दुस्तान' में प्रकाशित होती रहीं। इनकी कथा-कहानियों में शहरी मध्यवर्ग की जिन्दगी धड़कती है। उनके पात्र एवं चरित्र इतने जीवन्त हैं कि वे हमारी जिन्दगी में सहज ही शामिल हो जाते हैं, चाहे वो रामरिख बाबू हो या कुन्दन, प्रो. दीनानाथ हो या विनायक। पुष्पपाल सिंह जी ने ठीक लक्ष्य किया था : "कहानीकार चाहे किसी विशिष्ट चरित्र का वर्णन करता है, चाहे किसी स्थिति विशेष का, उस सबसे हमारे समकालीन जीवन का बहुआयामी यथार्थ अपनी पूरी सच्चाई में अंकित हो सका है। कथ्य और भाषा में गहरी एन्द्रिकता और संवेदनशीलता है।" सच तो यह है कि शाह जी ने कहानी विधा को एक तरह से पुनराविष्कृत किया और उसके नितान्त मौलिक रूप को अर्जित कर कहानी की भीतरी संस्कृति को ही बदल दिया। यही कारण है कि शाह जी की कहानियाँ हमें देर तक बाँधे रखती हैं। महत्त्वपूर्ण यह कि शाह जी की कहानियों का स्वरूप समय और सत्य के अनुरूप बदलता रहा है। उनका कहना है कि हर दशक में कहानी और उपन्यास का स्वरूप बदलता है। ऐसे में हर उपन्यास-कहानी में हम एक नयी समस्या से जूझते हैं, नयी बाधाओं से पार पाते हैं, अभिव्यक्ति की एक नयी और अलग ही चुनौती का सामना करते हैं।

'गोबर गणेश' एक विशिष्ट औपन्यासिक कृति है जो मध्यवर्गीय आकांक्षाओं और सपनों के बनने और बिगड़ने की कहानी कहती है। गोपाल राय के अनुसार पूरा औपन्यासिक संसार एक पात्र 'विनायक' की चेतना में घटित होता है। यह उसके जिये हुए, भोगे हुए कल की गाथा है। इस कारण यह कथा एक मध्यवर्गीय परिवार की टूटन की कहानी तो बनती ही है, एक संवेदनशील व्यक्ति के जीवन-भोग और पीड़ा का दस्तावेज भी हो जाती है। 'किस्सा गुलाम' कुन्दन की कुण्ठा और विद्रोह को दर्ज करता है जबकि 'पूर्वापर' दो मित्रों के बचपन की कहानी सुनाता है। 'सफेद परदे पर' में शाह जी ने वृद्धावस्था के एकाकीपन और ऊब को बड़े ही दार्शनिक अन्दाज में अभिव्यक्त किया है जबकि 'कमबख्त इस मोड़ पर' में उन्होंने घनिष्ठ सम्बन्धों की जटिलताओं और उनकी विडम्बनाओं का गहन विश्लेषण किया है। 'आप कहीं नहीं रहते विभूति बाबू' एक प्रयोगशील उपन्यास है, जिसमें लेखक ने अपनी आत्मकथा को दर्ज किया है। 'विनायक' एक चरित्र प्रधान उपन्यास है जिसमें एक कलयुंगी चरित्र को पौराणिक एवं महाकाव्यात्मक परिप्रेक्ष्य में देखने की कोशिश की गयी है। जहाँ तक कथा-शिल्प का प्रश्न है शाह जी शिल्प के लिए शिल्प की तलाश नहीं करते। इसके विपरीत बदलते परिवेश, कोमल जीवनानुभूति और जटिल जगत् यथार्थ ही उनके

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
उपन्यास के रूप और विन्यास को तय करते हैं। शाह जी का कहना है : "शिल्प के लिए शिल्प में मुझे कभी कोई दिलचस्पी नहीं रही।... हर उपन्यास में आप एक नयी समस्या से जूझते हैं, नयी बाधाओं से पार पाते हैं, अभिव्यक्ति की एक नयी और अलग ही चुनौती का सामना करते हैं तो अलग शिल्प तो होगा ही।"

5. साहित्यिक विविधा

अपने समय के बुनियादी प्रश्नों से जुड़ते हुए रमेशचन्द्र शाह जी ने हिन्दी डायरी, निबन्ध और यात्रावृत्त आदि विधाओं में नये विषयों पर मौलिक चिन्तन किया है। शाह जी की डायरियाँ 'अकेला मेला', 'इस खिड़की से', 'आज और अभी', 'जंगल जुही'—इस बीच बहुत चर्चित हुई हैं। डायरी लेखन कितना सर्जनात्मक हो सकता है यह शाह साहब की डायरियों को पढ़कर सहज ही महसूस किया जा सकता है। आमतौर पर डायरी लेखन को दैनन्दिनी या 365 दिनों का रोजनामचा मान लिया जाता है। लेकिन रमेशचन्द्र शाह जी के सन्दर्भ में यह न तो रोजनामचा है और न ही दैनन्दिनी वाला औपाचारिक लेखन कर्म। उनके लिए डायरी लेखन गद्य विधा का उत्कृष्ट साहित्यिक रूप है। यही कारण है कि नामवर सिंह जी ने 'अकेला मेला' में संकलित डायरियों को 'साहित्यिक डायरी' कहा है। 'रचना के बदले', 'शैतान के बहाने', 'आड़ू का पेड़', 'शबद निरन्तर', 'हिन्दी की दुनिया में' उनकी प्रसिद्ध निबन्धात्मक पुस्तकें हैं।

हिन्दी सर्जकों में शायद शाह जी अकेले ऐसे हैं, जो रामायण, महाभारत, कुरान, बाइबिल पर समानाधिकार से सम्भाषण कर सकते हैं। उनके निबन्धों में वेद, पुराण, गीता, उपनिषद् आदि के अनेकानेक सन्दर्भ एवं प्रसंग अनायास जुड़ते जाते हैं, जिससे पाठक को विचारात्मक बौद्धिक बोझ का अहसास ही नहीं होता। भारतीयता के स्वर संचार में वे बार-बार रामकृष्ण, विवेकानन्द, गाँधी, अरविन्द, कुमारस्वामी दोहराते हैं। 'ब्रह्ममुहूर्त बनाम मार्निंग विज्डम' में उनकी इसी शुद्ध भारतीय शोधपरक दृष्टि को देखा जा सकता है : 'भारतीय साहित्य खासकर प्राचीन भारतीय साहित्य से गुजरते हुए क्या ऐसा नहीं लगता कि उसका ज्यादातर ब्रह्ममुहूर्त में ही रचा गया होगा। कम-से-कम प्रेरणा तो उसकी ब्रह्ममुहूर्त में ही मिली होगी। विश्व-साहित्य की भी छानबीन अगर इस गरज से की जाये कि उसमें सूर्योदय के, उषाकाल के बिम्ब कितने हैं और कहाँ-कहाँ आये हैं, तो मेरा ख्याल है—ख्याल क्या पक्का यकीन है कि इस मामले में अपना हिन्दुस्तान बाकी सारे मुल्कों को पछाड़ देगा।' शाह जी के निबन्धों को पढ़ते हुए बालकृष्ण भट्ट, प्रतापनारायण मिश्र, बालमुकुन्द गुप्त या हजारी प्रसाद द्विवेदी के फक्कड़पन, अल्हड़ मस्ती का सहज स्मरण होना स्वाभाविक तो है ही, साथ ही इन पर दॉस्ताएव्स्की, वर्जीनिया वुल्फ, टी.एस.इलियट, येट्स जैसे विदेशी साहित्यकारों को प्रभाव भी स्पष्ट रूप से लक्षित किया जा सकता है। कुल मिलाकर शाह जी के निबन्धों

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में भारतीय एवं पश्चिमी मनीषा के द्वन्द्व और उनके पारस्परिक प्रभावों का सूक्ष्म विश्लेषण हुआ है। 'मारा जाई खुसरो' उनका चर्चित नाटक है और 'एक लम्बी छाँह' उनका प्रसिद्ध यात्रावृत्त। इन बहुमुखी कृतित्व में शाह जी की एक मुकम्मल साहित्यकार की छवि उभरती है जहाँ उनकी सृजनात्मक क्षमता के साथ वैचारिक सामर्थ्य का अनूठा संयोग देखने को मिलता है।

6. सृजन का अन्तःस्वर

रमेशचन्द्र शाह एक संवेदनशील रचनाकार और सूक्ष्मदृष्टि सम्पन्न आलोचक हैं। वे साहित्य के अनथक यात्री हैं। पिछले 50 वर्षों में फैली शाह जी की बहुविधात्मक बहुवर्णी सृजनात्मक सक्रियता को देखकर सहज ही कहा जा सकता है कि भारतीय संस्कृति की समृद्ध आर्ष चिन्तन-परम्परा अभी निःशेष नहीं हुई है। ऐसे में शाह जी जहाँ परोक्ष रूप से हमारी प्राचीन संस्कृति से जुड़ते हैं वही प्रत्यक्ष रूप से प्रसाद, निराला, अज्ञेय, मुक्तिबोध, हजारी प्रसाद द्विवेदी, विजयदेव नारायण साही वाली आधुनिक साहित्य चिन्तन और संवेदना से। यह किसी भाषा के सर्जक, सृजनधर्मी, साहित्य प्रेमी, सहृदय के लिए विस्मय, सुखद आश्चर्य और गर्व की बात हो सकती है।

रमेशचन्द्र शाह बाह्यार्थ के नहीं अन्तरार्थ के सर्जक हैं। आलोचक मदन सोनी के शब्दों में कहा जाय तो 'साहित्य की बाहरी दुनिया या उसके परिवेश के संकुचन के प्रति व्याप्त उपालम्भ-भाव में साझा करने की बजाय रमेशचन्द्र शाह साहित्य की आन्तरिक दुनिया पर एकाग्र होते हैं, मानो इस आग्रह के साथ कि उसकी आन्तरिक दुनिया की समृद्धि में ही उसके परिवेश के विस्तार की सम्भावनाएँ खोजी जा सकती हैं। वे उसके भीतर और उसके परिप्रेक्ष्य में सत्ता (या तत्त्व), अस्तित्व, धर्म, आस्था, नैतिकता, मूल्य, स्मृति, इतिहास-वेदना, अवस्थिति-बोध जैसे प्रश्नों से टकराते हुए उसकी साहित्यजीविता और साहित्यिक अन्तःप्रजनात्मकता का प्रतिकार करते हैं।'

शाह जी एक गम्भीर और मननशील समीक्षक-विचारक हैं। इक्कीसवीं सदी की देहरी पर खड़े होकर वे भारतीयता, संस्कृति, सृजनात्मकता, साहित्य और सामाजिक दायित्व-बोध पर विचार करते हुए स्पष्ट करते हैं कि आज के सन्दर्भ में मौलिक विचार और मौलिक कर्म की विशेष आवश्यकता है जिससे कि हम अपने और अपनी संस्कृति के जिम्मेदार प्रतिनिधि की हैसियत से बोल सकें। उनका यही दायित्व-बोध, उनकी की सजगता, सचेतनता उनके लेखन को विशिष्ट बनाती है। कहने की जरूरत नहीं कि संस्कृति मन्थन की गहन प्रक्रिया से उपजा उनका साहित्य विवेक इतिहास, संस्कृति और परम्परा से पोषित है। यही कारण है कि समकालीन सृजन परिदृश्य में शाह जी का लेखन एक अलग मुहावरा लिये हुए है। उनका समस्त चिन्तन हिन्दी के अति प्रसिद्ध लेखक अज्ञेय और निर्मल वर्मा की राह का चिन्तन है और उनसे स्वतन्त्र भी। भारतीयता, परम्परा, संस्कृति और साहित्य को वे अनवरत संस्कार की परम्परा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

से जोड़ते हैं। उनके लिए अपने को निरन्तर माँजना ही आधुनिकता का पर्याय है। कहने की जरूरत ही नहीं कि उनकी आधुनिकता एक गहरे अर्थ में देशज आधुनिकता ही है। आज की तेज भागती आधुनिकता और उसके शोर, चीख-पुकार में धँसे चालाक आधुनिक मनुष्य को सब कुछ जल्दी, फटाफट चाहिए। फल ही उसका ध्येय है... पीड़ा, श्रम, संघर्ष जैसे शब्द उसके लिए अचानक निरर्थक हो गये हैं। *'कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन'*—उसके लिए मात्र एक अप्रासंगिक पंक्ति रह गयी है। शाह जी ने आधुनिकता के भँवर में फँसे ऐसे मनुष्य की कमजोरी को ठीक ही पकड़ा है : "कुछ होना चाहिए, यह बेचैनी और हड़बड़ी और चीख-पुकार चारों ओर है। पर जिसके लिए वह 'कुछ' होगा, उसकी फिक्र कोई नहीं करता। न किसी को फुर्सत है। संघर्ष है, पर सार्थक रूपाकार के लिए संघर्ष नहीं है। सार्थक रूपाकार के संघर्ष को सरलीकृत किया गया है।" प्रश्न है, ऐसे में करें तो आख़िर क्या करें जिससे हम अपने खोये हुए अर्थ को फिर से पा सकें? भ्रष्ट और विगलित समय को सार्थक और मूल्यवान अभिव्यक्ति दे सकें? शाह जी उपाय सुझाते हैं : "क्या राजनीति, क्या साहित्य में, 'लोकचित्त' ही वह माध्यम है, जिस पर एकाग्र होकर आप उस परिवर्तन, उस क्रान्ति का आवाहन कर सकते हैं जो जीवन के कुण्ठित और भ्रष्ट हो गये अर्थ को, खोये हुए अर्थ को फिर से लौटा सके।"

कुल मिलाकर रमेशचन्द्र शाह उन विरले व्यक्तियों और लेखकों में से हैं जो अपने देश-काल की प्रामाणिक अभिव्यक्ति के लिए साहित्य की बहुविधाओं में निरन्तर सृजनशील रहे हैं। सृजन का यह सिलसिला आज भी पूर्ववत् जारी है : 'है, अभी बहुत कुछ और है, जो कहा नहीं गया'। मौजूदा परिदृश्य में देश और विदेश में अपनी सृजन प्रतिभा का लोहा मनवाने वाले शाह जी विरले साहित्यकार हैं, और ऐसे में उनका पर्याय ढूँढ़ना मुश्किल है। कहना, वरन् दोहराना निरर्थक है कि शाह जी का बहुमुखी और बहुविध सृजन हिन्दी साहित्य की अनमोल निधि है और इस नाते वे हिन्दी साहित्य के इतिहास के 'तपस्वी साधक सर्जक' हैं... 'मील के पत्थर' हैं, जबकि हमारे लिए तो वे 'जीवित किंवदन्ती' हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ऋग्वेद के रुद्र हैं शिव-पशुपति

कृपाशंकर सिंह*

ऋग्वेद में जिन दो बड़े युद्धों का उल्लेख है, उनमें से एक युद्ध आर्यों और दस्युओं के बीच हुआ था। आर्यों और दस्युओं में आपसी संघर्ष की लम्बी कहानी के संकेत ऋग्वेद में दिखायी देते हैं। विद्वेष के कारणों में एक कारण आर्थिक रहा हो सकता है, क्योंकि दस्यु भी आर्थिक रूप से समर्थ थे। लेकिन इससे भी बड़ा कारण धार्मिक और यज्ञीय-अनुष्ठान से सम्बन्धित था। आर्य इन्द्र, मित्र, वरुण, अश्विन आदि देवताओं के उपासक थे। इसके विपरीत दस्युओं की न तो इन देवताओं में आस्था थी और न ही यज्ञों में। यज्ञों में अटूट विश्वास रखने वाले आर्यों और यज्ञों के प्रति अवहेलना रखने वाले दस्युओं के बीच वैमनस्य दोनों के बीच संघर्ष का सबसे बड़ा कारण था। दस्यु वास्तव में शिश्नपूजक थे और शिश्नपूजा के प्रति आर्यों के मन में हिकारत का भाव था। ऋग्वेद के सातवें मण्डल में वशिष्ठ बलशाली इन्द्र से प्रार्थना करते हैं कि ये शिश्नपूजक (दस्यु) हमारे यज्ञ में बाधक न बनें (शिश्नदेवाः नः ऋतं अपि मा गुः)। एक और ऋषि वैखानस कहते हैं कि इन्द्र शिश्नपूजक दुष्टों का विनाश करते हैं (शिश्न देवान् हनन्)। इन्हीं कारणों से ऋग्वेद में जिस 'पंचजन' का उल्लेख अनेक बार हुआ है उसमें चार वर्ण और निषाद् तो हैं, पर दस्यु का नाम कहीं सम्मिलित नहीं किया गया है।

ऋग्वेद के देवताओं में रुद्र का भी विशिष्ट स्थान है, पर उन्हें लेकर कम ही ऋचायें कही गयी हैं, कुल मिलाकर लगभग चार सूक्तों में उनकी स्तुति है। उन्हें मरुतों का पिता कहा गया है। वे एक साथ ही उग्र स्वभाव वाले, क्रोधी और सहज प्रसन्न हो जाने वाले आशुतोष कहे गये हैं। वे स्तुतिगान करने वाले के प्रति सहज ही दयावान हो जाते हैं, और उसकी रक्षा करते हैं। वे चिकित्सक की भूमिका भी निभाते हैं, और सहस्र औषधियों के ज्ञाता हैं—सहस्रं ते स्वयिवात भेषजा। पहले मण्डल में कुत्स

*सम्पर्क : डी–6 स्ट्रावेरी हिल, शिमला–171002 (हि.प्र.); मो. : 09868637567 (दिल्ली), 09805476883 (शिमला)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आंगिरस ऋषि कहते हैं कि—"शक्तिशाली, जूड़ाघाटी(कपर्दिने) वीरों को आश्रय देने वाले रुद्र के लिए हम ये मन्त्र गाते हैं, जिससे इस ग्राम में द्विपद और चौपायों का रोग शान्त हो, सभी पुष्ट और नीरोग हों।" (1-114-1)

इमा रुद्राय तवसे कपर्दिने क्षयद्वीराय प्रभरामहे मतीः।
यथा शमसद द्विपदे चतुष्पदे विश्वं पुष्टं गामे अस्मिन्ननातुरम्॥

(1.114.1)

दूसरी ऋचा में ऋषि सबको सुखी करने और रोगमुक्त करने की प्रार्थना करते हैं। रुद्र शूरवीरों को आश्रय प्रदान करने वाले हैं—

नो रुद्रोत नो भयस्कृधि क्षयद्वीराय नमसा विधेम ते।
यच्छं च योश्च मनुरायेजे पिता तदश्याम तव रुद्र प्रणीतिषु॥

(1.114.2)

"हे रुद्र! हम सबको सुखी करो और हम सब को नीरोग करो। वीरों को आश्रय देने वाले तुम्हें हम सब नमस्कार करते हैं। पिता या उत्पादक मनु ने जिन रोगों से छुटकारा और जिन भयों से उद्धार पाया था, हे रुद्र! तुम्हारी कृपा से हम भी वह पावें।"

तीसरी ऋचा में ऋषि प्रार्थना करते हैं कि वीरों को आश्रय देने वाली रुद्र की श्रेष्ठ बुद्धि को हम सब अर्जित करें—

अश्याम ते सुमतिं देवयज्यया क्षयद्वीरस्य तव रुद्र मीढ्वः।
सुम्नायन्तिद्विशो अस्माकमा चरारिष्टवीरा जुहवाम ते हविः॥

"हे कल्याणकारी रुद्रदेव, वीरों को आश्रय देने वाली तुम्हारी श्रेष्ठ बुद्धि को हम सब प्राप्त हों। हम देव-यज्ञ द्वारा तुम्हारा अनुग्रह प्राप्त करें। हमारे प्रजाजनों को अपने श्रेष्ठ कर्मों से सुख देते हुए तुम हमारे लिए अनुकूल आचरण करो। हमारे वीरों का नाश न हो और हम सब तुम्हारे निमित्त आहुतियाँ समर्पित करें।" (1.114.3)

त्वेषं वयं रुद्रं यज्ञसाधं वकुंकविमवसे नि ह्वयामहे।
आरे अस्मद्दैव्यं हेलो अस्यतु सुमतिमिद्वयमस्या वृणीमहे॥

(1.114.4)

हम रक्षण के लिए दीप्त, यज्ञसाधक, चपल, स्फूर्तिवान, ज्ञानी रुद्र को पुकारते हैं। वे अपना दिव्य क्रोध दूर करें। हम उनकी अनुकम्पा को प्राप्त करें।

'हम वराह के समान दृढ़-अंग, जूड़ाधारी (कपर्दिन), दीप्तिमान रूप रुद्र को पुकारते हैं। वे अपने हाथों में औषधियों को धारण किये हमें सुख, रक्षा और गृह प्रदान करें।' (1.114.5)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इदं पित्रे मरुतामुच्यते वचः स्वादोः स्वादीयो रुद्राय वर्धनम्।
रास्वा च नो अमृत मर्तभोजनं त्मने तोकाय तनमाय मूल ॥

(1.114.6)

हम मरुद्गण के पिता रुद्र देव के लिए यह मधुर से भी अधिक मधुर (स्वादोः स्वादीयः) स्तुति गान करते हैं। हे मरण-रहित रुद्र, मनुष्यों का भोजन रूप अन्न हमें प्रदान करो। हमें तथा हमारी सन्तानों को सुख दान करो।

"हे रुद्र, हममें से बूढ़े को नहीं मारना, बच्चे को नहीं मारना। हमारे युवकों को नहीं मारना तथा गर्भस्थ शिशु को भी नहीं मारना। हमारे पिता का वध नहीं करना (नः पितरं मा) और हमारी माता का वध नहीं करना (उत नः मातरं मा)। हमारे प्रिय शरीरों को कृश मत करना (नः प्रियाः तन्वः मारीरिषः)" (1.114.7)

'रुद्र, हमारे पुत्र, पौत्र, मनुष्य, गौ और अश्व को नहीं मारना। हे रुद्र, क्रोधित होकर हमारे वीरों की हिंसा नहीं करना। हविश्यान्त प्रदान करने के लिए तुम्हें हम अपने घर में बुलाते हैं। (त्वा हविष्यान्नः सदं इत् हवामहे)। (1.114.8)

'जैसे चरवाहे सायंकाल अपने स्वामी के पास पशुओं को लौटा देते हैं, उसी प्रकार तुम्हारी कृपा से प्राप्त स्तोत्र तुम्हें अर्पण करता हूँ। हे मरुतों के पिता हमें सुख दो। तुम्हारा अनुग्रह अत्यन्त सुखकर और कल्याणकारी हो। हम तुम्हारा संरक्षण चाहते हैं।' (1.114.9)

'हे वीरों को आश्रय देने वाले! तुम्हारा गाय का घातक और मनुष्य का घातक शस्त्र हमसे दूर रहे। हम तुम्हारा दिया सुख पावें। हम सबको सुखी करो। हे दीप्तिमान रुद्र, हमारा मार्गदर्शन करो। तुम पृथिवी और अन्तरिक्ष के अधिपति हो। हमें सुख दो।'(1.114.10)

अवोचाम नमो अस्मा अवस्यवः शृणोतु नो हवं रुद्रो गरुत्वान्।
तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्तामदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः ॥

'सुरक्षा की कामना करने वाले हम सब कहते हैं कि उन रुद्र देव को नमस्कार है। मरुतों के साथ रुद्र हमारा आह्वान सुनें। मित्र, वरुण, अदिति, सिन्धु, पृथिवी और द्युलोक इस प्रकार हमारी इस इच्छा का अनुमोदन करें।'

पहले मण्डल में ही कण्व घौर रुद्र और रुद्र के साथ मित्र-वरुण की स्तुति करते हैं। पहली ऋचा में रुद्र की स्तुति करते हुए कहते हैं–

कद रुद्राय प्रचेतसे मीत्तहुष्टमाय तव्यसे। वोचेम शन्नमं हृदे ॥

(1.43.1)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विशेष ज्ञानी (प्रचेतसे) अत्यन्त सुख देने वाले महान रुद्र हमारे हृदय में अवस्थान करते हैं। कब हम उनको लक्ष्य करके सुखकर स्तोत्र बोलेंगे?

यथा नो मित्रो वरुणो यथा रुद्राश्चिकेतति। यथा विश्वे सजोषसः ॥
(1.43.3)

'मित्र, वरुण, रुद्र और समान-प्रीतियुक्त सब देवता हमारे ऊपर अनुग्रह करें।'

गाण्यपतिं मेघपतिं रुद्रं जलाषभेषजम्। तच्छंयोः सुम्नमीमहे।
(1.43.4)

'गाथाओं के स्वामी, यज्ञों के प्रभु और जल रूप औषधि से युक्त रुद्र के पास से हम शान्ति की प्राप्ति और अनिष्ट को दूर करने से मिलने वाले सुख को प्राप्त करना चाहते हैं।'

यः शुक्र इव सूर्यो हिरण्यमिव रोचते। श्रेष्ठो देवानां वसुः ॥

'जो रुद्र सूर्य की तरह दीप्तिमान और स्वर्ण की तरह प्रकाशमान हैं, वे रुद्रदेव देवों में श्रेष्ठ और ऐश्वर्यवान हैं।' (1.43.5)

शं नः करत्यर्वते सुगं मेषाय मेष्ये। नृभ्यो नारिभ्यो गवे ॥

'हमारे घोड़ों, मेढ़ों, पुरुषों, नारियों और गौ के लिए वह रुद्रदेव सुख प्रदान करते हैं।'

दूसरे मण्डल में गृत्समद भी रुद्र से औषधियों के साथ सब प्रकार के सुख को प्राप्त करने की प्रार्थना करते हैं—

'हे मरुतों के पिता रुद्र, तुम्हारा दिया हुआ सुख हमें मिले। हमें सूर्य-दर्शन से कभी अलग नहीं करना। हमारे वीर पुत्र संग्राम में शत्रुओं को पराजित करें। रुद्र, हम पुत्रों और पौत्रों को प्राप्त करें।' (2.33.1)

'रुद्र, तुम्हारी दी हुई सुखकारी औषधि के द्वारा हम सौ वर्ष तक जीवित रहें। तुम हमारे द्वेषभावों तथा पापों को दूर करके हमारे शरीर में व्याप्त समस्त रोगों को दूर करो।' (2.33.2)

श्रेष्ठो जातस्य रुद्र श्रियासि तवस्तमस्तवसा वज्रबाहो।
पर्षिणः पारमंहसः स्वस्ति विश्वा अभीती रपसो युयोधि ॥
(2.33.3)

'रुद्र, ऐश्वर्य में तुम सर्वश्रेष्ठ हो। हे वज्रबाहु, बलवानों में तुम सबसे अधिक बलवान हो। हमें पापों से मुक्त करो, हमारे पास पाप न आने पाये।'

'हे अभीष्टवर्णी रुद्र, हमारे पुत्रों को औषधि द्वारा परिपुष्ट करो। तुम वैद्यों में भी सर्वोत्तम वैद्य के रूप में जाने जाते हो। हम झूठी तथा निन्दित स्तुतियों के द्वारा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तुम्हें क्रोधित न करें। साधारण लोगों के समान बुलाकर भी हम तुम्हें क्रोधित न करें।' (2.33.4)

हवीमभिर्हवते यो हविर्भिरव स्तोमेभी रुद्रं दिषीय।
ऋदूदरः सुहवो मा नो अस्यै बभ्रुः सुशिप्रो रीरधन्मनायै ॥

(2.33.5)

'जो रुद्रदेव हव्य के साथ आह्वान द्वारा आहूत होते हैं, उनका क्रोध स्तोत्र द्वारा मैं दूर करूँगा। कोमल हृदयवाले तेजस्वी हँसमुख स्वभाववाले, बभ्रु(पीत) वर्ण और सुनासिक रुद्र हमें न मारें।'

'कामनाओं की पूर्ति करने वाले मरुतों से युक्त हे रुद्रदेव, मुझे तेजस्वी अन्न द्वारा तृप्त करो। जिस प्रकार धूप से पीड़ित मनुष्य छाया की शरण में जाता है, उसी प्रकार मैं भी पापशून्य होकर रुद्रदेव की परिचर्या करते हुए सुख प्राप्त करूँगा।' (2.33.6)

'रुद्र, तुम्हारा वह सुखदायी हाथ कहाँ है, जिससे तुम औषधियाँ तैयार करके सबको सुखी करते हो। हे बलशाली रुद्र, दैवी आपत्तियों को दूर करके तुम मुझे शीघ्र क्षमा करो।' (2.33.7)

'बभ्रुवर्ण, अभीष्टवर्णी और श्वेत आभायुक्त रुद्र की हम महान स्तुतियाँ गाते हैं। हे स्तोता, नमस्कार द्वारा तेजस्वी रुद्र की पूजा करो। हम उनके उज्ज्वल नाम का संकीर्तन करते हैं।' (2.33.8)

'दृढ़ अंगवाले अनेक रूपों के स्वामी, दीप्त और हिरण्यमय अलंकार से सुशोभित रुद्रदेव सारे भुवनों के अधिपति और भर्ता हैं। उनकी शक्ति कभी भी उनसे अलग नहीं होती।' (2.33.9)

'पूजनीय रुद्र, तुम धनुर्धारी हो। स्वर्ण आभूषणों से युक्त अनेक रूपों वाले तुम पूजा के योग्य हो। तुमसे अधिक बली कोई नहीं है। तुम ही व्यापक विश्व की रक्षा करते हो।' (2.33.10)

'हे स्तोता, यशस्वी रथ पर चढ़े, तरुण, पशु की तरह भयंकर और शत्रु संहारक तथा उग्र रुद्र की स्तुति करो। हे रुद्रदेव, स्तुति करने पर तुम हमें सुखी करते हो। तुम्हारी सेना शुत्रओं का संहार करे।'

(2.33.11)

'जैसे पुत्र पिता को नमस्कार करता है, वैसे ही हे रुद्र, तुम्हारे आने के समय हम तुम्हें नमस्कार करते हैं। रुद्र, तुम बहुधनदाता और सज्जनों के पालक हो। स्तुति करने पर तुम हमें औषधि देते हो।' (2.33.12)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

या वो भेषजा मरुतः शुचिनि या शन्तामा वृषणो या मयोभु।
यानि मनुरवृणीता पिता नस्ता शं च योश्च रुद्रस्य वाश्मि ॥

(2.33.13)

'मरुतो, तुम्हारी जो कल्याणकारी और सुखदायी औषधि है, जिस औषधि को हमारे पिता मनु ने चुना था, वही सुखकर और रोगनिवारक औषधि हम चाहते हैं।'

'रुद्रदेव के महान आयुध, तीक्ष्ण शस्त्र तथा दुर्गति हमें छोड़ दे। हे सुखदायी रुद्रदेव, ऐश्वर्यशाली यजमान के प्रति अपने धनुष की प्रत्यंचा को शिथिल करो। हमारे पुत्रों और पौत्रों को सुखी करो।' (2.33.14)

एवा बभ्रो वृषभ त्रेकितान यथा देव न हृणीषे न हंसि।
हवनश्रुन्नो रुद्रेह बोधि बृहद्वदेम विदथे सुवीराः ॥ (2.33.15)

'तेजस्वी, बभ्रुवर्ण, सर्वज्ञ और हमारा आह्वान सुनने वाले रुद्र, तुम हमें ऐसा मार्गदर्शन दो कि हमारे प्रति तुम कभी क्रुद्ध न हो, हमें कभी विनष्ट न करो। हम उत्तम सन्तति सहित यज्ञ में तुम्हारी उत्तम स्तुति करेंगे।'

सातवें मंडल में वसिष्ठ ने भी रुद्र की स्तुति की है। उन्होंने रुद्र से अपनी तथा अपनी सन्तानों की रक्षा और रोगरहित रहने के लिए औषधियाँ प्रदान करने की प्रार्थना की है।

इमा रुद्राय स्थिरधन्वमे गिरः क्षिप्रेषवे देवाय स्वधान्वे।
अषालहाय सहमानाय वेधसे तिग्मायुधाय भरता श्रृणोतु नः ॥

'ये स्तोत्र सुदृढ़ धनुषधारी, शीघ्रगामी बाण छोड़ने वाले, किसी के लिए भी अजेय, जेता, विधाता रुद्र के लिए हैं। वह हमारी प्रार्थना सुनें।' (7.46.1)

स हि क्षयेण क्षम्यस्य जन्मनः साम्राज्येन दिव्यस्य चेतति।
अवन्नवन्तीरूप नो दुरश्चरानमीवो रुद्र जासुनो भव ॥ (7.46.2)

'रुद्र को स्वर्ग और पृथिवी पर रहने वाले ऐश्वर्य द्वारा जाना जा सकता है। हे रुद्र, हमारी प्रजायें तुम्हारी स्तुतियाँ करती हैं। तुम उनकी रक्षा करो और उन्हें रोगरहित बनाओ।'

'रुद्र, अन्तरिक्ष से छोड़ी गयी जो तुम्हारी विद्युत पृथिवी पर विचरण करती है, वह हमें छोड़ दे। हे स्वपिवात (कृपामय) रुद्र, तुम्हारी हजारों औषधियाँ हमें मिलें। तुम हमारे पुत्र, पौत्रों की हत्या मत करना।' (7.46.3)

मा नो वधी रुद्र मा परा दा मा ते भूम प्रसितौ हीतितस्य।
आ नो भज बर्हिषि जीवशंसे यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'हे रुद्र, हमें न मारो, न दूर करो। हम तुम्हारे क्रोध के बन्धन में न होवें। तुम हमारे प्राणिहितकर यज्ञ में आओ। तुम हमेशा स्वस्ति के साथ हमारी रक्षा करो।'

इस तरह ऋग्वैदिक रुद्र का जो वर्णन मिलता है, उसमें एक ओर वे रौद्र स्वरूप हैं, तो दूसरी ओर शीघ्र ही प्रसन्न होने वाले आशुतोष हैं। सभी जीवों के स्वामी होने के कारण वे पशुपति कहलाते हैं। विध्वंस और करुणा दोनों उनमें समाहित है।

ऋग्वैदिक रुद्र के गुण और विशिष्टतायें, उनका कल्याणकारी और विध्वंसक रूप बाद के शिव-रूप में समाहित हुआ। उत्तरवैदिक साहित्य में रुद्र के पर्याय के रूप में शिव का नाम आता है। शांख्यायन और कौषीतकि ब्राह्मण ग्रन्थों में रुद्र के नामों में शिव का नाम आता है। शिवपुराण में शिव का विस्तृत वर्णन मिलता है, वे योगिराज के रूप में वर्णित हैं। महाभारत के शान्तिपर्व में शिव अपने विषय में कहते हैं—"यज्ञ में प्रस्तोता लोग (स्तवन करने वाले ऋत्विक) मेरी ही स्तुति करते हैं। वेदवेत्ता पुरुष मेरा ही भजन करते हैं। और ऋत्विज लोग मुझे ही यज्ञ में भाग देते हैं।" अठारह पुराणों में 'शिवपुराण' और 'लिंगपुराण' भी हैं। पाणिनी की अष्टाध्यायी में शिव के उपासकों का उल्लेख है। पतंजलि के महाभाष्य में भी रुद्र के साथ शिव का उल्लेख है।

पर आर्यो में शिव के प्रतीक शिवलिंग की उपासना का आरम्भ कब हुआ, इसके विषय में निश्चयपूर्वक कुछ कहना सम्भव नहीं है, जैसा कि ऊपर कहा गया ऋग्वेद में लिंग पूजकों के प्रति आर्यो के मन में घृणा का भाव था। हालाँकि यह ठीक से नहीं कहा जा सकता कि दस्युओं को 'शिश्नदेवा' बताने के पीछे ऋग्वैदिक ऋषियों का वास्तविक मन्तव्य क्या था। वे दस्युओं को 'अब्रह्मचारी' (व्यभिचारी?) बताना चाहते थे या शिश्नपूजक कहकर उनकी भर्त्सना कर रहे थे। ऋग्वेद के कई व्याख्याकार, जिनमें महान व्याख्याकार चौदहवीं सदी के सायण भी हैं, ने 'शिश्नदेवाः' का अर्थ 'अब्रह्मचारी' बताया है, लेकिन सिन्धु-सरस्वती सभ्यता के पुरातात्त्विक उत्खननों में अनेक स्थलों में प्राप्त लिंग पूजा के प्रमाण से लगता यह है कि लिंग पूजा आरम्भिक ऋग्वैदिक काल में दस्युओं में प्रचलित रही हो सकती है। जिसे उस समय ऋग्वैदिक आर्यों ने तो नहीं अपनाया, पर जो सिन्धु-सरस्वती काल (तीन सहस्र ई.पू.) तक आते-आते सभी समाजों में स्वीकृत हो चुकी थी। लिंग के अवशेष हड़प्पा के अतिरिक्त मोहनजोदड़ो, लोथल, कालीबंगा आदि स्थलों में मिले हैं। ये लिंग छोटे आकार से लेकर एक मीटर तक के हैं। इनमें कुछ के आकार-प्रकार वास्तविक लिंग जैसा ही है। कालीबंगा में प्राप्त मिट्टी का लिंग योनि के साथ है। जितने लिंग मिले हैं, उनमें छोटे आकार वाले सीप और मिट्टी के तथा बड़े आकार वाले पाषाण के बने हैं। कुछ विद्वानों के विचार से छोटे आकार वाले लिंग को सम्भवतः ताबीज की तरह बाँधा जाता रहा होगा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शिव-पशुपति के रूपाकार की जो कल्पना है, उस कल्पना से मिलती-जुलती आकृतियाँ हड़प्पा सभ्यता के उत्खननों में प्राप्त हुई है। मोहनजोदड़ो में प्राप्त पुरुष आकृति जिसे योगासन की मुद्रा में चौकी पर बैठा दिखाया गया है, जिसकी दायीं ओर बाघ और हाथी तथा बायीं ओर गैंडा और महिष हैं, और उसके आसन के नीचे दो हरिण हैं, इसे शिव-पशुपति के रूप में पहचाना गया है। मार्शल ने इस आकृति को शिव-पशुपति का प्राग् रूप कहा है। वैसे शिव का एक नाम योगीश्वर भी है। मोहनजोदड़ो से ही प्राप्त एक अन्य मुद्रा में एक आकृति चौकी पर योगासन में बैठी है, उसके दोनों हाथ दोनों ओर फैले हुए हैं और सिर पर एक टहनी है, जिसमें पीपल जैसी पत्तियाँ हैं। इसी तरह हड़प्पा से प्राप्त एक मुद्रा में एक बैठी हुई आकृति है। पास के पेड़ के नीचे बाघ है, और पेड़ पर बने मचान पर एक आदमी बैठा हुआ है। मुद्रा की दूसरी ओर त्रिशूल है जिसके सामने एक बैल है। बैठी हुई आकृति शिव की कही गयी है। इस तरह सिन्धु सरस्वती के स्थलों में लिंग भी मिले हैं, और शिव-पशुपति के प्रमाण भी। इससे इस सम्भावना को बल मिलता है कि शिव-पशुपति और उनका स्थूल प्रतीक लिंग में समानता की निरन्तरता कम-से-कम तीसरी सहस्राब्दी ई.पू. से तो मानी ही जा सकती है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अथर्ववेद में विष्णु के स्वरूप का निरूपण

डॉ. निरूपमा राय*

अथर्ववेद चतुर्वेदों में से एक महत्त्वपूर्ण वेद है। अन्य तीन वेदों से भिन्न विषयवस्तु होते हुए भी इसका समावेश वेदचतुष्टयी में होने के कारण इसकी महत्ता स्वतः सिद्ध है। "जहाँ ऋग्वेद, यजुर्वेद और सामवेद पारलौकिक फलों के दाता है, वहाँ अथर्ववेद इहलौकिक है; लौकिकता के कारण यह विशेष आर्कषण का केन्द्र रहा।"[1] अथर्ववेद को 1000 ई. पू. तक का माना जाता है। पूर्वकाल में अथर्ववेद की नौ शाखाएँ थीं[2] परन्तु आज मात्र तीन शाखाएँ या संहिताएँ उपलब्ध हैं–पिप्पलाद, मोद एवं शौनक। इनमें शौनक शाखा अत्यन्त प्रसिद्ध एवं प्रचलित है। इस संहिता में 5987 मन्त्र हैं। यह बीस कांडों एवं 731 सूक्तों में विभाजित हैं। अथर्ववेद की शौनक संहिता के 5987 मन्त्रों में से 1200 मन्त्र ऐसे हैं जो ऋग्वेद से लिये गए है। अथर्ववेद का छठा भाग गद्य में है।

अथर्ववेद में तीन प्रकार के सूक्त हैं–अध्यात्म, अधिभूत एवं अधिदैवत। अथर्ववेद में रोगों की चिकित्सा, दीर्घ आयु हेतु मन्त्र एवं प्रार्थना, अनिष्ट निवारण, विवाह, इन्द्रजाल, वशीकरण, प्रायश्चित मन्त्र, राजनीतिक दशा चित्रण के साथ-साथ यज्ञ सम्बन्धी मन्त्र भी हैं। "पृथ्वी सूक्त" के कारण इस वेद की प्रसिद्धि सर्वव्यापक है। पृथ्वी सूक्त को विंटरनिट्ज ने "प्राचीन भारत की सर्वश्रेष्ठ धार्मिक कविता' कहा है। अथर्ववेद की महत्ता इस बात से भी प्रमाणित होती है कि प्रसिद्ध न्यायविद् जयन्त भट्ट ने "न्यायमञ्जरी" में अथर्ववेद को प्रथम वेद कहकर सम्बोधित किया है–"तत्रवेदाश्चत्वारः प्रथमोऽथर्ववेदः॥"[3] याज्ञिक दृष्टि से अथर्ववेद की उपयोगिता अन्य वेदों से किसी भी तरह कमतर नहीं है। इसे 'ब्रह्मवेद' तथा 'पुरोहित वेद' भी कहते हैं। क्षत्रिय वर्ण सम्बन्धी कार्यों के विवरण के कारण इसे "क्षात्रवेद" भी कहा जाता है।[4]

---

*रिसर्च ऐसोसिएट-यू.जी.सी. पटना विश्वविद्यालय संस्कृत में। उर्सलाइन कॉनवेंट रोड, रंगभूमि हाता, पूर्णिया 854301 (विहार), मो. 09430927418, 08409102179

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अथर्ववेद में भगवान विष्णु से जुड़े मात्र तेरह मन्त्र उपलब्ध होते हैं। कुछ छिटपुट मन्त्रांश भी हैं, जिनमें विभिन्न देवों की स्तुतियों के साथ विष्णु का भी नामोल्लेख हुआ है। अथर्ववेद के सप्तम कांड का सत्ताइसवाँ सूक्त पूर्णतः विष्णु भगवान् को समर्पित है। इस सूक्त में आठ मन्त्र हैं। प्रथम मन्त्र में वर्णित है कि —"विष्णु ने वीरतापूर्ण कर्मों द्वारा पृथ्वी के रूप में लोकों का निर्माण किया है। विष्णु ने इससे भी ऊँचे स्तर के स्थान स्वर्ग को धारण किया है। महापुरुषों द्वारा स्तुति किए गए विष्णु ने पृथ्वी, अन्तरिक्ष एवं आकाश में चरण रखते हुए यह निर्माण किया है"—

"विष्णार्नु कं प्रा वोचं वीर्याणि यः पार्थिवानि विममे रजांसि।
यो अस्कभायदुत्तरं सधस्थं विचक्रमाणस्त्रेधोरूगायः॥" [5]

वेदों में प्रायः विष्णु के "त्रिविक्रम" स्वरूप की चर्चा ही विशेषतया प्राप्त होती है। अथर्ववेद में भी विष्णु भगवान के वीरतापूर्ण कर्मों के वर्णन में उनके तीन पगों की चर्चा है। भगवान् विष्णु के कालान्तर में कई अवतार हुए, पर "वामनावतार" की ही व्यापक चर्चा वेदों में है। इसके मूल में विष्णु का सर्वव्यापी, अखंड एवं अनन्त स्वरूप ही है। दूसरे मन्त्र में विष्णु भगवान् की वीरता और शाक्तिमत्ता के साथ 'नरसिंह अवतार' का सूक्ष्म संकेत भी मिलता है।—

"प्र तद् विष्णु स्तवते वीर्याणि मृगो न भीमः कुचरो गिरिष्ठाः।
परावत आ जगम्यात् परस्याः॥" [6]

अर्थात्—"वीरतापूर्ण कर्मों के कारण विष्णु की स्तुति की जाती है। विष्णु सिंह के समान भयानक, भूमि पर विचरण करनेवाले एवं पर्वत में स्थित हैं।"

इस मन्त्र से प्रतिध्वनित होता है कि विष्णु के अवतारी स्वरूप जो बाद में वैष्णव धर्म का आधार बने वेदों में भले ही वर्णित न हों, पर उनका सूक्ष्म संकेत मिल जाता है। अवतार परम्परा सृष्टि को सुचारु रूप से चलानेवाले परमपिता परमेश्वर में समाविष्ट है।

तीसरा मन्त्र विष्णु भगवान् के तीन विस्तृत एवं महत्त्वपूर्ण पदों की स्तुति करता है—विष्णु के तीन चरण विक्षेपों में सारा विश्व स्थापित है। सबके रक्षक तथा दूसरों के द्वारा पराजित न होनेवाले विष्णु ने इस पृथ्वी लोक से आरम्भ करके प्राणियों को धारण करनेवाले तीनों लोक को धारण किया है। यथा—

"यस्योरुषु त्रिषु विक्रमणेष्वधिक्षियन्ति भुवनानि विश्वा।
उरु विष्णो विक्रमस्वोरू क्षयाय नस्कृधि ॥" [7]

अगला मन्त्र कहता है कि—"विष्णु के वामनावतार ने तीन पगों से विश्व को नाप लिया। उनके धूल से भरे चरणों के नापे गए स्थान में सारा जग समा गया"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

—"इदं विष्णुर्विचक्रमे त्रेधा निदधे पदा।
समूढमस्य पांसुरे ॥"[8]

यही मन्त्र सामवेद [9] के उत्तरार्चिक के अठारहवें अध्याय में भी है और ऋग्वेद के प्रथम मंडल[10] में भी पठित है। विष्णु भगवान् के वामन अवतार का इस मन्त्र में स्पष्ट कथन है। पाँचवाँ मन्त्र भी वामनावतार की ही पुष्टि करता प्रतीत होता है—"विष्णु अपने तीन पैरों में धर्म को धारण करते हुए संसार को संचालित करते हैं। वे सर्वत्र व्याप्त हैं"—

"त्रीणी पदा वि चक्रमे विष्णुर्गोपा अदाभ्यः
अतो धर्माणि धारयन्॥"[11]

इस मन्त्र से विष्णु की सर्वव्यापकता एवं सृष्टिनियन्ता छवि उजागर होती है। यह मन्त्र भी सामवेद[12] में है।

इस सूक्त के अगले मन्त्र में वर्णित है। कि—हे यजमानो! आप विष्णु के कर्मों को देखने की कृपा कीजिए। उन कर्मों के वे प्रेरक तथा इन्द्र के योग्य मित्र हैं—

"विष्णोः कर्माणि पश्यत् यतो व्रतानि पस्पशे।
इन्द्रस्य युज्यः सखा ॥"[13]

"विष्णु को इन्द्र का मित्र, सखा कहकर वेदों में कई स्थानों में सम्बोधित किया गया है। विष्णु और इन्द्र परस्पर एक-दूसरे के सहायक रूप में वर्णित किए गए हैं। विष्णु के श्रेष्ठ कर्म से इस मन्त्र में तात्पर्य है उनका त्रिविक्रम। यह मन्त्र ऋग्वेद[14] तथा सामवेद[15] में भी है।

इस सूक्त का सातवाँ मन्त्र अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। यह मन्त्र ऋग्वेद[16] यजुर्वेद[17] सामवेद[18] एवं कूर्मपुराण में भी आता है। कूर्मपुराण में तो इसी मन्त्र से विष्णु पूजन का वैदिक विधान मिलाता है।[19] इससे इस मन्त्र की महत्ता स्वतः सिद्ध है, मन्त्र है-

"तद् विष्णोः परमं पदं सदा पश्यन्ति सूरयः।
दिवीव चक्षुराततम्॥"[20]

अर्थात्— बुद्धिमान् यजमान विष्णु के परमपद को, स्वर्गलोक में स्थित सूर्य की भाँति साधारण आँखों से आसानी से देख सकते हैं। इस मन्त्र को विष्णु से सम्बन्धित एक महत्त्वपूर्ण मन्त्र माना जाता है।

आठवें मन्त्र में वर्णित् है कि—"हे विष्णु देव! आप अपने दोनों हाथों के द्वारा द्युलोक, भूलोक एवं अन्तरिक्षलोक से हमें बहुत से साधन प्रदान करो"—

"दिवो विष्ण उत वा पृथिव्या महो विष्ण उरोरन्तरिक्षात्।
हस्तौ पृणस्व बहुभिर्वसव्यैराप्रयच्छ दक्षिणादोत सव्यात्॥"[21]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अथर्ववेद के इस सूक्त से भगवान् विष्णु के सर्वव्यापक एवं विराट स्वरूप एवं शक्तिशाली व्यक्तित्व का पता चलता है। साथ ही पूर्ण रूप से 'वामनावतार 'की परिकल्पना को भी एक आधार मिलता है। भगवान् विष्णु के सृष्टिपालक स्वरूप की चर्चा भी इस सूक्त में उपल्ब्ध है। विष्णु से प्रार्थना की गई है कि वे यजमान को इस लोक में ही नहीं द्युलोक एवं अन्तरिक्ष लोक में भी मुक्त हस्त से सभी प्रकार के साधन प्रदान करने की कृपा करें।

अथर्ववेद के सातवें कांड के 26वें, तीसवें एवं पैंतालिसवें सूक्त में भी एक या दो मन्त्रों में विष्णु स्तुति वर्णित है। सातवें कांड के 26वें सूक्त के देवता तो विष्णु ही हैं, पर उसके साथ वरुण देव की स्तुति भी वर्णित है–

"ययोरोजसा स्कभिता रजांसि यौ वीर्यैं वीरतमा शविष्ठा।
यौ पत्येते अप्रतीतौ सहोभिर्विष्णुगमन् वरुणं पूर्वहूतिः॥"[22]

अर्थात्–"जिन विष्णु और वरुण के बल के द्वारा पृथ्वी आदि स्थान दृढ़ किए गए हैं, जो विष्णु और वरुण अपने वीरतापूर्ण कर्मों के द्वारा अतिशय बलशाली ऐश्वर्य प्राप्त कर चुके हैं, उन विष्णु और वरुण को सभी देवों से पहले किया गया आह्वान प्राप्त हो।" इस मन्त्र में गूढ़ार्थ छिपा हुआ है। सूक्ष्म दृष्टि से आकलन करने पर हम पाते हैं कि प्रथम पूज्य देवता के रूप में विष्णु एवं वरुण देवता का आह्वान किया गया है। इससे विष्णु देवता की महत्ता एवं वरुण से उनके तादात्म्य का पता चलता है। "पृथ्वी आदि स्थान दृढ़ किए गए हैं" –इस वाक्य में यह भाव छिपा है कि वरुण अर्थात् जल के देवता और विष्णु, जिन्हें सूर्यस्वरूप मानकर भी स्तुति की गई है, वे सूर्यस्वरूप विष्णु अर्थात्–जल एवं सूर्यशक्ति का मेल, पृथ्वी को सुदृढ़ बनाता है। यहाँ हम प्रचुर वर्षा के फलस्वरूप शस्य-श्यामला धरती की कल्पना का बीज निस्सन्देह पाते हैं। इस मन्त्र में प्राचीन वैदिक ज्ञान का गूढ़ संकेत भी मिलता है।

इसी सूक्त का दूसरा मन्त्र है–

"यस्मेदं प्रदिशि यत् विरोचते प्र चानति विचचष्टे शचीभिः।
पुरा देवस्य धर्मणा सहोभिर्विष्णुगमन् वरुणं पूर्वहूतिः॥"[23]

अर्थात्–"विष्णु और वरुण की आज्ञा से यह जगत् विशेष रूप से दीप्त है, साँस लेता है और अपने-अपने कर्मों का फल देखता है। जगत को प्रकाशित करनेवाले विष्णु एवं वरुण को फल चाहनेवाले लोग अपने प्रथम आह्वान से जोड़ें।"

मात्र दो मन्त्रों में विष्णु-वरुण सामंजस्य की परिकल्पना अद्भुत है। दूसरे मन्त्र में विष्णु एवं वरुण की महत्ता के वर्णन साथ-साथ प्राणी की दो महत्त्वपूर्ण जरूरत प्रकाश एवं साँस की महत्ता पर भी चर्चा है। सूर्यस्वरूप विष्णु एवं वरुण के कारण ही यह संसार दीप्त है एवं फलता-फूलता है। जिस प्रकार वरुण एवं विष्णु जल एवं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सूर्यरूप होकर पृथ्वी का पोषण करते हैं, एक शुभ कृत्य को सफल बनाते हैं, ठीक उसी प्रकार इस जगत् में कर्मों का शुभ फल निश्चित है, ऐसे स्तोता/यजमान जो कर्म का फल प्राप्त करने की इच्छा रखते हैं, उन्हें विष्णु एवं वरुण का प्रथम आह्वान करना चाहिए, यह तथ्य प्रतिध्वनित होता है। सूक्ष्म दृष्टि से देखा जाए तो एक और रहस्य ध्वनित होता है। कदाचित् ये "सूर्य नमस्कार" की प्रवृत्ति का संकेत हो। सूर्य को जल से अर्घ्य देने की शुभ पुण्यमयी शाश्वत् परम्परा का बीज हो।

अथर्ववेद के सप्तम् कांड में तीसवें सूक्त के दो मन्त्रों में भी विष्णु एवं अग्नि देव की सम्मिलित स्तुति वर्णित है इन मन्त्रों में कहा गया है कि—

"हे अग्नि एवं विष्णु! तुम दोनों महात्म्यपूर्ण, महान गोपनीय एवं टपकनेवाले घृत को पिओ। अग्नि और विष्णु प्रत्येक यज्ञशाला में रत्न धारण करते हैं। तुम दोनों का तेज महान एवं सबको प्रसन्न करनेवाला है। यथा—

"अग्नाविष्णू महि तद् वां महित्वं पाथो घृतस्य गुह्यस्य नाम।
दमेदमे सुप्त रत्ना दधानौ प्रति वां जिह्वा घृतमा चरण्यात्॥
अग्नाविष्णु महि धामप्रियं वां वीथो घृतस्य गुह्या जुषाणौ।
दमेदमे सुष्टुत्या वावृधानौ प्रति वां जिह्वा धृतमुच्चरण्यात्॥"[24]

इस मन्त्र से भी सूर्यरूप विष्णु एवं अग्निदेव की महत्ता, शुभ कृत्य एवं यज्ञ के समय इन दोनों की विशेष अर्चना पद्धति का ज्ञान होता है। यज्ञ में विष्णु की प्रधानता घोषित होती है।

"अग्नि और विष्णु प्रत्येक यज्ञशाला में रत्न धारण करते हैं"

इस वाक्य में समाहित गूढ़ार्थ है—विष्णु एवं अग्नि के बिना यज्ञकार्य सम्भव नहीं हो सकता, परिपूर्ण नहीं हो सकता। इस मन्त्र में 'रत्न धारण' करने से तात्पर्य है, यज्ञ में प्रमुख, सर्वोच्च स्थान प्राप्त करना। वेदों के मन्त्र मनन करने से कई अर्थ प्रकट करते हैं। हो सकता है "रत्न धारण" का अर्थ विभिन्न विद्वान भिन्न-भिन्न लगाएँ। परन्तु एक तथ्य पर सब का मतैक्य होगा ही कि यज्ञ में प्रमुख स्थान विष्णु एवं अग्नि देवता का ही है। ये शास्त्र प्रमाणित बात है।

इन्द्र एवं विष्णु को सम्मिलित रूप से समर्पित सातवें कांड के पैंतालिसवें सूक्त में मात्र एक मन्त्र है, जिसमें वर्णित है—"हे इन्द्र एवं विष्णु! तुम दोनों सर्वदा विजयी बनो। किसी से कभी पराजित न होओ। तुम दो, असुरों के साथ जिस वस्तु की स्पर्धा करते हो, वह वस्तु लोक, वेद और वाणी रूप में स्थित होकर हजारों से भी बढ़कर हो"—

"उभा जिग्यथुर्न परा जयेथे न परा जिग्ये कतरश्चनैनयोः।
इन्द्रश्च विष्णो यदपस्पृधेथां त्रेधा सहस्रं वि तदैरयेथाम्॥"[25]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस मन्त्र से विष्णु का स्वरूप उभरकर सामने आता है। उनकी शक्ति, वीरता, अपराजेयता, उत्कृष्टता एवं सर्वव्यापकता के साथ-साथ इन्द्र से उनकी मित्रता का वैदिक प्रमाण से मिलता है।

इन मन्त्रों के अतिरिक्त अथर्ववेद के कुछ सूक्तों में विष्णु के नामोल्लेख एवं विभिन्न कृत्यों से सम्बद्ध बातें भी प्राप्त होती हैं। जैसे एक स्थान पर वर्णित है कि, "विष्णु एवं आकाश हमारी रक्षा करें– "पातु नो विष्णुरुतद्यौः।"[26]

उसी प्रकार पंचम कांड के 'अग्निसूक्त' का एक मन्त्र है, जिसमें कहा गया है कि, "भगवान विष्णु भली-भाँति किए गए तपों का फल दें। यह आहुति विष्णु के निमित्त उत्तम हो"–

"विष्णुर्युनक्तु बहुधा तपांस्यस्मिन् यज्ञे सुयुजः स्वाहा।"[27]

तृतीय कांड के "प्राची सूक्त" के एक मन्त्र में तो विष्णु से सम्बन्धित अद्भुत बातें मिलती हैं। यथा–"नीचे की ओर जानेवाली अर्थात् स्थिर दिशा हम पर अनुग्रह करे। विष्णु इसके अधिपति हैं। काली गर्दनवाला साँप इसका रक्षक है और वृक्ष इसके दुष्ट विनाशकारी बाण हैं। इसके अधिपति विष्णु को हमारा नमस्कार प्रसन्न करनेवाला हो। हे विष्णु आदि देवो! जो शुत्र हमें बाधा पहुँचाते हैं, अथवा हम जिनसे द्वेष रखते हैं, उन्हें हम तुम्हारे भक्षण हेतु तुम्हारी दाढ़ में रखते हैं।"[28]

अथर्ववेद के अध्ययन से यह निष्कर्ष निकलता है कि भले ही अन्य देवों की अपेक्षा भगवान् विष्णु से जुडे मन्त्रों की संख्या इस वेद में भी कम है, फिर भी विष्णु की महत्ता सर्वव्यापकता एवं वीरता की गाथा उभरकर सामने आती है। विशेषतया सूर्य रूप में विष्णु की स्तुतियाँ प्राप्त होती हैं। विष्णु से जुड़े जितने भी मन्त्र मात्रांश हैं, वे कालान्तर में वैष्णवधर्म की सर्वव्यापकता के मूल मे अवश्य विद्यमान हैं।

संदर्भ

1. वैदिक साहित्य का समालोचात्मक इतिहास– डॉ. रामविलास चौधरी, पृ. 94
2. "नवधाऽथर्ववोवेदः"– पतंजलि महाभाष्य
3. न्यायमंजरी–जयन्त भटट् कृत–पृष्ठ 237-38
4. प्राचीन भारती धर्म– प्रो. आनन्द सिंह–पृष्ठ 12 (दिल्ली विश्वविद्यालय)
5. अथर्ववेद-7/27/1– शौनकीय, विश्वबन्धु सम्पादित–1961 (विश्वेश्वरानन्द वैदिक शोध संस्थानम्)
6. अथर्ववेद–7/27/2
7. अथर्ववेद-7/27/3
8. अथर्ववेद-7/27/4
9. सामवेद-उत्तरार्चिक-18/2/1

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

10. ऋग्वेद-1/22/17
11. अथर्ववेद-7/27/5
12. सामवेद-उत्तरार्चिक-18/2/2
13. अथर्ववेद-2/27/6
14. ऋग्वेद-1/22/19
15. सामवेद-उत्तरार्चिक -18/2/3
16. ऋग्वेद-1/22/20
17. यजुर्वेद-पूर्वार्द्ध-6/5
18. सामवेद-उत्तरार्चिक-18/2/4
19. कूर्मपुराण-उपरि विभाग -18/94
20. अथर्ववेद-7/27/7
21. अथर्ववेद-7/27/8
22. अथर्ववेद-7/26/1
23. अथर्ववेद-7/26/2
24. अथर्ववेद -7/30/1-2
25. अथर्ववेद- 7/45/1
26. अथर्ववेद-6/3/1
27. अथर्ववेद-5/26/7
28. 3/27/5/-"ध्रुवा दिग् विष्णुरधिपतिः....वो जम्भेदध्मः।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आंचलिक उपन्यास

डॉ. मधुकर गंगाधर*

प्रत्येक उपन्यास, स्थान, काल, संस्कृति या संस्कार विशेष के लोगों को लेकर लिखा जाता है। इस अर्थ में कोई भी उपन्यास गैर-आंचलिक नहीं कहा जा सकता है। सर्जन-तत्त्व की प्रधानता के जरिए उपन्यास के प्रकृति-निर्णय का सिद्धांत बनाया जाए, तो 'आंचलिकता' एक विशिष्ट औपन्यासिक दृष्टि है।

आंचलिक उपन्यास तथा अन्य सभी उपन्यासों में एक सही अन्तर यह है कि जहाँ अन्य उपन्यासों में देश, काल एवं खास किस्म के संस्कार वाले पात्रों के जरिए घटनाओं के उत्कर्ष तथा चरित्रों के मनोविश्लेषण द्वारा जीवन के किसी सर्वमान्य सत्य का उद्घाटन या समर्थन होता है, वहाँ, आंचलिक उपन्यास एक ही प्रकार के परिवेश में, जीवन के सर्वमान्य सत्य-उद्घाटन के बदले, क्षेत्र-विशेष का सत्य उद्घाटित करता है, चारित्रिक विकास के लिए पात्रों के बजाय, क्षेत्र की सम्पूर्ण जनसंख्या को चुनता है। अन्य उपन्यासों के पात्र अपने 'किस्म-विशेष' के प्रतिनिधि होते हैं, आंचलिक उपन्यास के पात्र क्षेत्र-विशेष जीवन-प्रथा के विभिन्न स्तरों, विभिन्न प्रकारों एवं विभिन्न दलों का प्रतिनिधित्व करते हैं। अतः आंचलिक उपन्यास का आदर्श व्यक्तित्व का निरूपण एवं जीवन के सर्वमान्य सत्य की अभिव्यक्ति नहीं, बल्कि भौगोलिक या सांस्कृतिक सीमा-बद्ध क्षेत्र विशेष के सामान्य जीवन के सत्यों का अन्तर या एकरूपता निदर्शन है। देश, काल, जाति, धर्म, भौगोलिक स्थिति, आर्थिक-सामाजिक-प्रणाली, रीति-नीतियों के मनोवैज्ञानिक रहस्य के बीच स्थापित क्षेत्रीय-जीवन में सम्पूर्ण विश्व-जीवन से या विश्व-जीवन के अन्य क्षेत्रों से जो विशिष्ट अन्तर आ जाता है, वही आंचालिक उपन्यास का दृष्टिकोण है।

हमारी मानव-सभ्यता खंड-गत है। धरती के अलग-अलग भू-खण्डों में प्रकृति के साधन भिन्नतर होते गये, तदनुरूप मानव-जीवन की साधना भी रूपायित होती गई। इसलिए हम अन्ततः खंड-गत या क्षेत्रीय संस्कृति के सामाजिक प्राणी बन सके।

प्रतिष्ठित कवि-कथाकार, मो. 9350208252/9971768669.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साहित्य मूलतः संस्कृति का उद्गायन है। अतः जहाँ सामान्य उपन्यासों में पात्रों के क्षेत्रीय जीवन आंचलिक वातावरण दिये बगैर या गौणरूप से इसका प्रयोग कर हम चरित्र-विकास में विश्व-जीवन के सर्वमान्य सत्य का संघटक खोजने का प्रयास करते हैं, वहाँ आंचलिक उपन्यासों में, विशिष्ट आंचलिक वातावरण में, दिन-प्रतिदिन की सामान्य घटनाओं तथा वर्ग-विशेष के प्रतिनिधि पात्रों की जीवन-प्रक्रिया के माध्यम से एक खास भौगोलिक संस्कृति का उद्घाटन वांछनीय स्वीकारते हैं। ऐसे उपन्यासों में, घटनाएँ इतिहास-परम्परा से अविच्छिन्न नहीं रहतीं, न पात्र अपने वर्ग की आदतों से मुक्त। घटना का हर चक्र एवं पात्रों की हर प्रक्रिया भौगोलिक सीमान्त का संकेत होता है। ऐसे उपन्यासों की कोई भी इकाई, इकाई न होकर संघ होता है। आंचलिक उपन्यासों का लक्ष्य, संतुलन या संक्रमण—किसी भी काल में, किसी क्षेत्र की सम्पूर्ण भौगोलिक संस्कृति का प्रतिनिधित्व करता है। इस तरह, यह धारणा कि किसी देश या देश-खण्ड की प्राकृतिक बनावट, वहाँ के लोगों की सामाजिक आदतें, रीति-रिवाज तथा स्थानीय भाषा के प्रयोगों द्वारा, एकदम नपुंसक ढंग से, किसी उपन्यास की पृष्ठभूमि तैयार कर लेना या किसी क्षेत्र-विशेष के लिए संवेगात्मक पक्षाकर्षण की भाषा द्वारा रिपोर्ताजों के कुछ असम्बद्ध चित्र प्रस्तुत कर देना, उपन्यास को आंचलिक बना देता है, भ्रामक है।

आंचलिक उपन्यासों का आदर्श केवल किसी क्षेत्र की चित्र-गत वास्तविकता प्रस्तुत करना नहीं, बल्कि सम्पूर्ण जीवन-प्रणाली की ऐतिहासिक एवं वैज्ञानिक धारणा प्रस्तुत करना है। प्राकृतिक एवं स्थूल सामाजिक वास्तविकताओं की चित्रगत प्रस्तुति तो मात्र एक ढाँचा है। आंचलिकता वादियों का मत है कि जैसे लोग अपने क्षेत्र की विशिष्ट भौगोलिकता में अपने को ढालकर सामंजस्यपूर्ण बनाने का प्रयास करते हैं तथा संस्कृति व सामाजिकता की एक खास प्रथा गढ़ते हैं, वैसे ही आंचलिक उपन्यास की एक रस-सिद्ध विलक्षण, मगर सामंजस्यपूर्ण, सिद्धि होनी चाहिए।

विशुद्ध आंचलिक उपन्यास एक कठिन धारणा है। वस्तुतः आज के अधिक उपन्यासों में, जिन्हें आंचलिक उपन्यासों की श्रेणी में रखा जाता है, आंचलिकता का आभास मात्र रहता है। यह विषय-वृत्ति 'सामाजिक उपन्यास' की संज्ञा से विभूषित उपन्यासों में देखने को आती है। हर सामाजिक उपन्यास में खास क्षेत्र की जीवन-प्रणाली का चित्रण रहता है तथा लेखक की कोई सुधारवादी मनोवृत्ति साथ लगी चलती है। ऐसे उपन्यास भी, यद्यपि निम्नतम अर्थ में, आंचलिकता का आभास रखते हैं। श्रेणी-निर्णय की समस्या को सामने रखकर, सिद्धांत रूप में इन उपन्यासों को अंशगत आंचलिक भी नहीं कहा जा सकता है। ऐसे उपन्यास, निःसन्देह, एक क्षेत्र-विशेष के सामाजिक जीवन की प्रणालियों को सामने लाते हैं, किन्तु यह उस क्षेत्र की सम्पूर्ण सांस्कृतिक प्रणाली का एक अंग ही होता है। उस अंचल की सांस्कृतिक परम्परा से सम्बद्ध-असम्बद्ध हर प्रकार के बौद्धिक तर्कों द्वारा सुधारवादी उद्देश्य को पूरा किया

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जाता है, उस क्षेत्र की सांस्कृतिक प्रणाली में बनी विचार-धाराओं द्वारा संस्कृति की ऐतिहासिक प्रगतिशीलता को मुखरित करने का प्रयास नहीं किया जाता है। ऐसे उपन्यास यथार्थवादी धारा की विश्व-समस्त दार्शनिक परम्परा को ग्रहण करते हैं। इनके चरित्र-विकास में सांस्कृतिक परम्परा को ध्यान में नहीं रखा जाता है, बल्कि उपन्यासकार का अपना सुधारवादी आदर्श ही कार्यरत रहता है। अंचल की सामाजिकता को उसी रूप में एवं उतना ही लिया जाता है, जितने से उपन्यासकार की पृष्ठभूमि तैयार हो जाती है। ऐसे उपन्यासों में घटनाओं का सृजन भी इसी में होता है।

आंचलिक उपन्यास में घटनाएँ स्वभाव-कल्पित दैनिक होती है। अंचल की भौगिलिक संस्कृति के वातावरण में होनेवाले मानवीय कार्यकलापों का यथाचित्र एवं वैज्ञानिक विकास की कसौटी पर रखकर एक सांस्कृतिक दृष्टिकोण बनाया गया है। आंचलिक उपन्यासकार का दायित्व इतना ही है। इस तरह हम देखते हैं कि अगर अंचल-विशेष के सामान्य जीवन को उपन्यास की पृष्ठ-भूमि बनाया जाए, तो भी, सामाजिक उपन्यासकार की प्रक्रिया से आंचलिक उपन्यासकार की प्रक्रिया भिन्न होती है।

उन्नीसवीं सदी के अंग्रेजी, रूसी एवं फ्रांसीसी उपन्यासकारों के अधिकांश महान उपन्यास देश-काल के वातावरण में यथार्थ-चित्रण के साथ लिखे गये। किन्तु, उनमें से केवल कुछ ही कृतियाँ आंचलिक कही जायेंगी और कुछ अंश-गत आंचलिक। कारण स्पष्ट है। इन सभी उपन्यासों में उपन्यासकार ने अपने आदर्शों की पुष्टि के लिए अंचल के खंड-गत जीवन को प्रश्रय दिया है। इसकी आंचलिक पृष्ठ-भूमि 'पैसिव' है– उष्मा रहित, निस्तेज नमूना। आंचलिक उपन्यासों में यह जाग्रत रहा करती है तथा आंचलिक सभ्यता को विभिन्न पहलुओं में अभिव्यक्ति देती है। महान कथाकार प्रेमचन्द ने अपने उपन्यासों में उत्तरप्रदेश के गाँवों के अगणित चित्र प्रस्तुत किये, किन्तु उनके उपन्यास आंचलिक नहीं हैं। कारण, हर उपन्यास में उपन्यास के ऊपर उनका अन्याय-विरोधी आदर्शवाद हावी रहा है। सारी घटनाएँ एवं चरित्र-विकास उनके आदर्शवाद की भित्ति की तैयारी, पृष्ठ-पोषण के लिए हैं। ऐसे उपन्यासों में अक्सर पात्र ऐसा कुछ कर बैठता है, जो उस भौगोलिक परिवेश में सम्भव एवं स्वाभाविक नहीं होता। घटनाएँ भी अक्सर इस रूप में घटती दिखलाई जाती हैं, जो अप्रत्याशित एवं असाधारण लगती हैं। ऐसा संयोजन औपन्यासिक भूल नहीं, उद्देश्य-मूलक प्रयास है। लेखक अपने आदर्श की सिद्धि के लिए नियत किये गये रास्ते से परिस्थितियों एवं विकास को आगे बढ़ाता है। वहाँ की घटनाएँ, चरित्र-विकास, परिस्थितियों का मार्ग सभ्यता की ऐतिहासिक प्रवृत्ति में पहले से बनी बनाई रहती हैं। बनी लीक पर चलते हुए क्षेत्रीय जीवन से छेड़-छाड़ किये बगैर, उसकी वैज्ञानिक व्याख्या प्रस्तुत करना ही आंचलिक उपन्यासकारों का दायित्व है। इस प्रस्तुति में सन्तुलन या संक्रमण की सारी स्थितियाँ स्वयमेव समाहित हो जाती हैं। क्षेत्र से बाहर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ोने वाले सामाजिक, सांस्कृतिक आंदोलन को भी वह अपने वृत्त में लेता है। किन्तु सी सीमा तक, जहाँ तक क्षेत्रीय जीवन में इन बाहरी आंदोलनों में परिवर्तन आता । आंचलिक उपन्यास ऐसे ऊँचे धरातल पर उस प्रक्रिया को आत्मसात करता है, जेसके द्वारा आँचलिक संस्कृति का सत्य, समस्त विश्व-संस्कृति के सत्य में अपनी त्ता मिलाकर अपने क्षेत्र को अधिक-से-अधिक प्रसारित कर लेता है। यहाँ यथार्थ की सेद्धि से अधिक उसकी प्रक्रिया महत्त्वपूर्ण होती है।

हार्डी, डिकेन्स, शरतचन्द्र एवं प्रेमचन्द जैसे महान लेखकों में आंचलिकता का शक्त विभ्रम है। वैसे, ये उपन्यासकार अपने में महान हैं और अपने स्थान के समाज ा कोना-कोना झाँक आये हैं। इस तरह के लेखकों की कृतियों में आंचलिकता का सा आभास है कि अक्सर लोग भ्रम में पड़ जाते हैं। प्रेमचन्द ने उत्तर प्रदेश के अनेक ाँवों की कथा-भूमि बनाकर भी उनकी स्थानीयता को ग्रहण नहीं किया। उनकी मस्या सम्पूर्ण उत्तर-भारत के 'किसान वर्ग' की समस्या है।

चार्ल्स डिकेन्स ने इंग्लैंड के सामाजिक जीवन पर उभरी औद्योगिक क्रांति की षम प्रतिक्रियाओं की महानतम वास्तविकताओं को सफलता के साथ उतारा है। ेकिन इन प्रतिक्रियाओं में इंग्लैंड का कोई सम्बद्ध ऐतिहासिक-सांस्कृतिक पक्ष द्घाटित नहीं होता है। प्रेमचन्द की तरह उनकी समस्या भी औद्योगिक क्रांति से ीड़ित यूरोपीय जनता की सर्वनिष्ठ समस्या है। हार्डी ने 'वेसेक्स नॉवेल्स' के नाम पर ितने उपन्यासों का सृजन किया, उनमें आंचलिक वातावरण का प्रयोग तो ठीक हुआ, कन्तु किसी आंचलिक संस्कृति के उद्घाटन के बदले 'भाग्यवाद' जैसे मानव-जीवन े सामान्य सत्य का उद्घाटन मात्र हो पाया। घटनाओं का काल्पनिक सृजन थाकथित वेसेक्स प्रदेश की संस्कृति को ध्वनित नहीं करता, बल्कि भाग्यवाद की रिणति को सिद्ध करने के लिए संयोगात्मक कथा-सूत्र का ताना-बाना तैयार करता । हार्डी ने स्थानीय वातावरण कुछ हद तक सम्भाला है। किन्तु, इन उपन्यासकारों ी तुलना में शरत्चन्द्र आंचलिकता के अधिक निकट पड़ते हैं। उन्होंने 'पल्ली माज' के जरिए बंगाल के गाँवों की सामजिकता के सम्बद्ध चित्र प्रस्तुत किए हैं। कन्तु, इनकी कृतियों में आंचलिक संस्कृति की परिणति न होकर, क्रांति-मुखी ादर्शवाद की ही परिणति हुई। 'पल्ली समाज' प्रेमचन्द एवं डिकेन्स की सामाजिकता वं हार्डी की स्वाधीनता के सन्धि-स्थल पर खड़ा है। इसलिए, आंचलिकता का बड़ा ोखा वहीं उपस्थित हो सकता है। ऐसी तमाम रचनाएँ विश्वव्यापी हैं।

× × ×

पन्यास में आंचलिकता का आन्दोलन वस्तुतः अमरीकी साहित्य से प्रारम्भ होता है। ामान्यतः आंचलिक शब्द कैथर, फॉकनर, स्टेनवेक की रचनाओं, जो यथार्थवादी ेत्र-केन्द्रित हैं, के लिए लागू किया गया। इनका दावा है कि "इस नए औपन्यासिक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दृष्टिकोण का आधार संयुक्त राज्य अमेरिका के किसी खास क्षेत्र की भौगोलिक तथा आर्थिक-सांस्कृतिक खासियत है जिन्हें व्यक्त करने के लिए वैज्ञानिक माध्यम अपनाया गया। ऐसे क्षेत्र-केन्द्रित औपन्यासिक दृष्टिकोण के लिए जाति और संस्कृति का विद्वतापूर्ण, शास्त्रीय एवं विज्ञान-सम्मत अनुसन्धान आवश्यक है। यह चित्रगत थोथे यथार्थवाद से संस्कृति को ऐतिहासिक पृष्ठभूमि की व्याख्या की ओर ले जाता है।" अठारहवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में विटहार्ट के उपन्यासों के जरिए स्थानीयता को वातावरण के रूप में ग्रहण करने की नई प्रथा अमरीकी उपन्यासों में चली। वस्तुतः हार्ट ने ही आधुनिक आंचलिकतावाद को जन्म दिया, यद्यपि इसके वैज्ञानिक परिणाम से वह दूर रहा। उसने अपने उपन्यासों में मानवीय संस्कृति के ऊपर भौगोलिक स्थिति एवं जलवायु के प्रभावों का अध्ययन किया। सन् 1888 ई. में प्रकाशित उनके उपन्यास 'एफिलिस ऑफ सीरीज' में संस्कृति के दो भिन्न प्रकारों को दिखाया गया है तथा एक हद तक एन्थ्रोपोलोजिकल अध्ययन भी प्रस्तुत किया गया। अपने दूसरे उपन्यास 'द एनसेस्टर्स ऑफ पीटर आथरली' में भी उसी तरह मिश्रित अंगेजी वंश-परम्परा की संस्कृतियों का उद्गायन है। इन उपन्यासों ने आंचलिकता को धर्म की तरह स्वीकारा।

समकालीन हैरेट पीटर स्टो ने अपनी कृति 'मिनिंस्टर्स बूचिंग' के जरिए हार्ट की साझेदारी में आंचलिकता के महत्त्व को पूरी तरह साबित करने की कोशिश की। स्टो के उपन्यासों में कथा एवं घटनासूत्र की मनोरंजकता पर अधिक खयाल किया गया है। हार्ट के उपन्यासों में अगर इन बातों पर ध्यान दिया जाता, तो वे निश्चय ही, आंचलिक उपन्यासों में श्रेष्ठ गिने जाते। स्टो का 'ओल्टाउन फॉक' ग्रामीण उपन्यास है, जिसमें आंचलिक होने का माद्दा है। इस उपन्यास में एक देहाती अंचल की संस्कृति, वहाँ के लोगों का सामाजिक तथा आर्थिक जीवन, जनता के मनोविज्ञान, रीति-रिवाजों आदि का चित्रण करते हुए स्पष्टतः स्वीकारा गया है कि "मेरे लिए यह मात्र कथा-लेखन से बड़ा काम है।" स्टो का प्रयास सचमुच वैज्ञानिक रहा, यद्यपि इस कार्य की दुर्गम कठिनाइयों की दृष्टि से उसकी रचना-शक्ति सदा ही सीमित रही एवं औपन्यासिक संगठन की शिथिलता, जातिवाद के पक्षपात एवं संवेगात्मक भाषा प्रयोगों की कमजोरी से बच नहीं सकी।

स्टो की परम्परा में दूसरा नाम जिवेट का है। इनका उपन्यास 'द कण्ट्री ऑफ द प्वाइण्टेड पार्स' को उन्नीसवीं सदी के अमरीकी आंचलिक उपन्यासों में श्रेष्ठ माना जाता है। इस उपन्यास में, तब तक के सभी आंचलिक उपन्यासों में पाई जाने वाली शिल्प-गत शिथिलता दूर हो गई है। अन्य उपन्यासों की तरह स्थानीयता की सतह की अतिशय निर्भरता भी इस उपन्यास में नहीं है। इसके चरित्र, वातावरण, घटनाएँ यथार्थ व गतिशील है। मिला-जुलाकर प्रस्तुत उपन्यास उच्चकोटि का आंचलिक उपन्यास है। जिवेट ने आंचलिकता की अच्छी समाज-शास्त्रीय-परम्परा पाई थी। चरित्र पर जलवायु

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के असर की बात अक्सर सुनी जाती है। स्थान का भी उन पर जबर्दस्त प्रभाव पड़ता है तथा वे तमाम चीजें, जो हमें घर के अन्दर या बाहर घेरे रहती हैं, हमारे जीवन में, हमारे आचार-व्यवहारों में अपनी प्रकृति को मनवाती रहती हैं। प्रस्तुत उपन्यास में इस उक्ति का संतुलित पाक हुआ है। "अन्तर्दृष्टि की तूलिका से अंकित, संवेदना की प्रतिभा से रंजित, स्मृति की जीवन्त चेतना से पुनर्स्पर्शित तथा सागर आकाश की पृष्ठभूमि—जो जिवेट की अपनी खास बात है" से सुसज्जित इस उपन्यास के चरित्र कथा-शिल्प के क्रांतिकारी प्रयोग हैं। प्रस्तुत उपन्यास में कथा-प्रवाह एवं परिच्छेदों का संयोजन ऐसा सन्तुलित हुआ है कि परिच्छेदों के जोड़ तक महसूस नहीं होते।

इस सदी के अन्य अमरीकी आंचलिक उपन्यासकारों में रूडयार्ड इगल्सटन, वाशिंगटन केब्ल, चाण्डलर तथा सिडनी पोर्टर आदि के नाम विख्यात हुए हैं। ये उपन्यासकार आंशिक रूप से ही आंचलिक हैं, क्योंकि आंचलिकता का इनका सारा प्रयास 'लोकल कलर' तक ही रह जाता है। इगल्सटन ने स्कूल मास्टर, सरकिट राइडर, रौक्सी आदि कृतियों के जरिए ख्याति पाई, किन्तु सबसे अधिक बिखरा रूप 'ग्रेयसन्स' में उपस्थित किया है। आंचलिकता की दृष्टि से 'सरकिट राइडर' अधिक ख्याति पा सका। प्रस्तुत उपन्यास में उन्नीसवीं सदी के पूर्वार्ध के पश्चिम-मध्य अमेरिका के सामाजिक जीवन का चित्रण है। वाशिंगटन केब्ल को ऐसी सफलता नहीं मिली। "केब्ल, न्यू आर्लियन्स का साहित्यिक अनुसन्धानकर्ता 'रेकार्डर' होने का दावा रखता है।" उसने आंचलिकता की परम्परा का मात्र निर्वाह किया। हेरिस इनसे भिन्न वातावरण लेकर उपस्थित हुआ। वह निग्रो-जीवन का अकेला कलाकार है। 'अंकल रेमस' सीरिज की इनकी रचनाएँ ख्याति-लब्ध हुईं। अमरीकी इतिहास की दृष्टि से हेरिस की रचनाएँ उत्तर तथा दक्षिण भागों के सांस्कृतिक संयोजन के लिए महत्त्वपूर्ण हैं। थियोडोर रूजवेल्ट ने इन्हें आंचलिक विरोधाभासों का सफल विश्लेषण माना है। विलियम सिडनी पोर्टर, जो साहित्य में 'अमेरिकी मोपांसा' के विश्लेषण के साथ-साथ उतरा, ओ. हेनरी के नाम से लिखने लगा। इनकी रचनाओं में आंचलिकता निम्नतम रूप में है, इतना निम्नतम कि इन्हें आंचलिक कथाकार के रूप में हिचक के साथ ही रखा जाता है। सिर्फ 'द फोरमिलियन' में इन्होंने न्यूयार्क के वातावरण में वहाँ के सामाजिक प्रश्नों को मात्र स्पर्श किया है। अमरीकी साहित्य में यथार्थवाद तथा स्वाभाविकतावाद की परम्परा ने भी आंचलिक उपन्यासों को अच्छी भूमि दी। लेकिन जिन महान उपन्यासों, उपन्यासकारों के नाम से यथार्थवाद एवं स्वाभाविकतावाद की परम्परा अमरीकी साहित्य में विख्यात रही, उन्हें आंचलिक उपन्यासकारों की श्रेणी में लाते वही दिक्कत उपस्थित होती है, जो डिकेन्स और हार्डी के साथ है, ऐसे उपन्याकारों में प्रमुख मॉरिस एवं वाटसन हैं।

प्रथम विश्वयुद्ध के बाद के अमरीकी उपन्यासों में आंचलिकता की लहर पुनः बही। इस काल में बड़े आंचलिक उपन्यासकारों में विला कैथर, फॉकनर एवं स्टेनवेक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मुख्य माने जाते हैं। यह युग आंचलिक उपन्यासों की परम्परा में आधुनिकता लाने वाला माना जा सकता है। इस युग की मुख्य विशेषता यह रही कि उपन्यासकारों ने आंचलिक संस्कृति का मानव-शास्त्रीय सत्य प्रस्तुत करते हुए भी आधुनिक सभ्यता के सर्व-समन्वयवाद को धर्म की तरह ग्रहण किया। प्रभाव की दो धाराएँ स्पष्ट हैं। आंचलिकता का प्रभाव सारा जिवेट का है एवं अन्तर्राष्ट्रीयता का प्रभाव प्रख्यात अमरीकी उपन्यासकार हेनरी जेम्स का।

विला कैथर को पश्चिमी प्रदेशों का विशेषज्ञ माना जाता है। लेकिन वे कभी किसी खास अंचल से बँधी नहीं रहीं। वस्तुतः उनके उपन्यास अन्तःआंचलिकता को चित्र-वर्णन के रूप में पाते हैं। मिसिसिपी के उत्तरी प्रदेशों की पट-भूमि पर लिखे गये इनके उपन्यास बड़े ही यथार्थ एवं गतिमान वर्णन प्रस्तुत करते हैं। लेकिन इस प्रवाह में आंचलिकता की प्रकृति खो-सी जाती हैं। स्टेनवेक उस युग के उपन्यासकार हैं, जब अमेरिका महादेश से ऊपर उठकर स्वतन्त्र विश्व की संज्ञा पाने का अधिकारी हो लेता है।

स्टेनवेक स्वभाव से ही संस्कृति की अमरता एवं अनन्त विस्तार का विश्वासी है। उनके उपन्यासों में 'फॉरगॉट्न विलेज' एक ऐसा दर्पण है, जिसमें मेक्सिको के एक गाँव का अंग-प्रत्यंग झलक उठता है।

आंचलिक उपन्यासों की सही परम्परा हमें अमरीकी साहित्य में ही मिलती है। अंग्रेजी-फ्रेंच आदि उपन्यासों में इसका अभाव है, जिसका एक अनुमान-गत कारण यह हो सकता है कि इन देशों की अपनी सामाजिक-सांस्कृतिक अभिव्यक्ति हमेशा अन्य देशों के उलट-पलट से सम्बद्ध रही। जाति एवं सामाजिक जीवन की परम्पराएँ यूरोपीय देशों में इतने प्राचीन काल में ही स्थायी हो गई, जब साहित्य में जाति व समाज की केन्द्रीयता की चेतना उदित नहीं हो पाई थी। यूरोपीय साहित्य में सर्व-सामान्य दार्शनिकता का उत्तरोत्तर उदय होता गया। रूस के साथ भी कुछ ऐसी बातें रहीं। एक महान औपन्यासिक परम्परा के विशाल देश रूस ने दर्शन एवं मानवतावादी सामान्य सत्यों की ओर अपने साहित्यकारों को उन्मुख रखा। फिर आंचलिकता के सफल उन्नयन का अवसर आया तो यहाँ के साहित्यकारों के समक्ष दर्शन का एक व्यावहारिक 'मिशन' उपस्थित हो गया। फलस्वरूप उनकी चेतना निश्चल आंचलिकता से परे हटकर, बौद्धिक व्यवहारवाद की मिशन-गत-रचना से उलझती गई। अमरीकी-साहित्य के साथ ऐसी कोई बात नहीं हुई। स्वतन्त्रता-संग्राम के बाद जिस पर किसी दर्शन या राजनीति का 'मिशन-गत' दबाव नहीं रहा। अमेरिका की उज्जवल-से-उज्जवल तस्वीरें तैयार करना वहाँ के साहित्यकारों की धुन बन गई। विश्व के अन्य देश, अपने उपन्यासों पर आंचलिकता का लेबुल लगाने के लिए अमेरिका के ऋणी हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

× × ×

भारतीय उपन्यासों पर पाश्चात्य औपन्यासिक प्रणाली की अमिट छाप प्रत्यक्ष एवं परोक्ष रूप से अंकित है। हिन्दी उपन्यासों का विकास 'मनोरंजन' की स्थिति से होता है। सर्वप्रथम प्रेमचन्द ने उपन्यासों की 'मनोरंजक कथाकारिता' को स्वाभाविक अस्वाभाविक कलाबाजी से अलग, उच्च सामाजिक स्तर पर, ले जाने का प्रयास किया। इसमे सन्देह नहीं कि प्रेमचन्द के उपन्यास हार्डी के उपन्यास से एक स्तर ऊपर हैं और डिकेन्स की तरह सामाजिक विरोधाभासों को सफल रूप में चित्रित नहीं कर सकने पर भी हिन्दी-बंगला के सभी उपन्यासकारों को पीछे छोड़ जाते हैं। उनके उपन्यास गाँव के कथाँचल पर आधारित होकर अँचल-विशेष का मानव-शास्त्रीय सर्वे प्रस्तुत करने में अक्षम हैं, फिर भी गाँव-घरों के साधारण चित्र, रहन-सहन आदि प्रस्तुत कर जो उपन्यासकार अपनी आंचलिकता सिद्ध किया करते हैं, प्रेमचन्द के वे अनुगामी हैं। उस समय शिवपूजन सहाय की 'देहाती दुनिया' एक ऐसी कृति उपस्थित हुई, जिसमें अगर संयमित दृष्टि-विस्तार एवं उच्चस्तर की कथाकारिता रहती, तो निश्चित रूप से हिन्दी को अच्छा आंचलिक उपन्यास मिल गया होता। भारतीय उपन्यासों में आंचलिकता का स्रोत बंगला उपन्यासों में फूटता है। इस अर्थ में शरत्चन्द्र को स्मरण किया जा सकता है, किन्तु शरत्चन्द्र में आंचलिकता उतनी ही और उसी रूप में थी, जैसे प्रेमचन्द में। लेकिन शरत्चन्द्र ने अपने साहित्यकारों को इतना प्रभावित किया कि उसकी आंचलिकता के वंशधर ताराशंकर, विभूतिभूषण, माणिक वन्द्योपाध्याय, सतीनाथ भादुड़ी आदि हुए। इनके उपन्यासों ने आंचलिकता की नई और सबल धारा प्रवाहित की। शरत्चन्द्र ने अपने 'पल्ली समाज' में गाँव के सामाजिक संगठन का जो सीधा चित्र खींचा है, वह सचमुच अत्यन्त दुर्लभ है, फिर भी आनेवाले इन नए कथाकारों ने एक प्रगति अवश्य की और वह प्रगति है अंचल के चित्रों के जरिए वहाँ के मानव-शास्त्रीय अध्ययन का प्रस्तुतन। ताराशंकर के 'जन-पद', 'आरोग्य-निकेतन' एवं विभति बाबू के 'आरण्यक' आदि उपन्यासों में गाँव की संस्कृति अर्धनगर व नगर-संस्कृति से अपनी भिन्नता स्वयं खोलती है तथा गाँव एवं नगर के अन्तर्सांस्कृतिक प्रसंगों की विशद सामाजिक आर्थिक चेतना प्रस्तुत करती है। इस प्रसंग में वस्तुतः ताराशंकर एवं सतीनाथ भादुड़ी सर्वाधिक प्रयत्नशील रहे हैं। श्री भादुड़ी ने 'ढोढ़ाय चरित-मानस' में पूर्णियाँ की पिछड़ी जातियों के चन्द आंचलिक परिवेश के जरिए वहाँ की जिन्दगी को अच्छी तरह प्रस्तुत किया है। लेकिन बंगला के ये ख्याति-लब्ध उपन्यास भी आंचलिक उपन्यास की परिभाषा से कुछ दूर रह जाते हैं। ये उपन्यास, खास तौर पर, आंचलिकता की ओर उन्मुख हैं। सामान्य सामाजिक उपन्यासों की पुरानी आदतों को छोड़ सकने में इन्हें सफलता नहीं मिल सकी है। आंचलिक संस्कृति की मानव-शास्त्रीय प्रस्तुति के बदले या कम-से-कम जैसा पर्ल बक ने किया, आंचलिक जीवन के आधार में छिपे-पले किसी मानव-शास्त्रीय रहस्य को उद्घाटित

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करने के बदले, इन उपन्यासकारों ने अपनी नई क्रान्तिकारी, सामाजिक, राजनैतिक विचार-धाराओं को ही प्रतिपादित किया है, जिनका आंचलिक संस्कृति के रहस्योद्घाटन से कम ही नाता-रिश्ता है।

इतनी मंजिल तय करने के बाद केवल दो उपन्यास नजर आते हैं, जिन्हें सर्वांग सफल आंचलिक उपन्यास की संज्ञा दी जा सकती है।

प्रथम उपन्यास है ओड़िया भाषा के लब्धप्रतिष्ठ लेखक गोपीनाथ महान्ती की महान कृति 'अमृतर सन्तान'। इस उपन्यास में विश्व के सभी आंचलिक उपन्यासों के बीच प्रथम श्रेणी में रखे जाने की योग्यता है। ओड़िशा के आदिवासियों (दक्षिणी जंगल) के जीवन पर यह उपन्यास लिखा गया है। ओड़िशा के आदिवासियों की परिभाषा के अनुसार इस उपन्यास में सारा अंचल ही पात्र बन गया है। दिन-प्रतिदिन की घटनाएँ, पर्व-त्योहारों की विधि, सामाजिक कार्यों को सम्पादित करने वाले संगठन, उनकी प्रतिक्रियाएँ आदि को एक साधारण अन्तर्गामिनी कथासूत्र में गूँथकर यह उपन्यास उस अंचल के आदिवासी-जीवन का बहुत ही उत्तम मानव-शास्त्रीय सर्वे प्रस्तुत करता है। यहाँ उस अंचल में प्रचलित रीति-रिवाजों, धारणाओं, कड़ियों एवं आगे जाने वाली क्रान्तिकारी सम्भावनाओं को विशद पृष्ठ-भूमि में बड़ी ही पूर्णता के साथ संयोजित किया जा सका है। यदा-कदा पुनरुक्ति दोष नहीं होने से इसका कथा-प्रवाह भी अपने ढंग का अकेला माना जाता। भारतीय कथा-साहित्य में आंचलिकता के खयाल से इस उपन्यास को आदर्श माना जा सकता है।

दूसरा उपन्यास है बंगला के ख्यातिलब्ध लेखक सतीनाथ भादुड़ी लिखित 'ढोढ़ाय चरित मानस'। इस उपन्यास में भारतीय आजादी के संघर्ष को बिहार के पूर्णियाँ जिले के एक ग्रामीण अंचल के माध्यम से अंकित किया गया है; यह अंकन इतना बारीक, सफल और कला-पूर्ण है कि उस अंचल की हँसी, रूलाई, जन्म-मृत्यु तक ही नहीं, चरित्रों की भंगिमाएँ, वस्त्रों के रंग और गंध, मिट्टी का रस और अन्तर्धारा के रूप में प्रवाहित होने वाले वर्ग-संघर्ष को चलचित्र की भाँति साकार कर दिया है। इसका कथा-काल 1907 ई. से 1943-44 ई. तक का है। यह उपन्यास बंगला में 1948-49 ई. में प्रकाशित हुआ था। इसने हिन्दी एवं बंगला के साहित्य को दूर तक प्रभावित किया है।

× × ×

हिन्दी में आंचलिकता का विकास किसी जादुई ढंग से न होकर वर्षों की साधना के जरिए हुआ। हिन्दी गद्य की और विधाओं में जिस प्रकार विकास आया और नया रूप उभरा, उपन्यास भी जन-जीवन के परिवर्तनों के साथ विकसित होता गया। यह सही है कि हिन्दी में आंचलिक उपन्यास का श्रीगणेश सन् 1930 ई. के आस-पास शुरू हो गया होता, अगर हिन्दी क्षेत्र गाँधी की उदार नीति से प्रभावित नहीं होता। राष्ट्रीयता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के जिस तीक्ष्ण स्वार्थ से आंचलिकता का जन्म होता है, उसका आभास शिवपूजन सहाय की 'देहाती दुनिया', निराला की 'चतुरी चमार', बेनीपुरी की 'माटी की मूरतें' आदि पुस्तकों से मिलता है। किन्तु इन लोगों के साथ राष्ट्रीयता के उदार दृष्टिकोण का आदर्श हमेशा चिपका रहा, फलस्वरूप सीमाबद्ध आंचलिकता, जिसके सृजन में कला के यथार्थ का संजीवन होता है, न पनप सकी।

उत्तरार्द्ध बीसवीं सदी के प्रवेश के साथ हिन्दी में आंचलिकता का अभ्युदय हुआ। यह शुभारम्भ नागार्जुन के साथ होता है। वैसे, इनसे पहले अमृतलाल नागर एवं शिव प्रसाद मिश्र 'रुद्र' ने ऐसी रचनाएँ की थीं, जिन्हें आंचलिकता के निकट-सम्बन्धी होने का श्रेय दिया जा सकता है। 'सेठ बाँकेमल' या 'बहती गंगा' में अंशगत आंचलिकता है। श्रीनागर ने अपने व्यंग्य के लिए सेठ को चुनकर, सेठ की आंचलिकता को प्रधानता नहीं दी, बल्कि व्यंग्य के लिए यत्र-तत्र आंचलिकता का आभास प्रस्तुत किया। रुद्र का प्रयोग निश्चित रूप से आंचलिकता के इतिहास में स्मरणीय होता, अगर 'बहती गंगा' के किनारे के साथ उसकी धारा की गहराई व गति भी प्रस्तुत की जाती। 'बहती गंगा' भी वस्तुतः 'लोकल कलर'—जैसी हलकी परतों पर आधारित मानव-जीवन के चिरंतन राग-द्वेष को उद्घाटित करने का प्रयास है।

इस तरह हिन्दी का पहला आंचलिक उपन्यास 'बलचनमा' को कहा जा सकता है। 'बलचनमा' की रचना-भूमि प्रेमचन्द की वसीयत है। प्रेमचन्द एवं उनके आस-पास के लेखक मुख्य रूप से राष्ट्रीय आन्दोलन एवं उससे उत्पन्न समस्याओं को साधने में लगे रहे। प्रेमचन्द ने लोकाश्रय के लिए अंचल-विशेष को चुना, किन्तु प्रेमचन्द के साहित्य का मूल-धर्म लोकोदय था, जिसके विकास का श्रीगणेश दर्शन के उदारवादी दृष्टिकोण से हुआ। फलस्वरूप प्रेमचन्द अंचल-विशेष के न होकर, लोकमात्र के हो रहे। 'बलचनमा' की रचना के पीछे वे तमाम कारण आ जुटे, जिनके जरिए किसी भी साहित्य में, आंचलिकता का अभ्युदय सम्भव हो सकता है।

जिस प्रकार अमरीकी साहित्य में आजादी की भूख ने मातृ-भूमि की मिट्टी के प्रति प्रेमाधिक्य का सृजन किया, औपनिवेशिक प्रभुओं के लोक इंग्लैण्ड के समान तल पर अपने को प्रतिष्ठित करने के लिए देश के कोने-कोने की कला को अंगुलियों से छूने को विवश किया, भारत के साथ भी ऐसी ही बात हुई। छायावाद या उसके समकालीन गद्य का यह रूप हम आज भी गौरव से देखते हैं। प्रेमचन्द एवं उसके आस-पास का आलेखन इस स्थिति तक पहुँच गया था।

आदमी को यथातथ्य रँगने के सिलसिले में 'गोदान' मील का पत्थर बनकर अवतरित हो चुका था। आदमी के बनाने-बिगाड़ने वाले वातावरण एवं आर्थिक हालातों को विश्लेषित करने के लिए 'इतिहास की आर्थिक व्याख्या' का प्रचार-प्रसार हिन्दी में हो चुका था। एक बात खासतौर से ध्यान देने योग्य यह है कि आंचलिकता का यह प्रस्फुटन हिन्दी में ग्रामांचल को आधार बनाकर हुआ। इसका सर्वप्रमुख कारण

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यह है कि गाँधी ने हमारे उदित होते राष्ट्र-प्रेम को गाँव की ओर मोड़ दिया, यह बात दूसरी है कि गाँधी के इस राजनीतिक दर्शन के पीछे तल्सतोय या अन्य फ्रान्सीसी विचारकों ने बुनियाद रखी हो। किन्तु इतना तो अवश्य हुआ है कि प्रेमचन्द के समय के ही कवियों ने 'चलो कवि वनफूलों की ओर' एवं 'भारत माता ग्रामवासिनी' कहकर जन-जीवन के नए यथार्थवादी रोमान्स को जन्म दिया। यही कारण है कि 'बूँद और समुद्र' जैसा प्रयास भी आंचलिकता को नगर-उन्मुख नहीं कर सका।

हिन्दी के लिए ऐसी स्थिति उत्पन्न हो चुकी थी, जब अंचल पर आधारित 'बलचनमा' जैसी यथार्थ कथा का सृजन हो। इसलिए यह कहना अत्युक्ति नहीं कि 'बलचनमा' हिन्दी कथा-साहित्य की स्वाभाविक एवं अनिवार्य उपज है।

आत्मकथ्य शैली का यह उपन्यास मिथिला की विराट् संस्कृति की नींव की ईंट जैसे एक नौजवान के जीवन का इतिवृत्त है, जिसके जरिए सम्पूर्ण मिथिला के सामाजिक, ऐतिहासिक, आर्थिक एवं अन्य जीवन-आयामों को अभिव्यक्ति दी जाती है। अंग्रेजों की लादी गई जमींदारी-प्रथा से पैदा होने वाली श्रम की गुलामी की सीमान्त व्याख्या, उसके शोषक विलास के साथ यहाँ उपस्थित की गई है। अनादि काल से आती हुई मनु-याज्ञवल्क्य अनुमोदित हिन्दूवर्ण-व्यवस्था के अवशेष-समाज की प्रस्तुत कथा मिथिला के समाज का दर्पण है, जहाँ व्याह-श्राद्ध, उत्सव-शोक, झगड़े-गीत जीवन का प्रत्येक व्यापार अपनी ऐतिहासिक व्याख्या के साथ उपस्थित किया गया है। समाज के परिवर्तन की मुख्य धाराओं-शिक्षा व राजनीतिक का यथार्थ अध्ययन इसे आंचलिकता की पूर्णता की ओर ले जाता है। हाँ, बलचनमा की क्षेपक-कथा (पटना-पुराण) निश्चय ही टाँकी गई चिप्पी-जैसी लगती है और अनायास ही 'गोदान' ही भाग-दौड़ वाली कथा-पद्धति की याद दिलाती है।

नागार्जुन की यह कथा-दृष्टि आगे चलकर परिपक्व हो सकी और 'बाबा बटेसरनाथ', 'वरुण के बेटे' आदि उपन्यासों में उनका आंचलिक कथाकार अधिक उज्ज्वल रूप में सामने आ सका।

आंचलिकता की इस सफलता ने हिन्दी-साहित्य को गहरे रूप में प्रभावित किया और हिन्दी में आंचलिकता का तूफान-सा खड़ा हो गया। नागार्जुन की तरह हिन्दी के स्वाभाविक विकास और कथा-परम्परा को आधार बनाकर आंचलिक उपन्यास लेखकों में देवेन्द्र सत्यार्थी का नाम महत्त्व का है, जिन्होंने 'ब्रह्मपुत्र' 'द्वधगाछ' आदि के जरिए उपन्यास के इस आयाम को समृद्ध किया। किन्तु देवेन्द्र सत्यार्थी ने लोक-जीवन से अधिक महत्त्व लोक-गीतों एवं किस्सागोई को दिया, जिसके चलते उनके उपन्यास, उपन्यास लेखकों का मसाला बनकर रह गये। आगे चलकर उदय शंकर भट्ट ने 'सागर लहरें और मनुष्य', भैरव प्रसाद गुप्त ने 'सती मैया का चौरा' एवं राजेन्द्र अवस्थी ने 'जंगल के फूल' जैसी अच्छी कृतियाँ दी हैं। भट्ट के उपन्यास में वे ही त्रुटियाँ आ गई हैं, जो 'वरुण से बेटे' में। यह त्रुटि है नाटकीयता। भट्ट ने कथा में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चमत्कार के लिए मछुआ की लड़की को बम्बई की छँटी हुई नागरिका बना दिया और नागार्जुन ने मछुआ की बेटी को कम्युनिस्ट पार्टी का माउथपीस। मछुआ जीवन पर लिखे गए इन दो उपन्यासों के मछुए बंगला के ख्यातिलब्ध लेखक माणिक बन्द्योपाध्याय के 'पद्मानदीर माँझी' के वंशज है, या नहीं, यह कहना कठिन है, किन्तु इतना तो कहा ही जा सकता है, कि हिन्दी के ये मछुए कागजी अधिक हो गए हैं। 'सती मैया का चौरा' एवं 'जंगल के फूल' आंचलिक उपन्यासों के अधुनातन प्रयोग हैं, जो अपने अंचलों को विशेष रूप से उद्‌घाटित कर सके हैं। 'सती मैया का चौरा' को अगर अनावश्यक विस्तार से बचाया जाता, तो निश्चित रूप से श्रेष्ठ कृति होती। मार्कण्डेय का 'अग्निबीज', डॉ. विवेकी राय का 'सोना माटी' आदि उपन्यास आंचलिकता-धर्मी माने जाएँगे।

हिन्दी में आंचलिकता की चर्चा 'मैला आँचल' से प्रारम्भ हुई। बंगला के शिल्प-निर्माता सतीनाथ भादुड़ी की कथाभूमि पूर्णियाँ के जीवन पर लिखा गया यह उपन्यास जब हिन्दी में अवतरित हुआ, तो बंगला से अजाने किसी मूर्धन्य हिन्दी आलोचक ने प्रेमचन्द से गोत्र स्थापित कराते हुए इसे 'गोदान' से श्रेष्ठ उद्‌घोषित किया और इस नए फतवे की वजह से चर्चा का बाजार गर्म हो गया। 'मैला आँचल' हिन्दी का आयात इसलिए है कि लेखक रेणु ने बड़े कौशल से भादुड़ी के 'ढोढ़ाय चरित मानस' के नीचे कार्बन रखकर इसका आलेखन किया है। तारा शंकर की कथाकारिता को भी रेणु ने आदर्श के रूप में स्वीकारा है, किन्तु यह आदर्श मात्र मानसिक आदर्श रह गया है। 'मैला आँचल' की भाषा, टोन, स्थापत्य, निष्कर्ष-कुछ भी हिन्दी से मेल नहीं खाता। भादुड़ी ने पूर्णियाँ के ततमा, धाङर, बाबू आदि की कथा जिस अन्दाज, शक्ति, आदर्श एवं कलाकारिता से कही है, अगर पात्रों के नाम, घटनाओं की तिथि एवं उपशीर्षकों को अलग कर दिया जाए, तो 'मैला आँचल' के लिखने का कोई प्रयोजन नहीं रह जाता है। यह सत्य है कि रेणु ने अपने गुरु (बकौल रेणु) भादुड़ी के चरण-चिह्नों का अनुसरण बड़े ही ईमानदार ढंग पर किया है, किन्तु मात्र यह ईमानदारी 'मैला आँचल' की आंचलिकता को कहाँ तक पूर्णता देती है, यह जाँचने की बात है।

उद्‌भव और उत्स की बातें छोड़ देने पर रेणु की उपन्यास-कृतियाँ 'मैला आँचल' एवं 'परती परिकथा' आंचलिक उपन्यास के ईमानदार प्रयास मानी जा सकती हैं। 'मैला आँचल' पूर्णियाँ के एक गाँव के स्थानीय वातावरण की पृष्ठ-भूमि पर लिखा गया है। सन् 1942 के बाद सन् 1948 तक उस गाँव की स्थिति, संगठन, बोलचाल, रहन-सहन, व्यक्ति मनोविकार, भारतव्यापी सामाजिक, राजनीतिक तथा आर्थिक आंदोलनों के ग्रहण करने की उस अंचल की प्रक्रियाओं के संकलित शब्द-चित्रों का नाम 'मैला आँचल' है। लेखक की ईमानदारी इस बात में है कि उसने गाँव के जन-जीवन की प्रतिक्रियाओं को भादुड़ी की सम्पूर्ण ईमानदारी के साथ उतारने की कोशिश की है, किन्तु इस भोली ईमानदारी मात्र से कोई उपन्यास आंचलिकता की

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शर्त पूरी नहीं कर देता। सर्वप्रथम, 'मैला आँचल' एक गाँव को लेकर लिखा गया है, जिसके नाम पर संस्कृति के किसी खास लेबल का प्रचलन असम्भव है। दूसरी बात, भादुड़ी तारा शंकर का अनुगमन कर भी रेणु उनके जनपदीय उपन्यासों की सम्बद्धता व संगठनशीलता ग्रहण नहीं कर पाए। उसकी सफलता, स्थानीय बोलियों के प्रयोग में है।

'मैला आँचल' के अभावों की पूर्ति 'परती परिकथा' में करने की चेष्टा है। यहाँ लेखक सांस्कृतिक परिवेश तैयार करने के लिए कोशी का इतिहास लिखकर कोशी-संस्कृति का बिल्ला अपने उपन्यास पर साटता है। संस्कृति उद्घाटन के लिए शिविन्दर मिसिर की कथा-किंवदन्तियों का क्षेपक-प्रयोग किया है तथा खानदानी कागज-पत्रों के बीच से कोशी-अंचल की भूमि की प्रकृति को निर्देशित करने वाले सांकेतिक चक्रों की मायावी-जासूसी उपलब्ध करता है। इतने प्रयासों को स्वीकार लेने के बाद भी कहना पड़ता है कि ये सभी प्रयास सूनेपन को व्यर्थता से भर देने को हैं। मिसर-घराने का क्षेपक-उपाख्यान एक ऐसे परिवार की नानी की कहानी बन गई है, जिसे गाँव के जीवन से ऊपरी लगाव-भर है। 'मैला आँचल' से एक प्रगति इसमें अवश्य है कि गाँव में होने वाली हलचलों की प्रतिक्रियाएँ यहाँ अधिक स्पष्ट हैं, किन्तु भावुकता के अतिरेक, चरित्रों की अस्वाभाविकता एवं आदर्श के घटियापन के कारण 'मैला आँचल' से अधिक असफल हो गया है। आंचलिक उपन्यास की मूल भावना लोकोदय के रहस्य एवं लोकजीवन के दर्द को सहानुभूति देने के बदले व्यंग्य एवं 'परवर्स्ड रिफ्लेक्शन' में देखा गया है।

आंचलिकता की कसौटी पर कमियों के बावजूद रेणु के ये उपन्यास, औपन्यासिक दृष्टि से श्रेष्ठ है। इनकी त्रुटियों का एक बड़ा मूल कारण है कि 'अमृतर सन्तान' के कथांचल की तरह यहाँ कोई विशिष्ट कथांचल नहीं है। जिस गाँव के अंचल में इन उपन्यासों की सृष्टि होती है, वहाँ संस्कृति उद्घाटन के लिए भाषा की विभिन्नता एवं कुछ साधारण रीति-रिवाजों की पद्धति-भिन्नता के अलावा क्या विशिष्टता हो सकती है? वैसे, पूर्णियाँ के गाँवों का बड़ा अंचल कथा-भूमि के लिए चुनकर और गहनतापूर्वक अध्ययन कर आंचलिकता के नाम पर कुछ बहुत ही महीन तन्तुओं को ढूँढ़ा जा सकता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विनय पत्रिका : समय का त्रासद स्वर

नित्यानन्द श्रीवास्तव*

अपने समय के व्यक्ति एवं समाज के मन पर छाए बहुआयामी अन्धकार (भय, दैन्य एवं कुंठा आदि) को समूचे भक्ति-काव्य में गोस्वामी तुलसीदास ने सम्भवतः सर्वाधिक मार्मिक अभिव्यक्ति दी है। सामाजिक कुरीतियों, पाखंड, बाह्याचार, जातिवाद आदि पर निर्गुण मत के साधक सन्तों की लेखनी तो चली है, पर जहाँ सीधे-सीधे सत्ता को चुनौती देने का विषय हो और समाज पर छाए भयावह अन्धकार से उबरने का रास्ता तलाशने की बात हो, वहाँ तुलसी का स्वर सबसे मुखर है।

'रामचरितमानस' एवं 'कवितावली' के उत्तरकांड में तुलसी ने अपने समय की व्यथा के कारणों की जैसी पड़ताल की है, लगभग वही स्वर 'विनय पत्रिका' के उनके पदों में भी है। कुछ विद्वान समीक्षकों का ध्यान इस ओर गया है, लेकिन उनमें से अधिकांश आरोपित प्रतिबद्धताओं के घेरे से निकल नहीं सके हैं। वास्तव में, तुलसी साहित्य ही नहीं, बल्कि पूरे भक्ति साहित्य के अध्ययन को दो विशेष प्रकार के अध्येताओं ने बहुत उलझाया है। उनमें से एक वर्ग तो कथावाचकों का है और दूसरा कुछ आधुनिक विश्लेषकों का। कथावाचक, विशेषकर तुलसी साहित्य को एक अबूझ आध्यात्मिक रहस्यलोक में लेते गए हैं, जहाँ तुलसी की अनुभूति एवं अभिव्यक्ति को तन्त्रवाद को घेरे में बन्द करने का अभियान-सा चला। तुलसी रामकथा की फलश्रुति 'स्वान्तः सुखाय' और 'स्वान्तस्तमः शान्तये' में बताते हैं—उन्होंने अपने समय में आम जन के क्लेश निवारण के लिए एक अभियान-सा चलाया और आज के कथावाचकों में अधिकांश की फलश्रुति यह है कि जनता मूढ़ता और कुशासन की चक्की में भले ही पिसे, राजनेताओं की तरह भौतिक ऐश्वर्य इन धर्मधुरीनों के आस-पास अराजक स्थिति तक सिमट आया है। भक्ति-साहित्य के साथ, लेकिन-अधिक अन्याय कतिपय

---

*नित्यानन्द श्रीवास्तव, हिन्दी विभाग, दिग्विजयनाथ पी.जी. कॉलेज, सिविल लाइन्स, गोरखपुर—273001, सम्पर्क :—मकान संख्या -785, उत्तरी जटेपुर, पो. बशारतपुर, गोरखपुर—273004, मो.—09452847328

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आधुनिक विचारकों ने किया। मुक्तिबोध सन्तों के साहित्य के तात्त्विक विश्लेषण की बजाय उनके जातिवार अनुसन्धान में लग जाते हैं। कुछ विद्वान साम्प्रदायिक एवं अल्पसंख्यक वर्गीकरणों में उलझते गए हैं। ये दोनों स्थितियाँ एक अद्भुत भाषाई प्रपंच हैं।

तुलसी के समय का बौद्धिक परिवेश भी भाषाई प्रपंच से घिरा हुआ है। धर्म तन्त्रवाद की कठपुतली बन कर रह गया था—स्वार्थी तत्त्व स्वर्ग का लोभ और नरक का भय दिखाकर सामूहिक मन को कमजोर कर रहे थे और समाज में भेद-बुद्धि बढ़ा रहे थे। 'विनय पत्रिका' के दसवें पद में आत्म-निवेदन क्रम में शिवाराधन के प्रसंग में वे बौद्धिक-परिवेश का दैन्य परिभाषित करते हैं—

नष्टमति, दुष्ट अति, कष्टरत, खेदगत दास तुलसी
सम्भुसरन आया।
देहि कामरि! श्री राम पद पंकजे भक्ति अनवरत
गतभेद माया। 10.9।

वाणी का छल उद्यमहीनता और श्रम की अवमानना से उत्पन्न होता है। भावजगत् की अन्तर्वस्तु की उपेक्षा भी यहीं से आरम्भ होती है। गोस्वामी जी के अनुसार समाज का प्रभुत्वशाली वर्ग इस 'हेतुवाद' का पहला शिकार तो स्वयं बनता है, साथ ही वह पूरे समाज को अपने इस 'दैन्य' से आक्रान्त कर बैठता है। वाणी के प्रपंच में आबद्ध राजनीति एवं राजाओं की दशा का रेखांकन देखें—

राज समाज, कुसाज कोटि कटु कलपित कलुष कुचाल नई है।
नीति प्रतीति प्रीति परमिति पति हेतुवाद हठि हेरि हई है। 139.3।

और उस समय समाज का बुद्धि-सम्पन्न वर्ग क्या कर रहा था? समाज पर पसरे इस अन्धकार को दूर करने लिए कोई 'दीपक' नहीं जला रहा था, 'दीपक' की बात भर कर रहा था। गोस्वामी जी ने इस संकट को समझा और कहा—

अस कछु समुझि परत रघुराया।
बिनु तव कृपा दयालु दास हित, मोह न छूटै माया।.।
वाक्य ज्ञान अत्यन्त निपुन भव पार न पावै कोई।
निसि गृह मध्य दीप की बातन्ह तम निवृत्त नहिं होई।
(विनय पत्रिका—123.1/2)

बुद्धिमानों के समाज की दुर्दशा यह थी, कि सभी अपने-अपने आचरण की डींग हाँक रहे थे, 'कहनी' और 'रहनी' दोनों खोटी थीं और वेश-भूषा ऐसी कि समाज का चित्त चकित हो जाए। गोस्वामी जी कहते हैं—

कलिकाल अपार उपाय तें अपाय भये
जैसे तम नासिबे को चित्र के तरनि।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जोंग न समाधि निरुपाधि न बिरागज्ञान
वचन विसेष वेष कहूँ न करनि।
कपट कुपथ कोटि, कहनि रहनि खोटी
सकल सराहैं निज-निज आचरनि ।3। (विनय पत्रिका–184)

सम्प्रदायगत् तन्त्रवाद जब ईश्वरानुसन्धान अथवा आत्मानुसन्धान पर भारी ड़ने लगता है तो व्यक्ति के मन में 'मोह' की गाँठ बनने लगती है। इसी गाँठ का विक्षोभ पन्थ, जाति, सम्प्रदाय, लिंग आदि विविध रूपों में प्रायः हुआ करता है। गोस्वामी जी ने इस ग्रन्थि की पहचान की है—घी से भरे कड़ाह में चन्द्रमा के प्रतिबिम्ब के बिम्ब के माध्यम से वे कहते हैं—

माधव! मोह फाँस क्यों टूटै।
बाहर कोटि उपाय करिय, अभ्यन्तर ग्रन्थि न छूटै ।1।
घृतपूरन कराह अन्तरगत, ससि प्रतिबिम्ब दिखावै
ईंधन अनल लगाय कलपसत औंटत नास न पावै ।2।
(विनय पत्रिका–115)

इस त्रासदायक ग्रन्थि से छूटने के लिए विमल विवेक चाहिए, जो हरि और गुरु की करुणा के बिना प्राप्त नहीं हो सकता।

'मोह' का एक तात्कालिक कारण भी है। वह तात्कालिक कारण है– 'यवनों का आक्रमण'। गोस्वामी जी के मनोभावों को स्पष्टतया समझे बिना 'यवन' शब्द के अर्थानुसन्धान में गलती हो सकती है। इन 'यवनों' और आज के आतंकवादियों में कोई अन्तर नहीं। 'यवन' शब्द का तात्पर्य आज भारत, पाकिस्तान, बाङ्लादेश, श्रीलंका और नेपाल के सैकड़ों वर्ष या कुछ वर्षों पूर्व मतान्तरित 'मुसलमानों' से नहीं है। यह भी सही है कि 'यवन' और 'म्लेच्छ' शब्द 'समानार्थी' हैं– विशेषकर भक्ति साहित्य में। महाप्रभु वल्लभाचार्य 'म्लेच्छाक्रान्त देश' की बात करते हैं और महाकवि जयदेव गीत-गोविन्द की अष्टपदी में 'म्लेच्छ' शब्द का जो उल्लेख करते हैं, वहाँ 'म्लेच्छ' आक्रमणकारी हैं, आज की भाषा में उन्हें तमाम आतंकवादी सगंठनों से जोड़ा जा सकता है। निराला के *तुलसीदास* से देखें–

मोगल-दल बल के जलद यान
दर्पित-पद उन्मद नद पठान
हैं बहा रहे दिग्देशज्ञान, शर-खर तर ;
छाया ऊपर घन अन्धकार
टूटता वज्र वह दुर्निवार
नीचे प्लावन की प्रलय-धार, ध्वनि हर-हर।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्पष्ट है कि ये आक्रमणकारी एवं आतंककारी मुसलमान वृहत्तर भारतीय परिक्षेत्र के वर्तमान मतान्तरित मुसलमानों के पूर्वज नहीं हैं। ये आक्रमणकारी "मुसलमान अनेक देशों से आए थे, उनकी जातियाँ और भाषाएँ भिन्न-भिन्न थीं। कोई अरब था, कोई ईरानी, कोई पठान, कोई तुर्क। इन सबका धर्म एक होते हुए भी इनकी जातीय संस्कृति अलग-अलग थी।"[1]

गोस्वामी जी का जो समय है, उससे बहुत पहले लगभग पाँच-छह सौ वर्ष पहले से भारत का पश्चिमोत्तर प्रान्त (यानी आज के अफगानिस्तान और पाकिस्तान) इन आक्रमणों से जर्जर हो चुका था। निराला की कविता में जिस घने अन्धकार का वर्णन है, उसका मर्म यही है। गोस्वामी जी ने इस अन्धकार का कारण 'कलि जनित मल से मलीन मन' यवनों के आक्रमण को स्पष्टतया माना है। वे कहते हैं–

काल कलि जनित मल मलिन सर्वनर
मोह निसि निबिड़ जमनान्धकारं।
विष्णुजस पुत्र कलकी दिवाकर उदित
दास तुलसी हरन विपित भारं। 9। (विनय पत्रिका– 52.9)

ये आक्रमणकारी मुसलमान यवन, आतंकवादी गतिविधियों के अलावा मनुष्यों के क्रय-विक्रय का काम भी करते थे। यह बड़ी भयावह परिस्थिति थी जिसमें एक तरफ तो चालाक और होशियार लोग कई तरह के समझौते करके बच रहे थे, अथवा कुछ लोग भयाक्रान्त होकर या लालचवश मतान्तरित हो रहे थे, लेकिन आम जनता खुलेआम बाजारों में बेची जा रही थी। यवनों के आक्रमण से पूर्व के भारतीय इतिहास में इस तरह के क्रय-विक्रय के उल्लेख नहीं हैं। रामविलास शर्मा इतिहास से कुछ तथ्य रखते हुए लिखते हैं–"जब आप याद करेंगे कि मुगल बादशाहों के जमाने में इन कोल-किरातों का आखेट होता था, और जो पकड़े जाते थे, वे काबुल में बेच दिए जाते थे और ब्रिटिश साम्राज्यवाद के शासन में लाखों की तादाद में इन्हें जरायमपेशा करार दिया गया, तब तुलसीदास की प्रगतिशीलता समझ में आएगी।"[2]

गोस्वामी जी ने अनेक पदों में भील, कोल, यवन, खस, स्वपच आदि जातियों को प्रभु की कृपा का विशेष पात्र जिस तरह बताया है वह अकारण नहीं है। ऐतिहासिक सन्दर्भ तो राम-कथा से है। लेकिन तात्कालिक सन्दर्भों का अपना महत्त्व है। राम की कृपा प्राप्त मानव समुदाय में 'यवन' का उल्लेख होने से साम्प्रदायिक वर्गीकरणों में उलझनेवाले विद्वानों से थोड़ी राहत मिल सकती है। भगवत्कृपा प्राप्त 'यवनों' का वर्णन कई पदों में है–

सुपच खल भिल्ल जमनादि हरिलोकगत नामबल विपुल
मति मलिन परसी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

त्यागि सब आस सन्त्रास भव पास असि निसित हरिनाम
जपु दास तुलसी। *(विनय पत्रिका 46.9)*

इसी भाव का दूसरा पद देखें–

महाराज रामादर्‌यो धन्य सोई।
कोल खस भील जवनादि खल राम कहि नीच ह्वै
ऊँच पद को न पायो।
दीन दुख दमन श्रीराम करुना भवन पतित पावन विरद वेद गायो।
(विनय पत्रिका 106.5)

लेकिन समाज पर संकट के उपर्युक्त कारण अलग-अलग नहीं हैं। आक्रमणकारी यवन, कुछ देशी क्षत्रपों एवं कुछ होशियार विद्वानों का गँठजोड़ संकट को और गहरा कर रहा था। 'विनय पत्रिका' के 139वें पद में इस गँठजोड़ के संकेत हैं–

राज-समाज, कुसाज कोटि कटु कलपित कलुष कुचाल नई है।
प्रीति प्रतीति, प्रीति परमिति पति हेतुवाद हठि हेरि हई है।3।
आस्रम बरन धरम विरहित जग लोक बेद मरजाद गई है।
प्रजा पतित पाखंड पापरत अपने-अपने रंग रई है।4।
सान्ति सत्य सुभरीति गई घटि बढ़ी कुरीति कपट कलई है।
सीदत साधु, साधुता सोचति खल बिलसत हुलसति खलई है।5।

समाज में चोरी और लूट-पाट की घटनाएँ बढ़ गई थीं। राजाओं, स्थानीय क्षत्रपों और प्रजा का बहुत बड़ा वर्ग विशेषकर प्रभुत्व-सम्पन्न वर्ग इस तरह के दुष्कृत्यों में समान रूप से सम्मिलित था। आस्था के केन्द्रों विशेषकर भौतिक केन्द्रों का मानमर्दन अब कोई नई घटना न थी। कुछ विद्वान, जो 'विनय पत्रिका' को और भक्ति-आन्दोलन को श्री राम जन्म भूमि मुक्ति आन्दोलन से ही समझना चाहते हैं, उन्हें विनय पत्रिका के निम्नांकित पद के संकेतों को समझना चाहिए।

मैं केहि कहौं विपति अतिभारी। श्री रघुबीर धीर हितकारी।1।
मम हृदय भवन प्रभु तोरा। तहँ बसे आइ बहु चोरा।2।
कह तुलसिदास सुनु रामा। लूटहिं तसकर तव धामा।8।
चिन्ता यह मोहिं अपारा। अपजस नहिं होइ तुम्हारा।9।
(विनय पत्रिका. 125)

अपने प्रभु से इस प्रकार का चुनौतीपूर्ण संवाद भारतीय परम्परा में ही सम्भव है, सेमेटिक मत-मतान्तरों में नहीं, जहाँ 'ईश्वर' के प्रति भय का वातावरण सृजित किया जाता रहा है। यह प्रवृत्ति कर्मकांडियों ने कतिपय तान्त्रिक साधनाओं में भी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उत्पन्न की हैं, वहीं इस 'भय' का निराकरण 'प्रभु' से यहाँ मुक्त संवाद में हो जाता है। गोस्वामी जी ने एक अन्य पद में 'उलाहना' देते हुए प्रभु से कहा–

त्यों त्यों नीच चढ़त सिर ऊपर ज्यों ज्यों सीलबस ढील दई है।
सरुष वरजि तरजिए तरजनी कुम्हिलै हैं कुम्हड़े की जई है।

(कवनय पत्रिका. 125)

रामविलास शर्मा ने मध्यकालीन जन-जीवन की सीमाओं को तत्कालीन साहित्य से समझा है। वे लिखते हैं–"मध्यकालीन साहित्य पर भाग्यवाद, मायावाद, निष्क्रियतावाद आदि की भावनाओं का असर है–इसका ऐतिहासिक कारण उस समय के जन-जीवन की सीमाएँ हैं।"[3]

गोस्वामी जी यदि अपने समय के त्रास का वर्णन मात्र करके मौन हो जाते तो भाग्यवाद, मायावाद, और निष्क्रियतावाद और पुष्ट हो गया होता। जिस 'भूख', प्रतारणा और हिंसक वृत्तियों का उन्होंने स्वयं सामना किया है, जिससे समाज के आम-जन को उन्होंने पीड़ित देखा है, उस व्यथा को वे अपने चिन्तन का अनिवार्य पक्ष बनाते हैं। वे सुविधाभोगी चिन्तकों की तरह 'भूख' पर ही कदमताल नहीं करते, उसके मर्म तक पहुँचते हैं। राम उन्हें इसलिए प्रिय हैं क्योंकि राम को 'खिन्न' प्रिय हैं। तुलसी खिन्नजनों को उपदेश नहीं देते–'व्यथा' को ही शक्ति बनाते हैं और अपने समय के 'जाननिहारों' को ललकारते हैं–

राम सनेही सों तें न सनेह कियो।
अगम जो अमरनिहूँ को फलुतोहि दियो।
दियो सुकुल जनम सरीर सुन्दर हेतु जो फल चारि को।
जो पाइ पंडित परमपद पावत पुरारि मुरारि को।
यह भरतखंड समीप सुरसरि थल भलो संगति भली।
तेरी कुमति कायर कलप वल्ली चहति है विषफलफली।

(विनय पत्रिका. 135.1)

'भूख' शरीर की सच्चाई है और शरीर की सच्चाई यह है कि उसकी तीन ही 'गतियाँ' हैं–या तो उसे कीड़े खा जाएँ, या वह जलकर राख हो जाए या मांसाहारियों द्वारा खाए जाने पर उनकी विष्ठा से बदल जाए–इतना जानने पर भी संसार में 'वैर' बढ़ रहा है, दूसरों के धन एवं स्त्री आदि का लोभ बढ़ रहा है–गोस्वामी जी भूख के मर्म को यहाँ से जोड़ते हैं–

कृमि, भस्म, विट परिनाम तनु तेहि लागि जग बैरी भयो।
परदार, परधन द्रोह पर संसार बाढ़ै नित नयो।(विनय पत्रिका. 136.7)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गोस्वामी जी के समय संसार जिस 'नई दिशा' की ओर बढ़ रहा था, यह स्पष्ट है। इसलिए मध्यकालीन समाज में जो इतिहासकार बादशाहों, सामन्तों आदि के सुशासन की जो बातें रखते रहे हैं, उसका दूसरा पक्ष तत्कालीन साहित्य में देखना चाहिए। उन दिनों के समाज में आाधुनिक समय के आधार पर जनता के संगठित होने की बात सोची भी नहीं जा सकती थी। कारण यह कि समाज संगठन और संरक्षण के दोनों आधार 'वर्ण' एवं 'आश्रम' पर्याप्त टूट-फूट का शिकार हो चुके थे। वर्ण-व्यवस्था जाति की असहनीय जकड़बन्दियों में जकड़ गई थी और आश्रम व्यवस्था के कोई मायने नहीं रह गए थे। गृहस्थ पीड़ित थे और संन्यास आश्रम को अपात्र दूषित कर रहे थे।

भक्ति आन्दोलन, जो अपने स्वरूप और प्रसार में अखिल भारतीय था, उसके अपने निहितार्थ थे। आम जनता के हृदय में, साहस, दृढ़ता, धैर्य, आत्मविश्वास की स्थापना का कार्य इस आन्दोलन ने किया। कुछ विद्वान, जो भक्ति आन्दोलन को 'अफीम' जैसा मानते रहे हैं, उन्हें जन-जागरण के इस मर्म को समझना चाहिए। मध्यकाल के किसी भी सन्त ने समझौता नहीं किया और न ही आततायी प्रशासकों के हृदय-परिवर्तन की प्रतीक्षा की। वे अपने काम में लगे रहे। उस भयानक समय में उन्होंने अपने को भी सँभाला और आम जन के चित्त को भी–

अब चित चेति चित्रकूटहिं चलु।
कोपित कलि लोपित मंगल मगु विलसत बढ़त मोह मायामलु।
भूमि बिलोकु राम पद अंकित बन बिलोकु रघुबर विहार थलु।
सैल सृंग भवभंग हेतु लखु, दलन कपट पाखंड दम्भ दलु।2।

(विनय पत्रिका, 24)

कहने का मतलब यह कि 'विनय पत्रिका' केवल विनय की पाती ही नहीं, अन्याय के प्रबल प्रतिकार का जीवन्त दस्तावेज भी है।

सन्दर्भ–

1. परम्परा का मूल्यांकन : रामविलास शर्मा : राजकमल प्रकाशन : संस्करण : 2011, पृष्ठांक 51
2. वही, पृष्ठांक 79
3. वही, पृष्ठांक 48
4. विनय-पत्रिका, गीता प्रेस एवं सस्ता साहित्य मंडल प्रकाशन, नई दिल्ली; संस्करण 2011।
5. यवन–1. एक जाति जो गान्धार देश की सीमा पर रहती थी। प्राचीन काल में यूनान में रहनेवाले लोगों के लिए भी यवन शब्द का प्रयोग होता था। ग्रीक लोगों

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

को फारसी में 'यौन' कहा जाता था। मान्यता है कि यवन शब्द इसी 'यौन' का रूपान्तर है। सिकन्दर के आक्रमण के समय यवनों का एक उपनिवेश अफगानिस्तान में था। मेगस्थनीज आदि भारत आनेवाले 'यवन' ही थे। अशोक के शिलालेखों में भी 'यौन' शब्द का उल्लेख मिलता है। इससे पता चलता है कि उस समय इन लोगों ने पश्चिमी भारत में एक बस्ती बना ली थी।

2. महाभारत के अनुसार यथाति पुत्र तुर्वसु के वंशज। पहले ये क्षत्रिय थे, पर ब्राह्मणों से द्वेष रखने के कारण इनकी गणना व्रात्यों में होने लगी। इनका नन्दिनी गाय के योनि प्रदेश से उत्पन्न होना भी बताया गया है। महाभारत युद्ध में ये कौरवों के साथ थे। इससे पूर्व दिग्विजय के समय नकुल और सहदेव ने इन्हें हराया था। —भारतीय संस्कृति कोश : लीलाधर शर्मा 'पर्वतीय' : राजपाल एंड सन्स, संस्करण 1996 : पृष्ठांक 744।

6. म्लेच्छ—गोमांस खादको यश्च विरुद्धं बहुभाषते।
धर्माचार विहीनश्च म्लेच्छ इत्यभिधीयते।(प्रायश्चिततत्त्वम्)
शब्दकल्पद्रुमः चतुर्थ भाग (यवन शब्दान्तर्गत)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गाँधी की व्यथा-एक प्रसंग के बहाने कुछ बातें

राजीव रंजन गिरि*

महात्मा गाँधी के सचिव थे—महादेवभाई देसाई। महादेव भाई उन अर्थों से सचिव नहीं थे, जैसे आज के ज्यादातर सचिव होते हैं। महादेवभाई सच्चे अनुयायी थे गाँधी जी के। सहयोगी भी। वे गाँधी जी की चिन्ता और चिन्तन से इत्तेफाक रखते थे। उनके शब्द और कर्म के प्रति भरोसा का भाव था महादेवभाई के मन में। गाँधी जी भी महादेवभाई के प्रति अपने 'निकट का सम्बन्ध' स्वीकार करते थे। महादेवभाई ने गाँधी जी के जीवन से जुड़े अनेक छोटे-बड़े प्रसंगों को लिखा है अपनी डायरी में।

हिन्दी के अनूठे गद्यकार अनुपम मिश्र द्वारा सुसम्पादित और गाँधी शान्ति प्रतिष्ठान, नई दिल्ली से प्रकाशित दोमाही पत्रिका 'गाँधी मार्ग' (मई-जून 2012) में, महादेवभाई लिखित, एक मार्मिक प्रसंग छपा है। 'ऐसा भगवान चाँदी का सिक्का है' शीर्षक से।

"डेलांग, उड़ीसा में गाँधी सेवा संघ की वार्षिक बैठक थी। इस बैठक में महादेवभाई की पत्नी शामिल हुई थीं, इस मकसद से कि पुरी जा सकेंगी। महादेवभाई की पत्नी को यह मालूम नहीं था कि पुरी का मन्दिर हरिजनों के लिए नहीं खुला है, जबकि वे गाँधी जी की हरिजन-यात्रा के दौरान जेल में भी थीं। पहले दिन के भाषण में ही गाँधी जी ने कहा भी था कि "जगन्नाथ का मन्दिर हरिजनों के लिए खुला हुआ नहीं है और जब तक यह स्थिति बनी हुई है, तब तक उनके विचार से जगन्नाथ जगत्-नाथ नहीं हैं; वे केवल उन लोगों के नाथ हैं जो उनकी छाया तले फलते-फूलते हैं।" महादेवभाई को लगा कि यह भाषण उनकी पत्नी समेत सभी लोगों के लिए चेतावनी जैसा होगा। लिहाजा वे पुरी मन्दिर नहीं जाएँगे। हालाँकि महादेवभाई के मन में आशंका भी थी कि उनकी पत्नी पुरी जरूर जाएँगी। पर साथ में कस्तूरबा गाँजी जा रही थीं। महादेवभाई ने मान लिया कि कस्तूरबा मन्दिर के बाहर ही रहेंगी। इसका

---

*राजीव रंजन गिरि, दूसरी मंजिल सी-4/3, डी.एल.एफ अंकुर विहार, लोनी, गाजियाबाद-201102; मो. 9868175601; ई-मेल : rajeev.ranjan.giri@gmail.com

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

असर उनकी पत्नी और अन्य लोगों पर भी होगा और कोई भी अन्दर नहीं आएगा। महादेवभाई ने जैसा सोचा, वैसा हुआ नहीं। उनकी पत्नी मन्दिर में गईं, कस्तूरबा गाँधी भी। साथ गए कुछ लोग भी अन्दर गए। महादेवभाई के 'नादान बेटा' (जिन्हें हम लोग नारायणभाई देसाई के नाम से जानते हैं) और साथ गए कुछ सदस्य बाहर ही रहे। इनके बेटे का पंडों से खूब झगड़ा भी हुआ।

"इन लोगों के वापस आने के बाद गाँधी जी को सारी बात मालूम हुई। जानकर उन्हें काफी दुःख हुआ। रात-भर नींद नहीं आई। उन्होंने महादेवभाई, उनकी पत्नी और कस्तूरबा गाँधी को बुलाकर पूछा। इन लोगों ने जो सफाई दी, उससे गाँधी जी को सन्तोष नहीं हुआ। वे और भी चिढ़ गए। उन्होंने महादेवभाई को ही मुख्य रूप से दोषी माना। गाँधी जी का कहना था कि महादेवभाई को अछूतोद्धार आन्दोलन, हरिजन-यात्रा की पृष्ठभूमि सबको समझानी चाहिए थी। "किस प्रकार सन् 1934 में गाँधी जी पुरी गए थे, किस प्रकार से वहाँ पर सुनियोजित ढंग से हिंसा की गई थी और कैसे उन्हें उड़ीसा की पदयात्रा करनी पड़ी थी, कैसे सुधारकों को चेतावनी दी गई थी कि जब तक हरिजनों को प्रवेश नहीं दिया जाता तब तक वे लोग मन्दिर में न जाएँ।" यह सब सुनने के बावजूद यदि महादेवभाई की पत्नी कहना न मानती तो गाँधी जी की मदद लेनी चाहिए थी। अगर तब भी वे जाने का आग्रह करती तो उन्हें जाने दिया जाता। गाँधी जी का मानना था कि ऐसा नहीं करने से पता चलता है कि महादेवभाई पूरी तरह से सावधान नहीं थे। ऐसा करके महादेवभाई ने गाँधी जी के प्रति, अपनी पत्नी के प्रति तथा जिस उद्देश्य को लेकर वे सभी चल रहे थे, उस उद्देश्य के प्रति अन्याय किया है।

"गाँधी सेवा संघ के सदस्यों के सामने गाँधी जी ने इस बारे में अपनी व्यथा सुनाई। उन्होंने कहा कि "आप चाहे चरखा संघ, देहाती धन्धे या हरिजनों का काम करते हों, जो कुछ काम आप करते हैं, वह तो केवल एक बहाना है। उस बहाने हम यह देखना चाहते हैं कि सत्य कहाँ तक चल सकता है। अहिंसा हमको कहाँ तक ले जा सकती है। हम अहिंसा के साथ रहे हैं। लेकिन असली परीक्षा इसमें नहीं है। सबका निचोड़ तो यह हो जाता है कि उससे हमें आजादी प्राप्त हो। इसलिए हम इन सब प्रवृत्तियों को चला रहे हैं। लेकिन अछूतपन का विचार हमको इस तरह नहीं करना चाहिए। हमको तो यह प्रार्थना करनी चाहिए कि अगर अछूतपन हिन्दू धर्म का अंग है और वह नहीं मिट सकता तो फिर भले ही हिन्दू धर्म ही मिट जाए। अछूतपन जैसा धब्बा किसी कौम पर न रहे।...मैं वर्षों से चीख-चीखकर कह रहा हूँ कि जिस मन्दिर में हमारे अछूत भाई नहीं जा सकते, वहाँ हम न जाएँ। क्या उस मन्दिर में मेरी पत्नी, लड़की या माँ जा सकती है? हमारा कर्तव्य है कि उन्हें समझाएँ और यदि वे न मानें तो हमारा कर्तव्य है कि माता को भी त्यज दें और पिता को भी।"

गाँधी जी के इस उद्धरण में तीन बातें काबिलेगौर हैं। एक, हम जो भी काम कर रहे हैं, उसके जरिए देखना है कि सच्चाई और अहिंसा के जरिए हम कहाँ तक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जा सकते हैं? हम जो भी काम कर रहे हों, उसकी बुनियाद में सत्य और अहिंसा हैं या नहीं?

दो, छुआछूत यदि हिन्दू धर्म का अंग है और यह खत्म नहीं हो सकता तो इससे ठीक है कि हिन्दू धर्म ही खत्म हो जाए। हमें यह प्रार्थना करनी चाहिए कि या तो अस्पृश्यता खत्म हो या हिन्दू धर्म। दोनों साथ-साथ नहीं चल सकते। छुआछूत कायम रहने की हालत में हिन्दू धर्म का खात्मा गाँधी जी को मंजूर था। यह उस व्यक्ति का कहना था जो खुद को सच्चा हिन्दू मानता और स्वीकार भी करता था। यह उस शख्स का स्पष्ट मत था, जो पूरी साफगोई से बताता था कि 'मैं हिन्दू क्यों हूँ?' छुआछूत को खत्म करने के लिए गाँधी जी जद्दोजहद कर रहे थे, उसकी स्वाभाविक परिणति इस विचार में झलकती है। इसमें उजागर हुई है एक सच्चे धार्मिक की व्यथा। अस्पृश्यता को समाप्त करने की प्रतिबद्धता के परिणामस्वरूप जो आन्तरिक पीड़ा गाँधी के मन में थी, उसे यह तो गवारा था कि हिन्दू धर्म समाप्त हो जाए; पर यह कतई मंजूर नहीं था कि किसी के साथ छुआछूत बरता जाए। यह एक वैष्णव की पुकार थी। इन्हीं विचारों के कारण नरसी मेहता की रचना 'वैष्णव जन तू तेने कहिए जे पीर परायी जाने रे' गाँधी जी के सबसे पसन्दीदा भजनों में शुमार था। (इस पक्ष पर और ज्यादा जानने के लिए देखिए—'अन्तिम जन', मई का 'प्रसंगवश' स्तम्भ) गाँधी जी का दृढ़ विश्वास था कि अस्पृश्यता हिन्दू धर्म का अंग नहीं है। यह विकृति कालान्तर में इस धर्म में समा गई। हिन्दू धर्म ही नहीं, किसी भी कौम में छुआछूत की रवायत रहे, इसे वे गलत मानते थे। छुआछूत को वे धब्बा मानते थे। इसकी सफाई जल्दी करना जरूरी समझते थे।

तीन, उनकी इच्छा थी कि दूसरे लोग भी तब तक उस मन्दिर में न जाएँ जब तक उन्हें तथाकथित अछूतों के लिए खोल न दिया जाए। ऐसी कामना वे परिवार के सदस्यों से भी करते थे। अगर परिवार के सदस्य न मानें, ऐसे मन्दिरों में जाएँ तो उनको त्याग दिया जाए। भले ही इसमें माता-पिता ही क्यों न हों। इतनी कठोर शर्त कायम की थी अपने विचारों की प्रतिबद्धता के कारण। आखिर ऐसा क्यों सोचते थे गाँधी जी? उन्होंने पुरी मन्दिर के प्रसंग में कहा कि "महादेव अपने धर्म को भूल गया। उसने सोचा उन्हें श्रद्धा है तो मैं क्यों खलल पहुँचाऊँ? उसने उस मूढ़ श्रद्धा को धर्म मान लिया। उसने यह नहीं सोचा कि वह तो बूढ़ा (गाँधी जी) पड़ा है, उसके दिल पर क्या असर होगा, समाज पर क्या असर होगा? हमें व्यक्तिगत धर्म और सामाजिक धर्म को समझ लेना चाहिए।"

गाँधी जी द्वारा पेश कठोर शर्त का कारण महादेवभाई का धर्म, मूढ़ श्रद्धा, व्यक्तिगत धर्म और सामाजिक धर्म के बीच के रिश्ते को समझने पर पता चलता है। अपना कौन-सा धर्म भूल गए थे महादेवभाई? क्या यह माना जाए कि गाँधी जी की हरिजन-यात्रा, जिसके प्रति महादेवभाई की भी प्रतिबद्धता थी, को वे भूल गए थे। क्या इन्होंने अपनी पत्नी की मूढ़ श्रद्धा को धर्म मान लिया था? सच तो यह है कि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

महादेवभाई भूले नहीं थे। महादेवभाई ऐसे मन्दिरों में जाने के विरुद्ध थे, जो हरिजनों के लिए तो खोल दिए गए हों, पर जिनमें बेईमान पंडों का आश्रय हो। हाँ, उन्होंने ध्यान इस मसले पर थोड़ा कम दिया था। उनको यह भी लगता था कि 'गाँधी जी के हृदय की विशालता तो असीम है और उन्होंने मन्दिर जाने का इतना आग्रह रखने वाली मेरी पत्नी को क्षमा कर दिया होगा?' गाँधी जी का हृदय विशाल था और असीम भी। बावजूद इसके वे नाराज थे। उन्होंने माफ नहीं किया था। कारण कि इतिहास के उस दौर में वे व्यक्तिगत धर्म और सामाजिक धर्म के फर्क को समझ रहे थे। इसके प्रति सचेत भी थे। अपनी हरिजन-यात्रा के दौरान उन्होंने श्रद्धा और मूढ़ श्रद्धा को बखूबी देखा था। व्यक्तिगत धर्म और सामाजिक धर्म के अन्तर्द्वन्द्व को देखा था।

गाँधी जी व्यक्तिगत धर्म और सामाजिक धर्म को समझने का इसरार कर रहे थे। इसका आशय क्या है? क्या इन्सान का व्यक्तिगत धर्म अलग होता है और सामाजिक धर्म अलग? क्या व्यक्तिगत धर्म और सामाजिक धर्म में विलोम का रिश्ता अनिवार्य है? पुरी मन्दिर के प्रसंग को जेहन में रखने पर कहा जा सकता है कि महादेवभाई की पत्नी दुर्गाबाई, कस्तूरबा गाँधी आदि लोग व्यक्तिगत धर्म के अनुसार मन्दिर में जाने के आग्रही हो सकते हैं। पर सामाजिक धर्म के मुताबिक नहीं। यह इसलिए कहा जा रहा है क्योंकि गाँधी जी ने कहा था कि महादेव ने सोचा था कि उन्हें श्रद्धा है तो मैं क्यों खलल पहुँचाऊँ। यह भी कहा कि ऐसा कर मूढ़ श्रद्धा को धर्म मान लिया महादेव ने। इसके बाद गाँधी जी ने व्यक्तिगत धर्म और सामाजिक धर्म को समझने का इसरार करते हुए कहा कि महादेवभाई ने यह नहीं सोचा कि गाँधी पर क्या असर होगा। समाज पर क्या असर होगा? यानी समाज पर पड़नेवाले असर से हमारे सामाजिक धर्म का पता चलता है। समाज के प्रति हमारा क्या दायित्व है। हमारे किसी भी कदम से समाज पर क्या प्रभाव पड़ेगा, इसकी याद दिला रहे थे गाँधी जी। उल्लेखनीय है कि परम्परा द्वारा अपने परिवार में बाल्यावस्था के विकास के क्रम में जो हम देखते-सीखते हैं, वह हमारा व्यक्तिगत धर्म बन जाता है।

गाँधी जी ने मूढ़ श्रद्धा को धर्म मानने से रोका था। मतलब कि कस्तूरबा, दुर्गाबाई सहित जो लोग पुरी मन्दिर में गए वे सोचकर तो यह गए कि वे अपने धर्म के मुताबिक आचरण कर रहे हैं। धर्म के अनुसार पुरी मन्दिर में जा सकते हैं, पर वह उनका धर्म नहीं था; मूढ़ श्रद्धा थी।

गाँधी जी ने अपनी हरिजन-यात्रा इसी मूढ़ श्रद्धा के खिलाफ शुरू की थी। कस्तूरबा, दुर्गाबाई आदि लोगों के मन्दिर में जाने से गाँधी जी को गहरा धक्का लगा। बकौल गाँधी जी "मैं निस्तेज हो गया। मेरा दिमाग इस तरह गरम हो गया कि मानो नसें टूटने की नौबत आ गई। उस बात को जब सोचता था ब्लड-प्रेशर खूब बढ़ जाता। मुझे इसकी परवाह नहीं थी कि वह बढ़ रहा था। 'गीता' की भाषा जाननेवाले कहेंगे कि इन चीजों का ऐसा असर नहीं होना चाहिए।" 'गीता' को अत्यधिक महत्त्व देनेवाले गाँधी जी नहीं चाहते थे कि इन चीजों का उन पर असर नहीं होना चाहिए।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उन्होंने साफ-साफ कहा है कि "मैं ऐसा नहीं बनना चाहता कि किसी चीज का असर मुझ पर न पड़े। 'गीता' में त्रिगुणातीत के लक्षण मैंने पढ़े हैं। लेकिन वह तो आदर्श है। बाकी हम सब तो वहीं तक जा सकते हैं, जहाँ तक हमको सात्विकता ले जाए। अगर इस तरह हमें सदमा न पहुँचे तो हम कोई काम नहीं कर सकते।" इसलिए गाँधी जी त्रिगुणातीत आदर्श को मानते हुए भी 'सदमा' जरूरी समझते थे। 'सदमा' का लगना इन्सान की भावना के सजीव होने का परिचायक है। जब किसी चीज का असर नहीं पड़े तो इंसान मूढ़ बन जाता है। भावनाशून्य बन् जाता है। पत्थर हृदय बन जाता है। ऐसे में, क्या कोई व्यक्ति मनुष्य रह पाता है?

गाँधी जी इस सदमे के लिए खुद को जिम्मेवार मानते थे। उन्होंने कहा था कि सदमे का 'कारण यह नहीं है कि वे तीन औरतें चली गईं, लेकिन यह कि उन्हें सही तालीम नहीं मिली। महादेव अपने धर्म को भूल गया।' यानी गाँधी की पीड़ा के कारण थे–मन्दिर में जानेवालों को सही तालीम नहीं मिलना और गाँधी जी की समझ के मुताबिक महादेवभाई का अपना धर्म भूल जाना। गाँधी जी इन्हें सही तालीम न मिलने को लेकर व्यथित थे। उन्होंने कहा कि 'पचास साल मेरे साथ गृहस्थाश्रम करने के बाद वह (कस्तूरबा) वहाँ क्यों गई? और वे दूसरी दो औरतें भी क्यों गईं? वे तो मेरी लड़कियाँ हैं। वह भी मेरी गलती है। उनकी इस कृति से हमारी आत्मिक शक्ति का ह्रास हुआ है।' गाँधी जी के साथ रहने पर भी अगर कस्तूरबा, दुर्गाबाई आदि में चेतना न पनपी कि पुरी मन्दिर में नहीं जाना चाहिए तो यह उनका (गाँधी जी) दोष है। गाँधी जी दूसरे को इसके लिए जिम्मेवार ठहराकर खुद को अलग नहीं करते थे। अपितु वे इन सबके लिए खुद को दोषी मानकर व्यथित होते थे, पश्चात्ताप करते थे।

इसके बाद तो गाँधी जी ने कहा वह मानीखेज है। 'हम औरतों को औरतें समझकर इन बातों की उपेक्षा करते हैं। यह अहिंसा का मार्ग नहीं है। यह जागृति का विषय है।' औरतों को औरतें समझकर इन बातों की उपेक्षा गौरतलब है। यह बताता है कि परम्परा प्रदत्त मान्यता औरतों को कमतर मानने की थी। गाँधी जी ने एक बार राजेन्द्र प्रसाद की बहन को भी मन्दिर प्रवेश से रोका था। गाँधी जी का ठीक अनुमान था कि 'कोई कहेगा कि मैंने अनुचित दबाव डाला।' इसके जवाब में इन्होंने कहा कि 'मैं कहता हूँ मैंने उसको अधर्म से बचाया। मैंने यदि दस्तान्दाजी की है तो धर्म के नाम पर की है।' ऐसे मन्दिरों में प्रवेश, जहाँ हरिजनों का जाना मना है, गाँधी जी के मुताबिक अधर्म है। लिहाजा मन्दिर जाने से रोकना धर्म का काम है। गौरतलब है कि ऐसा कर गाँधी जी, धर्म को लेकर जो मान्यताएँ समाज में व्याप्त थीं उसे, दरका रहे थे। तथाकथित अछूतों को मन्दिर प्रवेश का अधिकार मिले। उसके लिए गाँधी जी हरिजन-यात्रा करके जनजागरण कर रहे थे, आन्दोलन चला रहे थे। इससे धर्म और अधर्म की नई परिभाषा निर्मित हो रही थी।

गाँधी जी की व्यथा का एक बड़ा कारण था–कस्तूरबा और दुर्गाबाई का पुरी मन्दिर में जाना। कस्तूरबा उनकी पत्नी थीं और दुर्गाबाई उनके आत्मीय महादेवभाई

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की पत्नी। इन दोनों के मन्दिर-प्रवेश से इन पर, गाँधी जी द्वारा प्रसारित चेतना के अभाव का पता चलता है। इससे समाज में यह सन्देश जाता है कि गाँधी जो स्वप्न देख रहे हैं, और उसके लिए जो आग्रह कर रहे हैं, उनसे अनन्य रूप से जुड़े लोग ही उसका पालन नहीं करते। शब्द और कर्म में एका रखनेवाले गाँधी के लिए यह पीड़ादायी बात थी। हिन्दी-उर्दू भाषी इलाके में उन्नीसवीं सदी में जो लेखक नवजागरण की चेतना के लिए अन्धविश्वास और बाह्य आडम्बर के खिलाफ साहित्य रच रहे थे, उनकी आलोचना में यह बात भी बताई जाती है कि इनके घरों में पत्नियाँ इस चेतना से वंचित थीं। वे अन्धविश्वास और आडम्बर का पालन करती थीं। गाँधी का मन यह स्वीकार नहीं कर सकता था। गाँधी जी ने जो व्यक्तिगत धर्म गढ़ा था, वैसा धर्म उनके सहयोगियों का भी हो, ऐसा अरमान था उनका। इसलिए वे कहते थे कि 'उनका और मेरा अगर समान धर्म हो जाए तब तो मैं समाज को भी समझाऊँगा कि ऐसे मन्दिरों में क्या पड़ा है? और अगर जाना ही है, तो वहीं तक जाएँ जहाँ तक हरिजन जाते हैं। सिर्फ झाड़ू लगा देने से हरिजनों के साथ तादात्म्य सिद्ध नहीं होता। जो मन्दिर सैकड़ों, हजारों वर्षों से पवित्र गिने गए हैं, जहाँ जाने के लिए हम तरसते हैं, वहाँ पर भी अगर हम सिर्फ इसलिए न जाएँ कि हमारे हरिजन भाई नहीं जा सकते तो वह बड़ा भारी धर्मकृत्य होगा।'

गाँधी जी ने अपनी व्यथा जाहिर करते हुए साथियों को समझाया कि बड़ा भारी धर्मकृत्य होगा, अगर हम उन मन्दिरों में सिर्फ इसलिए नहीं जाएँ कि हमारे हरिजन भाई नहीं जा सकते। भले ही वे मन्दिर सैकड़ों, हजारों सालों से पवित्र गिने गए हैं, जहाँ चैतन्य-जैसे महात्माओं ने पूजा-अर्चना की हो; या जहाँ जाने के लिए हम तरसते रहे हों। और अगर जाना ही है तो सिर्फ वहीं तक जाएँ, जहाँ तक हरिजन जा पाते हैं। कारण कि 'सिर्फ झाड़ू लगा देने से हरिजनों के साथ तादात्म्य सिद्ध नहीं होता।' गाँधी जी ने एक ऐसे ही मन्दिर के बारे में बताया कि वहाँ पंडा आए थे। वे कहते थे कि आपके (गाँधी जी) साथ हरिजन जा सकते हैं। गाँधी जी को यह गवारा नहीं था। वजह यह कि हरिजन उस मन्दिर में सिर्फ गाँधी जी के साथ जा सकते थे। बाद में नहीं। ऐसी छूट गाँधी जी को मंजूर नहीं हो सकती थी। कारण कि इसमें मन्दिर-प्रवेश का प्रचंड विरोध करनेवालों का दिल-दिमाग बदलने का संकेत तक नहीं मिलता।

गाँधी जी ने उस पंडे के बारे में एक बात और कही, जो मानीखेज है। गाँधी जी ने कहा कि, 'उसका ईश्वर तो चाँदी का सिक्का है।' यानी पंडे ने चढ़ावा में मिलनेवाले चाँदी के सिक्के के लालच में उस दिन गाँधी जी के साथ हरिजनों के मन्दिर-प्रवेश की इजाजत दी थी। साथ में, राजेन्द्र बाबू की बहन थीं। गाँधी जी ने उनको भी मन्दिर-प्रवेश से रोक दिया था। पंडा के बारे में गाँधी जी का विश्लेषण सोलह आने सही था।

हरिजनों के मन्दिर-प्रवेश के सवाल का रिश्ता गाँधी जी हिन्दू-मुस्लिम मसले से भी सम्बद्ध मानते थे। बकौल गाँधी जी, "सनातनी तो कहते हैं कि छुआछूत हिन्दू धर्म

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

का अंग है। मुसलमान भी यही मानते थे। वे कहते हैं कि हिन्दू-धर्म में सिवाय छुआछूत और बुतपरस्ती के और है ही क्या? लेकिन इस छुआछूत की बू उन्हें भी लग गई है। वे भंगियों को दूर रखते हैं। जब मुसलमान देखेंगे कि हमने छुआछूत को छोड़ दिया, मुसलमानों के विरोध के लिए या राजकीय कारणों से नहीं, बल्कि आदमियत के लिए, तो उन पर भी असर पड़ेगा। वे कहेंगे कि ये लोग बुतपरस्त भले ही हों, लेकिन इनके बुत में भी खुदा हैं। इसीलिए मैंने बुतपरस्तों से कहा है कि तुम मुसलमानों से दोस्ती करो। यही बहादुरी की अहिंसा का मार्ग है। मौलाना साहब भी शायद ऐसा ही मानते हैं कि गाँधी तो जैसा कहता है, वैसा ही है। लेकिन दूसरे हिन्दू छुआछूत से सराबोर हैं। हमारी यह जिम्मेवारी है कि हम उनकी इस राय को बदल दें।" गाँधी जी हिन्दू धर्म के बारे में दूसरे धर्मावलम्बियों की राय को लेकर भी सचेत रहते थे। दूसरों की राय सकारात्मक हो, इसके लिए प्रयत्नरत भी रहते थे। हाँ, दिशा मानव-मूल्यों के मुताबिक हो। इन्सानियत की राह में सहायक हो।

डेलांग में गाँधी जी ने 'गाँधी सेवा संघ' के सदस्यों से पूछा कि क्या कोई सदस्य यह भी कहेगा कि मेरे लिए एक धर्म है और मेरी स्त्री और बहन के लिए दूसरा? अगर कोई कहता है तो गाँधी जी के मुताबिक, 'यह न तो धार्मिक उदारता है और न अहिंसा ही। लोग हमें दम्भी समझेंगे।' गाँधी की मान्यता थी कि "धर्म तो उत्कट श्रद्धा का नाम है। धर्म का निचोड़ उसका दूसरा नाम अहिंसा है।"

यहाँ गाँधी जी की दो बातें जिक्रतलब हैं। एक, उनके मुताबिक धर्म का मतलब है 'उत्कट श्रद्धा।' जगन्नाथ मन्दिर में कस्तूरबा और दुर्गाबाई के जाने पर गाँधी जी ने महादेवभाई के बारे में कहा था कि इन्होंने 'मूढ श्रद्धा' को धर्म समझ लिया, जो गलत है। यहाँ गाँधी जी ने उत्कट श्रद्धा को धर्म के पर्याय के तौर पर प्रयोग किया है। लिहाजा, 'मूढ़ श्रद्धा' और 'उत्कट श्रद्धा' के बीच के अन्तर को ध्यान में रखना जरूरी है। दो, गाँधी जी के अनुसार, धर्म का निचोड़ है अहिंसा। धर्म का सार है अहिंसा। इतना ही नहीं धर्म का दूसरा नाम ही है अहिंसा। अहिंसा की ताकत को बताने के लिए गाँधी जी ने पतंजलि को उद्धृत किया है 'अहिंसा के सामने हिंसा निकम्मी हो जाती है।' कोई पूछ सकता है कि आज तक ऐसा क्यों नहीं हुआ तो उसका कारण यह है कि 'हमारी अहिंसा दुर्बलों और भीरुओं की थी।' ऐसा कहकर गाँधी जी अहिंसा के सम्बन्ध में इन्सानी सोच को बदल रहे थे। लोगों का माइंडसेट ऐसा है कि अहिंसा को कायरता का प्रमाण और परिणाम समझा जाता रहा है। गाँधी जी ने सिर के बल खड़ी इस अवधारणा को पैर के बल खड़ा किया। इन्होंने स्थापित किया कि अहिंसा शौर्य और साहस का प्रमाण है और परिणाम भी। गाँधी जी ताकत, शौर्य के पर्याय के तौर पर पुरुषत्व शब्द का उपयोग भी करते थे। लिहाजा कहा जा सकता है कि अहिंसा पुरुषत्व का सबूत है। अहिंसा वीरता की परिचायक है। अहिंसा धैर्य, धर्म, ताकत और आत्मिक बल का पर्याय है। गाँधी जी के द्वारा ऐसा प्रस्तावित

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करना दरअसल एक नए सभ्यतागत मूल्य को स्थापित करने की कोशिश है। यह बलशाली के अधिकार को मार्मिक चुनौती है। यह जिसकी लाठी उसकी भैंस वाली मानसिकता को बदलने का प्रयास है। यह 'सर्वाइवल ऑफ दि फिटेस्ट' की अवधारणा का इन्कार है। यह ऐसी सभ्यता की स्वीकृति है, जो हिंसा बलवालों के अधिकारवान होने का खंडन करता है।

गाँधी जी की इन व्याकुलता भरी बातों को सुनकर महादेवभाई देसाई के हृदय की पीड़ा और भी बढ़ गई। महादेवभाई ने सोचा कि 'मैंने विवेक की इतनी गम्भीर भूल की है तो मैं उनकी सेवा में किस प्रकार बना रह सकता हूँ? मैं हरिजन-कार्य का सही प्रतिनिधित्व और हरिजनों की सेवा कैसे कर सकता हूँ? मुझे उनका चौकीदार बनने का क्या अधिकार है?" ये सारे विचार महादेवभाई को व्यथित कर रहे थे। उन्होंने निराश होकर गाँधी जी को खत लिखा कि 'मुझे अपनी सेवा से अलग कर दें।' महादेवभाई के इस पत्र से गाँधी जी और ज्यादा क्षुब्ध हो गए। गाँधी जी ने कहा कि 'मैं ऐसे व्यक्ति के साथ, जो मुझे प्यार नहीं करता, जिन्दा रहने की अपेक्षा उस व्यक्ति के हाथों मरना अधिक पसन्द करूँगा जो मुझे प्यार करता है।' गाँधी जी ने महादेवभाई को कहा कि 'तुम्हें तो सत्याग्रही तीर्थयात्रियों का एक जत्था लेकर पुरी जाना चाहिए था और इस तरह अपनी भूल को सुधारने की कोशिश करते। ऐसा न करके, शुभ हेतु से मैंने जो थोड़ा-सा डाँटा उसका तुमने बुरा माना और भावुकता में आकर अनाप-शनाप लिख बैठे। अपनी पत्नी की देखभाल करने के बजाय तुमने उसके प्रति अपने अन्धे प्रेम के कारण अन्धविश्वास को बढ़ावा दिया।'

गाँधी जी की ये बातों सुनकर महादेवभाई 'सन्न रह' गए। बकौल महादेव देसाई गाँधी जी ने "प्रेम का क्लोरोफॉर्म सुँघाकर कई आध्यात्मिक ऑपरेशन किए थे। पर मुझे लगा कि यह ऑपरेशन तो उन्होंने बिना क्लोरोफॉर्म के किया है।"

जगन्नाथ पुरी मन्दिर के इस प्रसंग के बाद जो बातें गाँधी जी ने व्यथापूर्वक कहीं, उस पर राय जाहिर करते हुए महादेवभाई ने समझा कि 'मुझे जो बातें अत्यन्त तुच्छ जान पड़ती हैं, वही बातें उनके जीवन-मरण का प्रश्न बन सकती हैं।' महादेवभाई के इस कथन से पता चलता है कि गाँधी जी छोटे-छोटे मुद्दों को कितनी गम्भीरता से लेते थे। राष्ट्रीय-आन्दोलन का नेतृत्व करनेवाले महात्मा गाँधी अस्मितावादी आवाजों को प्रमुखता देकर राष्ट्र के समक्ष की चुनौतियों को सुलझाने की कोशिश कर रहे थे। इसके आधार पर उन आरोपों का खंडन होता है, जो अछूतोद्धार को रणनीति मात्र मानते थे अथवा डॉ. आम्बेडकर की मौजूदगी का परिणाम। अछूतोद्धार के सवाल के साथ गाँधी किस संजीगदगी के साथ सम्बद्ध थे, इसे डेलांग-प्रकरण के आधार पर समझा जा सकता है। यहाँ याद करने योग्य बात है कि गाँधी जी के अछूतोद्धार आन्दोलन के महत्त्व को तत्कालीन काँग्रेसी नेतृत्व नहीं समझ पाया था।

महादेवभाई ने बिलकुल साफ-साफ महसूस किया, "गाँधी जी का हरिजनों के प्रति अनन्यतम प्रेम तथा उनके लिए प्राण तक न्यौछावर कर देने की उत्सुकता।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हिन्दी-समीक्षा के नये आयाम

डॉ. नन्दलाल मेहता 'वागीश'*

हिन्दी-भाषा के चिन्तक कवि व सजग समीक्षक डॉ. वरुण कुमार तिवारी की सद्यः प्रकाशित कृति 'पाठान्तर' विधागत दृष्टि से समीक्षात्मक पुस्तक है। पुस्तक में संकलित 21 आलेखों में से 18 आलेख कृति-आश्रित समीक्षाओं के हैं। शेष तीन स्वतन्त्र आलेख हिन्दी भाषा के तीन विशिष्ट साहित्यकारों के सर्जनात्मक अवदान पर हैं। कृति-आश्रित 18 आलेखों का फलक बहुआयामी है। इनमें अकादमिक शोध-गवेषणा, वैचारिक वाद-प्रकरण, अनुवाद-कौशल, लोक-संस्कृति—सामाजिक अध्ययन, अनुभव-सर्जना तथा यात्रा-संस्मरण सहित हिन्दी कहानी, उपन्यास एवं काव्य-गजल आदि कृतियों के समालोचक आलेख सम्मिलित हैं। तीन स्वतन्त्र आलेखों की प्रवृत्ति भी समीक्षात्मक है। इस प्रकार 'पाठान्तर' के सभी आलेखों का सरोकार हिन्दी भाषा की शोधप्रज्ञता, चिन्तन-आलोक और सर्जनात्मक स्वरूप के विश्लेषण का समावेशी है। 'पाठान्तर' के भूमिका लेखक डॉ. दीनानाथ सिंह हिन्दी के प्रबुद्ध समालोचक हैं। उनके मत में डॉ. वरुण तिवारी एक सफल कवि होने के साथ-साथ तत्त्वाभिनिवेशी दृष्टि के समीक्षक भी हैं। उन्होंने डॉ. तिवारी की समीक्षा-पद्धति को 'सूत्रात्मक समीक्षा सिद्धान्त' नाम दिया है।

सूत्रात्मक समीक्षा-सिद्धान्त से भूमिका लेखक का अभिप्राय यही प्रतीत होता है कि अधीत पुस्तक के अपने समीक्षात्मक बोध को 'व्यास पद्धति' से कहने की अपेक्षा डॉ. वरुण तिवारी ने प्रायः 'समास पद्धति' से कहा है। फलतः 'समास पद्धति' के वैचारिक सूत्रों के आश्रय से पाठक इन पुस्तकों के स्वरूप और प्रतिपाद्य की रूपरेखाओं

*डॉ. नन्दलाल मेहता वागीश, पी-एच.डी., डी.लिट्. *(लेखक—समीक्षक—भाषाचिन्तक) पूर्व सीनियर फैलो (Senior Fellow) संस्कृति मन्त्रालय, भारत सरकार।* प्रान्तीय अध्यक्ष — अखिल भारतीय साहित्य परिषद्, हरियाणा। संपर्क : शब्दालोक-1218 सेक्टर—4, अर्बन एस्टेट, गुड़गाँव (हरियाणा), दूरभाष—0124-4077218, सचलवाक—09910431699

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करना दरअसल एक नए सभ्यतागत मूल्य को स्थापित करने की कोशिश है। यह बलशाली के अधिकार को मार्मिक चुनौती है। यह जिसकी लाठी उसकी भैंस वाली मानसिकता को बदलने का प्रयास है। यह 'सर्वाइवल ऑफ दि फिटेस्ट' की अवधारणा का इन्कार है। यह ऐसी सभ्यता की स्वीकृति है, जो हिंसा बलवालों के अधिकारवान होने का खंडन करता है।

गाँधी जी की इन व्याकुलता भरी बातों को सुनकर महादेवभाई देसाई के हृदय की पीड़ा और भी बढ़ गई। महादेवभाई ने सोचा कि 'मैंने विवेक की इतनी गम्भीर भूल की है तो मैं उनकी सेवा में किस प्रकार बना रह सकता हूँ? मैं हरिजन-कार्य का सही प्रतिनिधित्व और हरिजनों की सेवा कैसे कर सकता हूँ? मुझे उनका चौकीदार बनने का क्या अधिकार है?" ये सारे विचार महादेवभाई को व्यथित कर रहे थे। उन्होंने निराश होकर गाँधी जी को खत लिखा कि 'मुझे अपनी सेवा से अलग कर दें।' महादेवभाई के इस पत्र से गाँधी जी और ज्यादा क्षुब्ध हो गए। गाँधी जी ने कहा कि 'मैं ऐसे व्यक्ति के साथ, जो मुझे प्यार नहीं करता, जिन्दा रहने की अपेक्षा उस व्यक्ति के हाथों मरना अधिक पसन्द करूँगा जो मुझे प्यार करता है।' गाँधी जी ने महादेवभाई को कहा कि 'तुम्हें तो सत्याग्रही तीर्थयात्रियों का एक जत्था लेकर पुरी जाना चाहिए था और इस तरह अपनी भूल को सुधारने की कोशिश करते। ऐसा न करके, शुभ हेतु से मैंने जो थोड़ा-सा डाँटा उसका तुमने बुरा माना और भावुकता में आकर अनाप-शनाप लिख बैठे। अपनी पत्नी की देखभाल करने के बजाय तुमने उसके प्रति अपने अन्धे प्रेम के कारण अन्धविश्वास को बढ़ावा दिया।'

गाँधी जी की ये बातों सुनकर महादेवभाई 'सन्न रह' गए। बकौल महादेव देसाई गाँधी जी ने "प्रेम का क्लोरोफॉर्म सुँघाकर कई आध्यात्मिक ऑपरेशन किए थे। पर मुझे लगा कि यह ऑपरेशन तो उन्होंने बिना क्लोरोफॉर्म के किया है।"

जगन्नाथ पुरी मन्दिर के इस प्रसंग के बाद जो बातें गाँधी जी ने व्यथापूर्वक कहीं, उस पर राय जाहिर करते हुए महादेवभाई ने समझा कि 'मुझे जो बातें अत्यन्त तुच्छ जान पड़ती हैं, वही बातें उनके जीवन-मरण का प्रश्न बन सकती हैं।' महादेवभाई के इस कथन से पता चलता है कि गाँधी जी छोटे-छोटे मुद्दों को कितनी गम्भीरता से लेते थे। राष्ट्रीय-आन्दोलन का नेतृत्व करनेवाले महात्मा गाँधी अस्मितावादी आवाजों को प्रमुखता देकर राष्ट्र के समक्ष की चुनौतियों को सुलझाने की कोशिश कर रहे थे। इसके आधार पर उन आरोपों का खंडन होता है, जो अछूतोद्धार को रणनीति मात्र मानते थे अथवा डॉ. आम्बेडकर की मौजूदगी का परिणाम। अछूतोद्धार के सवाल के साथ गाँधी किस संजीगदगी के साथ सम्बद्ध थे, इसे डेलांग-प्रकरण के आधार पर समझा जा सकता है। यहाँ याद करने योग्य बात है कि गाँधी जी के अछूतोद्धार आन्दोलन के महत्त्व को तत्कालीन काँग्रेसी नेतृत्व नहीं समझ पाया था।

महादेवभाई ने बिलकुल साफ-साफ महसूस किया, "गाँधी जी का हरिजनों के प्रति अनन्यतम प्रेम तथा उनके लिए प्राण तक न्यौछावर कर देने की उत्सुकता।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हिन्दी-समीक्षा के नये आयाम

डॉ. नन्दलाल मेहता 'वागीश'*

हिन्दी-भाषा के चिन्तक कवि व सजग समीक्षक डॉ. वरुण कुमार तिवारी की सद्यः प्रकाशित कृति 'पाठान्तर' विधागत दृष्टि से समीक्षात्मक पुस्तक है। पुस्तक में संकलित 21 आलेखों में से 18 आलेख कृति-आश्रित समीक्षाओं के हैं। शेष तीन स्वतन्त्र आलेख हिन्दी भाषा के तीन विशिष्ट साहित्यकारों के सर्जनात्मक अवदान पर हैं। कृति-आश्रित 18 आलेखों का फलक बहुआयामी है। इनमें अकादमिक शोध-गवेषणा, वैचारिक वाद-प्रकरण, अनुवाद-कौशल, लोक-संस्कृति—सामाजिक अध्ययन, अनुभव-सर्जना तथा यात्रा-संस्मरण सहित हिन्दी कहानी, उपन्यास एवं काव्य-गजल आदि कृतियों के समालोचक आलेख सम्मिलित हैं। तीन स्वतन्त्र आलेखों की प्रवृत्ति भी समीक्षात्मक है। इस प्रकार 'पाठान्तर' के सभी आलेखों का सरोकार हिन्दी भाषा की शोधप्रज्ञता, चिन्तन-आलोक और सर्जनात्मक स्वरूप के विश्लेषण का समावेशी है। 'पाठान्तर' के भूमिका लेखक डॉ. दीनानाथ सिंह हिन्दी के प्रबुद्ध समालोचक हैं। उनके मत में डॉ. वरुण तिवारी एक सफल कवि होने के साथ-साथ तत्त्वाभिनिवेशी दृष्टि के समीक्षक भी हैं। उन्होंने डॉ. तिवारी की समीक्षा-पद्धति को 'सूत्रात्मक समीक्षा सिद्धान्त' नाम दिया है।

सूत्रात्मक समीक्षा-सिद्धान्त से भूमिका लेखक का अभिप्राय यही प्रतीत होता है कि अधीत पुस्तक के अपने समीक्षात्मक बोध को 'व्यास पद्धति' से कहने की अपेक्षा डॉ. वरुण तिवारी ने प्रायः 'समास पद्धति' से कहा है। फलतः 'समास पद्धति' के वैचारिक सूत्रों के आश्रय से पाठक इन पुस्तकों के स्वरूप और प्रतिपाद्य की रूपरेखाओं

---

*डॉ. नन्दलाल मेहता वागीश, पी-एच.डी., डी.लिट्. *(लेखक—समीक्षक—भाषाचिन्तक) पूर्व सीनियर फैलो (Senior Fellow) संस्कृति मन्त्रालय, भारत सरकार।* प्रान्तीय अध्यक्ष – अखिल भारतीय साहित्य परिषद्, हरियाणा। संपर्क : शब्दालोक-1218 सेक्टर—4, अर्बन एस्टेट, गुड़गाँव (हरियाणा), दूरभाष—0124-4077218, सचलवाक—09910431699

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

से अवगत हो सकता है और यदि किसी विधागत विषय के प्रति उसकी रुचि है, तो वह मूल पुस्तक को पढ़ने के लिए प्रवृत्त भी हो सकता है। समीक्षा-कर्म के लिए यह स्थिति आदर्श कही जा सकती है, कि जब मूल रचना में निहित सर्जनात्मक परिवेश, समीक्षा के माध्यम से पाठक के हृदय में मूर्त हो उठे। डॉ. वरुण तिवारी की समीक्षा-पद्धति इसी कोटि की है। इस दृष्टि से समीक्षा पुस्तक का शीर्षक 'पाठान्तर' सही अर्थों में मूल पाठ का पर्याय-सन्निभ कहा जायेगा।

डॉ. वरुण तिवारी द्वारा समीक्षा पुस्तक के लिए 'पाठान्तर' शीर्षक का प्रयोग सहेतुक प्रतीत होता है। सामान्य रूप से 'पाठान्तर', भाषा शास्त्रीय पाठालोचन-पद्धति (पाठ-शोध-प्रविधि) का एक अंग है, यह तथ्य डॉ. वरुण तिवारी से छिपा न होगा, ऐसे में भी यदि उन्होंने समीक्षा-कृति के लिए 'पाठान्तर' शब्द का प्रयोग किया है तो कोई-न-कोई उनका अभिप्राय अवश्य रहा होगा। हिन्दी में 'अन्तर' शब्द का अर्थ है—दूसरा। इस 'दूसरे में पहले जैसा भाव' कहीं निहित होता है। 'समस्त पद' प्रयोग में यह शब्द उत्तर पद के रूप में व्यवहृत होता है। हिन्दी भाषा के जन्मान्तर, शब्दान्तर और प्रकारान्तर इसी कोटि के शब्द हैं। 'पाठान्तर' प्रयोग से डॉ. तिवारी का अभिप्राय है कि कृतिकार का जो मन्तव्य, कृति की सर्जनात्मकता में सन्निहित है, वही समीक्षा का केन्द्रीय सरोकार होना चाहिए। समीक्षक का यह साहित्यिक दायित्व होना चाहिए कि वह पाठक का कृति के अन्तरंग चैतन्य से साक्षात्कार कराये। समीक्षक डॉ. तिवारी की यही विवक्षा 'पाठान्तर' से ध्वनित हो रही है।

वस्तुतः समीक्षा-क्षेत्र का न्याय यही है कि कृतिपथ से गुजरकर ही कृति की समीक्षा की जा सकती है। सम्भवतः इसी ओर समीक्षकों का ध्यान आकृष्ट करने के लिए आचार्य नलिन विलोचन शर्मा ने कहा कि 'आलोचना रचना का शेषांश है।' अर्थात् जो रचना में अव्यक्त रह गया है, उसे भी पाठकों तक पहुँचाना समीक्षा का कार्य है। किन्तु, दुर्भाग्य से, मार्क्सवादी बौद्धिक गुलामी करने वाले कतिपय स्वयंभू प्रगतिशील समीक्षक गत कई दशकों से हिन्दी-समीक्षा को विपथगा बनाने के प्रयास करते आ रहे हैं। कृति के अन्तरंग चैतन्य को उपेक्षित कर जो उसमें आरोपित वाद का प्रतिबिम्ब ढूँढ़ने के आदी हैं, ऐसे दुर्गतिशील मार्क्सवादियों ने साहित्य और समीक्षा, दोनों विधाओं को उसकी सहज सर्जनात्मकता से वंचित करने का धत्कर्म किया है।

अवधेय यह है कि समीक्षा न तो मात्र व्यास (व्याख्या-विवृत्ति) कर्म है और न ही समास (संक्षेपण, सार-संग्रह) कर्म है। ये दोनों शब्द समीक्षा के विरोधी तो नहीं हैं, किन्तु उसके निर्विकल्प अंग भी नहीं हैं। प्रस्तुत का तत्त्वाभिनिवेशी विश्लेषण करना समीक्षा का मूल कर्तव्य है, जिससे कृति के साथ न्याय हो सके। समीक्षा का दायित्व है कृति की अन्तरंगात्मक रचना में सन्निहित भाव को सर्वसाधारण की अनुभूति का विषय बनाना, जिससे पाठक कृतिकार के मन्तव्य से तादात्म्य अनुभव कर सकें।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

डॉ. वरुण तिवारी ने जिन समीक्षा आलेखों को 'पाठान्तर' में संकलित किया है, उनका सम्बन्ध विविध विधाओं से है। सामान्यतः सर्जनात्मक कृतियाँ ही समीक्षा के मान्य आकर्षण की प्रथम अधिकारिणी हैं, किन्तु शोध-ग्रान्थिक अध्ययन, वैचारिक वाद-प्रतिपत्ति और अनूदित कृति को समीक्षा की सान पर चढ़ाना हिन्दी-समीक्षा-क्षेत्र में नये आयामों का उद्‌घाटन करना है। इस दृष्टि से डॉ. वरुण तिवारी ने हिन्दी समीक्षा की उपजीव्यता का भूमि-विस्तार किया है। एक प्रकार से 'पाठान्तर' में समीक्षासिद्ध कृतियों की भी समीक्षा की गयी है। तथ्यतः शोध-ग्रन्थों को विशिष्ट शैक्षिकपदता के समीक्षात्मक ग्रन्थ मानकर उन्हें समीक्षक कृतियों की पांक्तेय अग्रता से प्रायः दूर रखा जाता है। कारण यह भी है कि शोधपरिणामी लेखन की अपनी एक अकादमिक पद्धति है, जो कि स्वयं में समीक्षात्मकता से सम्पन्न होती है, और विशेषकर तब, जब एकाधिक परीक्षक भी उनका मूल्यांकन करते हैं। पर, इधर समीक्षक के रूप में डॉ. वरुण तिवारी ने शोध-गवेषणाओं की भी समीक्षा कर उनका साहित्यिक मूल्यमान प्रस्तुत किया है।

समीक्षित शोधग्रन्थों में, डॉ. अरुण शास्त्री प्रस्तुत 'कबीर कालीन भारतीय समाज', डॉ. देवेन्द्र कुमार देवेश प्रस्तुत 'गीतांजलि के हिन्दी अनुवाद' तथा डॉ. सुबोध मंडल प्रस्तुत 'गिरिराज किशोर के उपन्यासों का समाजशास्त्र' विषय-शीर्षक उल्लेख्य हैं। यहाँ यह उद्‌भावना सुरुचिकर है कि महाकवि कबीर व गीतांजलि-पर्याय से विश्वकवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर की नामधन्यता से भावित हुए पाठक की भाव-चेतना को समीक्षक वरुण तिवारी समयान्तर से समर्थ कथाशिल्पी गिरिराज किशोर के उपन्यासों में न्यस्त वर्तमान भारत की वर्तमान चेतना के यथार्थ से रू-ब-रू कराते हैं। स्वाभाविक है कि शोध-प्रबन्धों की समीक्षा-पद्धति, सर्जनात्मक साहित्य की समीक्षा-पद्धति से स्वयं को अलग कर लेती है, क्योंकि शोध के अध्यायगत समाहरण के बिना समीक्षा-गति का पथ निर्मित नहीं हो सकता। निस्संशय डॉ. वरुण तिवारी ने शोध-प्रबन्धों के अध्यायगत समाहरण को अपनी सूत्रात्मक शब्दावलि से आन्तरिक संगति प्रदान की है। यूँ सीधे-सीधे शोध-प्रबन्ध न सही, किन्तु डॉ. दीनानाथ सिंह की पुस्तक 'हिन्दी कहानी के सौ वर्ष' को भी शोधप्रज्ञ अध्ययन के अन्तर्गत लिया जा सकता है। इसी प्रकार डॉ. ओमप्रकाश भारती की 'नदियाँ गाती हैं, कोसी नदी का लोक सांस्कृतिक अध्ययन' पुस्तक को शोधाश्रयी कृति का एक रूप माना जा सकता है। ऐतिहासिक अध्ययन की इन पुस्तकों के साथ यदि प्रो. कैलास बिहारी सहाय की वैचारिक पुस्तक 'मार्क्सवाद और अस्तित्ववाद' को वर्गित कर लिया जाये तो ये कतिपय कृतियाँ 'समीक्षा की समीक्षा' वर्ग में परिगणित की जा सकती हैं।

'पाठान्तर' में डॉ. तिवारी द्वारा समीक्षित रचनाओं को संरचनात्मक प्रवृत्ति के आधार पर तीन भागों में वर्गीकृत किया जा सकता है। पहला वर्ग है उन कृतियों का, जो शोध-प्रविधि से संस्कारित हैं। किसी विधा का ऐतिहासिक अध्ययन और सांस्कृतिक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अध्ययन भी प्रकारान्तर से शोध कार्य ही है। वैचारिक वाद विवेचन को भी शोधमूलक आन्तरिकता से विच्छिन्न नहीं किया जा सकता। इस प्रकार छह कृतियों को शोधाश्रयी वर्ग में रखा जा सकता है। सर्जनात्मक कृतियों के दूसरे वर्ग में बारह कृतियाँ हैं जिनमें पंजाबी से हिन्दी में अनूदित 'परिक्रमा' उपन्यास भी है। अनुवाद-तकनीक-कौशल की अपेक्षा समीक्षक डॉ. तिवारी ने इस उपन्यास के प्रतिपाद्य पर विचार किया है। शेष ग्यारह कृतियों में चार कविता-संग्रह, तीन गजल-संग्रह, एक प्रबन्ध-काव्य, एक कहानी-संग्रह, एक सागर द्वीपीय यात्रा-संस्मरण तथा आकाशवाणी-अनुभव-संस्मरण-रचना सम्मिलित हैं। गजल-संग्रहों के सम्बन्ध में यह उल्लेखनीय है कि समीक्षक ने जिन तीन गलजकारों का चयन किया है, उनमें डॉ. कुँवर बेचैन, डॉ. देवेन्द्र शर्मा इन्द्र और विज्ञानव्रत अपने-अपने फन में प्रतिष्ठालब्ध हैं। तीसरे वर्ग के तीन स्वतन्त्र आलेखों के सम्बन्ध में यह कथनीय है कि नवजागरण काल के प्रातिभ कवि भारतेन्दु अपने युग के साहित्य को दिशा देने वाले समर्थ साहित्यकार थे। दूसरे कवि नागार्जुन के काव्य में मिथिला के लोक-जीवन और जनचेतना को डॉ. तिवारी ने महत्त्वपूर्ण रीति से विवेचित किया है। यद्यपि राजकमल चौधरी ने कविता, कहानी, उपन्यास और निबन्ध में विशिष्ट तेवर में लिखा है किन्तु डॉ. वरुण तिवारी ने अपनी समीक्षा को उनकी काव्य-चेतना तक परिमति करते हुए उनके काव्य के भाव-वैशिष्ट्य और अनुभूति गाम्भीर्य को तर्कसंगत ढंग से प्रस्तुत किया है।

कृतियों के माध्यम से समीक्षा के विनियोजित पक्ष से डॉ. वरुण तिवारी की समीक्षा-पद्धति के सिद्धान्त-रूपों को समझा जा सकता है। हिन्दी जगत् में डॉ. तिवारी एक चिन्तक कवि के रूप में जाने जाते हैं। सो, उनके कवि का सजल संस्कार, उनके समीक्षा-चिन्तन में भी सरसित हुआ है। कवि-रूप की उनकी संवेदना ने, चिन्तन-मनन की उनकी समीक्षा-भाषा को सँवारा है। फलस्वरूप कृति प्रतिपाद्य के समीक्षात्मक विश्लेषण के बीच-बीच में डॉ. वरुण तिवारी ने विधा और विषय के सम्बन्ध में जो सारात्मक वाक्य-टिप्पणियाँ की हैं, उनसे समीक्षक का अधीति-बोध तो झलकता ही है, साथ ही पाठकीय-बोध को भी तृप्ति मिलती है। इतना ही नहीं अठारह कृतियों के अधिसंख्य शीर्षकाभिधानों को डॉ. तिवारी ने जिस गहरी अर्थ-व्यंजना के विचार-बोधक शब्दों में परिणत किया है, उससे शीर्षकों की अभिव्यक्ति की सुन्दरता तो बढ़ी ही है, साथ ही कृतियों के स्वरूप की सारंगता भी साकार हुई है। निश्चित रूप से एक प्रबुद्ध समीक्षक के रूप में डॉ. वरुण तिवारी ने हिन्दी भाषा के विधागत वैविध्य की धारक अनेक महत्त्वपूर्ण कृतियों के आन्तरिक भाव-सौन्दर्य सहित उनके संरचनात्मक कौशल्य को भी विवेचित कर हिन्दी समीक्षा के कतिपय नये आयामों को उद्घाटित किया है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पाठकीय प्रतिक्रिया

'चिन्तन-सृजन' से सदा प्रभावित रही हूँ। मानविकी ज्ञान की एक बहुत बड़ी कमी को पूरा कर रही है यह पत्रिका। साधुवाद! मैं तो शुरू से ही इससे जुड़ी हूँ, चाहती हूँ यह परिवार बढ़े, अतः एक और सदस्य को इसमें शामिल करते हुए सदस्यता शुक्ल भेज रही हूँ। अपने लिए इसका हिसाब-किताब कभी नहीं रखा। आपकी उदारता से अनुग्रहित रहीहूँ। शुक्ल इतना कम है कि छपाई और वितरण की जरुरतें भी मुश्किल से पूरी हो पा रही होंगी। आप इसे अभियान-अनुष्ठान के स्तर पर चला रहे हैं समझना कठिन नहीं है। बहरहाल 200/- का चेक भेज रही हूँ, स्वीकार करें।

- राजी सेठ, एम-16, साकेत, नई दिल्ली-110017.

'चिन्तन-सृजन' का जुलाई-सितंम्बर 2014 का अंक प्राप्त। भाषा के संबंध में सरकार की गलत एवं जनविरोधी नीति बराबर चर्चा का विषय रही है। आपका मानना वाजिब है कि अंगेजी के प्रति अंध मोह कितना घातक होता है : "यहाँ भाषा को सांप्रदायिकता के दायरे में लाने से उपजी विकृत एवं रुग्ण सोच से उपजा संस्कृत द्रोह तो समझ में आता है जो भारतीय मार्क्सवादियों की जानी मानी कमजोरी है, लेकिन अंग्रेजी शब्दों को ठूँसकर हिंदी के स्वरुप को बिगाड़ने की बातें नहीं।" (पृ. 9) आपका विचार तर्कसम्मत व व्यावहारिक है कि, अंग्रेजी शब्दों को यथावत लेने से हिंदी एवं भारतीय भाषाओं में शब्द-निर्माण की प्रक्रिया रुकी है।" (पृ. 20) कमलेश ने रेजगारी के महत्त्व पर प्रकाश डाला है और जताया है कि उत्तरोत्तर बढ़ती महँगाई तथा मुद्रा-स्फीति रेजगारी के बहिर्गमन का कारण है। अब तो भारतीय डाक में पोस्टकार्ड भर वचास पैसे में मिलता है। एक लेना चाहें तो पचास पैसे का सिक्काचलन में नहीं। रेजगारी के गायब होने पर बहुत से व्यवसाय बंद हो गए हैं। यह लेख शोधपरक और दृगोन्मीलक है। डॉ. रमानाथ त्रिपाठी के साथ कई बार गोष्ठियों, सभाओं में भेंट हुई है। वह रामकथा के जितने बडे मर्मज्ञ हैं उतने हीसरल, विनम्र, भावुक। एक बार हरिद्वार की एक सभा की मैं अध्यक्षता कर रहा था। वे श्रोता के रूप में एकदम पीछे बैठे थे। मुझे भय था कि मैं कुछ अनर्गल बोल दूँ तो वह टोकेंगे। पर मैं अध्यक्षीय वक्तव्य देकर उनके पास गया तो उन्होंने मेरी पीठ थपथपाई और बोले कि मैं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पढताभर नहीं उसे मनन कर आत्मसात भी करता हूँ। उनके पांडिल्य सौजन्य की जितनी ही चर्चा हो कम है। डॉ. रुक्मिणी का लेख शोधपरक और आत्मोकर्षक है। सभी लेखकों को साधुबाद।

इधर देखता हूँ कि मेरी प्रतिक्रिया नहीं छप रही है। मैं यथासाध्य पोस्टकार्ड में ही प्रतिक्रिया भेज दिया करता हूँ। आपका प्रत्येक अंक शोध-प्रज्ञा, नई दृष्टि और नवीन तथ्यों का उंदघटक, प्रकाशक है। आपके लेखक और मेरे आदर्श विद्वान डॉ. रमेश चन्द्र शाह के सम्मान मिलने से मुझे अपार प्रसन्नता है। मैं आपको और उनको बधाई देता हूँ। आपको उनके लेखादि के सर्वाधिक शुद्ध प्रकाशन के लिए और उन्हें स्तरीय और मानवसापेक्ष लेखन के लिए। साहित्यकार जहाँ जाए, जहाँ रहे, कुछ घंटों के लिए भी, उसका व्यक्तित्व, संस्कार साथ ही रहता है। अज्ञेय का स्मरण आते ही उन्होंने उनकी कविता यथावत सुनदी - गीतिः / मन पर, वेदना के विना, तर्कातीत। बस स्वीकार से ही सिहदकर बोला-/ 'नहीं'। फिर आना नहीं होगा।'' (पृ. 14) साहित्य की कोई विधा हो, लेखक का व्यक्तित्व साथ-साथ चलता है। डॉ. वागीश प्राचीन-अर्वाचीन दोनों के प्रकांड पंडित हैं। वह बताते हैं नाद ब्रह्म का भाषिक आधार दर्शन। देवनागरी लिपि की वर्णमाला को विश्व में सर्व श्रेष्ठ वर्णमाला मानते हैं। कारण यहाँ वाक और वर्ण-ध्वनि में साम्य है। ''देवनागरी लिपि में अधिष्ठित संस्कृत भाषा में सोलह स्वर और तैंतीस व्यजंन हैं।'' ऐसी वर्णमाला विश्व की किसी भाषा में नहीं है। नाद ब्रह्म के भाषिक आधार दर्शन की यहाँ तात्विक मीमांसा हुई है।

आपका संपादकीय सदा आज के ज्वलंत प्रश्नों पर प्रकाश डालता है और उनके उत्तर का तार्किक आधार देता है। आपका कहना वाजिब है कि सदा सरकार, कानून व्यवस्था, प्रशासन को कोसने, उस पर आरोप-प्रत्यारोप लगाने की अपेक्षा हम स्वयं जगें अपना कर्तव्य पहले समझें, उसका निष्ठापूर्वक पालन करें - इसी से समस्या का समाधान होगा। साथ-साथ चाहिए आत्म-नियंत्रण फिर समाज-नियंत्रण, समुचित शिक्षा कि अंदर का पशु नष्ट हो जाए। आपका कहना वाजिब है : प्रत्येक लेख शोधपरक एवं ज्ञानोन्मेषक हैं। संपादक एवं लेखकों के लिए साधुवाद के शब्द कम पड़ जाते हैं।

- प्रो. मृत्युंजय उपाध्याय, 9/21, वृन्दावन, मनोरम नगर, लूबी सर्कुलर रोड, धनबाद-826001 (झारखण्ड)

मुझे 'चिन्तन-सृजन' का अंक अप्रैल-जून, 2014 विलम्ब से मिला। अभी डॉ. समदोंग रींपोचे का लेख *आधुनिकता और परम्परा*, शंकर पुणताम्बेकर का *पत्नी* और डॉ. शंकर शरण का लेख *वेंडी डोनीजर का वैकल्पिक हिन्दू इतिहास* पढ़ा। डॉ. शरण के इस लेख के अंत में एक पाठक की निम्नलिखित प्रतिक्रिया जोड़ना चाहूँगा : संसार के सारे मत, पंथ और मज़हब सनातन धर्म या कहें हिन्दू धर्म में से निकले हैं। आपको यह सुनना

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पसंद न हो तो भी आपके अध्ययन पर कोई संदेह नहीं करेगा, आप इस विदित पर समझौता कर सकते हैं कि हिंदू धर्म के बाद सभी मत, पंथ और मज़हब पैदा हुए। वर्तमान मत, पंथ या मज़हबों के लिए तो यही सच है। कैसा भी सोचें या सोचना न चाहें, वरिष्ठता के प्रति दूषित भाव छिपाए नहीं छुपता उनका जिन्हें उसके अस्तित्व भर से हीनता महसूस होती है: 'जब तक यह जिंदा रहेगा, चाहे उसके मुँह पर न कहें, तब तक लोग एक दूसरे को कुहनियाँ मारते रहेंगे कि ऋषि याज्ञवल्क्य ने चुहिया को शेर बना दिया। क्यों न इस ऋषि को ही आहार बना लें? पर वह यह नहीं जानती जो चुहिया को शेर बना सकता है पुनः शेर को चुहिया भी बना सकता है समय आने पर।' वैसा सिंह होना पंथों या मज़हबों के सम्मान का प्रश्न बनता है और वे कुत्सित चेष्टाएँ करते हैं। यह अनेकों बार दोहराया गया है, आशय कि फिर सचेत नहीं हुए, पूत कपूत हो सकता है, माता पिता शत्रु नहीं। कहीं माता पिता बच्चों के जन्म तक संयम न बरतते हों। वहाँ उनके बच्चे वेंडी डोनीजर जैसा दिमाग लेकर पैदा होंगे ही। दुर्भाग्यवश उनका दुरुपयोग मज़हब करता है। शिकागो विश्वविद्यालय और ऑक्सफोर्ड प्रेस जैसे शिक्षा प्रसार के केन्द्र तो उनके माध्यम मात्र होते हैं।

पश्चिम हिंदू धर्म के प्रतीकों के सकारात्मक पक्ष को देखना नहीं चाहता। वह उसका प्रभाव विगर्हित कर लेताहै। हम, आप, हिंदू धर्म और भारत क्या कर सकते हैं? ऐसा कदारव्येय लार्ड पेने के समय से होंता आया है। विकृत वातावरण बना कर जीने में शूकरवृत्ति काम करती है। सत्यं शिवं सुन्दरं के परिवेश में प्रवेश पाना सरल भी तो नहीं है। सर्वप्रथम माता पिता को ही अमयार्दित इच्छाओं और प्रतिक्रियाओं का त्याग करना होता है जिसकी पश्चिम से उम्मीद नहीं की जा सकती, धर्मपरिवर्तितों से तो बिलकुल नहीं। क्योंकि उनके रहनुमा जिनकी बदली जा सकती हो उनकी आस्था ही अंधविश्वास में बदल देते हैं।

चिन्तन-सृजन का कागज, मुद्रण सब अच्छा और बड़ी बात यह कि कोई त्रुटि भी नहीं। हार्दिक धन्यवाद और नमस्कार!

- केशीकांत, पी-6, पंजाबी विश्वविद्यालय परिसर, पटियाला-147002।

जुलाई-सितंम्बर अंक बिलंब से ही लेकिन प्राप्त हुआ। आज की हिन्दी राष्ट्र के मूर्धन्य नेता के सिर चढ़कर प्रतिष्ठित होने के लिए विश्व में डंका बजा रही है। साथ ही संप्रति 65 करोड युव-जन नव सृजन के लिए तत्पर हैं। नये संकेत की प्रतीक्षा है। लगता है अच्छे दिन आने लगे। ऐसे में देश के महान कर्णधार जो जन-धन के साथ हिन्दी का स्वाँस ले रहे हैं उनके प्रति मूर्धन्य साहित्यकारों और समालोचकों की दृष्टि धूमिल हो गई। हौनी तो चाहिए "संगगच्छध्वम्" की भूमिका में पर विचार-विमर्श से भी अनुपस्थित रहे। ! पुनः बेहतर संकल्प के लिए धन्यवाद एवं साधुवाद।

- डॉ. भोला प्रसाद गुप्त, मनिहारी, कटिहार-854113 (बिहार)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चिन्तन-सृजन के संपादक डॉ. बी.बी. कुमार ने अक्टूबर-दिसम्बर 2014 अंक के संपादकीय में प्रश्न किया है - ज्ञान-गंगा की सफाई का अभियान कौन चलाएगा? उन्होनें विश्वास किया है कि हमारे प्रधान मंत्री ने देश में स्वच्छता का अभियान चलाया है। उसका प्रभाव भी पड़ा है। स्वच्छता के प्रति जागरूकता बढ़ी है और सक्रियता भी। हमें विश्वास है कि देश तथा गंगा दोनों को साफ होना ही है। लेकिन समस्या इतने तक ही सीमित नहीं है। सफाई तो हमें ज्ञान-गंगा, सरकारी तंत्र, राजनीति आदि सबकी करनी होगी। मुझे लगता है कि इनमें आवश्यक काम ज्ञान-गंगा की सफाई का ही है। प्रश्न है कि क्या सचमुच हमारे ज्ञान की गंगा प्रदूषित हो गयी है? डॉ. कुमार ने ऐसे प्रश्न को हमारे सामने खड़ा किया है, जो सदियों से प्रदूषित होती आ रही है और हम अपनी मूल स्वाभाविक पहचान को भूलकर दूसरे की पहचान की खोल पहनकर अजायब घर में लीला दिखलाकर देखने वाले को खोखला, क्षणिक आनन्द दे रहे हैं। हम आक्रांताओं, व्यापारियों, विदेशियों के हाथों बाह्य-आन्तरिक दोनो रूपों में पीटे जा रहे हैं और पालतू जानवर की तरह उनका तलवासहला रहे हैं। आक्रान्ताओं ने न केवल हमारे भूभाग को अपने अधिकार में किया, बल्कि हमारे ऊपर नृशंस अत्याचार के साथ खून की नदी बहायी और हमारी भाषा-संस्कृति तथा ज्ञान-गंगा को प्रदूषित कर दिया। ऐसी विपरीत परिस्थितियों को देखकर और विश्व व्याप्त ज्ञान की गंगा को प्रदूषित होते देखकर विद्यापति ने देश की जनता को सचेत किया था। उन्होंने कहा:-

देसिल बयना सब जन मिट्ठा।

आक्रान्ताओं ने इसके विपरीत प्रदूषित भाव को हमारे मन-मस्तिष्क में जबरन भर दिया जो कालान्तर में हमारा स्वभाव बन गया और हम आपनी माँ की उपेक्षा तथा अनादर करने लगे। हम आक्रान्ताओं के स्वर में स्वर मिलाकर कहने लगे -

देसिल बनना सब जन तीता।

इसके परिणाम स्वरूप हम आयातित भाषा अरबी-फारसी पढ़ने लगे। हमारे ज्ञान के सुसमृद्ध भाण्डार से परिपूर्ण गुरुकुल बन्द कर दिये गये। हमारे गुरु आचार्य निरीह हो गये। उनकी बात को सुनने वाला नहीं रहा। विश्वविख्यात नालन्दा विश्वविद्यालय, तक्षशिला विश्वविद्यालय, विक्रमशिला विश्वविद्यालय जैसी संस्थाओं की विध्वंस-लीला इतिहास के चन्द पन्नों में गुम हो गयी। जिस देश के लोग विश्व के कोने-कोने में अपने ज्ञान-चरित्र की शिक्षा देने के लिए जाते-रहते थे वे ही अब सबसे पीछे हो गये हैं। मनु ने कहा है:-

एतत् देश प्रसूतस्य शकासादग्रजन्मनः।
स्वं-स्वं चरित्रं शिक्षेरन पृथिव्यां सर्वमानवाः ।। 2 ।20

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उक्त गौरव को नष्ट होते और ज्ञान-गंगा को प्रदूषण के जाल में फँसते हुए देखकर भारतेन्दु ने देश की जनता को सचेत करते हुए कहा था।

रोवहु सबमिलि कै आवहु भारत भाई।
हा! हा! भारत दुर्दशा न देखी जाई।।
सबके पहिले जेटि ईश्वर धन-बल दीनों।
सबके पहिले जेहि सभ्य विधाता कीनों ।।
सबके पहिले जो रूप रंग रस भीनो।
सबके पहिले विद्याफल जिन ग्रहि लीनों।।
अब सबके पीछे सोई परत लखाई।
××× ××× ×××
तहँ रही मूढता कलह अविद्या राती।
अब जहँ देखहु तहँ दुःखहि दुःख दिखाई।।
××× ××× ×××
तिन नासी बुधि बल विद्या धन बहुबारी।
××× ××× ×××
भए अंध-पंगु सब दीन हीन बिलखाई।

इस प्रकार हम पहले आक्रमणकारियों और उसके बाद विदेशी व्यापारियों के बाह्य छद्म चाकचिक्य से इतना अधिक व्यामोहित हो चुके थे और हैं कि हम अपनी अमूल्य संपदा को कूड़ा-करकट, अपने भाई-स्वजन को दुश्मन समझने लगे और अपनी प्राचीन धरोहर के प्रति मन में घृणा भाव पैदा करने लगे। वह इतना अधिक प्रभावशाली बन गया कि हम उसके अवगुणों को भी गुणयुक्त समझने मानने लगे। इस प्रकार हमारी ज्ञान-गंगा हर क्षेत्र में प्रदूषित होनेलगी और आज भी होती जा रही है।

जब हमने स्वतंत्रता आन्दोलन का आह्वान किया था, तब उसमें प्रदूषित ज्ञान-गंगा को भी स्वच्छ करने की भावना निहित थी। स्वदेशीपन का नारा इसका सशक्त ज्वलंत उदाहरण है। आजादी की लड़ाई स्वभाषा में लड़ी गयी थी और विदेशी भाषा - वस्तु वहिष्कार उसका मूल मुद्दा था। हम पूर्ण स्वराज्य चाहते थे किन्तु ज्यों ही 15 अगस्त 1947 को सत्ता हस्तान्तरित हुई, त्यों ही उसे स्वतंत्रता प्राप्ति का खोखला ढिढोरा पीट दिया गया। सच तो यह है कि जिस स्वतंत्रता या स्वदेशीपन के लिए हम आन्दोलन कर रहे थे, वह प्राप्त नहीं हो सका। गाँधी जी का स्वदेशीपन कासपना सपना बन कर रह गया था, वह चकनाचूर हो गया, क्योंकि जिन लोगों के हाथों में सत्ता हस्तान्तरित हुई, वे लोग उन्हीं नीति-नियमों पर राज्य संचालन करने लगे, जिन नियमों पर विदेशी करते थे। विदेशियों ने हमारी अकूत ज्ञान-सम्पदा को कपोल कल्पित, कूड़ा-करकट कह कर नकार दिया था। इस प्रकार तथा-कथित

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्वतंत्रता प्राप्ति के साथ ही गाँधी की नीतियों की हत्या कर दी गयी। यह ठीक है कि उनके शरीर की हत्या 30 जनवरी 1948 को हुई, किंतु उनको मानसिक रूप से मृत्युशया पर 15 अगस्त 1947 के बाद ही तत्कालीन सत्ताधारी ने भेज दिया था। सत्ता प्राप्त करने वाले ने बापू का मुख बन्द कर दिया था; उनकी आँखो के सामने स्वराज्य का दाह-संस्कार कर दिया गया था।

1835 में विदेशी व्यापारी कूटनीतिज्ञ मैकाले ने अंगेजी को शिक्षा का माध्यम बनाया और भविष्यवाणी की कि भविष्य में भारत के लोग रूप-रंग, चेहरे तथा शारीरिक बनावट के कारण भारतीय रहेंगे, किन्तु वे मानसिक रूप से सदा हमारे गुलाम बने रहेंगे। इस भविष्यवाणी के विरूद्ध हमारे कर्णधारों ने आवाज उठायी अवश्य, पर 15 अगस्त 1947 के बाद वह न केवल निरस्त हो गयी, बल्कि उसके प्रति प्रत्येक व्यक्ति के मन में ललक जग गयी। ऐसी स्थिति में हमारी ज्ञान-गंगा जो सदियों से प्रदूषित होती आ रही थी, उसे अधिक प्रदूषित होने का अवसर प्राप्त हुआ, उसे अधिकाधिक बल प्राप्त हुआ। उस प्रदूषित ज्ञान-गंगा को देखकर भारतेन्दु ने कहा थाः-

निज भाषा उन्नति अहै, सब उन्नति के मूल।

जिन लोगों के हाथों में सत्ता हस्तान्तरित हुई थी, उन लोगों ने इसके विपरीत आवाज बुलन्द की और कहाः-

निज भाषा अवनति अहै, सब उन्नति के शूल।

और पुरजोर शक्ति से इसका समर्थन और प्रचार किया, किन्तु बीच-बीच में राष्ट्रधर्मावलम्बी लोगों ने राष्ट्रहित हेतु सबों को अनवरत सचेत किया है। मैथिलीशरण गुप्त ने कहा :

हम कौन थे? क्या हो गये? और क्या होंगे अभी?

उक्त सूक्ति के माध्यम से कवि ने अतीत, वर्तमान और भविष्य तीनों कालों की स्थितियों की ओर हमारा ध्यान खींचा है। हम अतीत की ज्ञान संपदा को भूल गये। फलतः वर्तमान की ज्ञान-गंगा प्रदूषित हो गयी और यदि हम सचेत नहीं हुए और ज्ञान-गंगा को हमने प्रदूषण मुक्त नहीं किया, तो भविष्य अन्धकाराच्छन्न तथा दुर्गतिभरा होगा। इसलिए इस समस्या पर समग्रता से विचार-विमर्श करने के लिए कवि ने हमें सचेत किया है। इसी प्रकार बार-बार, समय-समय पर मनीषियों द्वारा सचेत किये जाने पर भी हम उसके प्रति उदासीन बने रहे और आज भी बनेहुए हैं। वस्तुतः हमारी मानसिकता पूर्णतः प्रदूषित हो गयी है, जिसके कारण हम करणीय-अकरणीय, ग्राह्य-अग्राह्य में अन्तर नहीं कर पाते हैं। हम अकरणीय करते हैं और अग्राह्य को पकड़ते रहते हैं जिसके कारण हमारी ज्ञान-गंगा दिनानुदिन प्रदूषित होती जा रही है। अतः उसे प्रदूषण रहित करने की प्राथमिक आवश्यकता है क्योंकि इससे अनेकानेक दुष्परिणाम जनमानस के बीच व्याप्त हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ज्ञानवान समाज का कोई व्यक्ति बेकार नहीं हो सकता। कहा जाता है मानव सर्वशक्तिमान है। इसमें एक पल के लिए द्विधा-बोध के लिए अवकाश नहीं है। जिस राष्ट्र का सर्वशक्तिशाली कहा जानेवाला मानव बेकारी की समस्या से ग्रस्त हो, उस राष्ट्र का विकास संभव कैसे हो सकता है। आज समुचित ज्ञान के अभाव में हमारी युवा पीढ़ी बेकार सड़क पर घूम कर अपना समय व्यतीत कर रही है। उन्हें आज की प्रदूषित शिक्षा पद्धति ने पंगु बना दिया है। आज न तो स्वस्थ शिक्षा दी जा रही है और न स्वस्थ रूप से परीक्षा ली जा रही है। आज के विद्यार्थी विषय के मूल पाठ्य ग्रंथ को जानते ही नहीं। उसकी जगह पर गन्दे नोट बुक, सिरीज, पासपोर्ट, गाइड आदि नामों से प्रचलित पुस्तकों को लेकर आधा-बाधा पढ़ते हैं और परीक्षा भवन में पैसा के बल पर नकल कर उच्चतम अंकों से परीक्षा पास करते हैं। देश की आर्थिक स्थिति को यदि काला धन बरबाद करता है, तो हमारी शिक्षा को पासपोर्ट, गाइड जैसी गन्दी किताबें। मैं मानव संसाधन विकास मंत्रालय से अनुरोध करता हूँ कि वे उक्त बाजारू पुस्तकों को, जिनसे हमारी ज्ञान-गंगा अत्यधिक प्रदूषित हो रही है, उनके प्रकाशन पर हर तरह से रोक लगावें और ऐसी गन्दी पुस्तकों के विक्रेताको कठोर दण्ड दें। जब तक इस पर कठोरता से कदम नहीं उठाए जाएँगे, तब तक हमारी ज्ञानगंगा स्वच्छ नहीं होगी।

ज्ञानी या पण्डित का लक्षण हैः-

मातृत्व परदारेषु पर द्रव्येषु लोष्टवत्।
आत्मवत् सर्वभूतेषु यः पश्यति स पण्डितः।।

अर्थात् दूसरे की स्त्री को माता के समान (बेटी-बहन को अपनी बेटी-बहन के समान), दूसरे के धन को मिट्टी के समान, सभी प्राणी को अपने समान जो देखता/मानता है, वही पण्डित/ज्ञानी है। यदि हमारा ज्ञान स्वचछ, पवित्र रहेगा, तो न तो हम कभी स्त्री का अनादर, अपहरण, यौन-शोषण करेंगे, न भ्रष्टाचार, अनाचार आदि में लिप्त होंगे और न किसी न किसी के ऊपर अत्याचार कर उसकी हत्या करेंगे। स्पष्ट है कि ज्ञान-गंगा प्रदूषित होने के कारण ही हम अनेकानेक दुर्गुणों तथा असमाजिक गतिविधियों में लिप्त हो जाते हैं। आज समाज में जितने प्रकार के भी अवगुण विद्यमान हैं, उसके मूल में है ज्ञान का अभाव।

आदरणीय अन्ना हजारे ने भ्रष्टाचार के विरुद्ध आन्दोलन चलाया था या पुनः उसे चलाने की बात करते हैं। वस्तुतः भारत के प्रत्येक व्यक्ति को ज्ञानवान बनाने के लिए आन्दोलन होना चाहिए। संवेदनशीलता को, संवेदनात्मक अनुभूति को प्रत्येक नागरिक की मनस्थली में स्थापित करने के लिए प्रभावशाली कार्यक्रम चलाना चाहिए, जिससे राष्ट्रमें भावात्मक एकता स्थापित हो जाय और कोई किसी भी व्यक्ति का अहित न करे। भ्रष्टाचार मुक्त राष्ट्र आन्दोलन करने से नहीं होगा, बल्कि प्रत्येक व्यक्ति को उसके लिए ज्ञानवान/पण्डित बनाना होगा। इसके लिए शिक्षा को स्वभाषा -

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्वराष्ट्र से जोड़ना होगा। आज हमारी शिक्षा पूर्णतः दोषपूर्ण है। उसमें आमूल-चूल परिवर्तन करना होगा। प्रत्येक राष्ट्र की अपनी वाणी होती है और उसकी आवश्यकता होती है। राष्ट्र की आवश्यकता के अनुरूप राष्ट्र की वाणी में दी जानेवाली शिक्षा राष्ट्र को कदाचार मुक्त कर सकती है। आज की शिक्षा परीक्षा कदाचार से पूरी तरह से ग्रस्त है। कदाचार लिप्त शिक्षा से न तो ज्ञान की प्राप्ति हो सकती है और न राष्ट्र विकसित हो सकता है। वह केवल विकासशील बनने का स्वांग कर सकता है। जैसा हम कर रहे हैं।

विश्व में औद्योगिक क्रान्ति की आँधी आयी और विश्व के समस्त देशों ने उस औद्योगिक क्रान्ति को ग्रहण किया। ग्रहण करने के माध्यम दो थे। एक स्वभाषा और दूसरा अंगेजी यानी विदेशी भाषा। जिन देशों ने राष्ट्र की वाणी या स्वभाषा मैं उक्त क्रान्ति को ग्रहण किया वे राष्ट्र विकसित और शक्तिशाली बन गये, किन्तु जिन राष्ट्रों ने अंग्रेजी में उसे ग्रहण किया वे आज भी विकासशील बने हुए हैं तथा शक्तिहीन के रूप में परिगणित किये जा रहे हैं। चीन, जापान, रुस, फ्रास, जर्मनी आदि राष्ट्र हमारे कथन के प्रमाण हैं। उक्त राष्ट्रों ने हमारे मनीषी के कथन 'निज भाषा उन्नति अहै, सब उन्नति के मूल' को चरितार्थ किया है और हमने उसे नकार कर विश्व के समक्ष विकासशील बनने का खोखल दावा पेश किया है। आज भी हमें अपनी दुर्गति पर रोने और विचार करने की आवश्यकता बनी हुई है। उसपर विशुद्ध सकारात्मकता विचार तब तक नहीं हो पाएगा, जब तक हमारी ज्ञान की गंगा प्रदूषणविहीन नहीं हो जाती।

विडम्बना यह है कि आज सब अपने को ज्ञानी मानते हैं और वे जो आचरण करते हैं, वह अज्ञानी से भी निम्न स्तरीय होता है। प्रिंट मिडिया स्वच्छ ज्ञान-गंगा को प्रचारित स्थापित करने में सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह कर सकता है, पर वह प्रदूषित ज्ञान जितना अधिक प्रचार करता है, उतना अन्य वस्तुओं का नहीं। हमें स्मरण है, हमारे अध्यापक सलाह देते थे कि यदि तुम अपनी भाषा ठीक करना चाहते हो, तो दैनिक समाचार पत्र पढ़ो। आज उसके विपरीत कहा जाता है कि यदि तुम अपनी भाषा भ्रष्ट करना चाहते हो तो समाचार पत्र पढ़ो। वस्तुतः उसमें वर्तनी, वाक्य गठन, व्याकरण आदि की अशुद्धियाँ भरी पड़ी रहती हैं। हम उन गलतियों के प्रति अनासक्त भाव से रहते हैं। किन्तु अंग्रेजी के समाचार पत्रों में इस तरह की अशुद्धियाँ नहीं रहती हैं। उसके संवाददाता/संपादक अनवरतसचेष्ट रहते हैं। अभी-अभी दूरदर्शन पर 'अनऔथराइज्ड' का हिन्दी अनुवाद लिखित रूप से दिखलाया गया - अनाधिकृत। मुझे आश्चर्य लगा उस दूरदर्शन के हिन्दी कर्मचारी के ज्ञान पर। उन्होंने अपने उक्त अशुद्ध ज्ञान को विशुद्ध मानकर किसी शब्दकोश आदि के द्वारा भी उसे जानने की चेष्टा नहीं की।

स्वभाषा को नष्ट-भ्रष्ट करने का बीड़ा विज्ञापन ने उठाया है। वह रोमन को छोड़कर और दूसरी लिपि जानता ही नहीं है। विज्ञापन से जुड़े लोगों का विश्वास है

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कि रोमन लिपि में लिखित विज्ञापन का आम जनता पर गहरा प्रभाव पड़ता है, क्योंकि सभी भारतवासी केवल रोमन लिपि से परिचित हैं ओर किसी भारतीय लिपि से नहीं। इस अल्पज्ञता पर क्षोभ होता है, क्योंकि भारत वर्ष में संस्कृत की पढ़ाई होती रही है और संस्कृत देवनागरी लिपि में लिखी जाती है। इस प्रकार पूरा देश देवनागरी लिपि से परिचित है, फिर देवनागरी लिपि में उक्त विद्यापन को क्यों नहीं लिखा जाता है? इस प्रश्न का उत्तर किसी के पास नहीं है। इस का एक मात्र कारण है देवनागरी को अपदस्त कर रोमन लिपि का प्रचार-प्रसार करना। इस तरह की विरोधी भावना अपनी लिपि/भाषा के प्रति जिस देश में विद्यमान हो, वह देश विकसित कैसे हो सकता है?

विडम्बना यह है कि वह प्रचारित-प्रसारित किया गया है कि विश्व का समस्त ज्ञान केवल अंगेजी में ही है और हमने उसे मान लिया। विदेशियों ने हमारे देश के समस्त सरकारी गैर सरकारी काम-काज अपनी सहुलियत के लिए अपनी भाषा (अंग्रेजी) में करना आरंभ में किया था और तथाकथित स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद हमने भी उसे ही रहने दिया। आज भी सारे काम उसी भाषा में हो रहे हैं। जिस देश की न्यायपालिका, विधायिका विदेशी भाषा में संचालित हो, उस देश को स्वाधीन देश कैसे कहा जाएगा? अब तक सरकारी भाषा अंग्रेजी बनी हुई है। अतः विद्यार्थियों को मजबूरन, जबरदस्ती अंग्रेजी पढ़नी तथा उसमें दक्षता प्राप्त करनी पड़ रही है। विडम्बना यह है क़ि जिनकी अंग्रेजी बहुत अच्छी नहीं है, उन्हें नौकरी नहीं मिल सकती। हम अपने ही देश में विदेशी भाषा के वर्चस्व के कारण बेकारी की समस्या से जूझ रहे हैं। आज 67/68 वर्ष की अवधि समाप्त हो रही है। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद जन्म लेने वाले नौकरी से अवकाश प्राप्त कर गये हैं। वे पूरे जीवन काल में स्वभाषा में काम करने के लिए तरसते रहगये, पर उन्हें उक्त सुविधा तो नहीं ही प्राप्त हो सकी। आने वाली पीढ़ी को भी कब प्राप्त होगी यह अनुमान लगाना अत्यन्त दुष्कर है। मेरी मान्यता है कि जब तक हम स्वभाषा, स्वदेश, स्वराष्ट्र-प्रेम के प्रति हृदय से पूर्ण रूप से आस्थावान नहीं होंगे, तब तक देश से न तो भ्रष्टाचार का उन्मुलन होगा और न पठन-पाठन परीक्षण से कदाचार का।

अस्तु मैंने अपनी अल्पज्ञता के आधार पर प्रदूषित ज्ञान की गंगा को स्वच्छ करने के कुछ सुझाव दिये। विश्वास है, अन्य विद्वानों का ध्यान इस अछूते विषय पर जायगा, और आपसी संवाद से हम निश्चित निर्णय पर पहुँच पाएँगे।

- डॉ. धर्मदेव तिवारी 'शास्त्री', आचार्य एवं पूर्व अध्यक्ष, हिन्दी, काटन कालेज तथा गुवाहाटी विश्वविद्यालय; विजिटिंग आचार्य, हिन्दी, अरुणाचल विश्वविद्यालय, ईटानगर और त्रिपुरा विश्वविद्यालय, अगरतला।

'चिन्तन-सृजन' का अक्टूबर-दिसम्बर 2014 अंक प्राप्त हुआ। वैचारिकता पूर्ण विवेचन संग्रहणीय है।

- प्रदीप जुगरान, श्रीकोट गंगानाली, श्रीनगर (उत्तराखण्ड)।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्राप्ति-स्वीकार

पिछले अंकों में सूचीबद्ध पुस्तकों/पत्रिकाओं के अतिरिक्त प्राप्त नयी पुस्तकें/पत्रिक

पुस्तकें:

Learning at Bodhshala Re-orienting the School to its Communi Editor: Rajan Venkatesh; Published by: Other India Press, Above Mapu Clinic, Mapusa 403 507, Goa, India and Society for Integrat Development of Himalaya (SIDH), Hazelwood, Landour Cant Mussoorie-248 179 (Uttarakhand); Pages: 156; Price Rs. 200/-

पुस्तकालय 132250 गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय

पत्रिका :

कल हमारा है (मासिक), वर्ष - 3 अंक - 1, नवम्बर 2014, वर्ष - 4 अंक - जनवरी 2015; प्रधान सम्पादक: सत्यवीर अग्रवाल, एडवोकेट; 54/3 रामबाग मुजफ्फरनगर-251001(उ.प्र.); पृठः 24; मूल्यः 10 रुपये।

कष्फ डॉ. शुभदर्शन विशेषांक, वर्ष-13 / पंजी-4, सितम्बर 2014; संपाद डॉ. विनोद तनेजा, स्वत्वाधिकारी, मुद्रक, प्रकाशक डॉ. विनोद कुमार तनेजा द्व विभोर प्रकाशन के सौजन्य से 5016, जोशीपुरा नजदीकखालसा कॉलेज अमृतसर-143((पंजाब) से प्रकाशित; पृष्ठः 208.

भाषा भारती, राजभाषा उन्नयन की वार्षिक पत्रिका, वर्ष-2 अंक-2, नवम 2014; संपादकः डॉ. छबिल कुमार मेहेर; प्रकाशकः राजभाषा प्रकोष्ठ, डाक्टर हरी गौर विश्वविद्यालय, सागर-470003(म.प्र.); पृठः 160; मूल्यः निःशुल्क।

संचेतना, सृजन, संवाद एवं विचार का माध्यम, पूर्णांक 209, वर्ष-44 अं सितम्बर 2014 (प्रकाशित नवम्बर-2014); संपादकः महीप सिंह; प्रकाशनः एच-1 शिवाजी पार्क, पंजाबी बाग, नई दिल्ली-110 026 से प्रकाशित; पृष्ठः 58; मूल्यः 25 रु

सशक्त भारत, दिसम्बर 2014, वर्ष : 12, अंक-7; सम्पादकः राहुल कु प्रकाशकः, मुद्रक-ब्रिगेडियर डी.सी. पंत (सेवानिवृत) द्वारा सूर्या फाउण्डेशन के बी-3/330 पश्चिम विहार, नई दिल्ली से प्रकाशित; पृठः 12; मूल्यः 25 रुपये वार्षि

हिन्दी भवन संवाद, अंक-8 दिसम्बर 2014; सम्पादकः युगेश शर्मा; पं रविशंकर शुक्ल हिन्दी भवन न्यास की ओरसे मंत्री संचालक कैलाशचन्द्र पंत द्वारा हि भवन, श्यामला हिल्स भोपाल-462002(म.प्र.) से प्रकाशित; पृष्ठः 8; मूल्यः निःशुल

सृजन की आँच, वर्ष-3, अंकः 7-8, जून-नवम्बर-2014 (संयुक्तांक); सम्पा डॉ. माया सिंह; प्रकाशनः एफ-115/25, शिवाजी नगर, भोपाल से प्रकाशित; पृ 96; मूल्यः 100 रुपये।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar